अरि ... नी।
का समा... हो ... साथ ही साथ ...
अपनी इस प्रकाशन सम्बन्धी विविध संयम दूषित प्रवृत्तियो का समापन समाप्तिकरण करता हूँ

नोट :- लगे दोषो की पूर्ण शुद्धि के लिये आलोचना प्रतिक्रमण संभवतः योग्य श्रमण गुरु आचार्य के पास मे किये जाते है तदनुसार उक्त प्रायश्चित्तीकरण भी श्री स्था जैन श्रमण संघीय तृतीय पट्टधर आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी म. सा. के पवित्र सानिध्य मे ग्रहण किया गया है।

कुछ दोषो का प्रायश्चित्त समाज के समक्ष रखा जाना आवश्यक होता है। इसीलिये यह प्रगटीकरण किया गया है।

प्रायश्चित्त कर्ता जैनागम नवनीत संपादक

श्रमण संघीय आगम मनीषी

तिलोक मुनि

जैनागम नव... पु... - ८

प्रकाशकीय

३२ आगमो की ३२ पुस्तको के प्रकाशन की पूर्णता के साथ ही सजिल्द आठ साराश पुस्तको का प्रावधान भी साकार हो गया है इसका हमे अपार हर्ष है। सजिल्द संपादन प्रावधान का यह अतिम परिशिष्ट विभाग रूप आठवा जैनागम नवनीत खण्ड है।

इसमे आगमो के इतिहास, व्याख्या ग्रन्थो के इतिहास, परम्पराओ के रहस्य एव विचारणाए, जैन मत मतांतर (फिरको) की सैद्धान्तिक विचारणाए शताधिक पृष्ठो में एक रोचक संवाद के रूप में दी गई है। तदनतर ऐतिहासिक ऊहापोहो के प्रामाणिक समाधान उद्धरण पूर्वक निबन्धो के रूप मे शताधिक पृष्ठो मे दिये गये हैं।

इसके अनंतर आवश्यक सुत्र संबंधी अनेक जिज्ञासाओ के समाधान, सामायिक, प्रतिक्रमण हिन्दी भाषा मे विधि युक्त दिये हैं। सामायिक के प्रश्नोत्तर एव विविध जानकारिया चर्चाएं शताधिक पृष्ठो मे दी गई है। इस प्रकार यह खण्ड पुष्प २१-२२ और पुष्प ३२ के परिशिष्ट का संकलन है। पुष्प ३२ का आवश्यक सूत्र आगम विभाग तो प्रथम खड आचार शास्त्र मे रखा गया है।

यह अंतिम नवनीत खण्ड व्यवहारिक विविध जानकारियों का एवं जिज्ञासाओ के समाधानो का भण्डार है। यह हमारी सफलता का अतिम प्रतीक है। इसे हम अपार आनन्द के साथ स्वाध्यायी पाठकों की सेवा मे प्रस्तुत कर रहे है।

कार्यालय मैनेजर
हनुमान लाल, जैन स्थानक,
हरमाडा- ३०५८१२

हम हैं आपके
जैनागम नवनीत प्रकाशन समिति
के सदस्य गण
विमलकुमार नवलखा सूरत, पुखराज
गोलेच्छा रायपुर, समरथ लाल विनोद
कुमार सूरिया एवं मेहता परिवार खेडब्रह्मा

आगम सारांश समापन

वीर निर्वाण के २५०० वर्ष बाद भी आज अनेक हजारो धर्म प्रेमी मुमुक्षु प्राणी जिनवाणी रूप आगमो के अध्ययन की रूचि तमन्ना रखते है। यद्यपि वह संख्या अपेक्षित की अपेक्षा बहुत कम है फिर भी है अवश्य। उन आगम पिपासुओ की सुविधा के लिये यह आगम सारांश सृजन का कार्य एक दिन प्रारम्भ किया गया जिसका लेखन मुद्रण प्रकाशन एवं वितरण समापन होने मे ४ वर्ष की अवधि व्यतीत हो गई।

इस पीरियड मे दो संस्करण पूर्ण हो चुके है प्रथम संस्करण मे ३२ आगमो की ३२ पुस्तिकाओ के रूप मे संख्या मिलान की गई है। द्वितीय संस्करण मे उन्ही ३२ पुस्तिकाओ को ८ विभागो मे पृष्ट संख्या एव विषय साम्यता का लक्ष्य रखकर सकलित कर दिया गया है। प्रथम संस्करण का नामकरण "आगम नवनीत माला" रखा गया है एव द्वितीय संस्करण का नामकरण "जैनागम नवनीत" रखा गया है।

प्रथम संस्करण मे १०५० सेट कम्पलीट बने और १००० सेट वितरण हो चुके है। द्वितीय सस्करण मे ८५० सेट कम्पलीट बने ६०० सेट वितरण हो चुके है। कुल १६०० स्वाध्यायी सदस्य बने है जिसमे ९०० समूल्य ६०० अल्प मूल्य एवं १०० अमूल्य हुए है और इसी मे २५० उदार सहयोगी सदस्य भी हुए है।

कार्यवाहक मैनेजर

दिनाक ३१-१२-९३

हनुमान लाल - जैन स्थानक

हरमाडा- 305812

सूचना- सभी स्वाध्यायी बंधुओ एवं मनीषी विद्वानो से निवेदन है कि वे आगम नवनीत का अधिकाधिक अध्ययन करे एवं शंका समाधान के लिए सपर्क सूत्र हरमाडा, विजयनगर, खेड़ब्रह्मा पत्र व्यवहार करे ।

भवदीय - हनुमानलाल

आगम नवनीत माला

पुष्प - २१

एतिहासिक परिशिष्ट
खण्ड - १ (संवाद)

नवज्ञान गच्छप्रमुख
आगम मनीषी
तिलोकमुनि

प्रकाशक	:	आगम नवनीत प्रकाशन समिति
आद्य संस्थापक		(१) श्री पुखराजजी गोलेच्छा, रायपुर (म.प्र.)
		(२) श्रीमति शातिदेवी/चम्पालालजी बाठिया आबू पर्वत
प्रमुख स्तम्भ	·	(१) श्री समरथमलजी विनोद कुमारजी सूरिया खेडब्रह्मा
		(२) श्री उम्मेदराजजी मोहनलालजी साड जोधपुर
प्रमुख	·	(१) पुखराजजी कवाड, जोधपुर
		(२) श्री सुरेन्द्रसिहजी डागी, गुलाबपुरा
संयोजक	.	श्री विमलकुमारजी नवलखा, सूरत (जगपुरा)

सम्पर्क सूत्र एवं प्राप्ति स्थान :-

१. रतनसिंह जैन (अध्यापक)
बजरंग कालोनी
पोस्ट-- विजयनगर- ३०५ ६२४
जिला-- अजमेर (राजस्थान)

२. शा. मोडीलाल वरदीचन्द
कपडे के व्यापारी
स्टेशन रोड-- खेडब्रह्मा
पिन- ३८३२५५ (गुजरात)

मूल्य ८ रुपये
संवत २०५० सन- १९९३ मार्च

प्रेमी ग्राहक - २००/- रुपये

बत्तीस आगम का पूर्ण सेट

टाइपसैट **कम्प्यूटेक,** जोधपुर
मुद्रक · अनमोल प्रिन्टर्स, जोधपुर

ऐतिहासिक परिशिष्ट प्रसंग वार्ता

तत्व ज्ञान मे इतिहास का विषय भी एक महत्व शील स्थान रखता है। जैन साहित्य का सग्रह आज विशाल रूप मे उपलब्ध है। जिसमे मौलिक आगम साहित्य आचाराग आदि अनेक सूत्र है। जो तीर्थंकर गणधर से लेकर अभी तक परंपरा से क्रमश प्राप्त हो रहे है। अन्य साहित्य विभिन्न रूप से बाद मे आचार्यो ने सकलित सपादित किये है। मौलिक आगमो मे इतिहास का मुख्य विषय १२वे दृष्टिवाद अग मे होता है एवं बिखरे हुए रूप में यत्र तत्र अनेको आगमो मे रहता है।

दृष्टिवाद का विच्छेद वीर निर्वाण के १००० वर्ष करीब बाद मे हो गया था। आगम आदि के लेखन की प्रणाली भी उस समय के आस-पास ही चली। अपना जीवन लिखना या अपने गुरुओं की परपरा पट्टावली आदि लिखना इत्यादि उस समय प्रारभ नही हुआ था। यह उपक्रम १३वी शताब्दी के आस-पास प्रारम्भ हुआ था।

आज जो नंदी सूत्र मे प्राचीन श्रमणो के नाम गुण आदि मिलते है वह भी प्रसिद्ध हुए कालिक श्रुतानुयोग के धारण करने वाले महापुरुषो का स्मरण कीर्तन वंदन मात्र है। क्रमिक इतिहास परंपरा नही है। कल्प सूत्र मे जो कुछ भी पट्टावली का रूप मिलता है वह भी बहुत विकृत रूप मे है और स्वयं यह सूत्र एव इसके सभी विषय मौलिक या प्रामाणिक नही है। इसके रचना एव रचना काल मे भी कई कल्पनाए है। यह १२वी १३वी शताब्दि का ज्यो त्यो करके जोड़ा हुआ एव संकलित किया हुआ एक कल्पित सूत्र है। अत· इसमे प्राप्त पट्टावलियो का भी कोई वास्तविक महत्व नही है।

१२वी १३वी शताब्दि मे इतिहास परम्परा पट्टावली आदि सम्बन्धी विषयो के ग्रन्थ तैयार किये जाने लगे। तब उन्हे कई तत्व आगमो से ग्रन्थो से कथानको से , किवदतियो से, परपरा से एव विकृत परपराओ से प्राप्त हुए। उन्ही से इतिहास के ग्रंथ तैयार किये गये। क्योकि उस समय तक वीर निर्वाण को १७ सौ, १८ सौ वर्ष हो चुके थे। इसी कारण से अर्थात् घटनाओ और उसके लेखन काल के बीच मे सैकड़ो वर्षो का अतर आ जाने से विकृत स्मृतियो, विकृत परम्पराओ का एवं भ्रमित परम्पराओ का तथा मन कल्पित कल्पनाओ का सकलन लेखन गुंथन हो जाना स्वाभाविक है और कालांतर से ऐसे ग्रन्थो या रचनाओ के प्रति अधश्रद्धा और आग्रह व्रतियो ने स्थान ले लिया है।

उसके बाद कई तार्किक चितक विद्वान इन इतिहासो एव विरोधी उपलब्ध

इतिहासो का समन्वय करने के लिये अपना चिंतन प्रस्तुत करते है, किन्तु उसमे वे चिंतक आगम संबल की प्रमुखता न लेकर वैकल्पिक प्राप्त इतिहास पर ही अनुप्रेक्षण करते है। जिससे उनका वह नया चितन भी एक नया गलत इतिहास और परंपरा बन जाती है। इस प्रकार जैन साहित्य का इतिहास विभाग ऐसे अनेक दूषणो से दूषित बना हुआ है, जो जगह- जगह पर आगम तत्वो के कथन करने मे बाधक बनता है एवं बुद्धिजीवियो के लिए असमजसकारी भी बन जाता है।

इन आगम सारांश पुष्पो के लेखन मे भी जगह-जगह ऐसे प्रसंग उपस्थित हुए है तब वहा पर इतिहास विषय का विस्तार न करते हुए स्वतंत्र परिशिष्ट देने का सकेत किया है। उसी संकेतो के फलस्वरूप यह सकलन ऐतिहासिक परिशिष्ट खंड १ के रूप मे प्रस्तुत है। इस प्रथम खड मे सवाद शैली से विषय वस्तु का स्पष्टीकरण किया गया है। दूसरे खंड मे सकलनात्मक निबध दिये गये है जिनका संकेत इस प्रथम खड के सवाद मे कई जगह किया गया है।

नम्र निवेदन यह है कि स्वाध्यायी चिंतनशील पाठक इस सकलन से आशा निराशा के उतार-चढ़ाव से दूर रहकर तटस्थ बुद्धि रख कर पूर्वापर कथित वार्ताओ का एवं सूचित स्थलो का गंभीर अध्ययन मनन कर सत्य प्राप्त करने की कोशिश करे। किन्तु पम्पराओ के दुराग्रह चक्र मे उलझ कर विश्मित भी न बने और विषमभावी भी न बने अर्थात् इस परिशिष्ट के अध्ययन से चमके भी नही एवं दमके भी नहीं।

एक बात और कहने की है कि यदि पूर्ण समन्वय बुद्धि से कसौटी करने पर भी यदि कोई तत्व स्पष्ट ही आगम विपरीत या तर्क विपरीत लगे तो पुस्तक मे सूचित सम्पर्क सूत्र के स्थान पर अवश्य ही अपने मंतव्य प्रेषित करने का अनुग्रह करे। इति शुभ भवतु सर्व जीवानाम्। उत्कर्ष भवतु प्रज्ञामतानां।।

श्री वर्धमान ध्यान साधना केंद्र
आबू पर्वत (राजस्थान)
मार्च १९९२ संवत २०४९ फागुण

आगम मनीषी
तिलोकमुनि

विषय सूची



शिक्षा वाक्य

- शब्दों को न देखो, भावो को देखो।
- अवगुण की चर्चा न करो, गुण ग्रहण करो।
- परम्पराओ के दुराग्रह मे न फंसो।
- उदार ह्रदयी बन कर नूतन तत्वों का अनुप्रेक्षण करो।
- समभाव और समाधि भावो को मत गुमाओ।
- आगम निरपेक्ष परंपराओ को पकड़े रखना मूर्खता है।
- आगम विपरीत परंपराओ का दुराग्रह करना महामूर्खता है।
- उत्कट त्याग मे भी धर्म विवेक होना आवश्यक है।
- अनुकम्पा तो समकित का मुख्य लक्षण है।
- हिंसा और आडंबर की प्रवृत्तिएं धर्म नही किन्तु धर्म की विकृत परंपराएं है अत: वे त्याज्य प्रवृत्तिएं है।
- अखूट समभाव की उपलब्धि होना ही धर्म साधना की सच्ची सफलता है।
- कहीं भी किसी से भी कर्म बंध नहीं करें यही ज्ञान का सार है।
- गुस्सा घमंड को सर्वथा तिलान्जलि देते रहो।
- भावों की शुद्धि एव ह्रदय की पवित्रता यही साधना का प्राण है।

पुष्प - २१

ऐतिहासिक परिशिष्ट खण्ड १

ऐतिहासिक विस्तृत संवाद

शास्त्रों की वार्ता

जिज्ञेश — शास्त्र कब बने, किसने बनाये ?

ज्ञानचन्द्र — जिन शासन मे तीर्थकर भगवतो से प्राप्त ज्ञान के द्वारा उनके प्रमुख शिष्य गणधर भगवंत १२ अंग शास्त्र की एव आवश्यक सूत्र की रचना करते है।

जिज्ञेश — इसके अतिरिक्त शास्त्र कब और किसने बनाये ?

ज्ञानचन्द — इनके अतिरिक्त अर्थात् अंग बाह्य शास्त्र की रचना सभी गणधरो के निर्वाण पधार जाने के बाद जब कभी भी आवश्यकता लगी तब बहुश्रुत गीतार्थ श्रमणो ने उन अंग शास्त्रो के ज्ञान के आधार से उपशास्त्रो की रचना की।

जिज्ञेश — ऐसे कुल कितने शास्त्र हुए ?

ज्ञानचन्द — नदी सूत्र मे ऐसे कुल ७२ सूत्र के नाम उपलब्ध है जो वास्तव मे ५९ ही है।

जिज्ञेश — ५९ मे से गणधर कृत कितने है और अन्य श्रमण कृत कितने है ?

ज्ञानचन्द — १२ अग + १ आवश्यक = १३ गणधर कृत है शेष ५९–१३ = ४६ आगम अन्य श्रमण कृत है।

जिज्ञेश —अन्य श्रमण कृत ४६ आगमो के कर्ता का नाम क्या है ?

ज्ञानचन्द — १ दशवैकालिक सूत्र के कर्ता- स्वय भवाचार्य २ नंदी सूत्र के कर्ता- देवर्धिगणि क्षमाश्रमण (देववाचक) ३ अनुयोगद्धार सूत्र के कर्ता- आर्यरक्षित ४ प्रज्ञापना सूत्र के कर्ता- श्यामाचार्य। (५ से ७) दशा श्रुतस्कध सूत्र, वृहत्कल्प सूत्र, व्यवहार सूत्र इन तीनो सूत्र के कर्ता- प्रथम भद्रबाहु स्वामी है। ८-९ आतुर प्रत्याख्यान एवं देवन्द्रस्तव प्रकीर्णक के कर्ता- वीरभद्र आचार्य है। इसके अतिरिक्त ३७ आगमो के कर्ता अप्रसिद्ध है अज्ञात है।

जिज्ञेश — नदी सूत्र मे नाम आये आगम ७२ को वास्तव मे ५९ कहने का क्या तात्पर्य है ?

ज्ञानचन्द — स्थानांग सूत्र मे संक्षेपिकदशा सूत्र के दस अध्ययन कहे है, वे ही दस अध्ययन नंदी मे दस सूत्र रूप मे अलग अलग लिख दिये गये है। इसी प्रकार निरियावलिका सूत्र मे उसके पांच वर्ग कहे है वे ही पांच नाम यहां पांच सूत्र रूप मे लिखे मिलते है। इस प्रकार आगमाधार से ही ७२ मे लिपि दोष आदि मान कर ५९ कहे गये है।

जिज्ञेश —आजकल आगमो की संख्या ३२ या ४५ मानी जाती है जो नंदी सूत्र की इस संख्या से भिन्न है ऐसा क्यो ?

ज्ञानचन्द — भिन्न भिन्न समय मे अपेक्षा विशेष से ४५ या ३२ आगम की कल्पना प्रचलित हुई है। वास्तव मे दोनो मान्यताएं कसौटी पर खरी नही उतरती है। अत दोनो ही अशुद्ध मान्यताएं है। इस विषयक अन्य चर्चा प्रमाण सहित जानकारी के लिये पृष्ठ ११ छेद सूत्र परिशिष्ट खंड १ का ध्यान पूर्वक अध्ययन करना चाहिए।

व्याख्या ग्रन्थ वार्ता —

जिज्ञेश — इन सूत्रो पर व्याख्याएं कब बनी एवं कब लिखी गई ?

ज्ञानचन्द — सूत्रो के अर्थ परमार्थ व्याख्याएं भी परम्परा से मौखिक रूप मे उन उन सूत्रो के साथ प्रारंभ से ही चलती आ रही है। आगमो का जब व्यवस्थित लेखन देवर्द्धिगणि क्षमा-श्रमण के समय हो गया। उसके बाद निकट काल मे ही व्याख्याओ की लेखिक रचनाएं पुस्तकारूढ होने लगी अर्थात् वीर निर्वाण दसवी शताब्दि के अंत मे आगम लिपिबद्ध हुए और वीर निर्वाण ग्यारहवी शताब्दि के पूर्वार्द्ध मे द्वितीय भद्रबाहु के द्वारा कुछ सूत्रो की निर्युक्ति नामक व्याख्या लिखित रूप मे रचना करके पुस्तकारुढ की गई। फिर क्रमश कुछ सूत्रो के भाष्य लिखित बने। तदनंतर चूर्णिया आदि व्याख्याएं भी लिखित रूप मे तैयार हुई। अर्थात् सभी सूत्रो की व्याख्याये एक साथ नही होकर कुछ सूत्रो की व्याख्याये अलग अलग समय मे भिन्न भिन्न आचार्यो अथवा बहुश्रुतो द्वारा हुई। विक्रम की १२-१३ वी शताब्दि अर्थात् वीर निर्वाण की सोलहवी सतरहवी शताब्दि मे जाकर मलय गिरि आचार्य के समय पूर्ण हुई। किन्तु तब तक ७२ मे से कितने ही आगम अनुपलब्ध हो चुके थे। इस प्रकार किसी सूत्र पर एक एवं किसी पर अनेक आचार्यो की व्याख्याएं लिखित उपलब्ध होने लगी।

पट्टावली ग्रन्थ वार्ता—

जिज्ञेश — इतिहास और पट्टावलिया आदि कब बने।

ज्ञानचन्द — उक्त आगमो मे एवं व्याख्याओ मे विकीर्ण (बिखरी हुई) इतिहास सामग्री यत्र-तत्र रही हुई है अर्थात् उनमे जो भी घटनाएं चारित्र आदि है उन्ही मे से बहुत सारा इतिहास तत्व उभर जाता है। फिर भी ऐतिहासिक स्वतंत्र ग्रन्थ एवं पट्टावलिया १२वी १३ वी शताब्दि मे एव उसके बाद लिखित रूप मे रची जाने लगी है।

जिज्ञेश — नंदी एवं कल्प सूत्र मे तो बहुत पहले से ही थी न ?

ज्ञानचन्द — कल्प सूत्र का यह प्रारूप भी इसी १२वी तेरहवी विक्रम शताब्दि मे तैयार किया गया है अत इसमे उपलब्ध पट्टावली भी इसी युग की संकलना है यह स्पष्ट है। इस संबंधी चर्चा की जानकारी के लिये पुष्प आठ का प्रथम परिशिष्ट देखे। नंदी सूत्र मे पट्टावली नही है। केवल प्रसिद्ध या स्मृति प्राप्त अनुयोगधर बहुश्रतो का गुण कीर्तन है। इस सबंधी विस्तृत चर्चा अगले परिशिष्ट खंड २ विषय न. २२ मे देखे।

अन्य ग्रन्थ वार्ता —

जिज्ञेश —अन्य जैन साहित्य एवं ग्रन्थो की रचना कब हुई ?

ज्ञानचन्द — निर्युक्ति रचना के बाद भाष्य रचना काल मे प्रारम्भ होकर आज तक अनेक ग्रन्थ एवं साहित्य की रचनाएं हुई है एवं हो रही है।

जिज्ञेश — तीर्थकरो के समय मे या देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण पर्यन्त कोई भी श्रमण कुछ भी नही लिखता था ?

ज्ञानचन्द — व्यक्तिगत अपेक्षा से कोई भी श्रमण अपने पास नोट्स रूप मे कुछ भी लिख सकता था। इसमे वह अपने लिए या शिष्यो के लिये आवश्यक किसी भी विषय तत्व या चितन का संकलन कर सकता था। इसी कारण अपेक्षा से नंदी सूत्र मे कहा गया है कि जितने श्रमण हो उतने ही प्रकीर्णक सूत्र हो सकते है। फिर भी आजकल जितने लेखन की आवश्यकता है उतनी उस समय नही थी व्यापारी लोग भी आज की अपेक्षा प्राचीन समय मे एवं अभी से सौ पचास वर्ष पूर्व भी लेखन कार्य बहुत ही कम करते थे। आगमो का व्यवस्थित क्रम बद्ध लेखन एक साथ देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के समय हुआ।

कथा ग्रन्थ वार्ता :—-

जिज्ञेश —कथा ग्रन्थ कब बने ?

ज्ञानचन्द — सूत्रो एव व्याख्याओ मे भी अनेक कथाएं बिखरी हुई है। इसके अतिरिक्त स्वतत्र कथा ग्रन्थ 'प्रबध' के नाम से आगम लेखन के बाद ग्रन्थ रचनाओ के साथ ही लिखे जाने लगे।

जिज्ञेश —ये कथा ग्रन्थ या अन्य ग्रन्थ एव व्याख्या ग्रन्थ आगम के समान मान्य करने चाहिए?

ज्ञानचन्द — आगमो का दर्जा सर्वोच्च है वह स्वत प्रमाणित है। जिनका कि नाम नंदी सूत्र मे अंकित है। उसके अतिरिक्त रचनाएं परत प्रमाणित है अर्थात् आगम कथित तत्व एवं सिद्धातो को पुष्ट करने वाले तथा आगम अविरूद्ध तत्व ही प्रमाणभूत है आगम विरूद्ध तत्त्व अप्रामाणिक होते है।

जिज्ञेश —नदी सूत्र कथित आगमो मे कथित सभी तत्व पूर्ण प्रमाणिक है? सभी तत्व अविरूद्ध है?

ज्ञानचन्द — लिपि दोष, परंपरा दोष एव विवक्षा भेद तो, इन सूत्रो मे भी हो सकते है उन्हे परस्पर सूत्रो एवं सिद्धातो से समन्वय करके समझा जाता है।

लिपिदोष — एक सूत्र की अनेक प्रतियां देखने पर अनुभव हो जाता है एवं उसकी व्याख्याओ को देखने से सहज अनुभव हो जाता है। कही कही तो जिस पाठ की चूर्णी टीकाकार ने व्याख्या की है वैसा पाठ किसी भी प्रति मे नही मिलता है। अर्थात् टीकाकार आदि के सामने जो पाठ (शब्द) रहा था वह अब नही रहा एवं दूसरा ही बन गया।

परम्परा दोष — कई सूत्रो मे पाठातर लिखे रहते है जैसे '**एगे एव आहसु एगे पुण एव**' अन्ने भणंति '**अन्ने पढति, पाढातरं**' इत्यादि शब्दो का प्रयोग आगमो मे मिलता है।

विवक्षा भेद — किसी सूत्र मे अणाहारक दो समय का कहा है कही तीन समय का कहा है। आचार प्रकल्प कही पाच कहे है, कही २८ कहे है।

ऐसे अनेक दृष्टात है अत विवेक एवं समन्वय बुद्धि रखना तो सर्वज्ञ आवश्यक है। एवं अहिसा आदि मौलिक सिद्धातो की कसौटी भी सर्वत्र आवश्यक है।

प्रक्षेप वार्ता —

जिज्ञेश —इसके अतिरिक्त शास्त्रो मे कुछ प्रक्षेप परिवर्तन भी हुए है?

ज्ञानचन्द —लेखन काल मे कही कही असद्बुद्धि से लहियो द्वारा एव स्वार्थ वश कही कही श्रमणो द्वारा भी प्रक्षेप एवं परिवर्तन हुए है। **यथा**

आचारांग आदि शास्त्रो मे मांस मत्स्य आदि आमिष भोजन सम्बन्धी पाठ,

राजप्रश्नीय सूत्र मे मूर्तियो एवं चार तीर्थकरो के नाम सम्बन्धी पाठ, ज्ञाता सूत्र आदि मे णमोत्थुण का पाठ दशाश्रुतस्कध सूत्र की आठवी दशा समाचारी वर्णन मे अन्य वर्णन मिला कर एवं उस समाचारी को बढाकर किया गया कल्पसूत्र आदि कई उदाहरण है। महानिशीथ सूत्र भी ऐसे ही दोषो का भडार है।

मांस प्रक्षेप वार्ता—

जिज्ञेश —मासपरक शब्दो के तो अन्य अर्थ हो जाते है ?

ज्ञानचन्द —यह एक भ्रमित प्रवाह है। सूत्र रचनाकार गणधरो एवं बहुश्रुतो ने भी मास और मत्स्य शब्द का आमिष अर्थ मे आगमो मे प्रयोग किया। मास के आहार को नरक का कारण बताया है वहा भी 'मास' का ही प्रयोग किया है। ऐसे स्पष्ट एवं प्रचलित अर्थ वाले मास शब्द का प्रयोग आचार शास्त्रो मे साधु के भिक्षा लेने के प्रसंग मे गणधर प्रभु करे, यह संभव भी नही कहा जा सकता। क्या उस वनस्पति के लिए उन्हे दूसरा शब्द नही मिलता था ? जिससे आचारांग मे उन्हे ऐसा पाठ देना पडा कि—

'मच्छग मसग भीच्चा अट्ठियाइ कटए य गहाय'

अर्थ — मत्स्य और मांस को खाकर उसमे रहे कांटे और हड्डी को लेजाकर साधु एकांत मे परठ दे। ऐसे भ्रामक और प्रसिद्ध शब्दो का प्रयोग गणधर कृत मानना कोई समझदारी नही है।

यदि आगम रचना काल मे मास और मत्स्य वनस्पति रूप मे ही प्रयुक्त होते और आमिष भोजन अर्थ मे प्रयुक्त न होते हो तब तो देश काल मे प्रचलित शब्द प्रयोग होना माना भी जा सकता है। किन्तु ऐसा नही था, यह बात आगम से ही स्पष्ट है। क्योकि इन्ही आगमो मे 'मस-मच्छ' शब्द मांस और मछली के लिए प्रयुक्त हुए है। अत ऐसे पाठ कभी विरोधी मानस वालो के द्वारा प्रक्षिप्त होकर प्रचारित होना ही मानना चाहिये।

मूर्ति णमोत्थुणं प्रक्षेप वार्ता—

जिज्ञेश — मूर्ति, मूर्तिनाम एवं णमोत्थुण प्रक्षेप कथन का क्या भाव है ?

ज्ञानचन्द —राजप्रश्नीय सूत्र मे १०८ शास्वत मूर्तियो का पाठ यथास्थान है। उनमे किसी भी व्यक्ति का नाम नही कहा गया है। किन्तु स्तूप वर्णन के बाद उसके चौतरफा मूर्तियो का कथन एवं उनका मुख स्तूप की तरफ बताना अर्थात् दक्षिण और पश्चिम मे भी मूर्ति का मुख बताना और उनके ऋषभ तथा वर्धमान आदि नाम भी कह देना यह सब स्पष्ट ही प्रक्षिप्त है। क्योकि शास्वत मूर्तिया किसी व्यक्ति या तीर्थंकर की नही

होती है। मूर्ति का मुख पूर्व या उत्तर मे ही होता है।

दुराग्रह बुद्धि से तीर्थकरो की मूर्ति सिद्ध करने के लिए णमोत्थुण का पाठ भी हठात् रख दिया गया है। क्योकि जब शास्वत मूर्ति, किसी गुणवान की या व्यक्ति विशेष की होती ही नही है फिर उसका तीर्थकरो के गुणो से स्तुति करना कोई प्रयोजन नही रखता है। ज्ञाता सूत्र की प्राचीन प्रति मे वह णमोत्थुण का पाठ मिलता भी नही है। वास्तव मे तो णमोत्थुणं के गुण वाली वे शास्वत १०८ मूर्तियां होती भी नही हैं।

अन्य जानकारी के लिए राजप्रश्नीय सूत्र का साराश पुष्प २० देखे।

दशाश्रुत स्कंध प्रक्षेप वार्ता—

जिज्ञेश —दशाश्रुतस्कध एव महानिशीथ सूत्र के सम्बन्ध मे क्या है?

ज्ञानचन्द — दशाश्रुतस्कंध सूत्र एक छेद सूत्र है। जिसमे छोटे छोटे अध्ययन (दशा) है, ऐसा स्वय निर्युक्तिकार श्री भद्रबाहु स्वामी ने कहा है। फिर भी १२०० श्लोक जितना बडा कल्प सूत्र बनाकर कह दिया गया कि यह दशाश्रुतस्कंध का आठवा अध्ययन ही है और मौका देखकर किसी हस्त प्रति मे किसी साधु ने आठवी दशा मे वह पूरा सूत्र लिख भी दिया। लेकिन इस सूत्र पर भाष्य निर्युक्ति चूर्णि उपस्थित है। उसमे वैसे पाठो की व्याख्या नही की गई है। अनेक प्रतियो मे वैसा पाठ मिलता ही नही है। इस विषय की विशेष जानकारी दशाश्रुतस्कंध साराश पुष्प ८ का प्रथम परिशिष्ट देखना चाहिये।

महानिशीथ सूत्र मे भी किसी ने मनगढंत उटपटाग कई बाते भर कर उस सूत्र को हंसी का पात्र बना दिया है। इस सम्बन्ध मे एक सकलन ऐतिहासिक परिशिष्ट खंड २ पुष्प २२ मे देखे।

स्थविरावली वार्ता —

जिज्ञेश —हिमवत स्थविरावली किस सदी की रचना है? इसके कर्ता कौन है?

ज्ञानघन्द — इतिहास वेत्ता श्वे. मूर्तिपूजक विद्वान कल्पसूत्र एवं नंदी सूत्र के बाद तीसरे नबर मे युग प्रधान पट्टावली **'दुस्समकाल समण सघत्थव'** को कहते है जो कि विक्रम की तेरहवी सदी की रचना है जिसके रचनाकार धर्मघोष, सूरि है।

हिमवंत स्थविरावली का नम्बर प्राचीनता मे तीसरा नही माना गया है अत **'दुस्समकाल समण संघत्थव'** के बाद की रचना है यह सुस्पष्ट है। जिससे इसका रचनाकाल तेरहवी सदी के पूर्व का तो है ही नही, यह भी निश्चित कहा जा

सकता है।

वास्तविकता भी यह है कि पट्टावलियो आदि के रचना का युग भी तेरहवी सदी मे प्रारंभ हुआ है। इसके पूर्व ऐसी रचनाओ का प्रादुर्भाव नही हुआ था।

जिज्ञेश —कल्प सूत्र स्थविरावली तो वीर निर्वाण की तीसरी सदी की रचना कही जाती है?

ज्ञानचन्द — यह कथन तो स्वत ही असत्य सिद्ध हो जाता है कारण कि कल्प सूत्र स्थविरावली मे वीर निर्वाण दसवी सदी तक के महापुरुषो का वंदन गुणग्राम युक्त नाम है।

स्वयं कल्प सूत्र भी प्रसिद्ध टीकाकार श्री मलयगिरि आचार्य के बाद की रचना है। वास्तव मे यह एक इधर उधर से जोडा जोडाया कल्पित सूत्र है। फिर भी इसकी महत्ता बताने के लिये झूठी प्राचीनता कल्पित की गई है। क्योकि ३२ या ४५ अथवा ७२ या ८४ किसी भी आगम गणना मे इस कल्प सूत्र की गिनती नही की गई है। इस कल्प सूत्र का स्वतंत्र नाम किसी भी निर्युक्ति, चूर्णी, टीका एवं मलयगिरि आचार्य के पूर्व रचित किसी भी ग्रन्थ मे उपलब्ध नही होता।

अत इस कल्प सूत्र मे वर्णित स्थविरावली को वीर निर्वाण के तीसरी सदी की कहना और मानना केवल अंध श्रद्धा ही समझनी चाहिये।

प्रमाणिक अप्रमाणिक वार्ता—

जिज्ञेश —तब क्या हिमवंत स्थविरावली को एकात अप्रामाणिक माना जाय अथवा प्रामाणिक?

ज्ञानचन्द — गणधर एवं चौदहपूर्वी या १० पूर्वी की रचना के अतिरिक्त किसी की भी कोई भी रचना हो, उसे पूर्ण एकात प्रमाणिक नही कह सकते। यही बात नंदी सूत्र मे इस प्रकार कही है **'भिन्नेसु भयणा'** अर्थात् १० पूर्व से कम ज्ञान वालो की रचना भजना से प्रामाणिक है एकांत से नही, अर्थात् उसमे कथित तत्त्व सम्यक-असम्यक दोनो प्रकार के हो सकते हैं। अत· पूर्ण रूप से या एकांत रूप से अप्रामाणिक तो किसी भी जैन साहित्य को नही कहा जा सकता। वर्तमान युग के आचार्य उपाध्याय या श्रमण आदि सामान्य ज्ञानी पुरुषो की रचना या वक्तव्य को भी एकांत या पूर्ण अप्रामाणिक नही कहा जा सकता।

एकान्त और पूर्ण प्रामाणिकता सर्वज्ञो के एवं १४ या १० पूर्वी के अमिश्रित वचनो मे हो सकती है और सर्वज्ञो के वचनो मे श्रद्धा और अपेक्षा रखने वाले किसी भी छद्मस्थ के वचन पूर्ण अप्रामाणिक या पूर्ण हेय नही होते है वे परत· प्रामाणिक होते है चाहे कोई निबंध ग्रन्थ रूप हो या व्याख्यान रूप हो।

अत १० पूर्व से कम ज्ञानी छद्मस्थो की रचना मे अंध श्रद्धा की आग्रह बुद्धि न रख कर विवेक बुद्धि रखना ही उचित है। अन्य आगमो मे भी मिश्रण दोष प्रक्षेप दोष परिवर्तन दोष परंपरा दोष एव लिपि दोष आदि सभव होने से विचारणा एव विवेक की आवश्यकता उनमे भी रही हुई है।

जिज्ञेश — क्या सभी आगम अप्रमाणिक और कसौटी करने योग्य सदेह शील हो गये है ?

ज्ञानचन्द — इसका मतलब यह नही हो जाता कि 'सभी आगम संदेह युक्त और सर्वथा अप्रमाणिक हो गये। उनमे कथित सभी तत्व सदेह शील हो गये', किन्तु उपलब्ध आगमो को उपलब्ध अन्य आगमो से समन्वय करते हुए एवं मौलिक सिद्धातो से समन्वय करते हुए विवेक बुद्धि से समझने की कौशिश करना तटस्थ बुद्धि ही है। किसी भी व्याख्या ग्रन्थ या विवेचन, भाषातर, निबंध, इतिहास ग्रन्थो पर राग द्वेष न करते हुए आदर के भाव रखना, यथावसर पढना समझना, स्वविवेक अनुसार चितन करना, अन्य आगम ज्ञान, सिद्धांत ज्ञान के अनुभव मे तोल कर सोचकर, नवनीत प्राप्त करना ज्ञान की आराधना का ही अंग है। ऐसा करने को किसी भी पूर्वाचार्य या गुरु के प्रति अश्रद्धा अभक्ति कहना शास्त्र ज्ञान की अनभिज्ञता का सूचक है।

क्योकि शास्त्र वृहत्कल्प सूत्र मे कहा गया है कि गीतार्थ गुरू आचार्य से दिया गया प्रायश्चित्त भी यदि आगमोक्त हो तो ग्रहण करना चाहिये। और आगमोक्त न हो तो ग्रहण नही करना चाहिये।

व्यवहार सूत्र मे कहा है कि काल करते समय आचार्य ने कह दिया हो कि मेरे स्थान पर अमुक साधु को आचार्य बनाना फिर भी उनके काल कर जाने के बाद वह साधु योग्य हो तो उसे बनाना, योग्य न हो और अन्य योग्य हो तो उसे (आचार्योक्त को) न बनाकर अन्य को आचार्य बनाना। इस प्रकार इन छेद सूत्रो मे गुरु एवं आचार्य की आज्ञा मे भी विवेक बुद्धि को प्रमुखता दी गई है।

सार यही है कि सभी छद्मस्थो के वाक्य एवं रचनाए, विचारणा या चितन को स्थान रखती है। उक्त दोनो आगम प्रमाणो से शास्त्राज्ञा भी ऐसी ही स्पष्ट है। अत ऐसा करने मे किसी की आशातना होने की कल्पना करना भी अयुक्त है। जिज्ञासा एवं सत्य खोज की दृष्टि से और न्याय बुद्धि से कोई अपराध नही है। सर्वज्ञो का परिचय न हो सकने पर निर्णय करने के लिये उनकी भी परीक्षा करने वाले भगवती सूत्र वर्णित गांगेय अणगार आदि आराधक बने है।

वर्तमान मे उपलब्ध मान्य आगमो मे भी लिपि दोष, प्रेस दोष, परपरा दोष,

प्रक्षेप दोष, मिश्रण दोष, हास दोष आदि अनेक छोटे बडे क्षम्य दोष है, यह सर्व विदित एवं सर्वमान्य तत्व है। अत विद्वानो के लिये सत्य खोजना, विवेक पूर्ण तटस्थ वृति से आगम के मूल पाठो का, अर्थो का, परपराओ का, निर्णय करना अनुपयुक्त नही कहा जा सकता।

जिस प्रकार छाना हुआ पानी एव शुद्ध भोजन भी खाने या पीने के समय देखकर खाना या पीना एवं कोई भी अशुद्धि हो तो अलग कर देना विवेक है और उसमे मक्खी या जहरीले जन्तु का अंश हो तो छोड देना विवेक ही है चाहे बनाने वाला कैसा भी होशियार हो। इसी तरह आगम व्याख्याएं, ग्रन्थ, साहित्य सभी मे उक्त दोष सम्भव होने से विवेक रखना श्रेयस्कर है।

एक बात ध्यान रखने योग्य यह है कि उक्त सपूर्ण विवेक वृत्ति शास्त्रो का गहन अध्ययन एवं अनुभव रखने वाले बहुश्रुत विद्वानो के लिये है किन्तु सामान्य अध्येताओ के लिये नही। उन्हे तो गीतार्थो बहुश्रुतो के निर्देश एव आज्ञानुसार करना ही उपयुक्त होता है।

विवेक बुद्धि वार्ता—

जिज्ञेश —शास्त्रो के लिये विवेक बुद्धि का कथन अन्य किसी विद्वान ने भी कभी कही किया है? या आपने ही सारी आगम सत्ता अपने और विद्वानो के हाथ मे ले ली है?

ज्ञानचन्द — जी हां! श्वे मूर्ति पूजक विद्वान श्री पुण्यविजय जी ने इन उक्त विचारो वाले ही भाव एक जगह लिखे है देखे—-

''अही एक बात खास ध्यान मां राखवा जेवी छे के आजना जैन आगमो मां मौलिक अशो घणा घणा छे एमा शंका नथी। परन्तु जेटलो अने जे कांई छे ए बधु य मौलिक ज छे एम मानवा मनाववा नु प्रयत्न करवो ए सर्वज्ञ भगवतो ने दूषित ज करवा जेवी वस्तु छे।

आज ना जैन आगमो मा एवा घणा घणा अंशो छे जे जैन आगमो ने पुस्तकारूढ करवा मा आव्या त्यारे, के ते आसपास उमेराएला, के पूर्ति कराएला छे। केटलाक अंशो एवा पण छे जे **जैनेत्तर शास्त्रो ने आधारे** उमेराएला कोई जैन दृष्टि थी दूर पण जाय छे। इत्यादि अनेक बाबतो जैन आगम ना अभ्यासी गीतार्थ गंभीर जैन मुनि गणे विवेक थी ध्यान मां राखवा जेवी छे।''

—वृह भा ष्य भाग ६ प्रस्तावनाश।

इस प्रकार मूर्ति पूजक प्रसिद्ध विद्वान शास्त्रोद्धारक पद विभूषित पूज्य श्री पुण्य विजय जी म सा ने मौलिक आगमो मे भी गीतार्थ मुनियो को विवेक बुद्धि रखने का निर्देश किया है। इस स्थिति मे आगमातिरिक्त ग्रन्थो व्याख्याओ एव कल्पित

भमित कथाग्रन्थो इतिहास ग्रन्थो और कल्प सूत्र या महानिशीथ अथवा पट्टावलियो के लिए अंध बुद्धि का आग्रह और विवेक बुद्धि का निषेध किसी के द्वारा करना कदापि उचित नही हो सकता है।

इसीलिये अनुभव एवं चिंतन पूर्वक ही आगमो के लिये लिपि दोष, दृष्टि दोष, परंपरा दोष, प्रक्षेप दोष, परिवर्तन दोष संभावित होने का कहा गया है एवं इन्ही मुख्य कारणो को ध्यान मे रख कर ही विवेक बुद्धि रखने का संकेत किया गया है। जो अन्य आगम मनीषियो द्वारा सम्मत होने से एक निराबाध सत्य संकेत है। इसका आशय समझे बिना उपेक्षा एवं आक्षेप करना समझदारी नही है।

निर्युक्ति रचना वार्ता —

जिज्ञेश —वीर निर्वाण दसवी शताब्दि के बाद निर्युक्ति भाष्य आदि बने यह कथन कैसे उपयुक्त है क्योकि निर्युक्तियो की रचना तो भद्रबाहु स्वामी ने वीर निर्वाण तीसरी सदी मे ही करदी थी।

ज्ञानचन्द — नाम साम्यता के कारण उत्पन्न हुआ यह भ्रम है। पूर्व काल मे प्रसिद्ध दो भद्रबाहु स्वामी हुए है। दीर्घकाल के अंतर के कारण दोनो के जीवन सम्बन्धी कई वर्णन मिश्रित हो गये है। वराहमिहिर के भाई भद्रबाहु स्वामी वीर निर्वाण दसवी सदी मे हुए है और १४ पूर्वी भद्रबाहु स्वामी वीर निर्वाण तीसरी सदी मे हुए है। निर्युक्तियो की रचना और भद्रबाहु संहिता की रचना वराहमिहिर के भाई दूसरे भद्रबाहु की है और तीन छेद सूत्र की रचना प्रथम भद्र बाहु स्वामी की है। क्योकि वराहमिहिर ने वराही संहिता बनाई है उसमे जो रचना काल उपलब्ध है वह दसवी सदी का ही है एवं निर्युक्ति कर्ता वराहमिहिर के भाई भद्रबाहु स्वामी है और छेद सूत्र की निर्युक्ति के प्रारम्भ की मगल गाथा मे तीन छेद सूत्रो की रचना करने वाले प्राचीन भद्रबाहु स्वामी को वंदन किया गया है। इस विषय मे सप्रमाण विस्तृत चर्चा मंदिर मार्गी विद्वान मुनि श्री पुण्य विजय जी ने सभाष्य वृहत्कल्प सूत्र के छट्ठे भाग की प्रस्तावना मे की है उक्त मंतव्य उन्ही की चर्चा का निचोड है। जानकारी के लिये ऐतिहासिक परिशिष्ठ खंड २ पुष्प २२ मे वह संकलन ज्यो का त्यो दिया गया है अत वही देखना चाहिये।

प्राचीन भद्रबाहु वार्ता —

जिज्ञेश —प्राचीन भद्रबाहु स्वामी ने महाप्राण साधना की थी? वह साधना क्या है? किस सूत्र मे है?

ज्ञानचन्द — यह भी एक कल्पित कथा, कल्पित इतिहास है। श्रावको एवं श्रमणो की अनेक साधनाएं, अभिग्रह एवं जिनकल्प या पडिमाओ का वर्णन आगमो मे है। महाप्राणसाधना नाम की कोई चीज आगमो मे नही है। गच्छ मुक्त भिक्षु पडिमाएं भी अल्प समय के लिए होती है जिनकल्प आदि गच्छ मुक्त साधनाएं भी १४ पूर्वी को धारण करने की आवश्यकता नही होती है। परिहार विशुद्ध चारित्र भी १४ पूर्वी को धारण करने की आवश्यकता नही होती है। वे गच्छ मे रहते हुए ही विशिष्ट निर्जरा कर लेते है।

जिन शासन की आवश्यक सेवा छोडकर १४ पूर्वी के द्वारा १२ वर्ष की एकलविहार वाली साधना करना, ऐसे उत्कष्टबहुश्रुत ज्ञानी विचक्षण महान श्रमण के द्वारा संघ की आज्ञा की अवहेलना उपेक्षा करवाना, छांटकर योग्य ५०० साधुओ को भेजना, उसमे से भी ४९९ का बीच मे ही छोड कर आ जाना, बारह वर्ष का दुष्काल होना, इत्यादि अनेक अनघड कल्पित बातें है। इसमे निम्न हेतु विचारणीय है। (१) चौदह पूर्व ज्ञानी वे भद्रबाहु स्वामी खुद नही समझ सकते कि जिनशासन मे ज्ञान देना मुझे आवश्यक है (२) ऐसी महाप्राण साधना का वर्णन किसी आगम मे तप के भेदो मे नही है (३) ५०० योग्य साधु छांटने वाले भी मूर्ख थे क्या (४) उनकी ऐसी कौन सी योग्यता थी जो वहां रुके भी नही छोड कर आ गये (५) उपालंभ देकर उन्हे पुन क्यो नही भेजा (६) क्या वापिस आने वाले आज्ञा मान कर फिर नही जा सकते? (७) तो उनको ही ४९९ को आज्ञा बाहर क्यो नही किया। (८) बारह वर्ष के दुष्काल के पहले ही भद्रबाहु महाप्राण साधना के लिये निकले या बाद मे (९) पहले निकले तो १२ वर्ष की महाप्राण साधना पूर्ण हो जानी चाहिये थी, यदि दुष्काल के बाद गये तो यह उनको महान अविवेकी बताना है। क्योकि इतनी दुष्काल की संकट पूर्ण संघ की स्थिति मे उनका अकेले जाना ही विचारणीय है उन्होने किसकी आज्ञा ली, ऐसे समय मे किसने आज्ञा दी? (१०) बारह वर्ष के दुष्कालो की कल्पना ऐसे कथानको से क्यो जोडी जाती है (११) भद्रबाहु स्वामी की कथा के लिये, स्कंधिलाचार्य के समय और देवर्धि के आगम लेखन के लिये १२ वर्ष के दुष्काल की कल्पना मात्र है ऐसे दुष्काल इन जगह फिट किये गये है वास्तव मे सोचा जाय तो अज्ञात सुदूर उन वीर निर्वाण के १००० वर्ष मे कितने ही १२ वर्षी दुष्काल हो गये तो फिर अब १५०० वर्षो मे क्यो नही? इसका कारण स्पष्ट है कि इन १५०० वर्ष मे लेखन युग चल गया था जिसके लिये ऐसे व्यापक विषय की कल्पाएं चलना संभव नही रहा और उन १००० वर्षों के लिये जिसके जो मन भाया कल्पित कर दिया तो भी चल जाता

है।

वास्तव मे २४ वर्ष के या एक वर्ष के भी महा दुष्काल पडने से त्राही-त्राही मच जाती है तो १२ वर्षी दुष्काल और वे भी बार बार होना इत्यादि कथन युक्त नही है। यह तो उन उन घटनाओ एवं कल्पनाओ को जमाने के लिए की गई एव कल्पना मात्र है। वास्तविकता यही है कि किसी भी विशेष घटना को सिद्ध करने समझाने के लिये १२ वर्ष के दुष्काल को बताने का एक प्रवाह सा बन गया। **यथा—** १ स्थूलिभद्र की विशेषता कहनी है तो १२ वर्ष का दुष्काल जोड दिया २ दिगबर श्वेताम्बर भेद बताने है तो १२ वर्षी दुष्काल जोड दिया ३ मूर्तियो की स्थापना बतानी है तो १२ वर्षी दुष्काल जोड दिया ४ स्कधिलाचार्य के समय शास्त्रोद्धार बताना है तो १२ वर्षी दुष्काल जोड दिया ५. देवर्द्धिगणी के समय शास्त्र लेखन होना है तो फिर १२ वर्षी दुष्काल जोड दिया इस प्रकार इतिहासकारो मे कई प्रवाह चल जाते है। सुदूरवर्ती काल अतर होने से उसकी खोज भी कौन कर सकता? अत वह प्रवाह चल जाता है।

महावविदेह से चूलिका लाने की वार्ता—

जिज्ञेश —क्या स्थूलिभद्र की बहिन साध्वी महाविदेह क्षेत्र से चूलिका लाई?

ज्ञानचन्द — चूलिका तो सूत्र का एक अंग है, इनकी सूत्र के साथ ही रचना कर दी जाती है। **यथा—** बारहवा अंग दृष्टिवाद है उसमे चूलिका भी एक विभाग है। जैसे मेरू पर्वत की चूला उसके साथ है उसी प्रकार कई आगमो मे उसके साथ ही चूलिका की रचना हो जाती है।

कई कल्पित कथाए समय समय पर किसी एकांगी दृष्टिकोण से रचदी जाती है। पहले किसी ग्रन्थ मे दो चूलिका लाने की बात की गई है उसके बाद के ग्रन्थो मे चार चूला लाना कह दिया गया। ये सब ग्रन्थ कथाएं बहुत बाद के बने एव विकृतियो से परिपूर्ण है। दशवैकालिक चूर्णि के कर्ता आचार्य श्री अगस्त्यसिह सूरि के समय तक ऐसी कल्पनाएं उठी ही नही थी इसीलिये उन्होने चूलिका की व्याख्या करते समय स्पष्ट कहा कि स्वयंभवाचार्य ने प्रथम चूला मे इस विषय का कथन किया है। अर्थात् उनकी दृष्टि मे दशवैकालिक के और दोनो चूलिका के कर्ता स्वयभवाचार्य ही थे।

महाविदेह से चूलिका लाने सम्बन्धी कल्पित कथा दशवैकालिक चूर्णि से बहुत बाद के ग्रन्थ मे उल्लिखित है अत ऐसी असत्य कल्पनाए किसी किसी युग मे उठती रहती है। किन्तु वे जानने योग्य ही है। अत उनका आग्रह रखना अविवेक है।

शास्त्रों की भाषा शैली की वार्ता—

जिज्ञेश —गणधरो द्वारा रचित आचारांग आदि की भाषा मे इतना अंतर क्यो है? भाषा वेत्ता विद्वान अन्वेषक भाषा के आधार पर सूत्रो का विभिन्न रचना काल बताते है। तदनुसार प्रथम आचाराग के अतिरिक्त अनेक अग आगम कालातर मे रचे हुए प्रतीत होते है तो इनको गणधर कृत कैसे कहा जाय?

ज्ञानचन्द —भाषा का तर्क लगा कर आगमो के उत्पत्ति काल के विभाजन की कल्पना करना एक निरर्थक का प्रयत्न है।

आजकल के कलाकार लेखक भी संस्कृत प्राकृत हिन्दी गुजराती मारवाडी अथवा साहित्यिक भाषा या सरल अथवा गूढ भाषा मे तथा गद्य, पद्य, मुक्तक, ढाले, चौपाई, एक देशीय या अनेक रागो वाली, सक्षिप्त या विस्तृत विविध रुपो मे रचना करने की क्षमता रखते है एवं करते भी है। एक वक्ता भी इस प्रकार विभिन्न रूपो मे वक्तव्य दे सकते है। अत ऐसी विभिन्न रचनाओ के आधार से व्यक्ति भेद या काल भेद की कल्पना करना कोई प्रामाणिक सत्य चितन नही कहा जा सकता।

हमारे गणधर प्रभू एवं शास्त्रकार बहुश्रुत पूर्वधर क्या आज के विद्वानो से कम थे। जो विभिन्न प्रकार की रचना नही कर सकते थे। क्या गणधर ग्यारह अगो को आवश्यक सूत्र को या दृष्टिवाद को विभिन्न पद्धति से विभिन्न शैली मे गुंथन नही कर सकते थे?

वास्तव मे गणधर प्रभू उपलब्ध प्रथम आचारांग भी ऐसा बना सकते थे, दूसरा (श्रुतस्कध) आचारांग भी एवं सूयगडाग भी पद्यमय गद्यमय बना सकते थे, ठाणाग, समवायाग भगवती की पद्धति का गुथन भी वे कर सकते थे और ज्ञाता आदि धर्मकथा शास्त्रो का भी गुंथन कर सकते थे। जैसी शैली या पद्धति उन्हे उपयुक्त लगी, उसी के अनुसार सूत्रो का गुथन अलग-अलग प्रकार से किया। इसमे किचित भी सदेह करने जैसा या असंभव जैसा नही है।

अत भाषा शैली के आधार पर आगमो के रचनाकाल का ज्ञान करना विद्वानो की एकागी दृष्टि है और उनके कथन मे बहे जाना भी भावुकता का अतिरेक ही समझना चाहिए।

ठाणांग समवायांग वार्ता—

जिज्ञेश —ठाणाग समवायांग सूत्रो मे तो सख्या सम्बन्धी कई वर्णन गणधरो के

बाद के है उसे क्या समझना?

ज्ञानचन्द — ये दोनो सूत्र संख्या सम्बन्धी संकलन सूत्र है। इनमे उपयोगी कई तत्व समय समय पर सपादन कर्ता पूर्वधर बहुश्रुतो ने व्यवस्थापित किये है इसमे कोई संदेह नही है। अन्य सूत्रो मे भी क्षेत्र काल की अपेक्षा को ध्यान मे रख कर बहुश्रुतो पूर्वधरो ने हीनाधिक करने का या परिवर्तन करने का अधिकार पूर्वक कार्य किया है ऐसा मानने मे कोई आपत्ति नही है। वह परिवर्तन स्वछद बुद्धि से नही किन्तु अन्य बहुश्रुतो की सलाह एव विवेक पूर्वक किये है। सूत्रो का गहन अध्ययन करने वालो से यह अनुभव अज्ञात नही है अर्थात् उन्हे यह मन्तव्य सहज ही मान्य हो सकता है।

यथा— १. आचारांग सूत्र का सातवां अध्ययन विच्छेद होना २ निशीथ अध्ययन अलग होकर विमुक्ति अध्ययन संलग्न होना ३ ठाणांग समवायांग मे अनेक बोल सलग्न होना ४. भगवती आदि सूत्रो मे पाठांतर वैकल्पिक पाठ रखना ५ सूत्रो को संक्षिप्त करना जाव लगाना या अन्य सूत्र की भलावण लगाना ६ बारहवे अंग से निकाल कर नये नये सूत्र बनाना ७ प्रश्न व्याकरण सूत्र मे पूर्णतया परिवर्तन कर देना ८ उसके निकले अध्ययनो से उत्तराध्ययन और ऋषिभाषित सूत्र स्वतंत्र बना देना इत्यादि।

सूत्रों में परिवर्तन अधिकार वार्ता—

जिज्ञेश — यह संपादन का अधिकार कब तक रहा? और अब भी है?

ज्ञानचन्द —शास्त्र लिपिबद्ध करने के समय आवश्यक संपादन पूर्वधरो की साक्षी से कर दिया गया। उसके बाद यह अधिकार किसी को भी नही रहा एवं पूर्व ज्ञान का भी विच्छेद हो गया। उसके बाद लिपि दोष, प्रक्षेप दोष आदि दोषो को विवेक पूर्वक सुधारने का अधिकार तो आगमो के गहन अभ्यासी विवेकवान बहुश्रुतो को है ही, इसमे किंचित भी संदेह नही करना चाहिए। किन्तु स्वछंद मति से व्यक्तिगत या बहुमत से आगम मे हीनाधिक करना या परिवर्तन करना अथवा प्रक्षेप करने का अधिकार किसी को भी नही है।

दूषित परिवर्तन वार्ता—

जिज्ञेश — लेखन काल या देवर्धिगणी के संपादन के बाद आगमो मे किसी ने

कोई परिवर्तन प्रक्षेप या हीनाधिक करने के कर्तव्य नही किये है?

ज्ञानचन्द — अधिकार नही होते हुए भी स्वार्थ से या स्वछंद मति के आग्रह से समय समय पर जैन विद्वानो ने आगमो मे हस्तक्षेप किये है। कुछेक दुर्मानस वाले लहियो-शास्त्र लेखको आदि ने भी विकृत प्रक्षेप या हीनाधिक किये है। साथ ही कुछ लिपि दोष, दृष्टि दोष एव भूल से भी परिवर्तन हुए है। **यथा**—१ कई जगह सूत्रो मे मद्यमांस सेवन के कथानक या आचार विधान करने वाले शब्दो का प्रक्षेप हुआ है। २. कही मूर्तियो के पाठ डाले गये है। ३ कही णमोत्थुणं के पाठ का प्रक्षेप किया गया है ४ कही डोरे सहित मुंहपति का वाक्यांश जोड दिया गया है ५ कही मैल-परीषह या मोय-समाचरण सम्बन्धी पाठ ही निकाल दिये गये है ६ दशाश्रुत स्कंध मे आठवी दशा मे समाचारी के पाठो को हीनाधिक एव विकृत कर दिया गया है। भगवान के मुख से किसी अध्ययन को बार बार परिषद मे कहलाने का उपसंहार पाठ भी जोड दिया गया है। पर्यूषण सम्बन्धी पाठ को भी मनगडंत उटपटांग बनाकर रख दिया है। ७ चुल्लकल्प और महाकल्प सूत्र और व्यक्तिगत समाचारियो पट्टावलियो को जोड कर नया ही कल्पसूत्र बनाकर उसे आठवी दशा के नाम से प्रसिद्ध कर दिया है। उस १२०० श्लोक प्रमाण कल्प सूत्र को भद्रबाहु स्वामी से गुंथन करना और भगवान महावीर स्वामी से बारंबर परिषद मे सुनाना भी लिख दिया है। और किसी ने तो हिम्मत करके आठवी दशा मे ही उसे पूरा लिख दिया है। वह हस्तलिखित प्रति अहमदाबाद एल डी' इन्स्टीट्यूट मे उपलब्ध है ८ किसी ने खंडित महानिशीथ को उटपटांग बातो से परिपूर्ण करके रख दिया है। ९ आवश्यक सूत्र के विषय मे तो मानो सभी ने अपने अपने हाथ मे परिवर्तन परिवर्धन का पूरा अधिकार ले रखा है। ये सब आगम की चोरिया है। एव अनधिकार के कर्तव्य है। निशीथ सूत्र के अंत मे किसी दिगम्बराचार्य की सूत्र कर्ता के रूप मे छाप भी लगादी गई है।

इस प्रकार चोर्य वृति से किये गये परिवर्तन अथवा लिपि दोष या भूल दोष से हुए परिवर्तनो को विवेक एवं अन्वेषण पूर्वक सुधार कर सही संपादित करने का अधिकार तो आगमो के गहन अभ्यासी गीतार्थ मुनियो को अभी भी है ही, ऐसा समझना चाहिये। ऐसा स्वीकार नही करेगे तो 'मक्षिका स्थाने मक्षिका पात्रं' वाली उक्ति चरितार्थ होगी। अत लकीर के फकीर भी नही बनना है, एकांत रूप से परंपराओ का आग्रहवाद भी नही रखना है साथ ही नकल मे विवेक युक्त अकल

भी रखना आवश्यक है।

पूर्वाचार्यो की आशातना वार्ता—

जिज्ञेश — पूर्वाचार्यो के बनाये ग्रन्थो और सूत्र व्याख्याओ को पढना भी और मानना भी, एव अपने को नही जचे तो उसे गलत भी कह देना। यह तो सर्व सत्ता अपने हाथ मे रखना हो गया और उन पूर्वाचार्यो को अपने से अल्पज्ञ समझना हो गया?

ज्ञानचन्द — पहली बात तो यह है कि यह आगम सम्बन्धी विवेक एव निर्णय का अधिकार गहन अभ्यासी, अन्वेषक विद्वानो को है, वह भी आगमो की एव सिद्धान्तो की अपेक्षा रखते हुए है। आगम निरपेक्ष, सिद्धान्त विपरीत सुधार, सपादन का अधिकार तो किसी को भी है नही। क्योकि वह तो चौर्यवृत्ति मे है।

पूर्वाचार्यो को अल्पज्ञ समझने की कल्पना करना भी अज्ञान दशा है। क्योकि यह पहले बताया जा चुका है कि जिन्दगी भर गुरू की सभी आज्ञा का पालन करना अति आवश्यक श्रमण धर्म एव विनय धर्म है। फिर भी गुरू या आचार्य प्रदत्त कोई भी प्रायश्चित्त शास्त्रानुकूल नही है तो उस प्रायश्चित को लेने से इन्कार हो जाने का अधिकार भी शास्त्रज्ञ शिष्य को है यह स्पष्ट शास्त्राज्ञा है। ऐसी ही अन्य अनेक शास्त्राज्ञाओ से स्पष्ट हो जाता है कि आगम सापेक्ष न्याय युक्त निर्णय लेने मे उसके विपक्ष मे रहे किसी भी बडे विद्वान या आचार्य अथवा गुरु की या साहित्यकार की आशातना होना आगमकार नही मानते है।

आर्यरक्षित वार्ता—

जिज्ञेश — क्या आर्य रक्षित आचार्य ने छेद सूत्र साध्वियो को पढने पढाने का निषेध किया? आगम अनुयोग का विच्छेद किया? मात्रक रखने की छूट दी?

ज्ञानचन्द — (१) नंदी सूत्र के अनुसार आर्य रक्षित ने अनुयोग की रक्षा की है किन्तु विच्छेद करने का वहां नही बताया गया। उल्टा यह कहा गया कि आर्य रक्षित के बाद भी अनेक अनुयोग के धारक एव प्रवर्तक श्रमण हुए। नंदी कर्ता ने एक गाथा मे यह भी कहा है कि आज भी अर्द्ध भरत क्षेत्र मे अनुयोग का प्रवर्तन चालू है।

अत आर्य रक्षित ने अनुयोग का विच्छेद नही किया था किन्तु अर्थ व्याख्यान के कथन की जो पद्धति थी उसे अनुयोग द्वार सूत्र की रचना करके उसमे सुरक्षित कर दिया था। इस प्रकार आर्यरक्षित ने अनुयोग की रक्षा सुरक्षा की किन्तु विच्छेद

नही किया। विशेष जानकारी के लिये पुष्प २३ मे अनुयोग द्वार सूत्र का संपादकीय देखे।

(२) छेद सूत्र और पात्र सम्बन्धी कल्पना असत्य है एव व्यर्थ ही आर्य रक्षित नाम से प्रचारित की गई है। इसका कारण यह है कि आर्य रक्षित से पूर्व (पहले) उपलब्ध आगमो मे अनेक पात्र रखने के एवं मात्रक रखने के स्पष्ट विधान है, इस विषयक विशेष जानकारी के लिये पुष्प १२ छेद सूत्र परिशिष्ट खंड २ देखना चाहिये।

इसी प्रकार साध्वी को आवश्यक रूप से छेद सूत्र (निशीथ सूत्र) कंठस्थ करने एवं धारणा करने का विधान भी आर्यरक्षित से पूर्व (पहले के) रचित आगमो मे आज भी उपलब्ध है। इसकी चर्चा भी पुष्प ११ छेद सूत्र परिशिष्ट खंड १ मे की गई है उस स्थल से अध्ययन करके विशेष जानकारी करनी चाहिये।

आर्य रक्षित के नाम से ऐसी मन् कल्पित कई बाते इतिहास के पन्नो मे चला रखी है। जो कि स्पष्ट आगम विरूद्ध प्ररूपणाएं है। फिर भी अधश्रद्धा और भेड चाल वृत्ति वाले लोग उन्हे चलाते ही रहते है।

कही यह भी कहा गया है कि आचार्य भद्रबाहु कृत शास्त्र मे साध्वी को छेद सूत्र पढाने का विधान था इसलिये उसके विपरीत विधान आगम मे वे आर्यरक्षित आचार्य नही बना सके किन्तु मौखिक रूप से परपरा मे तो उन्होने चालू कर ही दिया जो आज तक चल रहा है। ऐसी असंगत बातो को मानने और चलाने वाले विद्वान भी वास्तव मे विवेक रूप नैत्र से विहीन ही है। क्योकि ऐसे कर्तव्यो से आर्य रक्षित जैसे महान आचार्य की भी प्रतिष्ठा हानि होती है।

पात्र के लिए भी ऐसा लिख दिया गया है कि पहले एक पात्र ही साधु रखते थे, उसी मे खाते और उसी को अन्य कार्य मे लेते। फिर आर्य रक्षित ने मात्रक रखने की मौखिक छूट दी, किन्तु बिना कारण उसको उपयोग मे लेने की मना भी करदी थी। जबकि व्यवहार सूत्र मे साधु के अनेक प्रकार के पात्रो के होने का और उनमे तथा हाथ मे भी खाने पीने का स्पष्ट विधान आज भी उपलब्ध है। इस प्रकार आर्य रक्षित के नाम से कई बेतुकी बाते चलाई गई और अभी तक भी चल रही है जो कि मानो बुद्धिमानो के द्वारा बुद्धि को गिरवी रख कर की जाने योग्य आश्चर्यकारी प्ररुपणाएं एवं प्रवृत्तिएं है।

कुत्सित कल्पनाओं की वार्ता—

जिज्ञेश — पहले साधु जगलो मे रहते थे फिर बगीचो मे आने लगे और फिर क्रमश· शहरो गांवो के अंदर रहने लगे। पहले साधु नग्न और केवल

लगोट धारी या छोटा सा वस्त्र लज्जा ढांकने का बांधते थे और बाद मे वस्त्रधारी बन गये। समय समय पर आवश्यकताएं और परिस्थितिएं पलट जाने से शास्त्रो के विधानो मे भी परिवर्तन करने आवश्यक होते रहे। एक युग की अपेक्षा बनाये गये नियम आगे के युग मे नही चल सके। इस लिए वृहत्कल्प और व्यवहार सूत्र मे भी परिवर्तन परिवर्धन करने पडे। निशीथ सूत्र की प्रायश्चित्त संकलना भी इतनी बनानी पडी, इत्यादि कथन कहा तक सत्य है?

ज्ञानचन्द — सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतराग भगवान के शासन मे आचार शास्त्र एक युग की आवश्यकता को लेकर बने, यह अनुचित कल्पना है। संपूर्ण शासन काल को दृष्टि पथ पर रखे बिना शास्त्र एवं आचार विधान बनाने का यह अज्ञान भरा आक्षेप सर्वज्ञो और गणधरो एवं १४ पूर्वी आचार्यो पर जाता है। अत स्वछंद मति युक्त ये कल्पनाएं जिन शासन प्रेमियो एवं आगम अनुभवियो के किंचित भी गले नही उतर सकती है। इस विषयक विस्तृत चर्चा आगे स्वतत्र निबन्ध मे देखे। साधुओ का रहन सहन भी पहले और बाद मे कोई एकांतिक नही था ऐसे एकांतवाद के कथन की उचित अनुचितता पर भी आगे पुष्प न. २२ मे स्वतंत्र निबन्ध द्वारा विचार किया जाएगा।

निशीथ रचना वार्ता—

जिज्ञेश — निशीथ सूत्र की कब किसने रचना की?

ज्ञानचन्द — आचार्य भद्रबाहु स्वामी ने तीन छेद सूत्रो की रचना की थी यह दशाश्रुत स्कंध की निर्युक्ति की प्रथम गाथा से स्पष्ट है। निशीथ सूत्र आचारांग सूत्र का ही एक अध्ययन है। उसी से पृथक किया गया यह सूत्र है इसका प्रारंभिक नाम, आचारांग से पृथक किया होने से 'आचार प्रकल्प' रहा। बाद मे इसके मौलिक निशीथ अध्ययन रूप नाम से इसकी निशीथ सूत्र यह संज्ञा निश्चित की गई। अर्थात् आचार्य भद्रबाहु स्वामी ने जब तीन छेद सूत्रो की रचना की, तब यह आचार प्रकल्प के नाम से ही कहा जाता था। उसके बाद नंदी रचना के समय तक इसका निशीथ सूत्र यह नामकरण स्थिर हो गया। इसीलिये तीन छेद सूत्र मे इसका निशीथ नाम नही है और नंदी मे इसका आचार प्रकल्प नाम नही है। इस विषयक विकल्पो एवं मान्यताओ की विस्तृत जानकारी के लिये निशीथ सूत्र सारांश पुष्प न. सातवा देखे। तथा पुष्प न. २२ मे स्वतंत्र निबन्ध भी देखे।

प्रश्न व्याकरण वार्ता—

जिज्ञेश — उपलब्ध प्रश्न व्याकरण सूत्र क्या गणधर रचित है ?

ज्ञानचन्द —नंदी सूत्र और समवायांग सूत्र मे प्रश्नव्याकरण सूत्र के विषय वस्तु का परिचय दिया है एवं ठाणांग सूत्र मे उसके दस अध्ययन होने का कथन किया गया है। जिसमे तीसरे अध्ययन का नाम ऋषि भाषित है चौथा आचार्य भाषित एवं पांचवां अध्ययन महावीर भाषित है। अगले पांच अध्ययन विभिन्न प्रश्न विद्या सम्बन्धी बताये है। उन्ही पिछले अध्ययनो के कारण प्रश्न व्याकरण सूत्र का मूलत परिवर्तन कर दिया गया है, ऐसा माना जाता है। ऋषि भाषित अध्ययन के नाम से अलग सूत्र बन गया एवं आचार्य भाषित और महावीर भाषित श्रेष्ठ अध्ययनो से उत्तराध्ययन सूत्र बन गया है। नंदी सूत्र मे इन दोनो सूत्रो का उल्लेख सूत्र सूचि मे किया गया है। किन्तु प्रश्न व्याकरण सूत्र के उपलब्ध आश्रव एवं संवर वर्णन का किंचित भी निर्देश नंदी सूत्र मे नही किया गया है। तब यह एक असमाधित प्रश्न रह जाता है कि नंदी कर्ता के समक्ष यदि प्रश्न व्याकरण का वर्तमान उपलब्ध रूप था तो उस सूत्र के विषय परिचय मे आश्रव संवर के वर्णन का कथन भी तो करना चाहिये था। यदि आश्रव संवर वर्णन नही था और नंदी कथित विषय वर्णन था तो ऋषि भाषित और उत्तराध्ययन का नाम नंदी मे कैसे आ गया ?

इसका समाधान यह है कि नंदी सूत्र का रचना काल और आगम लेखन काल मे कुछ ही समय का अंतर रहा है। अर्थात् देवर्द्धि ने वाचक पद अवस्था मे नंदी की रचना कर दी थी। एवं कालांतर से गणी एवं क्षमाश्रमण पद विभूषित होने पर आगम लेखन कार्य मे सक्रिय भाग लिया था। लेखन प्रसंग मे चमत्कारिक वर्णनो के हटाने की आवश्यकता प्रतीत होना बुद्धिगम्य भी है। अत आगम लेखन प्रसंग मे ही आचारांग के सातवे अध्ययन को लिपिबद्ध नही किया एवं प्रश्न व्याकरण सूत्र मे बहुत ज्यादा चमत्कारिक वर्णन होने से संपूर्ण विषय ही नया बना दिया गया। जिससे १० अध्ययन के पुन १० अध्ययन रह गये। प्राचीन प्रश्नव्याकरण सूत्र के पांच अध्ययन तो उपदेशी विषयो से भरे हुए थे उनको दो सूत्रो मे विभक्त कर दिया गया १ उत्तराध्ययन सूत्र एवं २ ऋषिभाषित सूत्र।

ये दोनो नूतन सूत्र बने इसलिये इन का नाम नंदी सूत्र मे उस समय ही लिख दिया गया किन्तु प्रश्नव्याकरण सूत्र के परिचय मे परिवर्तन करना रह गया तथा आचारांग सूत्र के परिचय मे भी २५ अध्ययन के स्थान पर २४ अध्ययन करना रह गया।

प्रश्न व्याकरण सूत्र के इस परिवर्तन सम्बन्धी जानकारी एव आचाराग सूत्र के सातवे अध्ययन सम्बन्धी मौलिक जानकारी इन सूत्रो के टीकाकारो ने भी नही दी है। इसी कारण इस विषयक निर्णय उलझन पूर्ण रहा है। फिर भी यहा पर यथा शक्य किचित चितन सार प्रस्तुत किया गया है। यह भी कल्पना मात्र है। अन्य कल्पना यह भी सभव है कि शास्त्र लेखन काल के बाद मे प्रश्न व्याकरण सबधी परिवर्तन हुए होगे और उसे किसी ने नदी मे स्थान भी दे दिया।

इस स्थिति से यह भी निष्कर्ष निकलता है कि वीर निर्वाण की उन सदियो मे ऐतिहासिक जानकारियां लिखने का क्रम नही चला था। जिससे ही कई ऐतिहासिक तत्व उलझन पूर्ण एव कल्पित और विकृत बन कर प्रचारित हुए है।

जयपाहुड प्रश्न व्याकरण वार्ता—

जिज्ञेश —उत्तराध्ययन सूत्र और ऋषि भाषित सूत्र के अतिरिक्त अन्य भी कोई सूत्र प्राचीन प्रश्न व्याकरण सूत्र के विभाग रूप मे उपलब्ध है?

ज्ञानचन्द — देवर्द्धिगणी क्षमा श्रमण के समय या बाद मे जब कभी प्राचीन प्रश्न व्याकरण से प्रश्न विद्याओ को हटाया गया तो भी कई श्रमणो को कठस्थ परंपरा मे थोडा बहुत चला ही होगा। कालांतर से किसी श्रमण ने स्मृति अनुसार यथावशेष उस प्रश्न व्याकरण सूत्र के विभाग को लिपिबद्ध किया होगा। जो स्वतंत्र ग्रन्थ रूप मे लिपिबद्ध होते-होते परंपरा से भंडारो मे सुरक्षित रहा होगा।

इसी के फलस्वरूप ग्रन्थ भंडारो मे उसकी प्रतियां उपलब्ध होती है। जैसलमेर के खरतरगच्छ के आचार्य शाखा के भंडार मे ''**जयपाहुड प्रश्नव्याकरण**'' नामक ग्रन्थ की एक ताडपत्रीय प्रति थी जो संवत १३३६ की चेत वदी एकम की लिखी हुई थी। मुनि श्री जिनविजय जी ने उसे संशोधित संपादित कर संवत २०१५ मे ''सिंघी जैन ग्रन्थमाला के ग्रंथाक ४३ के रूप मे प्रकाशित करवाया। उसकी प्रस्तावना मे उन्होने ये भावांस लिखे है—

''प्रस्तुत ग्रन्थ अज्ञात तत्व और भावो का ज्ञान प्राप्त करने-कराने का विशेष रहस्यमय शास्त्र है। यह शास्त्र जिस मनीषी या विद्वान को अच्छी तरह से अवगत हो तो वह उसके आधार से किसी भी प्रश्नकर्ता के लाभ-अलाभ, शुभ-अशुभ, सुख-दुख एवं जीवन मरण आदि बातो के सम्बन्ध मे बहुत निश्चित एवं तथ्यपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकता है।''

मूल ग्रन्थाकार ने तो इस ग्रन्थ नाम ''जय पाहुड'' दिया है और अंत मे उन्होने ''प्रश्नव्याकरण समाप्तम्'' लिखा है। व्याख्याकार ने प्रारंभ मे इस तरह लिखा है—

''महावीराख्य शिरसा प्रणम्य प्रश्नव्याकरण शास्त्रं व्याख्यामि''

व्याख्या के अत मे लिखा है—

''इति जिनेन्द्र कथित प्रश्नचूडामणि सार शास्त्र समाप्तम्।।''

''जिन रत्नकोष'' के पृ १३३ मे भी इस नाम वाली प्रति का उल्लेख है तथा वहा यह भी सूचित किया है कि खंभात के शातिनाथ भडार मे इस (जयपाहुड-प्रश्नव्याकरण) शास्त्र की कई प्रतियां है।

इन सब उल्लेखो एवं विचारणाओ से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन प्रश्न व्याकरण शास्त्र भिन्न भिन्न विभागो मे बट गया और पृथक पृथक नाम वाले ग्रन्थ (शास्त्र) बन गये। आज का उपलब्ध प्रश्नव्याकरण सूत्र भी उसी का ही एक विभाग हो यह भी सभव है। इस प्रकार प्राचीन प्रश्न व्याकरण शास्त्र के स्थान पर आज चार शास्त्र अवशेष है (मुद्रित भी है)— (१) आश्रव सवर मय प्रश्नव्याकरण सूत्र (२) उत्तराध्ययन सूत्र (३) ऋषिभाषित सूत्र (४) जयपाहुड-प्रश्न व्याकरण। प्रश्नोतरमय रचनाओ के नाम साम्य से भी प्रश्नव्याकरण का भ्रम होना और संबंध जुड जाना भी संभव है। वास्तव मे गणधर रचित प्रश्नव्याकरण एक अन्य ही कृति रही होगी जो धर्म-कथा मय विषयो से परिपूर्ण थी अन्य विषयो से उसका कोई सबध नही होगा। इस मंतव्य के लिये देखे पुष्प १८ प्रश्नव्याकरण सूत्र की प्रस्तावना।

आवश्यक सूत्र वार्ता—

जिज्ञेश — आवश्यक सूत्र की रचना किसने की? इसे नंदी सूत्र मे अंग बाह्य सूत्र कहा गया है?

ज्ञानचन्द — आवश्यक सूत्र के सामायिक आदि छहो अध्ययन भगवान के शासन के सभी साधु साध्वी को उभय काल करना आवश्यक होने से कंठस्थ होना भी आवश्यक था। इसमे किंचित भी सदेह नही किया जा सकता है। अत प्रारम्भ मे ही गणधर द्वारा इस सूत्र का गुंथन किया जाना स्वत ही स्पष्ट सिद्ध हो जाता है। इसके रचनाकाल के लिए किसी भी तर्क आदि को स्थान नही है। अंतगड सूत्र मे अणगारो के आगम अध्ययन का वर्णन है उसमे भी अंग सूत्रो के पूर्व ही आवश्यक सूत्र के अध्ययन का संकेत किया गया है।

अत अंग बाह्य होते हुए भी इस सूत्र को गणधर कृत ही मानना आगम सम्मत है। प्राचीन एवं अर्वाचीन सभी आचार्यो ने इस सूत्र का परिमाण २०० श्लोक प्रमाण ही माना है। वास्तव मे जो भी मौलिक पाठ है उनकी अक्षर संख्या गिन कर हिसाब लगाने पर वह परिमाण सत्य साबित होता है। आजकल उसके साथ हिन्दी

गुजराती पाठ गद्य पद्य आदि जोड कर अति विशाल बना दिया गया है, किसी ने एक हजार श्लोक प्रमाण बनाया है, तो किसी ने ५००० श्लोक प्रमाण बना रखा है, किसी ने पाक्षिक सूत्र और बना रखा है, किसी ने दो प्रतिक्रमण और किसी ने पच प्रतिक्रमण बना रखे है। ऐसे प्रतिक्रमण करने मे किसी को एक घंटा और किसी को ३-४ घंटे भी लगते है। यह सब भव भीरू कहे जाने वाले आचार्यो का मौलिक सूत्र मे हस्तक्षेप कर अनंत संसार वृद्धि करने रूप दयनीय दशा का प्रारूप है। वास्तव मे ये लोग भव भीरू तो तब कहे जा सकते है जब सारे प्रक्षिप्त पाठो को छोड कर २०० श्लोक प्रमाण मौलिक सूत्र को ही आवश्यक सूत्र (प्रतिक्रमण सूत्र) स्वीकार कर लेवे।

उत्तराध्ययन सूत्र वार्ता—

जिज्ञेश — उत्तराध्ययन सूत्र तो भगवान महावीर की अंतिम देशना है, इसे प्रश्न व्याकरण का पृथक हुआ अंग कैसे कहा गया है?

ज्ञानचन्द — वीर निर्वाण के बाद सुधर्मा गणधर ने एक साथ सूत्रो मे उपयोगी परिवर्तन कर दिये हो ऐसा मान्य करना उचित है तभी भगवान के शासन काल मे हुए श्रमणोपासक या श्रमण श्रमणियो का जीवन वर्णन इन अंग शास्त्रो मे आ सकता है। ऐसा न किया होता और दीक्षा लेते ही गणधरो ने एक बार जो द्वादशागी की रचना की थी वही स्थाई रहती, तो अर्जुन माली, आनंद आदि श्रावक, गौतम गणधर का मित्र खंदक सन्यासी, सूर्याभ देव द्वारा दिखाये नाटक, गौतम स्वामी द्वारा किये गये हजारो प्रश्न, कोणिक श्रेणिक राजा आदि सम्बन्धी घटनाएं इत्यादि वर्णन इन शास्त्रो मे नही आ सकते थे। क्योकि ये सब घटनाएं गणधरो द्वारा एक बार द्वादशागी की रचना करदी जाने के बाद मे घटित बनी हुई है।

अत यह स्वीकार करने मे किंचित भी हिचक नही की जा सकती कि सुधर्मा गणधर ने सूत्रो मे पुन· संपादन अवश्य किया है। इसी पुन संपादन मे भगवान की अंतिम देशना रूप कई विषयो को उन्होने प्रश्नव्याकरण सूत्र मे गुंथित कर दिया और उस अध्ययन का नाम ''महावीर भाषित'' ऐसा रखा। साथ ही वहा आयरिय भाषित और ऋषिभाषित नाम के अध्ययन भी रचे गये थे। अत प्रश्न व्याकरण सूत्र के विच्छेद किये जाने पर उन्ही अध्ययनो से इस उत्तराध्ययन सूत्र की संकलना कर दी गई है जिसमे श्रेष्ठ अध्ययनो का संकलन भी है और भगवान महावीर भाषित अध्ययन से सम्बन्धित होने से उन की अंतिम देशना से इसे जोडा जाने लगा है। इस प्रकार उत्तराध्ययन सूत्र भी परंपरा से गणधर रचित ही

है। जिस प्रकार निशीथ सूत्र आचारांग सूत्र से अलग किया हुआ अध्ययन होने से गणधर रचित ही है उसी प्रकार उत्तराध्ययन सूत्र भी प्रश्नव्याकरण सूत्र से निकालकर अलग व्यवस्थापित किया हुआ सूत्र है।

दशवैकालिक सूत्र वार्ता—

जिज्ञेश — दशवैकालिक सूत्र की रचना सय्यंभव स्वामी ने अपने पुत्र ''मनक'' के लिये की थी?

ज्ञानचन्द — कहा जाता है कि ''अपने पुत्र की छ महिने की अल्प आयुष्य जान कर सय्यंभवाचार्य ने दशवैकालिक सूत्र की रचना की और फिर उसके दिवंगत हो जाने के बाद पुन उस सूत्र को विलीन करने का संकल्प किया। तब सघ का अत्याग्रह हुआ कि इसे आप स्वतंत्र सूत्र रहने दे विलीन नही करे। संघ के उस आग्रह को स्वीकार करने के फलस्वरूप यह दशवैकालिक सूत्र उपलब्ध रहा है।''

इस घटनाक्रम मे भी ऐतिहासिक कल्पित कल्पनाओ का प्रभाव ही अधिक लगता है वास्तविकता होने जैसा नही लगता है। सूत्र बनाना और मिटाना यह तो एक बच्चो वाला खेल रूप बन जाता है। रथनेमि राजीमति की घटना युक्त विषय, मद्य सेवन करने वाले कपटी साधुओ का विस्तृत कथन, आदि वर्णनो का मनक के लिये होना अप्रासंगिक सा ही लगता है।

अत यह मनक सम्बन्धी कथानक एव स्थूलिभद्र की बहिन का महाविदेह मे जाने, चूलिका लाने सम्बन्धी कथानक इत्यादि ये सैकडो वर्ष बाद इतिहास की कल्पनाएं करने वाले विद्वानो की उपज ही अधिक सभव लगती है।

दशवैकालिक और उत्तराध्ययन सूत्र का जो स्वरूप और महत्व आज उपलब्ध है, वह निर्युक्ति भाष्यकार के समय भी था। उन व्याख्या ग्रन्थो मे जहां साधु के अध्ययन क्रम सम्बन्धी कथन किया गया है वहां बताया है कि आचारांग निशीथ के अध्ययन के पूर्व दशवैकालिक और उत्तराध्ययन सूत्र के अध्ययन का क्रम है और उससे पूर्व आवश्यक सूत्र का। अत यह स्पष्ट है कि ये दोनो सूत्र नवदीक्षित या दीक्षार्थी के प्रारंभिक अध्ययन के उपयोगी सूत्र है और व्याख्याकारो ने इन्हे अध्ययन क्रम मे नियुक्त भी किया है।

भद्रबाहु स्वामी द्वारा व्यवहार सूत्र मे जो अध्ययन क्रम कहा गया है उसमे इन उपयोगी या अति उपयोगी सूत्रो का कथन नही किया गया है इसका कारण यही हो सकता है कि ये दोनो सूत्र व्यवहार सूत्र की रचना के पूर्व नही बने होगे। इसमे उत्तराध्ययन के नही बनने की बात तो समझ मे आ चुकी है कि इसके लिये किसी सूत्रकर्ता आचार्य का निर्देश इतिहास मे है भी नही। किन्तु दशवैकालिक सूत्र के

रचनाकार के रूप मे सय्यभवाचार्य का नाम मिलता है जो कि भद्रबाहु स्वामी के बहुत पहले हो चुके है। इस प्रकार उपलब्ध वर्णन धारणा के अनुसार दशवैकालिक सूत्र भद्रबाहु के समय उपलब्ध था। फिर भी इतने उपयोगी एव प्रचलित सूत्र का उन्होने जो अध्ययन क्रम मे उल्लेख नही किया, जबकि खुद के बनाये दशाश्रुत स्कध, वृहत्कल्प और व्यवहार सूत्र को अध्ययन क्रम मे रख दिया तब अपने से पूर्व मे अपने ही पूर्वज प्रामाण्य पुरुषो द्वारा रचित इस महत्वशील उपयोगी एव प्रचलित दशवैकालिक सूत्र को अध्ययन क्रम मे नियुक्त नही किया यह एक अत्यत विचारणीय प्रश्न है।

इसकी विचारणा से ही यह फलित होता है कि उत्तराध्ययन सूत्र के समान ही दशवैकालिक सूत्र भी भद्रवाहु स्वामी द्वारा व्यवहार सूत्र की रचना करने के बाद ही किसी ने बनाया होगा किन्तु कथाओ मे कभी किसी के द्वारा सयभवाचार्य से सम्बन्ध जोड दिया गया हो। अथवा तो भद्रबाहु के बाद सयभव नामक अन्य कोई श्रमण हुए हो उन्होने दशवैकालिक की रचना की हो और वह भद्रबाहु से पूर्व हुए प्रसिद्ध सयभवाचार्य से जुड गई हो।

ऐसा होना असंभव भी नही है क्योकि वीर निर्वाण ग्यारहवी सदी मे रची गई निर्युक्तियां और उस सदी मे होने वाले वराहमिहिर और भद्रबाहु की कथा वीर निर्वाण की तीसरी सदी मे हुए भद्रबाहु के वर्णन से मिश्रित होकर प्रचारित हो गई और दुराग्रह मे भी पड गई। जिसे आगमोद्धारक धुरंधर विद्वान श्री पुण्यविजयजी मंदिर मार्गी अन्वेषक श्रमण ने अपनी वृहत्कल्प भाष्य की प्रस्तावना मे स्वीकार किया है कि इस तरह नाम साम्यता के इधर के उधर कथानक वर्णन घटनाएं मिश्रित हो गई है। वास्तव मे प्रथम भद्रबाहु स्वामी तीन छेद सूत्रो के कर्ता अलग है वे १४ पूर्वी थे। और वराहमिहिर के भाई निर्युक्ति कर्ता एवं भद्रबाहु संहिता बनाने वाले ज्योतिष वेता भद्रबाहु अलग है ये वीर निर्वाण ग्यारहवी सदी मे हुए है।

अत ऐतिहासिक कई कथाए कल्पित है, कई भ्रमित एव काल दोष एवं नाम साम्यता के कारण विकृत बनी हुई है। अत उनके सम्बन्ध मे चितन अनुप्रेक्षण को सदा स्थान रखना चाहिए। किन्तु किसी भी घटना के विषय मे अत्यंत आग्रह या दुराग्रह नही रखना चाहिये।

सार यह है कि उत्तराध्ययन एवं दशवैकालिक सूत्र १४ पूर्वी श्री प्राचीन भद्रबाहु के समय एव व्यवहार सूत्र की रचना के समय उपलब्ध नही थे बाद मे ही इनकी रचना हुई है यही अधिक संगत लगता है।

नंदी की गाथा सम्बन्धी वार्ता—

जिज्ञेश —नंदी सूत्र की ५० गाथाए किसने बनाई है ?

ज्ञानचन्द — उन गाथाओ मे जो अंतिम पचासवी गाथा है उसमे स्पष्ट उल्लेख है कि यह मै कालिक श्रुत के अनुयोगधरो को नमस्कार करके अब ज्ञान की प्ररूपणा करूगा। इस वाक्य से यह फलित होता है कि नंदी सूत्र के ज्ञान विषय के गुंथन करने वाले श्रुतधर ही इन ५० गाथाओ के रचनाकार है क्योकि पच्चासवी गाथा का इस प्रकार का गुंथन अन्य कोई भी नही कर सकता।

अत ये ५० गाथा भी मौलिक नदी सूत्र का ही अंग है ऐसा समझना चाहिये।

जिज्ञेश —अकाल मे और अस्वाध्याय के समय मे भी नंदी की इन ५० गाथाओ का एव दशवैकालिक की दोनो चूलिकाओ का स्वाध्याय किया जाता है, यह उचित है ?

ज्ञानचन्द —इस विषय मे यह माना जाता है कि ये उक्त गाथाएं और चूलिकाएं मौलिक नही है रचनाकार के अतिरिक्त किसी के द्वारा बनाकर यहां जोड दी गई है। किन्तु यह मान्यता भ्रान्त एवं अनुचित है। नंदी सूत्र एवं ५० गाथा के कर्ता दूष्यगणि के शिष्य देववाचक श्री देवर्धिगणी क्षमाश्रमण है और दशवैकालिक सूत्र और दोनो चूलिका के कर्ता आचार्य सयंभव है ऐसा दशवैकालिक चूर्णि कर्ता श्री अगस्त्यसिह सूरि ने मान्य किया है। किन्तु महाविदेह से लाने सम्बन्धी कल्पना का स्पर्श मात्र भी नही किया है। परिशिष्ट पर्व और आवश्यक चूर्णि आदि ग्रन्थो मे महाविदेह से चूलिका २ अथवा ४ लाने का उल्लेख है जो कि उक्त अगस्त्य चूर्णी से बहुत बाद मे बने ग्रन्थ है।

अत मौलिक सूत्र का अंग होने से स्वाध्याय के नियम गाथाओ और चूलिकाओ के लिये समान ही है। इसलिये अस्वाध्याय या अकाल मे इनका स्वाध्याय करना तो सर्वथा अनुचित ही है और ऐसा करने से निशीथ उ १९ के अनुसार प्रायश्चित आता है। प्रमाण के लिये देखे अगस्त्य चूर्णि पृ २६५ चूलिका २ गा १४, १५

ग्रन्थों के वांचन की वार्ता—

जिज्ञेश — ग्रन्थो मे इतिहासो मे अमान्य या असत्य तत्व आते है, अत उनका अध्ययन करना ही नही चाहिये और उनकी किसी भी बात को स्वीकार नही करना चाहिये। केवल आगम ही पढना और उन्ही मे आए तत्व ही मानना चाहिए। तब तो देवर्धिगणि के सानिध्य मे शास्त्रो का व्यवस्थित लेखन कराया गया यह भी नही मानना चाहिए क्योकि यह भी इतिहास

ग्रन्थो का वर्णन है।

ज्ञानचन्द — सामान्य साधु का प्रत्येक अध्यन गुरु आज्ञा एव गुरू निश्रा से होता है। विशिष्ट प्रज्ञावान विचक्षण विवेक बुद्धि वाले श्रमण प्रत्येक आगम ग्रन्थ व्याख्या निवन्ध इतिहास आदि के अध्ययन से ज्ञान प्राप्त कर सकते है। किसी व्यक्ति के सभी वचन सभी रचनाए पूर्ण अप्रामाणिक नही हो जाते। और किसी ग्रन्थ के सभी वाक्य सभी तत्व असत्य नही हो जाते। पूर्ण प्रामाणिकता तो सर्वज्ञो की ही है तो भी छद्मस्थो की संगति, सेवा, प्रवचन श्रवण एव धर्म लाभ अपने क्षयोपशम अनुसार लेने का निषेध नही किया जा सकता कि ये तो पूर्ण प्रामाणिक पुरुष नही है। ऐसा मानने पर तो तीर्थकर का शासन कभी का व्यवछिन्न हो जाता कि छद्मस्थो की सगति ही नही करना। किंतु ऐसा नही होता है। अत किसी भी जैन साहित्य से ज्ञान प्राप्त करना छद्मस्थ श्रमणो से ज्ञान उपदेश प्राप्त करना अन्य विशेष प्रामाणिक आगमो के आधार से उनका चितन करना, सत्य तत्व को स्वीकार करना आदि कभी भी अनुचित नही हो सकता है। ऐसी कुतर्क मय प्रेरणा करना भी एक दुराग्रह एवं अविवेक युक्त बुद्धि का ही परिणाम है।

अत जो भी पूर्वाचार्यो का सकलन, सग्रह, इतिहास, किसी भी आगम सिद्धांत तर्क या व्यवहार आदि से विरूद्ध न हो तो उसे स्वीकार करने की अर्थात् नही मानने की प्रेरणा करना उचित नही है।

इसलिए देवर्द्धिगणि के सानिध्य मे आगमो का व्यवस्थित लेखन हुआ। इस संगत एवं अविरूद्ध तत्व को नही मानने का कोई भी हेतु नही है। ऐसी व्यर्थ की कुतर्क नही करनी चाहिये।

दिगम्बर मत वार्ता—

जिज्ञेश —दिगम्बर जैन धर्म और श्वेताम्बर जैन धर्म मे सत्य और प्राचीन कौन सा धर्म है?

ज्ञानचन्द — हमारे अनेक आगमो मे श्वेतांबर (वस्त्रधारी) और दिगम्बर निर्वस्त्र (वस्त्र रहित) श्रमण होने का यो दोनो ही प्रकार के श्रमणो के होने का स्पष्ट वर्णन कई जगह आता है। अत हमारे श्वे आगमो के अनुसार तो दोनो प्रकार का धर्म एव श्रमण जीवन तीर्थकर प्रभू की आज्ञा मे है। किन्तु वर्तमान मे दिगम्बर कहे जाने वालो के कई एकांतिक आग्रह अनुचित है और वे कसौटी पर सही नही उतरते है। एकांतिक आग्रह कुछ ये है— (१) वस्त्र सहित का मोक्ष नही होता, यहा तक कि सूत

का एक तार भी किसी के पास हो तो मुक्ति नही। (२) आगम सब विच्छेद हो गये (३) भोजन सम्बन्धी कई प्रकार के शुची धर्मीपन के आग्रह। (४) स्त्री को संयम या मोक्ष नही हो सकता।

(१) दिगम्बरो के मान्य ग्रन्थ मे १५ भेदे सिद्ध मे ''स्त्रीलिग सिद्धा'' मान्य किया है। वह स्त्रीलिग तभी होगा कि या तो स्त्री का शरीर हो अथवा स्त्री वेश के कपडे पहने हो। ये दोनो अवस्था मे सिद्ध होने पर उनके उक्त आग्रह नं १ और ४ का स्वत खंडन हो जाता है। इस प्रकार नये आगम बना करके भी वे अपने दुराग्रह की रक्षा नही कर सके। यही तो छद्म दोष का परिणाम है।

(२) भगवती सूत्र मे एक हजार वर्ष तक पूर्वज्ञान एवं इक्कीस हजार वर्ष तक अन्य आगम ज्ञान का रहना बताया गया है अत विच्छेद की बात भी असंगत है।

तर्क— उपलब्ध भगवती आदि सभी आगम नये बनाये है गणधर रचित तो सब नष्ट हो गये अत इनमे कही बात की प्रामाणिकता क्या?

समाधान— प्रथम तो कंठस्थ परंपरा मे इतना जल्दी सभी आगम ज्ञान का नष्ट होना संभव ही नही है फिर भी जिस समय सभी आगम नष्ट हो गये थे तो क्या बचा था? कुछ नही। तो क्या उस समय के सभी श्रमण श्रमणी अज्ञानी बन गये थे? ग्यारह अंग या दृष्टिवाद कुछ नही बचा था? तो उस समय जिसने भी दिगम्बर होने का आग्रह चलाया या दिगम्बर के नये शास्त्र बनाये वह श्रमण क्या आगम ज्ञान रहित अज्ञानी था फिर उस अज्ञानी के बनाये ग्रन्थ या चलाये धर्म का ही क्या विश्वास?

यदि कहे कि उन दिगम्बर संत को तो पूर्वो का ज्ञान था। तो यह भी असंगत कथन है। क्योकि आचाराग आदि सभी मौखिक अंग शास्त्र ज्ञान का विच्छेद हो जाय तो पूर्वज्ञान के रहने का सवाल ही नही होता। पहले पूर्व ज्ञान ही नष्ट होता है फिर अंगो का ज्ञान बहुत समय तक चलता है।

दिगम्बर धर्म का एकांतिक आग्रह करने वालो ने नये शास्त्र बनाये यह तो निश्चित ही है अत वे ज्ञानी तो थे ही। इसलिये संपूर्ण आगम ज्ञान के विच्छेद का कथन तो निरर्थक ही रहता है। जिससे उपलब्ध भगवती आचारांग आदि आगमोक्त तत्व प्रामाणिक ही रहे।

शका— अब तुलना यह करनी चाहिये कि श्वेतांबर आगम वस्त्र के आग्रह मे पडने से बने है या दिगम्बर आगम? और किसके आगम स्वाभाविक ही पहले (पूर्व) से चले आये है?

समाधान— यह एक स्वाभाविक तथ्य है कि जो व्यक्ति अपने एकांतिक दुराग्रहो से किसी शास्त्र या ग्रन्थ की रचना करेगा तो उसमे १ वह प्रतिपक्ष का

खडन नहीं करेगा २ प्रतिपदा का खडन अवश्य करेगा। ये दोनों ही दृश्य श्वेताम्बर मान्य आगमो मे नहीं मिलेगे।

इसे आगम आचारागम आदि में दिगम्बर अर्थात् साधु के वस्त्र सहित रहने का कहीं भी खडन या निषेध नहीं मिलेगा। इसके विपरीत इन आगमो मे अनेक जगह अचेल निर्वस्त्र रहने की प्रेरणा मिलती है या निर्वस्त्र रहना श्रेष्ट है ऐसा स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इससे कोई भी सामान्य सी बुद्धि या विवेक रखने वाला भी समझ सकता है कि ये श्वेताम्बर मान्य आगम दिगम्बर श्वेताम्बर रूप दो भेद होने पर दिगम्बरो के विरोध मे या श्वेताम्बर होने के आग्रह मे बने हुए नही है।

इन आगमो का अतरनिरीक्षण करने से यह स्पष्ट समझ मे आ सकता है ये आगम दिगम्बर से श्वेताम्बर बने साधुओ ने अपने दुराग्रह से नही बनाये है किन्तु दोनो प्रकार के धर्म मान्य स्यादवाद मय अवस्था मे बने हुए है, अर्थात् वीतराग प्ररूपित गणधर रचित ही ये आगम है इन श्वेताबर आगमो मे अचेल निर्वस्त्र रहने की बहुत प्रशसा की गई है उसके महान लाभ बताये गये है। इन आगमो मे सचेलकत्व और अचेलकत्व का खुलमखुला मिश्रित वर्णन है उसे देखने से यह सहज अनुमान होता है ये आगम निष्पक्ष अनाग्रह अवस्था मे बने है इसमे पक्ष विपक्ष के अवस्था की कोई किचित गध भी नही है। अत. दिगम्बर धर्म से श्वेताबर धर्म के आग्रह मे पडने वाले व्यक्ति ऐसे निष्पक्ष आगमो की रचना कदापि नही कर सकते, वे यह नही कह सकते कि "**अचेले लाघविय आगम माणे पसत्थे भवई**" अर्थात् निर्वस्त्र रहने से द्रव्य भाव से लघुता की उपलब्धि होती है अत निर्वस्त्र होना उत्तम है, श्रेष्ट है।

इस प्रकार विचारणा, समीक्षा, तुलना करने से यह सिद्ध होता है कि ये श्वेताम्बर आगम नये कल्पित बनाये हुए नही है अपितु पूर्व गणधर परपरा से प्राप्त आगम ही है अत· भगवती सूत्राक्त तथ्य सही है कि २१ हजार वर्ष तक आगम ज्ञान और जिन शासन चलेगा और एक हजार वर्ष तक पूर्व ज्ञान चला था। जबकि दिगबर तो वीर निर्वाण के थोडे समय बाद ही सपूर्ण आगम का विच्छेद हो जाना कह देते है।

दिगम्बर आगमो मे स्त्री मुक्ति का निषेध एव खडन मिलेगा। वस्त्र रखने का निषेध मिलेगा। वस्त्र से और स्त्रीत्व से मुक्ति नही हो सकती, सयम भी नही आ सकता, ऐसे आग्रह भरे तत्व मिलेगे। जिससे यह स्पष्ट समझ मे आ सकता है कि वास्तव मे उनके आगम ऐसे ही किन्ही दुराग्रह मे पडने से अपने दुराग्रह को पुष्ट करने के लक्ष्य से बनाये गये है।

(३) दिगम्बर साधुओ ने अपने आहार ग्रहण मे दिखाऊ अभिग्रह के ऐसे ढग

अपना रखे है और शुचि धर्मीपन के कायदे भी ऐसे पकड रखे है ज़िसमे उन्हे महान आरंभ, समारंभ, हिसा के प्रेरक, अनुमोदक बनना पडता है। ऐषणा समिति के मौलिक सैद्धान्तिक नियमो का तो उनके यहां खात्मा हो जाता है। इस प्रकार उनका आहार मय जीवन भगवदाज्ञा से, अहिसा सिद्धान्त से और प्रथम महाव्रत से कोषो दूर भाग जाता है एवं उनका वह आहार लोगदिखाऊ अनेक मन गडंत कष्टप्रद नियमो से संकलित हो गया है, जिससे कि भक्त लोग उस कष्टप्रद कठिनता के चक्कर से प्रभावित बने हुए मौलिक दोष एवं संयम समिति से विपरीत, सिद्धान्त से विपरीत एव भगवदाज्ञा से विपरीत, आचरण को समझ ही नही पाते कि ये हमारे साधु तीन करण तीन योग के अहिसा महाव्रत से कितने पतित हो रहे है? और हम भी अज्ञान एवं मौह दशा मे पडकर इन्हे कितना पतित करते जा रहे है।

वास्तव मे देखा जाय तो इन दिगम्बर साधुओ के लिये कही एक ही घर मे और कही ५-१० घरो मे अग्नि पानी वनस्पति का विविधिप्रकार से पाप किया जाता है तब कही जाकर किसी घर मे इनका खाना होता है। इन साधुओ के लिये ही कुए आदि से पानी लाना, आटा पीसना, सभी बर्तन उपकरण धोना, स्वतंत्र चूल्हा जलाना, दूध आदि सामान इनके लिये ही स्पेशल लाना, फ्रूट्स लाना, इनके लिये ही काटना, इनके नियमो के योग्य औरते ही वहां स्नानादि करके हाजिर रहना, मकान की जगह धोकर स्वच्छ रखना इत्यादि अनेक पाप रूप प्रवृति प्रक्रियाएं की जाती है। वैसी प्रक्रिया अनेको घरो मे करके तैयार रहना पडता है फिर इनके अभिग्रह के लिये ही चलाकर ग्रहस्थ लोग कई प्रकार के ढोग करते है, याने पानी से भरा कलश लावो, उसमे गुलाब का फूल डालो, श्रीफल लावो और न मालूम क्या क्या ढोग करे, जब इनका अभिग्रह पूर्ण होता है। ऐसे अभिग्रहो का करना और लोगो मे प्रचार करना और लोग उस अभिग्रह पूर्ति के लिये इतनी प्रवृतियां करे, यह कोई जिनाज्ञा नही है। अभिग्रह तो निर्वद्य हो और बिना किये स्वाभाविक ही वैसे संयोग मिले तभी भगवदाज्ञा रूप होते है।

इस प्रकार इनकी आहार विधि ऐषणा के आधाकर्मी उद्देशिक क्रीत अभिहड आदि अनेक दोषो का भंडार बनी हुई है। जबकि दशवैकालिक सूत्र मे बताया है कि ''अहो! मोक्ष के साधन भूत देह को धारण करने के लिए भगवान ने कैसी निर्वद्य पाप रहित आहार विधि बताई है।'' आहार करते समय भिक्षु को इस प्रकार से चितन मनन करना चाहिये। जबकि इसके ठीक विपरीत ही दिगम्बरो की आहार विधि बन चुकी है।

इस विकृति का कारण भी इनकी एकांतिक दुराग्रह वृत्ति ही है अर्थात् इन्होने

शुचिमूलकता का आग्रह और विशेष रूप से पकड लिया है और कई अनावश्यक मन गढंत नियम अभिग्रह कायम कर दिए है।

इन कारणो से दिगम्बरो की कष्टमय साधना भी सफलीभूत नही हो सकती। क्योकि अनेक सैद्धान्तिक दूषण उसमे घुस चुके है और वे दुराग्रह मे पड चुके है। इसीलिये उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा गया है कि—

कोई मास-मासखमण की विकट तपस्या करे, पारणे मे कण मात्र ही आहार करे, इतनी कष्टमय साधना करे फिर भी वह जिनोक्त धर्म रूप पूनम के सामने अमावश के बराबर भी नही है। अत केवल कठिनता ही कल्याण मार्ग नही बन सकती किन्तु उसके साथ सैद्धान्तिक सुरक्षा होना नीतांत आवश्यक है। साधु जीवन मे सैद्धान्तिक तत्व अहिंसा और एषणा समिति भी प्रमुख अंगो मे है। जिसका कि अत्यधिक विनाश इन दिगंबर संतो की आहार विधि मे होता है। अत इनके आहार सम्बन्धी कठिन नियम और शुचि धर्मीपन भगवदाज्ञा से बाहर है जबकि इन्हे तो उसी मे भगवदाज्ञा होने का भ्रम हो रहा है।

इन विचारणाओ से पाठक स्वय समझने का प्रयत्न करे कि दिगम्बर और श्वेतांबर धर्म मे प्राचीन और समीचीन (सत्य) धर्म कौन सा है ?

जिज्ञेश — यह दिगम्बर धर्म किसने और क्यो चलाया ?

ज्ञानचन्द —यो तो भगवान के शासन मे वस्त्र युक्त और वस्त्र रहित दोनो प्रकार के साधक होते ही थे। किन्तु एक बार एक श्रमण 'शिवभूति' को राजा की प्रसन्नता से एक रत्नकम्बल मिली। श्रमण का उसमे अत्यधिक मोह हो जाने पर उसे निवारण करने के लिये गुरू ने उस कंबल के अनेक टुकडे करके साधुओ को बांट दिये। यह हाल जब शिवभूति को ज्ञात हुआ तो उसकी अशांति भडक उठी, उसने स्पष्ट निर्णय सुना दिया कि ''वस्त्र है तभी आशक्ति है अत साधु को वस्त्र रखना ही नही।'' यो कह कर उसने सारे वस्त्र वही डालकर नग्न होकर चल दिया और एकांत नग्नत्व धर्म की प्ररूपणा प्रारम्भ करदी। उसकी बहिन साध्वी भी उस के पक्ष मे होकर नग्न रहने लगी किन्तु वह लम्बे समय तक निर्वस्त्र न रह सकी। इसी कारण उसने (शिवभूति ने) दो प्ररूपणा प्रारम्भ की १ वस्त्र सहित से मुक्ति नही २ स्त्री को संयम और मोक्ष नही मिल सकता। और जब आगमो से इन सिद्धान्तो का खंडन होने लगा, अपना आग्रह अप्रमाणिक होने लगा, तब इन शास्त्रो को ही खोटे कल्पित बताकर नये ही ग्रंथो की अपनी इच्छानुसार रचना करदी। इस प्रकार दिगम्बर धर्म का प्रचलन हुआ।

मूर्तिपूजक धर्म पंथ वार्ता—

जिज्ञेश — जैन धर्म मे मंदिर और मूर्तिपूजा कितना प्राचीन है? क्या तीर्थकरो के समय भी उनके मंदिर और उनकी पूजा की जाती थी?

ज्ञानचन्द —किसी भी व्यक्ति के माता पिता जीवित है और परस्पर बहुत प्रेम भक्ति है तो भी पुत्र पिता की मूर्ति बनाकर रोज उसकी पूजा नही करता। न ही उसका पिता उसे कहेगा कि रोज उठकर पहले मेरी मूर्ति की पूजा किया कर? वास्तव मे ऐसा सभव नही है। इसलिये भगवान की उपस्थिति मे तो उनका मंदिर और उनकी मूर्ति पूजा नही थी अर्थात् अमूर्तिपूजक धर्म ही तब था।

आगमो मे कोणिक की भगवान महावीर के प्रति अत्यधिक भक्ति का वर्णन है उसके कई संदेश वाहक थे जो भगवान की नित्य खबरे (समाचार) पहुंचाया करते थे। इस भक्ति वर्णन के साथ कही भी यह वर्णन नही है कि वह नित्य भगवान की मूर्ति की पूजा करता था। कोणिक का भगवान को घर बैठे वंदन का वर्णन भी है किन्तु वहां भी मूर्ति का नामोनिशान नही है। कोणिक की अपार राज्य ऋद्धि संपदा का विस्तृत वर्णन आगम मे है किन्तु कही भी यह वर्णन नही है कि उसके एक भी मंदिर था या उसने इतने सैकडो जिन मंदिर बनवाये।

उपासक दशा सूत्र मे दस श्रावको की विस्तृत गृह-संपदा का वर्णन है। श्रावक के अनेक गुणो कर्तव्यो क्रिया कलापो का वर्णन है, नियम व्रतो का वर्णन है, उसकी व्यक्ति गत पौषधशालाओ का वर्णन है, किन्तु कही भी उसमे मूर्ति पूजन का नियम लिया या मूर्ति पूजा रोज करता था या उसके इतने मंदिर पूर्वजो के थे और इतने मदिर उसने अपने जीवन मे बनाये या जीर्णोद्धार किया, इत्यादि रंच मात्र भी मंदिर मूर्ति से सम्बन्धित वर्णन नही है।

अन्य आगमो मे भी अनेक श्रावको और भगवान के उपासको का वर्णन है। उनमे भी कही भी तीर्थकरो की मूर्ति या मूर्ति पूजन का वर्णन नही है। किन्तु जब इन मंदिर मूर्त्तिपूजको को किसी भी आगम वर्णित श्रावक जीवन मे ऐसा वर्णन नही मिल पाता तब ये भोग का नियाणा की हुई और उस नियाणे से अभिभूत बनी मिथ्या दृष्टि द्रौपदी द्वारा शादी के प्रसंग से कामदेव की मूर्ति पूजा करने के पाठ को आगे करके संतोष करते है। किन्तु किसी संपत्तिशाली श्रावक के या जैनी राजा के मंदिर मूर्तियो का ढेर ये आगमो मे नही बता सकते।

भगवान के या गौतम स्वामी के उपदेशो से इतने गावो मे इतने जैन मंदिर बने, इतने जीर्णोद्धार हुए, ऐसी एक लकीर भी आगमो मे जब इन्हे नही मिल सकती, तो ये बिचारे मूर्तिपूजक लोग शास्वत स्थानो पर्वतो और देवलोक के

वर्णन को आगे करके संतोष करते है। जबकि शास्वत मूर्तिया किसी व्यक्ति विशेष की तो हो ही नही सकती क्योकि व्यक्ति तो अशास्वत है और वे मूर्तिया शास्वत है व्यक्ति की मूर्ति कभी भी बनाई जाती है और शास्वत स्थानो की मूर्तिया किसी की बनाई हुई नही है। जब वे शास्वत मूर्तिया किसी ने बनाई नही, किसी भी व्यक्ति की नही, तब तीर्थकर की मूर्ति तो वे है ही नही। जब तीर्थकर की मूर्ति नही है तो उसके और उसकी पूजा के होने से जैन धर्म का कोई सम्बन्ध ही नही हो सकता है और जब तीर्थकर और जैन धर्म से उसका सम्बन्ध नही हो सकता तो वहा तीर्थकरो के गुण वाले णमोत्थुणं के पाठ का क्या लेना देना? अर्थात् उन शास्वत अनादि मूर्तियो का तीर्थकर और तीर्थकर धर्म एव णमोत्थुण से कोई सम्बन्ध नही हो सकता। अत उन मूर्तियो का जन्म समय मे पूजन करना देवो का अपना जीताचार- लौकिक कृत्य ही है। उस लौकिक कृत्य मे वे देव उन शास्वत मूर्तियो के अलावा देवलोक के सभी स्थानो, दिवालो, दरवाजो बावडियो आदि की भी पूजन विधि करते है। चाहे सम्यग् दृष्टि हो या मिथ्यादृष्टि। लौकिक कृत्य करने मे वे स्वतंत्र होते है। जब तक कि वे लोक व्यवहार मे रहते है। **यथा—**

अरणक श्रावक की धर्म श्रद्धा को देव भी विचलित नही कर सका था फिर भी लौकिक कृत्य के स्थान पर उस अरणक श्रावक ने भी यात्रा के पूर्व अपने जहाज की पूजन विधि की थी, ऐसा ज्ञाता सूत्र मे वर्णन है।

इस प्रकार आगमो मे श्रावको के ढेर सारे वर्णनो मे कही भी मंदिर बनवाना और तीर्थकर की मूर्ति की पूजा करना आदि वर्णन नही मिलने पर इन मूर्तिपूजको को मिथ्यादृष्टी द्रौपदी और देवो के जीताचार का पाठ ही हाथ लगता है मानो फिर क्या चाहिये—

मिल गया चाबुक का तोडा, घटे फिर लगाम और घोडा

मूर्तिपूजाधर्म जैन सिद्धान्तो से विपरीत धर्म है। इसमे अनावश्यक हिसाकृत्यो की धर्म के नाम से प्रेरणा मिलती है। पर्यूषण सरीखे और संवत्सरी सरीखे, महान धार्मिक, अहिसक, पर्व दिनो मे भी हजारो लाखो फूलो से अनंत जीवो की घात व्यर्थ ही धर्म के नाम से होती है। सैकडो हजारो बल्ब दीपक जलाकर अग्नि काय की एवं मच्छरो की पतंगो की हिसा की जाती है। हजारो लाखो घडे पानी ढोलकर भी धर्म माना जाता है। साथ ही नाचना बजाना गाना इन्द्रियो के पोषण और जीव जन्तुओ का घमासान करके धर्म माना जाता है। फिर भी वहा पर अहिसा परमोधर्म की जय बोली जाती है।

मूर्तिपूजक साधु भी उस पाप कार्य के प्रेरक एव अनुमोदक होते ही है, तब सोचे कि उनका तीन चरण तीन योग का पहला महाव्रत भी कैसे रह सकता है?

ये लोग अतिशयोक्ति करने लिखने मे भी ऐसे बेभान हो जाते है और ऐसा भी कह देते है कि—

''एक मंदिर बनाने वाला या एक मंदिर की नीव मे ईट डालने वाला या अमुक पर्वत पर चढने वाला एक भव करके ही मोक्ष मे चला जाता है।''

ऐसी प्ररूपणा करने वालो से पूछा जाय कि इतना सस्ता मोक्ष मिलता है और पैसो के बल से ही मोक्ष मिल सकता है, तो राजा महाराजा लोग और आप लोग इतना कष्ट साध्य संयम क्यो लेते है? राजा लोग तो मंदिर बना कर मोक्ष चले जाय और गरीब लोग एक ईट मंदिर के नीव मे डाल कर मोक्ष चले जाय फिर इतने क्रियाकाडो एव नियमो, व्रतो की एवं उस निमित्तक होने वाले कष्टो की जरूरत क्या रहेगी? किन्तु ऐसा संभव नही है यह तो केवल भोले लोगो को भ्रमित करने की खोटी प्ररूपणा मात्र है। गधे का पूंछडा पकड लिया तो अब करना क्या? कुछ न कुछ उटपटांग बाते जमाकर ही संतोष करना पडता है।

सार यह है कि आचारांग सूत्र के प्रथम अध्ययन मे यह स्पष्ट कह दिया गया है कि इस संसार मे कई लोग धर्म और मोक्ष के लिये भी छ काया के जीवो की हिसा करते रहते है किन्तु वह हिसा उनके लिये अहितकारक होती है और बोधि प्राप्ति की दुर्लभता के लिये होती है अर्थात् किसी प्रकार से किसी भी उद्देश्य से की गई हिसा अहित कारक तो होती है परन्तु धर्म और मोक्ष होने की बुद्धि से जो हिसा की प्रवृतियो की वृद्धि करते है उन्हे भविष्य मे धर्म की प्राप्ति होना भी दुर्लभ होता है। ऐसा कथन अनेक बार अलग अलग प्रसगो से आचारांग सूत्र के एक ही अध्ययन मे किया गया है।

इस प्रकार जैन धर्म मे मंदिर और मूर्ति पूजा का धर्म प्राचीन आगम कालीन या आगम सम्मत नही है, किन्तु आगम विरूद्ध, धर्म विरूद्ध और संयम विरूद्ध तथा अहिसा सिद्धांत के विरूद्ध है, साथ ही साधुओ के अहिसा माहव्रत का नाशक है।

जिज्ञेश — उपाश्रय या स्थानक बनाने मे भी पाप तो होता ही है साधुओ के गमनागमन आदि क्रियाओ मे भी पाप तो होता ही है?

ज्ञानचन्द — उपाश्रय और स्थानक बनाने मे होने वाले पाप को पाप ही समझा जाता है उससे मोक्ष होना नही कहा जाता। और उपाश्रय का वर्णन तो आगमोक्त श्रावको के जीवन के साथ आगमो मे भी लगा हुआ है वे आदर्श श्रावक अपनी पौषधशाला मे जाकर पौषध किया करते थे। अनेक श्रावको के व्यक्तिगत पौषधशाला का वर्णन शास्त्रोक्त है। यह तो उनके अपने मकान के समान रहने का आवश्यक अंग माना गया है। किन्तु उन आदर्श श्रावको के पौषध या धर्म करने का मंदिर था और

वहा जाकर वे पूजा करते इत्यादि वर्णन किसी भी शास्त्र मे नही है। अत पौषधशाला कहो या उपाश्रय अथवा स्थानक सभी एकार्थक पर्याय शब्द है। मदिर से इसकी तुलना करना कोई भी महत्व नहीं रख सकता।

साधुओ की गमनागमन आदि क्रिया भी जब तक जीवन है तब तक ये उसकी आवश्यक क्रियाए है। इसका आगम मे एकात निषेध नही है अपितु पाप कर्मो का बंध नही करता है ऐसा स्पष्टीकरण दशवैकालिक सूत्र मे किया गया है। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि गमनागमन आदि क्रियाए साधु को यतना पूर्वक करना भगवदाज्ञा मे है। उनकी अत्यावश्यक और अत्यल्प वायुकायिक हिसा को मूर्ति पूजा के और मंदिर के अनावश्यक पाप के समकक्ष जोडना समझदारी नही है। किन्तु बुद्धि का दिवाला निकालने के समान है।

इस प्रकार आगमो से और सिद्धान्तो से मूर्तिपूजा और मंदिर धर्म की सत्यता और प्राचीनता सिद्ध नही हो सकती है। ऐसी स्थिति मे अपने अभिनिवेष को पुष्ट करने के लिये कई कल्पित कथाएं जोडी जाने लगी, इतिहास के बहाने से अनघड मनगडंत मंदिर और मूर्तियो को जोड-जोड कर लिखना शुरु किया गया। उस जोडने मे सत्य महाव्रत का भी दिलावा निकालना पडा अर्थात् जिन श्रेणिक राजा आदि कई व्यक्तियो के शास्त्र वर्णन मे उनके जीवन के साथ मदिर मूर्ति का नामोनिशान भी नही है, वहा अनगिनत मंदिर मूर्तिए जोड दी गई है। कई खोटे शिलालेख बनाने के पाप भी करने पडे और उन्हे गाड गाड कर कही से खुदाई मे निकलना बताकर अपने मन को झूठे इतिहासो से ही संतुष्ट करने लगे।

जिज्ञेश — ऐसा खोटा जैन धर्म कब चला किसने चलाया ?

ज्ञानघन्द — उपरोक्त दिगम्बर धर्म के समान किसी व्यक्ति ने किसी आग्रह से यह धर्म नही चलाया है। कितु धीरे धीरे देखा देखी गडरिया प्रवाह से विकृति मे अंकुरित होकर वृद्धि को पाया हुआ यह ढर्रा है। फिर व्यापक बन कर साधु साध्वियो मे और श्रावक श्राविकाओ मे व्याप्त हो गया है।

जिज्ञेश — खोटा होते हुए भी इतना अधिक व्यापक कैसे बन गया है ?

ज्ञानघन्द — इन मंदिर मार्गियो ने इधर उधर से जोड मोड कर एक कल्प सूत्र बनाया है उसमे एक जगह लिखा है कि भगवान के निर्वाण पधारते समय उनके भस्मग्रह का संयोग था जिसके कारण भगवान का शासन २००० वर्ष तक अत्यधिक अवनति पर चलेगा फिर पुन उन्नति होगी। इसी कारण इनके खुद के शास्त्र से ही ये लोग खोटे अवनत धर्म के भागी बने है बराबर जब २००० वर्ष भगवान के शासन के बीते तभी

स्थानकवासी धर्म रूप जैन धर्म का पुनरुत्थान हुआ। अत उक्त सारा दर्रा उस भस्मग्रह के प्रताप से हुआ ऐसा उन्ही मंदिर मार्गी लोगो के उस कल्प सूत्र से सिद्ध होता है इसी भस्मग्रह के प्रभाव के कारण यदि मध्यकाल मे कोई प्रतिपक्षी विचारो के साधु होते भी सही किन्तु उनकी ज्यादा चलती नही। वे उस समय भी मंदिर के कार्य को पापकारी समझते थे।

जिज्ञेश — ऐसा कोई उदाहरण है कि स्थानकवासियो के लोकाशाह के पूर्व भी कोई साधु मंदिर मूर्ति धर्म को नही चाहते थे?

ज्ञानचन्द — इन मंदिर मार्गी लोगो ने जो ४५ आगम मान रखे है उसमे विचित्र उटपटाग तत्वो से भरा एक शास्त्र है उसका नाम है ''महानिशीथ सूत्र'' जिसका कुछ दिग्दर्शन आगे पृष्ठ २२ मे एक संकलन निबंध के रूप मे दिया जायेगा। इस महानिशीथ सूत्र के पांचवे अध्ययन के १२९वे सूत्र मे इस प्रकार कथन है—

एक समय आचार्य कुवलयप्रभ विहार करते हुए चैत्यवासियो मंदिर वासियो के क्षेत्र मे पहुचे। मंदिर वासियो ने वंदन कर सत्कार कर ठहराया। एवं यथासमय निवेदन किया कि ''आप यही वर्षावास करे, आपके उपदेश से सुंदर चैत्य मंदिर बन जायेगा और बहुत लाभ होगा।'' तब उन आचार्य ने इस प्रकार जवाब दिया कि ''हे प्रियवंद्! यद्यपि जिन मंदिर का काम है फिर भी यह पापकारी कृत्य है, अत मै इसके लिये एक शब्द भी नही बोल सकता। इस प्रकार यथा योग्य सार पूर्ण सिद्धातिक वचन निडरतापूर्वक उन मिथ्यादृष्टि कुलिगी, साधु के लिग मात्र के वेष को धारण करने वाले साधुओ के सामने कहा। ऐसा हिम्मत के साथ सत्य सिद्धांत कहने के कारण उन आचार्य कुवलप्रभ ने उस समय के उन शुद्ध श्रेष्ठ परिणामो से तीर्थंकर नाम कर्म का बंध कर लिया और संसार को परित्त कर एकाभवावतारी बन गये अर्थात् एक भव देव का और एक भव मनुष्य का करके वे कुवलयप्रभ आचार्य मोक्षगामी बन जायेगे।'' इस पिछले अंश का मूल पाठ इस प्रकार है—

''ताहे भणिय तेण महाणुभागेण गोयमा, जहा भो भो पियवए! जइ वि जिणालये, तहा वि सावज्जमिण, णाह वायामित्तेण एवं आयरिज्जा, एय व समय-सारयर तत्त जहाट्ठिय, अविविरीय, णीस्सक भणमाणेणं तेसिं मिच्छदिट्ठी कुलिंगीण साहुवेसधारीण मज्झे गोयमा! आसंकलिय तित्थयर नाम-कम्म-गोयं तेण कुवलयपभेण आयरिएण, एगभवावसेसीकओ भवोयहि।''

महानिशीथ सूत्र अध्ययन ५ सूत्र १२९

यह सूत्र हरिभद्र सूरी के समकाल मे बना होगा क्योकि इस सूत्र के अंदर हरिभद्रसूरि का नामोल्लेख भी है। इस सूत्र को मदिर मार्गी अपना आगम मानते है स्थानकवासी अपने ३२ आगम मे इस सूत्र को नही मानते है। अत मंदिर मार्गियो का यह व्यक्तिगत मान्य सूत्र है जो स्थानकवासियो के लोकाशाह के सैकडो वर्ष पहले ही बन गया था। जब मदिर मार्गी धर्म भस्मग्रह के कारण व्यापक बना हुआ था तब भी ऐसे शास्त्र के पाठ बने है और ऐसे निर्भीक बोलने वाले आचार्य भी हुए है। जिनकी ये मदिर मार्गी आचार्य ही अपने सूत्र मे प्रशसा, गुण कीर्तन कर के उन्हे तीर्थंकर गौत्र बध कराकर एक भव मे मोक्ष जाना बता देते है। इसी कारण उपर यह कथन किया कि ''देखादेखी गडरिया प्रवाह से अंकुरित होकर वृद्धि पाया हुआ यह ढर्रा रूप मंदिर मार्गी धर्म है।''

इस महानिशीथ सूत्र मे एक महत्वपूर्ण बात और है यथा—

प्रश्न —हे भगवन्! कुगुरू कब होगे?

उत्तर — साढे बारह सौ वर्ष बीतने पर कुगुरू प्रगट होगे।

इस प्रश्नोत्तर मे भगवान ने यह बताया था कि मेरे शासन के १२५० वर्ष बीतने पर इस शासन मे कुगुरू खोटे साधु पैदा होगे अर्थात् वे खोटा धर्म और खोटा आचरण चलायेगे।

अब पाठक सोचे कि स्थानकवासी और वीर लोकाशाह तो वीर निर्वाण के २००० हजार वर्ष बीतने पर हुए है अत कुगुरू और उनका कुधर्म तो पहले ही प्रगट हो गया था।

कल्प सूत्र के अनुसार भस्मग्रह के प्रभाव से अवनति वाला धर्म तो इस मदिरमार्गी धर्म को ही कहा गया है और २००० वर्ष बाद भस्मग्रह हटने पर उन्नत धर्म होना जो बताया है उस समय ही स्थानकवासी धर्म प्रकटा है। अर्थात् मदिरमार्गियो के व्यक्तिगत इन दो शास्त्रो (कल्पसूत्र और महानिशीथ सूत्र) से ही इनका धर्म खोटा और जिन धर्म की अवनति वाला सिद्ध हो गया है और इनके साधु ही कुगूरू की सज्ञा से उपलक्षित किये गये है इनके ही इन शास्त्रो मे।

अत बहुमत या व्यापकता के चक्कर मे नही आकर गहरे आगम अनुभव से धर्म का मूल्यांकन करना चाहिये।

मंदिर मार्गियो के इन दो सूत्रो के अतिरिक्त और भी ऐसे ग्रन्थ है जिसमे ऐसी अनेक शिक्षा की और महत्व की बाते कही गई है यथा– धर्मदासगणि की **''उपदेशमाला''** एवं हरिभद्रसूरि के कई ग्रन्थ, इत्यादि।

जिज्ञेश — ''चेत्य'' शब्द तो शास्त्र मे कई जगह आता है उसका अर्थ तो मूर्ति मंदिर ही होता है न?

ज्ञानचन्द — एक शब्द के अनेक अर्थ भी होते है यथा– ''सेधव'' का अर्थ घोडा भी होता है और नमक भी। इसी प्रकार चैत्य शब्द के भी सौ से अधिक अर्थ कोषो मे बताये गये है और जैनागमो मे भी अनेक अर्थो मे चैत्य शब्द प्रयुक्त है। यथा— सभी तीर्थकरो के चैत्यवृक्ष कहे गये है वे ज्ञान उत्पति होने के वृक्ष है। जब तीर्थकरो को तिक्खुतो के पाठ से वंदन किया गया है वहां गुणग्राम करते हुए कहा गया कि आप चैत्यवान है अर्थात् ज्ञानवान या संयमवान है यह ज्ञान अथवा संयत अर्थ मे चैत्य शब्द का प्रयोग हुआ है, कही बगीचे के लिए भी शास्त्र मे चैत्य शब्द आया है। उपासकदशा मे तीर्थकरो के साधुओ के लिये चैत्य शब्द का उपयोग हुआ है। वहां कहा गया है कि आनंद श्रावक प्रतिज्ञा करता है कि अन्य तीर्थियो के धर्म को अंगीकार कर लेने वाले भूतपूर्व जैन साधुओ को भी मै आदर सत्कार वदन नमस्कार नही करूंगा उनके साथ आलाप सलाप वार्तालाप भी नही करूंगा। इस प्रकार ''चैत्य शब्द'' अनेक अर्थो मे आगमो मे प्रयुक्त हुआ है और अनेक जगह स्वार्थवश ढर्रे धर्म वालो ने कुछ कुछ प्रक्षिप्त करके भी चैत्य शब्द वाले पाठो को विकृत बना दिया है। पुरानी प्रतियो से मिलान करने पर कई जगह उनके वैसे कुकृत्यो का भंडाफोड भी हो जाता है। फिर भी ये लोग बडी शान के साथ यही घोष करते है कि शास्त्र मे एक अक्षर भी घटाना बढाना महापाप और अनंत संसार बढाने वाला है। किन्तु यह घोष केवल दूसरो को शिक्षा देने के लिये है। वह भी इसलिये कि उनके विकृत किये हुए उन पाठो को कोई सुधार न दे अर्थात् जैसा भी शास्त्र पाठ है वैसा रहने दो उसका एक अक्षर भी हीनाधिक मत करो। यह मानो चोरो का सच्चा बनने का और अपनी चोरी को सुरक्षित रखने का अच्छा उपाय है कि चोरी को महान अपराध कहते जाना, चोरी नही करने का उपदेश भी देते जाना और खुद यथेच्छ चोरियां करते जाना।

जिज्ञेश — राजप्रश्नीय सूत्र के सूर्याभ वर्णन मे देवलोक मे भगवान महावीर और ऋषभदेव की मूर्तिया है न?

ज्ञानचन्द — यह भी उक्त चोरियो के कर्तव्य का एक ज्वलंत प्रमाण है। उपर बताया जा चुका है कि देवलोक की मूर्तिया अनादि है कभी किसी के द्वारा बनाई हुई नही होती है और वह किसी भी व्यक्ति या तीर्थकर की नही हो सकती। ऋषभ और महावीर तो अब हुए है जबकि देवलोक और वहां की मूर्तिया तो अनता अनत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालचक्र

से शास्वत बनी हुई है उसमे भगवान महावीर और ऋषभ कैसे प्रविष्ट हो सकते है। वास्तव मे यह मूर्खो को उल्लू बनाने वाली बात है।

राजप्रश्नीय सूत्र मे १०८ मूर्तियो का वर्णन है वहा उनका कोई नाम नही कहा गया है। किंतु वही पर एक स्तूप के चौतरफ भी चार मूर्तियो का जो प्रश्नगत पाठ है वह ऐसी उक्त चोरियो के प्रताप का है और उसी मे वर्तमान चार तीर्थकरो के नाम घुसाये गये है। इस बात का स्पष्टीकरण रायप्पसेणीय सूत्र के सारांश पुष्प २० के शिक्षा एवं ज्ञातव्य विभाग मे क्रमांक नं १३ पृष्ठ ४० मे किया गया है।

जिज्ञेश — देवलोक के इन मूर्तियो के स्थान को जिनालय क्यो कहा गया है?

ज्ञानचन्द — जिस तरह चैत्य शब्द के विविध अर्थ होते है वैसे ही जिन शब्द के भी अनेक अर्थ होते है जिससे जिन शब्द मे अनेक जाति के देवताओ का भी ग्रहण हो जाता है।

प्रमुख बात तो समझने की यह है कि इन शास्वत स्थानो को जिनालय कहो या सिद्धायतन कहो ये किसी भी विशिष्ट व्यक्ति के नही होते, या कभी किसी के द्वारा बनाये नही जाते, अत इन्हे किसी भी संसार से मुक्तिगामी तीर्थकर आदि से जोडना तो अज्ञानता का ही सूचक है।

जिज्ञेश — ''जिन'' के अनेक अर्थ है किन्तु ''सिद्ध'' के तो अनेक अर्थ नही किए जा सकते। तो उन अनेक शास्वत स्थानो मे सिद्धायतनो का वर्णन क्यो आता है? **यथा**— देवलोको मे, पर्वतो पर, कूंटो पर एव तिर्छालोक मे अनेक जगह।

ज्ञानचन्द — जो सम्पूर्ण कर्म क्षय कर के मुक्त हो गये है, उन्हे सिद्ध कहते है। ऐसे सभी सिद्ध सादि अनंत होते है। प्रत्येक सिद्ध की आदि होती है। जबकि सिद्धायतनो मे वर्णित मूर्तिया तो अनादि है। अत॰ वे किसी भी सिद्ध होने वाले व्यक्ति की नही है यह निश्चित है।

अत. शास्वत स्थानोमे मूर्ति या सिद्धायतन का होना भी असंगत है। अर्थात् शास्वत स्थानो मे किसी भी व्यक्ति की मूर्ति और उसका मंदिर तो हो ही नही सकता। क्योकि कोई भी प्रसिद्ध व्यक्ति अनादि नही होता है। जबकि मूर्तिया और सिद्धायतन अनादि है। अत बिना व्यक्ति की मूर्ति और सिद्धायतन कुछ भी अर्थ नही रखता है वह तो आकाश कुसुमवत ही होता है।

वास्तव मे शास्वत स्थानो और सिद्धायतनो का आपसी कोई तालमेल ही नही जमता। अत. ये सारे सिद्धायतन और उनका दिखावा, आडंबर, पूजा आदि वर्णन कभी भी मध्य काल मे सूत्रो मे प्रक्षिप्त किये गये है। विशेष

ज्ञान हेतु देखे पुष्प २७ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र का सारांश परिशिष्ट १ ?

मुखवस्त्रिका वार्ता—

जिज्ञेश — मुखवस्त्रिका को बाधना और हाथ मे रखना इस विषय मे आगम आशय क्या है एव वास्तव मे प्राचीन पद्धति क्या थी ?

ज्ञानचन्द — इस विषय का वर्णन पुष्प १२ छेद सूत्र परिशिष्ट खंड २ मे कर दिया गया है। विस्तृत जानकारी उसके अध्ययन से प्राप्त करनी चाहिये। मुख्य तत्व ये है—

(१) खुले मुंह बोलना, मुखवस्त्रिका से मुख को ढके बिना बोलना, सावद्य भाषा है। इस प्रकार बोलना किसी भी साधु साध्वी को नही कल्पता है। इस तत्व मे मंदिरमार्गी और स्थानकवासी एक मत है।

(२) मुखवस्त्रिका यह साधु का आवश्यक उपकरण है इसका प्रयोजन जीव रक्षा का प्रमुख है और मुनि लिग का भी इसे आवश्यक अंग गिना गया है। अचेल वस्त्र रहित रहने वाले साधुओ के भी मुखवस्त्रिका और रजोहरण आवश्यक कहे गये है।

मुखवस्त्रिका बांधने वाले साधुओ के मुखवस्त्रिका मुनिलिग के रूप मे स्पष्ट उपयोग मे आती है और मुनिलिग रूप मे दिखती भी है।

किन्तु मुख पर नही बांध कर हाथ मे रखने वालो के वह रूमाल रूप मे दिखती है या चोलपट्टक मे लटका दी जाने से कई बार दिखती भी नही है और अनेको बार तो साधुओ को खोजने पर भी अपने पास मुहपत्ति नही मिलती है तब वे चद्दर के पल्ले को मुखवस्त्रिका बना लेते है और मंदिर मार्गियो की साध्विया भी अधिकतर चद्दर के पल्ले को ही मुखवस्त्रिका के स्थान पर मुख के सामने करके बोलती है यह स्पष्ट ही मुनिलिग की उपेक्षा का कर्तव्य मुखवस्त्रिका मुंह पर नही बांधने से हो रहा है।

(३) जीव रक्षा का और खुल्ले मुंह नही बोलने का जो भगवती सूत्र का सर्वमान्य एक मत सिद्धांत है उसका पालन भी मुखवस्त्रिका हाथ मे रखने से नही हो सकता है। प्रमाण के लिये यह सत्य बात है कि आज ८००० करीब मुख पर मुहपति नही बांध कर हाथ मे रखने वाले साधु साध्वी है, इनमे से एक भी ऐसा उदाहरण रूप साधु या साध्वी नही है कि जिसने पूरे दीक्षा काल मे कभी भी खुले मुंह नही बोला हो और भगवती के उस सर्वमान्य सिद्धांत का उल्लंघन नही किया हो। बस यह रिजल्ट ही शाक्षीदार है कि मुखवस्त्रिका मुंह पर बांधने से ही सिद्धांत की सही रक्षा संभव है। अत. मुखवस्त्रिका को मुह पर बाधना यही आगम सम्मत एवं आगम आज्ञा पोषक पद्धति है। और हाथ मे रखना आगम आज्ञा भंजक प्रवृत्ति है यह उक्त रिजल्ट से स्वत सिद्ध है।

आज भी सेकडो मंदिर मार्गी साधु और कई आचार्य "**खुले मुंह नही बोलना**" इसे स्वीकार करते है और इसका पालन नही हो सकने को अपनी कमजोरी स्वीकार करते है। फिर भी कई ढीठ तर्कबाज लोग यह भी कह देते है कि खुल्ले मुह बोल गये इसमे पाप हो गया तो दिन भर खुल्ले नाक से श्वांस ले रहे है न उसे कैसे रोकेगे?

यह केवल कुतर्क है क्योकि विषय है खुले मुंह नही बोलने का जिसे कि प्राचीन मदिरमार्गी आचार्य अनेक ग्रन्थो मे स्वीकार करते है और आज भी प्रत्यक्ष सेकडो साधु स्वीकार करते है।

(४) मुखवस्त्रिका बाधने से समुर्च्छिम जीवो की हिसा का कथन भी असंगत है। क्योकि ये मदिर मार्गी लोग थूक और पसीने मे समुर्च्छिम जीव की उत्पति होना अपने मन से ही मानते है। फिर भी उनसे जब यह पूछा जाता है कि ४-५ घटे के गर्मी के विहार मे तुम्हारे शरीर के पसीने से चद्दर चोलपट्टे आदि वस्त्र तरबतर हो जाते है उनमे उन पाच घटो तक समुर्च्छिम जीव पैदा नही होते? उत्तर मे ये कहते है कि वे वस्त्र शरीर पर रहने के कारण शरीर की उष्मा मे संलग्न रहते है इस कारण शरीर पर से हटाकर जब अलग रखेगे, उसके एक मुहूर्त बाद ही समुर्च्छिम जीव उत्पन्न हो सकते है, किन्तु शरीर पर रहते हुए नही होते। इस पर उनसे कहा गया कि देखिये हमारी मुहपति तो तुम्हारे चद्दर चोलपट्टे आदि वस्त्रो की अपेक्षा भी शरीर के ज्यादा निकट रहती है तो इसके लगने वाले थूक मे शरीर की उष्मा के कारण जीव उत्पति होगी क्या? तो उत्तर मिलता है कि नही खोलकर रखने पर समुर्च्छिम जीव उत्पन्न होगे एक मुहूर्त के बाद। तब उन्हे समझाया जाता है कि हमारे मुहपति बाधने से आगम सिद्धांत का पालन भी हो जाता है कि खुले मुंह नही बोलना और समुर्च्छिम जीव भी पैदा नही हुए। क्योकि मुंह पर ही तो बंधी रहती है। शरीर की उष्मा से चद्दर चोलपट्टे के पसीने मे जीवोत्पति नही होना मानने से यह भी मानना अति आवश्यक हो गया। किन्तु हाथ मे रखने मे समुर्च्छिम जीवो के उत्पन्न होने का भय भी निरर्थक ही रहा और बेधडक खुले मुंह बोलते जाने से जिनाज्ञा का भंग होना भी स्पष्ट स्वीकार करना पडा। अत आप मुंहपति नही बांधकर नुकशान मे ही तो रहे, फायदा तो कुछ भी नही हुआ। उल्टा बार बार हाथ को ऊंचा नीचा करके कष्ट देना हुआ। जिसमे हाथ हिलाने की व्यर्थ की अयतना बढी और खुले मुंह नही बोलने की यतना भी पूरी नही हुई।

(५) इसका मुखवस्त्रिका या मुहपति यह नाम ही स्पष्ट कह रहा है कि मुख पर रहने वाला वस्त्र।

(६) यद्यपि मुखवस्त्रिका हाथ मे रखना या मुह पर बांधना ऐसा एक भी स्पष्ट उल्लेख किसी भी आगम मे नही है फिर भी इस लिग के उपकरण के उपयोग की प्राचीन पद्धति मुह पर बांधने की ही थी यह प्राचीन प्रमाणो से सिद्ध है और शास्त्राज्ञा पालन के रिजल्ट से भी सिद्ध है। शास्त्राज्ञा पालन के रिजल्ट से सिद्ध होना तो उपर बताया जा चुका है। अब प्राचीन प्रमाणो से सिद्ध होना इस प्रकार है—

१ आवश्यक सूत्र पर हरिभद्रसूरि की २२ हजार श्लोक प्रमाण टीका है उसमे लिखा है कि **"लिग वास्ते मृत साधु के नई मुहपत्ति मुख पर बाधना"** पाठक सोचे कि मरा हुआ साधु तो न बोलता है न मुंह खोलता है न श्वांस लेता है फिर भी मुखवस्त्रिका बाधना मदिरमार्गी धुरंधर आचार्य हरिभद्रसूरि ने कहा है।

२ योग शास्त्र पृ २६० मे लिखा है कि मुख की उष्ण हवा से वायुकाय जीवो की विराधना होती है उसकी रक्षा के वास्ते मुहपति है। यह महान आचार्य श्री हेमचन्द्राचार्य का बनाया ग्रन्थ है।

३ एशिया टक सोसायटी कलकत्ता के नेता मिस्टर हर्नल साहिब उपासकदशा सूत्र की अग्रेजी टीका करते हुए गौतम स्वामी की मुखवस्त्रिका के वर्णन पर ऐसा लिखते है—

A small piece of cloth suspended over the mouth to protect against entrance of any living thing

हिन्दी अनुवाद— एक छोटा सा कपडे का टुकडा जो मुह पर लटकाया जाता था कोई सचित (सजीव) वस्तु मुंह मे प्रवेश न कर सके, इस रक्षा के वास्ते।

४ मंदिरमार्गी देव सूरी जी अपने समाचारी प्रकरण ग्रंथ मे लिखते है—

मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य मुखे बध्वा प्रतिलेखयति रजोहरणं।

अर्थ— मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना करके मुह पर बांध कर फिर रजोहरण की प्रतिलेखना करे।

५ मंदिरमार्गी विजयसेनसूरी अपनी ''हित शिक्षा शास्त्र'' पृ ३८ पर लिखते है —

मुख बाधे ते मुखपति, हेठे पाटो धार।
अति हेठे दाढी थई, जोतर गले निवार(१)
''एक काने'' ध्वज सम कही, खाधे पछेवडी धार।
केडे खोसी कोथली, न आवे पुण्य के काम(२)

इसका सार यही है कि मुहपति मुंह पर ही बांधनी चाहिये बाकी तो सभी विविध दूषित प्रकार है उसमे कोई पुण्य अर्थात् धर्म नही है।

६ मदिरमार्गी आचार्य श्री लब्धिविजयजी ''हरीबलमच्छी के रास'' पृ ७ लिखते है कि—

सुलभ वोधि जीवडा, माडे निज षट कर्म
साधु जन मुख मुहपत्ति बाधी कहे जिन धर्म(१)

यहा पर भी मुह पर मुहपत्ति बांधकर जिन धर्म का कथन करने वालो को कहा है।

७ ''साधुविधि-प्रकाश'' ''**साधु प्रतिलेखना करते समय मुहपत्ति बाध ले**''

८ मंदिर मार्गी प्रमसूरि कृत ''यतिदिनचर्या सटीक'' मे कहा है कि साधु शौ को जाते समय भी मुहपत्ति बाधले।

९. हेमचन्द्राचार्य कृत ''योग शास्त्र'' की वृति मे कहा है कि पढने के समय प्रश्न आदि पूछने के समय मुहपति बाधकर प्रश्नादि पूछे या पढावे।

१०. मदिर मार्गी द्वारा बनाये गये ''शतपदी'' ग्रन्थ मे कहा है उपदेश देते भी साधु मुहपति को मुह पर बांधे।

११ ''आचार दिनकर'' मदिर मार्गियो के बनाये ग्रन्थ मे लिखा है कि मका प्रमार्जन करते समय और वाचना आदि कार्यो मे भी मुंह पर मुहपति बांधे।

१२ मदिरमार्गी आचार्यो के बनाये वृहत्कल्प भाष्य मे कहा है कि गणधर मह भी व्याख्यान वाचते समय मुहपति बाधते थे।

१३. मदिर मार्गियो के द्वारा बनाई निशीथ चूर्णी मे लिखा है कि किसी के वार्तालाप भी करे तो मुहपत्ति बाध लेनी चाहिए।

१४ प्रतिक्रमण करते समय मुंहपति बाधना तो कई मंदिरमार्गी आचार प्रतिक्रमण के विविध ग्रन्थो के प्रारम्भ मे ही लिखा है।

१५ मंदिर मार्गियो के द्वारा बनाये ''प्रवचन सारोद्धार'' ग्रन्थ मे लिखा मुहपति सपातिम जीवो की रक्षा के लिये है।

(सपातिम जीवो की रक्षा मुह पर बांधने से ही हो सकती है हाथ मे रख या कमर मे लटकाने से नही हो सकती।)

१६ मदिर मार्गी बुद्धिविजय जी ने अपने वृद्ध संतो से प्रश्न किया कि समय पर यो मुंहपति बाधते क्यो है? तब वृद्ध संत ने उत्तर दिया कि मे मुंहपति बाधनी कही है और परंपरा से बांधते चले आये है अतएव ह वाधते है।

१७. शिव पुराण मे अध्याय २१ श्लोक २४ मे जैन साधु का परिचय इस लिखा है—

हस्ते पात्र दधानाश्च, तुण्डे (मुखे) वस्त्रस्य धारका।
मलिना न्येव वासासि, धारयति अल्प भाषिण:।।

यहा पर मुख पर वस्त्र धारण करने वाले अर्थात् बाधने वाले को जैन साधु कहा है। अर्थात् शिवपुराण बनाने वाले को अपने समय मे ऐसे मुखवस्त्रिका बाधने वाले साधु दृष्टिगोचर हुए होगे।

१८ मंदिरमार्गी आचार्य श्री बुद्धि विजयजी अपनी बनाई ''मुहपति चर्चा'' पुस्तक के पृष्ठ ३० पर लिखते है कि मैने लाला मोहर सिह जी से मुहपति बांधने के बारे मे सम्मति ली तो उन्होने कहा कि यदि अब आप मुहपति बांध लोगे तो आपकी बडी भारी हंसी होगी।

पृष्ट ६३ पर इसी पुस्तक मे लिखा है कि मेरे सिवाय समी सवेगी साधु मुहपति बांधते थे। इन बुद्धि विजय जी के बेडेरे गुरूओ ने इनको जो उत्तर दिया था वह उपर पोइंट न १६ मे लिख दिया गया है।

पृष्ट ७० से ७२ तक मे यह लिखते है कि दसवे अच्छेरे मे असंयतियो की पूजा हुई है वह इस प्रकार है कि **''सवेगी नाम धरावेगे ज्ञान का नाम रख कर भडार भरावेगे''** इत्यादि।। अंत मे संवेगियो का मत शास्त्र विरूद्ध है ऐसा कहा है।

पृष्ट ४५ पर यह लिखा है कि इस पंचम काल मे मुझे सयमी गुरु नही मिले यह मेरे पाप का उदय है कि अतएव मेरे मे भी संयम नही है।

पृष्ट ४४ मे लिखा है कि मै भी नाम मात्र का (संवेगी) तपागच्छी हूं।

ये बुद्धि विजयजी और कोई नही थे स्थानकवासी धर्म छोडकर जाने वाले आत्माराम जी म सा ने इन्हे अपना गुरु बनाया था और गुरु ने जिनका नाम वल्लभविजय रखा था।



पाश्चात्य विद्वानों के प्रमाण

(१)Chamber's Encyclopoedia Volume VI
London १९०६, Page २६८

"The Yati has to lead a life of continence and abstinence; he should wear a thin cloth over his mouth to prevent insects from flying into it and he should carry a brush to sweep the place on which he is about to sit."

अर्थ—चेम्बर ऐनसाईक्लोपीडीया जिल्द ६ लंडन १९०६ पृ. २६८

जैन यति निवृत्ति मार्ग और ईश्वर परायणता की आयु इस प्रकार व्यतीत किया करते है, और वह अपने मुह पर उडते हुए जीवो की रक्षा के वास्ते एक कपडा धारण करते है, अर्थात् बाधा करते है, और प्रतिलखना के लिये जहा वे बैठते है उस जमीन को पहले साफ करने के लिये एक गुच्छा (ओघा) पास रखते है।

(२)The raligions of the world by John Murdoch L.L.D., १९०२ Page १२८

"The Yati has to lead a life of continence he should wear a thin cloth over his mouth to prevent insects from flying into it, he should strain water through a cloth before drinking and he should carry a broom (ougha) to sweep the place on which he is about to sit to remove every living creatures out of the way of danger."

(२) दी रीलीजन्स ऑफ दी वर्लडकर्ता जानमार्डक एल.एल. डी १९०२ पृ. १२८

जैन मुनि अपना धर्म जीवन ऐसा व्यतीत किया करते है, वह (वे)। वायु मे उडने वाल जीवो की रक्षा के लियेअपने मुह पर एक कपडा धारण किया करते है, और पानी को पीने से प्रथम एक कपडे से छान लिया करते है, जिस स्थान पर वह बैठने की इच्छा करत है, उस स्थान को साफ करने के लिये और पथ मे कीडो की रक्षा के लिये हाथ मे एक गुच्छा (ओघा) रखते है।

(३)The religions of India by A Burth London १८९१, Page १४५

"Not only do the Jainsabstam from all kinds of flesh, but the more figid of them drink only filtered water, breathe only through veil and go sweeping ghe ground."

(३) हिन्द (भारतवर्ष) के धर्म कर्ता ए. बर्थ लण्डन १८९१ पृ. १४५

जैनी केवल मास भक्षण से ही घृणा नही करते है, वल्कि उन मे पानी छानकर पीना और मुह पर श्वासोच्छवास के लिये (जिस से सूक्ष्म जीवो की भी हिसा न हो) वस्त्र धारण किये रहना, और भूमि को आगे से साफ (पडिलेह) करे विना चलने की अतिशिक्षा (निषेध) करते है।

(४)Indian wisdom by moviler williams M.A London १८७५, Page १३१

"Do not kill or injure; which Jains carry to a preposterous an extreme that they strain water before drinking it, sweep the ground with a brush before treading upon it never eat or drink in the dark, and wear muslin before their mouths to prevent the risk of swallowing minute insect."

(४) इडियन विजडम् कर्ता मोविलर विलयम् एम ए. लण्डन १८७५ पृ. १३१

''किसी को दु खी मत करो और किसी के प्राण मत लो'' जो कि जैनियो मे सबसे अधिक है, और वह पानी पीने से प्रथम छान लेते है। और चलते हुए अगाडी की भूमि को एक गुच्छ (ओधे) से साफ कर लेते है, और रात्रि को भोजन कभी भी नही करते, और सूक्ष्म जतु जो हर वक्त उडते रहते है, उनकी रक्षा निमित्त कीडे मुंह मे न चले जाये इसलिये अपने मुह पर हर वक्त एक कपडा बाध रखते है।

इस प्रकार पाश्चात्य विद्वानो ने जैन मुनि के मुख्य व्यवहारो मे मुंहपति मुंह पर बांधना रजोहरण से भूमि पूंजना पानी छानकर उपयोग मे लेना, रात्रि मे नही खाना आदि परिचय बताये है किन्तु यहा डंडा या हडा एव तर्पणी और हथपत्ति कही नही कही है।

जिज्ञेश— मुंहपति के मुख्य गुण क्या है ?

ज्ञानचन्द— मुख्यतया तीन गुण इस प्रकार है—

त्रिविधा गुणा संयुक्ता, लोकेद मुखवस्त्रिका।
प्रथम जैन चिन्ह स्यात्, रक्षण जीव-सूत्रयो(१)

अर्थ—१ मुखवस्त्रिका जैन का चिन्ह है २ सूत्र पर पुस्तक पर थूक गिरने से रक्षा करने वाली है ३ वायुकाय एवं चौरेन्द्रिय जीवो (सपातिम जीवों) की रक्षा करने वाली है।

इसके अतिरिक्त मुनि दर्शन करने के श्रावकाचार मे पाच नियम (अभिगम) शास्त्र मे जगह जगह बताये है उनमे भी मुनियो की सेवा मे पहुचने पर खुले मुह से श्रावक को रहना मना किया है अर्थात् मुंह पर कपडा लगाकर ही मुनि सीमा मे प्रवेश करना बताया है।

बडे बडे सेठ सेनापत्ति राजा आदि भी जो श्रावक होते वे शास्त्राज्ञा का पालन करते एवं वस्त्र लगाकर ही मुनि की सेवा मे प्रवेश करते थे।

इससे एक गुण यह स्पष्ट होता कि मुहपति लगाने से सम्मुख रहे श्रमणो के

पास बोलने पर अपना थूक उन पर नही पडे। खुले मुह ढीठता पूर्वक बोलने वाले और जिनाज्ञा की मर्यादा का लोप करने वाले साधु और श्रावको के मुख से थूक उछल कर कई बार श्रमणो पर पडता है जिससे गुरू की आशातना लगती है। ये मदिर मार्गी लोग निष्प्राण मूर्ति की आशातना से बचने के लिये तो मुह बाध कर मौन पूर्वक ही पूजा करते है किन्तु शास्त्राज्ञा भग करके भी गुरूओ के सामने आते समय मुह पर वस्त्र बाधने मे शर्म का अनुभव करते है और कई स्थानकवासी लोग भी आलस्य वश ऐसा करते है वह भी ठीक नही है। अपने नियमो और विधि विधानो का हर क्षेत्र मे ध्यान रखना ही चाहिये।

मंदिर मूर्ति प्रमाण वार्ता—

जिज्ञेश— मुखवस्त्रिका के समान मूर्ति मदिर के सम्बन्ध मे भी कुछ प्रमाण बताइये।

ज्ञानचन्द— निग्रन्थ प्रवचन अहिसा प्रधान एव दया प्रधान है इसमे किसी भी प्राणी की हिसा करना या हिसा कार्य को धर्म कह देना, कभी भी संभव नही हो सकता है। इस धर्म के धारक श्रमण गणधर तीर्थकर आदि सभी साधक, हिसा करने, कराने या अनुमोदन करने के अर्थात् प्रेरणा करने के और उस हिसा को भला जानने के भी पूर्णतया त्यागी होते है। यह त्याग उनका जीवन भर के लिये होता है। इसे ही जीवन भर की सामायिक कहते है।

ऐसे जैन श्रमण निर्ग्रन्थ हिसा मे धर्म नही कह सकते, न ही किसी प्रकार के हिसाकारी कार्यो की प्रेरणा कर सकते। अत मंदिर मूर्ति बनाना और फूल पानी अग्नि के आरंभ (पाप कार्यो) से द्रव्य पूजा करना, कोई भी जैन श्रमण तो कह नही सकता और ऐसा कहने और प्रेरणा करने वाला महाव्रतधारी जैन श्रमण नही रहता। केवल द्रव्य वेशधारी जिनाज्ञा का चोर और संयम मर्यादा का भंजक हो सकता है।

१. दशवैकालिक सूत्र अध्ययन ६ मे कहा है कि—

सव्वे जीवा वि इच्छति, जीविउ न मरिज्जिउ।
तम्हा पाणिवह घोर, निग्गथा वज्जयंति ण।।

अर्थ—ससार के छोटे बडे समस्त जीव जीना चाहते है, मरना कोई भी नही चाहते है। इसलिए किसी जीव की हिसा करना घोर पाप है। श्रमण निर्गन्थ इस हिसा का पूर्णतया त्याग करते है।

२. आचारांग सूत्र मे कहा है कि भूत भविष्य के सभी तीर्थकर यही निरूपण करते है कि—

सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता ण हंतव्वा, ण अज्जावेयव्वा, ण परिघेतव्वा, ण परितावेयव्वा, ण किलामेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा, एस धम्मे धुए, सुद्धे, नितिये सासए, सम्मिच्च लोयं खेयन्नेहि पवेइए।

भावार्थ—पृथ्वी पाणी हवा अग्नि वनस्पति एव त्रस जीव इत्यादि समस्त सासारिक जीवो मे से किसी को भी कष्ट आदि नही पहुचाना चाहिए एवं प्राणो से रहित नही करना चाहिए। यही अहिसा प्रधान शुद्ध शास्वत धर्म सर्वज्ञो ने जीवो के खेद-दु ख को जानकर बताया है।

३ प्रश्न व्याकरण सूत्र मे कहा है—

सव्व जग जीव रक्खण दयट्ठाए भगवया निग्गंथ पावयण सुकहिय।

अर्थ—भगवान ने धर्मोपदेश क्यो दिया? इसका समाधान यहां पर है कि सर्व जगत के चराचार जीवो की रक्षा एव दया अनुकंपा के लिये ही भगवान ने निग्रन्थ प्रवचन का प्ररूपण किया।

४ आचारांग सूत्र मे कहा है कि उपस्थित परिषद को श्रमण यह उपदेश देवे, यथा—

सति, विरति, उवसमं, निव्वाण, सोयं, अज्जवियं, मद्दवियं, लाघवियं, अणइवत्तियं।

अर्थ— १ आत्म शाति की प्राप्ति २ वैराग्य ३ उपशाति ४ मुक्ति ५ हृदय की पवित्रता ६. सरलता ७ नम्रता ८ हल्कापन आश्रव और परिग्रह से या अह भाव से ९ अहिसा धर्म। ऐसे आत्म विकास के विषयो पर उपदेश देना चाहिये किन्तु यहा मंदिर मूर्ति बनाने का या पाप प्रवृति युक्त द्रव्य पूजा का उपदेश देना, कही भी नही कहा गया है।

५ प्रश्न व्याकरण सूत्र मे प्रथम आश्रव द्वार मे कहा है कि चैत्य और देवालय अर्थात् मंदिर बनाने मे जो पृथ्वी, पानी, अग्नि आदि जीवो की हिसा करते है वे मंद बुद्धि वाले है अर्थात् अज्ञानी, भोले, मूर्ख प्राणी है।

६ सूयगडांग सूत्र के दूसरे अध्ययन मे कहा है कि—

तिविहेण वि पाण मा हणे, आयहिए अणियाण सवुडे।
एव सिद्धा अणतसो सपइ जे य अणागयावरे।।

भावार्थ—आत्महित गवेषक सवृत अणगार तीन करण तीन योग से किसी भी प्राणी की हिसा न करे। ऐसा शुद्ध अहिसक आचरण करने से ही तीनो काल मे सिद्ध होते है अर्थात् हिसक कार्यो वाली मूर्ति पूजा आदि के करने कराने से मुक्ति नही हो सकती।

७. उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन आठवे मे कहा है कि—

ण हु पाणवह अणुजाणे मुच्चेज्ज कयाइ वि सव्वदुक्खाण।

अर्थ—प्राणी हिसा का अनुमोदन भी करने वाला अर्थात् हिसा जन्य कार्यो को भला भी समझने वाला, कदापि अर्थात् तीन काल मे मोक्ष नही जा सकता, समस्त कर्मो से मुक्त नही हो सकता है, वह संसार मे ही भ्रमण करता रहता है।

८. भद्रबाहु स्वामी ने चन्द्रगुप्त राजा के १६ स्वप्नो के फल मे चौथे पाचवे स्वप्न का फल इस प्रकार बताया है—

दुवालस वास परिमाणो दुकालो भविस्सई। तत्थ कालिय सुय पमुहा वोच्छिज्जिस्सइ। चेइयाइ ठव्वावई। दव्वाहारिणो मुणि भविस्सइ। लोभेण मालारोहण, देवल उवहाण उज्जमण, जिण बिम्ब पइट्ठावण विही उमाइयेहिं वहवे तवप्पभावा पयाइस्सति अविय पथे पडिस्सइ।

कुमइजणा परपरागम्मेण बहिया सच्छद चारिया सयमेव सजमिया भविस्सह।

अर्थ—इस स्वप्न का फल यह है कि १२ वर्ष का दुष्काल पडेगा, जब सूत्र ज्ञान व्यवछिन्न होगा, तब जैन साधु सयम मार्ग की भगवदाज्ञा को छोडकर मंदिर बनवायेगे, धन इकट्ठा करने कराने वाले बनेगे। अति धन लोभी होकर मालारोहण आदि महोत्सव करेगे उपधान तप का उजमणा करेगे। जिनेश्वर की मूर्तियो को प्रतिष्ठित करवायेगे। ऐसे बहुत से कार्य करके अनेक साधु तप संयम से भृष्ट होकर धर्म से विपरीत मार्ग मे पड जायेगे अर्थात् सभी साधु ऐसा नही करेगे। कुछ आत्मार्थी मुनि इन प्रवृतियो से निरपेक्ष भी बने रहेगे।

इस स्वप्न फल से भद्रबाहु की भाषा से ही स्पष्ट हो गया कि उस समय मंदिर मूर्ति जिनेश्वरो की नही थी तभी कहा कि स्वप्न के कुप्रभाव से ऐसा करके वे साधु कुमार्ग मे पडेगे। यह १६ स्वप्नो का ग्रन्थ भी मूर्तिपूजक श्रमण श्रद्धा से भद्रबाहु का मानते है।

इससे स्पष्ट है कि भद्रबाहु के समय मूर्तिपूजक धर्म नही था। स्थानकवासी मान्य सत्य आगमिक धर्म ही पहले था। मंदिर मार्गी धर्म बाद मे उत्पन्न हुआ उसे भी भद्रबाहु ने कुमार्ग कह दिया है और तप संयम से भृष्ट होना भी कह दिया है।

यहा मूर्तिपूजको का ही ग्रन्थ और उनके महा पूजनीय भद्रबाहु का बनाया और उन्हे ही कुमार्गी बता रहा है, स्वप्न फल के नाम से।

भद्रबाहु के शब्दो का आशय स्पष्ट है कि आगे कभी १२ वर्षी दुष्काल पडेगा जब मदिर मूर्ति की स्थापना होगी और तभी मूर्ति पूजा चलेगी।

अत ये मंदिरमार्गी कितने ही झूठे शिलालेख लिख कर गाड देवे और लाखो वर्ष पुरानी संखेश्वर पार्श्वनाथ की मूर्ति का ढोग रचा दे या महावीर स्वामी के जीवित अवस्था की मूर्ति और मंदिर होने का काव्य तुक रच कर प्रचार कर देवे, उससे कुछ भी सार निकलने वाला नही है।

अब आगे इन्ही मंदिर के पुजारियो के एक सूत्र का और प्रमाण देखे कि रूई लपेटी आग कब तक दब सकती है, कितनी फैलती है वह आग। वैसे ही इनका अपने आप मे खोटे प्रमाणो से सच्चा बनना इनके शास्त्रो से इनके ही शब्दो से भारी पड रहा है केवल खोटी सेखी लगाना बन रहा है।

९ महानिशीथ सूत्र मे मूर्ति पूजा करने वालो को अनत ससार मे भ्रमण करने वाला बताया है वह पाठ इस प्रकार है—

एत्थ च गोयमा केइ अमुणी समयप्पभावे उसण्णविहारी णिइयवासिणो अदिट्ठ-परलोय- पच्च-वाए सय मई इड्ढि-रस-गारवाइ मुच्छिए राग दोष मोह अहकार ममीकाराइ सपडिबद्धा, कसिण सजम सद्धम्मे परम्मुहा निद्दय नित्तस निग्घिण अकलुण निक्किव एगतेण पावायरण अभिनिविट्ठ-बुद्धि अइचड रोद्द कूराभिगाहिए मिच्छ दिट्ठी कय-सव्व-सावज्ज- जोग-पच्चक्खाण- विप्पमुक्का से सघारभ परिग्गाहे तिविहेण पडिवन्ना सामाइये य दव्वत्ताए, न भावताए, नाममेव मुडा अणगारा महव्वयधारी समणे विभविताणा एव भणणमाणा य सव्वहा उम्मग्ग पव्वतति। तहा किल अम्हे अरिहताण भगवताण गध-मल्ल-पदीव-सम्मज्जण- उवलेवण, विचित्त वत्थ बलि धूवाइयेहिं पूयासक्का-रेहिं अणुदिया- महभवण पकुव्वमाणा तित्थथवण करेइ।

तं णो णं तहत्ति गोयमा समणुजाणेज्जा।

प्रश्न—से भयव केणट्ठेणं एवं वुच्चइ जहाणं तं च णो णं तहत्ति समणुजाणेज्जा?

उत्तर—गोयमा। तदवत्थणुसारेणं असंजम बहुलेण च मूल कम्मासवं, मूलकम्मासवाओ य अज्झवसायं पडुच्च महोयर सुहासुह कम्मपयडिबंधो, सव्व-सावज्जाणं विरयाण वयभंगो, वयभंगेण च आणाइक्कमं, आणाइकम्मेणं तु उम्मग्ग-गामीतं, उम्मग्गगामितेणं च समग्गापलायणं उम्मग्गा पवत्तण, समग्गा विलोयणेण महति आसायणा, तओ अनत ससार हिडणं।

एएण अट्ठेणं गोयमा। एवं वुच्चई जहाणं गोयमा। णो णं तहत्ति समणुजाणेज्जा।

भावार्थ—इस जिन शासन मे हे गौतम। कई श्रमण काल प्रभाव से शिथिलाचारी हो जाएंगे। वे परलोक के दु खो को नही देखेगे। वर्तमान सुखो मे ही आसक्त रहेगे। कल्प मर्यादा का पालन नही करेगे। राग द्वेष मोह अहंकार और मेरा मेरा (ममत्व) करने लग जायेगे। सपूर्ण संयम धर्म से मुख मोड लेगे। वे दया रहित, पाप की घृणा रहित, कृपाकरुणा रहित एकांत पाप मे ही जिनकी बुद्धि रहेगी, ऐसे चड रौद्र क्रूर कर्तव्य करने वाले, मिथ्यादृष्टि, असाधु होगे। वे सावद्य योगो (पापकार्यो) का पच्चक्खाण करके भी उसे छोड देने वाले होगे। संघ

निकालने रूप आरंभ को ग्रहण कर लेगे अथवा अनेक प्रकार के आरभ परिग्रह करने वाले होगे। तीन करण तीन योग से पाप त्याग रूप प्रतिज्ञा ग्रहण करके भी भाव सामायिक चारित्र मे नही रहेंगे, केवल द्रव्य सामायिक मे रहेगे। वे केवल नाम मात्र के मुडित अणगार या महाव्रतधारी होगे। अपने आप हम साधु है ऐसा कहते हुए और मानते हुए भी उन्मार्ग मे पड जाएगें।

ऐसा करते हुए भी फिर वे हमारी तीर्थंकरो की चदन आदि से, मालाओ से, दीपक जलाकर, विचित्र वस्त्र वलि धूप आदि से पूजा करेगे, ऊंचे ऊंचे मदिर वनाकर तीर्थ स्थान वनायेगे, ऐसे उन लोगो के कर्तव्यो की हे गौतम! अनुमोदनना भी नही करनी, उनके कर्तव्यो को भला भी नही जानना चाहिये।

प्रश्न—हे भंते! ऐसा क्यो कहा कि उनके कर्तव्यो को भला भी नही जानना।

उत्तर– हे गौतम! उस प्रकार के असंयम प्रमुख कर्तव्यो से ससार मूलक कर्मों का आश्रव होता है। उन आश्रवो और अशुभ अध्वसायो से शुभाशुभ महान कर्मों का बंध होता है।

सपूर्ण सावद्य योग के त्यागियो का व्रत भंग होता है। व्रत भंग होने से भगवदाज्ञा का उल्लंघन होता है और वे उन्मार्गगामी बनकर सन्मार्ग से भृष्ट होते है, जिससे वे महान आसातना के भागी बनकर **अनत ससार मे परिभ्रमण** करते है।

इसलिये हे गौतम! ऐसा कहा कि उन असाधुओ की प्रवृतियो को भला भी नही जानना चाहिये।

इस प्रकार मंदिर मार्गियो के माने हुए ४५ आगमो के इस महानिशीथ सूत्र मे इनकी और इनके खोटे मत की कितनी दुर्दशा बताई गई है यह सहज समझ मे आ सकता है।

यह अवश्य है कि इन्होने इस सूत्र को अपनी श्रद्धा का केद्र बना रखा है। फिर भी ऐसी खरी (सच्ची) और इनका ही सत्यानाश करने वाली बाते इस सूत्र मे होने से ये इसे छिपा छिपा कर रखना चाहते है। आज तक इस सूत्र का व्याख्या अनुवाद करके कोई प्रकाशित नही करते है क्योकि पोल मे ढोल ऐसे ही तो चल सकती है।

इस प्रकार ये मंदिर मार्गी विद्वान जानते समझते हुए भी पक्षाध होकर दुराग्रह से ग्रसित होकर खड्डे मे गिरने के काम करते ही जा रहे है और उसी मे आनद मानते है तथा भक्ति रस के वहाने भोले लोगो से यश कीर्ति सन्मान पाकर फूल रहे है जब कि इन्ही के प्यारे और माने शास्त्र इनकी ही पोल खोल रहे है। किन्तु इन्होने एक होशियारी ओर कर रखी है कि भक्त जना को शास्त्र पढने और देखने

से महान भय बता कर कोषो दूर रख दिया है। जब वे अंध भक्त बने अपने शास्त्र देखे ही नही तो इन की होशियारी पकड नही सकते। उनकी तो ऐसी दशा हो रही है कि—

गुरूजी बैठा गप्पा मारे चेला कहे सच्चा।।
कान्या मान्या कुरर तू चेला हू गुरर।
रुपयो नारियल धरर चाहे डूब के तरर।।

१० मंदिर मार्गियो के पूर्वाचार्य कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्र आचार्य जी ने ''योग शास्त्र'' पृष्ठ २८७ पर लिखा है कि—

स्नान मूर्तिपूजा आदि सावद्य कार्यो का उपदेश सूत्रकारो का उपदेश नही है।

और भद्रबाहु स्वामी ने तो स्वप्न फलो मे कह ही दिया कि १२ वर्षी दुष्काल के समय से मूर्ति पूजा चलेगी।

ये दुराग्रही मदिर मार्गी अपने ही पूर्वाचार्यो और अपने ही माने शास्त्रो और ग्रन्थो की बात हजम करते जा रहे और शर्महीन होकर कहते जा रहे है कि जैन धर्म मे मूर्ति पूजा अनादि से है।

११ मंदिर मार्गियो के पंच प्रतिक्रमण सूत्र के पृष्ठ ४५५ मे लिखा है कि जैसे तीर्थकरो के हो चुकने के बाद अब हमने जिनेश्वर देव की मूर्ति स्थापन करली है वैसे ही गुरू की अनुपस्थिति के लिए उनकी स्थापना कर लेनी चाहिये अर्थात् स्थापनाचार्य लकडी के डंडो का और कवडियो का बना कर उसमे आचार्य की स्थापना कर लेनी चाहिये।

इस प्रकार इन मंदिर मार्गियो की बुद्धि पर तरस आता है कि जान बूझ कर पत्थर और धातुओ मे भगवान को तथा लकडियो और कोडियो मे गुरू को बिठाकर संतोष करते है। चाहिए तो यह था कि हृदय मे ही भगवान और गुरू बिठा लेना था तो इन लकडियो कौडियो के संग्रह की और पत्थरो के पाप कार्यो की आवश्यकता ही नही पडती।

१२ प्रश्न व्याकरण सूत्र मे साधु के उपकरणो के नाम कहे गये है उसके विषय मे इन मंदिर मार्गी आचार्यो ने ''सम्यक्त्व सल्योद्धार'' ग्रन्थ मे उन उपकरणो के नाम लिखकर फिर कहा है कि—

''जिस साधु के पास ये उपकरण नही हो और अन्य कोई भी उपकरण हो वह जैन साधु नही है।''

इन उपकरणो के नामो मे डडा डंडासण तर्पणी हत्थपत्ती (रूमाल) स्थापनाचार्य आदि नही कहे है, तो भी ये मंदिरमार्गी साधु साध्वी इन उपकरणो को मनमते रखने की परंपरा चला कर भी अपने को जैन साधु कहते है और फिर भी लिखते समय इनको भान ही नही रहता कि खुद की जंघा पर कुल्हाडा चलाने

brought to adopt this practice by the perpetual and irresistable influence of the regigious development of the People in India."

भावार्थ—मिस्टर लैसन साहिबा प्रतिज्ञा पूर्वक कहते है कि—''इस बात पर मुझे पूर्ण विश्वास है कि बौद्धो और जैनियो मे पहले मूर्ति पूजा नही थी और इसके प्रणेता भी साधु लोग नही हुए है (अर्थात् गृहस्थो ने चलाई या वे चलाने वाले साधु भी गृहस्थ ही गिने गये है) क्योकि जब लोगो को प्राय पत्थरो एवं दूसरे देवताओ से सहायता लेने की आवश्यकता हुई अर्थात् जब हिन्दुस्तान के अन्य धर्मो से यह विशेष रूप से प्रकट होने लगा कि भक्ति रस भी एक निर्वाण मुक्ति का मार्ग है। तभी इन मे (जैन और बौद्ध मे) मूर्ति पूजा प्रारभ हुई। किन्तु जो लोग यह कहते है कि जैन मे बौद्धो की नकल से मूर्तिपूजा आई यह असत्य है। इन दोनो धर्मो वालो पर अन्य मूर्तिपूजको का प्रभाव अधिक पड गया, तभी इन्होने मूर्ति पूजा को प्रचलित किया।''

सार—उक्त विविध प्रमाणो से यह स्पष्ट हो जाता है कि मूर्ति पूजा जिन धर्म के विपरीत और भद्रबाहु स्वामी आदि विशिष्ट ज्ञानियो के बहुत बाद के जमाने मे अन्य धर्मो के देखा देखी भेड चाल से घुसी हुई एक विकृत त्रस स्थावर जीवो के हिसा रूप पाप से युक्त सावद्य प्रवृति है।

मूर्तिपूजकों की मानस दशा वार्ता—

जिज्ञेश—इस प्रकार के प्रमाण चर्चा युक्त मुहपति और मदिर मूर्ति पूजा सम्बन्धी प्रकरण से मंदिर मार्गियो के मानस की क्या दशा होगी? शांत या अशांत?

ज्ञानचन्द— शांत और विवेक वान प्रकृति के लोग इसे तटस्थ वृति से पढकर कुछ प्राप्त ही करेगे। शाति से प्रमाणो के उपर आत्म चितन कर कल्याण मार्ग मे अग्रसर होने मे उत्साहित होगे।

किन्तु अशांत वृत्ति वाले अबूझ लोग या पक्षांध दुराग्रही लोग इस प्रमाण चर्चा से चमके या दमके अथवा भिडके और राग द्वेष करे तो इसमे कोई नई बात नही है। वैसे कुबुद्ध पंडित माने जाने वाले लोग तो यो भी समाज मे कुछ न कुछ कुबुद्ध चलाते ही रहते है उन्हे अपने बाह्याचार का और कुमत का अजीर्ण चलता रहता है। जिससे उत्पन्न होने वाली दुर्गन्ध बदबू कभी उनके मुंह से और कभी हाथ मे रही लेखनी से निकलती रहती है।

अभी अभी ३-४ वर्षो से क्रियानिष्ट कहलाने वाले मूर्तिपूजक रामचन्द्रसूरि के आचार्य भुवन भानुसूरी कई आचार्यो के एवं साधुओ के टोले से साथ मे ही

चातुर्मास करते है। उनके उत्पाती गुणसुदर, भुवन सुदर और कर्पूर एण्ड कम्पनी हिण्डौन तथा गुणरत्न सूरी जितेन्द्र सूरी के डेड हुशियार चेले और ऐसे ही मिलिभगत से मणिसागर आदि लोग कपट प्रपच धूर्ताई के हथकडो के साथ कुबुध कर्तव्य कर रहे है। ये लोग ''शंकाए सही समाधान नही'' नामक पुस्तक की सालोसाल आवृतिया निकाल कर कई पापो का, प्रपचो का, सेवन करके कर्म बाध कर भारी कर्मा बनते हुए भी खुश होकर, मन ही मन मानो फूल कर कुप्पा हो रहे है। जैसे इसी कर्तव्यो मे इन्हे मोक्ष का पट्टा मिलने जा रहा हो।

ये लोग अपनी आत्म साक्षी से भी ऐसे कामो मे पक्के चोर जैसी वृति अपना रहे है। क्योकि पुस्तक के लेखक ये ही कम्पनी के लोग होते हुए भी डरपोक होकर छिपते है अर्थात् उस पुस्तक मे प्रेस का नाम भी नही लगाने देते, लेखक का स्वयं का नाम भी गायब? अथवा उस पुस्तक को स्थानकवासियो द्वारा छपाने का और जिज्ञाशाए दिखाने का ढोग करते है और ऐसे ही झूठे नाम पते भी खोज कर डाल देते है। फिर उस पुस्तक की सप्लाई ये चार पांच मिली भगत के लोग अपने चातुर्मास के गांव से खुद करते है किन्तु पडोस के गाव से पोस्ट करवाते है और फ्रोम की छाप राणी के किसी व्यक्ति के पते की लगाते है और खुद चोर बन कर छिपना चाहते है। राणी मे यदि पूचछताछ की जाय तो वे अनजान बन जाते है और तत्सम्बन्धी बाहर से आये चर्चा पत्र व बेरग पत्र रद्दी की टोकरी मे पडे रखते है।

चोर स्वभाव के ये लोग स्वयं जब करामाती पत्र भी पोस्ट से डालते है तो उसमे अपना पता देवे भी नही। और फिर झूठ भी बोल जाय कि हमने ऐसा पत्र दिया नही किन्तु दूसरे तरह से इनकी चोरी पकडी जाती है अर्थात् पोस्ट की छाप एवं हस्ताक्षरो से। कभी ये फ्रोम मे हिंडोन सीटी के कर्पूर क का पता लिख देते है जो कि राजस्थान मे है और पत्र डाले जाते कोयम्बतूर या हुबली आदि दक्षिण प्रान्त से। कभी मुंहपति से ३६ दोष का पेपलेट मणिसागर के नाम से प्रकाशित करके भेजते है उसी अपनी चोर बन कर छिपने की वृति से। इसका कारण यह है कि ये सामने नही आना चाहते। पाप करके समाज मे बदबू गंदगी खुद के अजीर्ण की फैला कर भी ये सच्चे खुशबुदार बनने की सफाई रखना चाहते है। ऐसे धूर्त और धूर्त शिरोमणी और चोर वृति वाले अपने आप को शास्त्रो के ज्ञाता पडित समझे तो यह उनकी मूर्खता और दब्बूपन है जो ज्ञान चर्चा मे छिप छिप कर तीर फेकने की वृति करके हिजडे बनकर कितने ही झूट प्रपचो का आश्रय लेते है। इनकी यही वृति वास्तव मे इनके अपने पक्ष की असत्यता एवं कमजोरी सिद्ध करती है।

रूप हम यह क्या पागल पन कर रहे है यही अज्ञानदशा और भवितव्यता है। उक्त पुस्तक को लिखने वाले महाशय है स्थानकवासी से पडिवाई होकर मंदिर मार्गी आचार्य बनने वाले श्री आत्मारामजी। जो कि धुरंधर विद्वान कहा कर पूजे गये है।

१३ भद्रबाहु स्वामी ने आठवे स्वप्न के फल मे कहा कि—

जत्थ जत्थ भूमिए पच जिनकल्याणं तत्थ तत्थ देसे देसे धम्म हाणि भविस्सति।

अर्थ—जिन जिन स्थानो पर जिनेश्वर देवो का निर्वाण आदि हुआ है, उन उन स्थानो पहाडो आदि पर धर्म की हानि होगी अर्थात् वहा पर सयम से पतित बने शिथिलाचारी साधु लोग मंदिर मूर्तियां बनाकर महान पाप का कार्य छ काया के जीवो का आरंभ करवायेगे। फिर पूजा प्रतिष्ठा आडबर से हिसा की वृद्धि करवायेगे। इस प्रकार इन निर्वाण भूमियो मे हिसा करके धर्म माना जायेगा। इन अपेक्षाओ से जैन धर्म के सिद्धान्तो की और अहिसा भगवती की अवहेलना होने से धर्म की हानि होने की भविष्यवाणी रूप स्वप्न फल जो भद्रबाहु स्वामी ने बताया, वह साकार हो रहा है। फिर भी ये मंदिर मार्गी लोग इसी हानि मे भी धर्म की वृद्धि मान रहे है, यही इनकी अज्ञानता और मिथ्यापन है तथा निरतर इसी दुराग्रह जाल मे और अधिक फसते ही जा रहे है।

१४. मंदिर मार्गियो के बनाये ''जैन तत्वादर्श'' ग्रन्थ मे पृ ३८७ पर लिखा है कि—

''पूजा कोटि समं स्तोत्रं''

अर्थ—करोड पूजा करने से जो फल होता है उतना ही एक बार स्तोत्र पढने से हो जाता है।

पाठक जरा विचार करे कि एक मूर्तिपूजक भाई एक दिन मे दो बार पूजा करे तो वर्ष मे ३६०x२ = ७२० बार पूजा होगी और १०० वर्ष तक पूजा करे तो ७२०x१०० = ७२००० पूजा हुई। अर्थात् जिंदगी भर भी आज कोई पूजा करे तो भी एक स्तोत्र के फल के बराबर नही है। तब कौन मूर्ख होगा जो पानी फूल अग्नि के विविध आरभ वाली पाप क्रियाओ से ओतप्रोत मंदिर मूर्ति पूजा कर आत्मा को भारी बनायेगा। एक बार के स्तोत्र पढने से उससे करोड गुणा लाभ कोई भी बुद्धिमान नही छोडेगा। छोडेगा तो वही कि जिसकी बुद्धि (सूअर के समान विकृत बन चुकी है जो कि उच्च शालि का भोजन छोडकर भिष्टे की तरफ अशुचि की तरफ जाता है।) उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम अध्ययन की पांचवी गाथा मे कहे अनुसार हो गई है।

इस प्रकार जैन तत्वादर्श के मूर्तिपूजक लेखक ने ही मूर्ति पूजा को अति ही महत्वहीन बता दिया है।

तब तो इनके कथन से भी मूर्तिपूजा नही करने वाले स्थानकवासी ही लाभ मे रहे कि मूर्ति पूजा के विविध पाप अनुष्ठानो से भी बच गये और स्तोत्र आदि पढकर या नमस्कार मत्र का जाप करके मूर्तिपूजा से करोडगुणा और क्रोडाक्रोड गुणा लाभ प्राप्त कर लेते है।

मदिर मार्गी भक्त लोग तो नुकशान का सौदा लेकर अपने ही आचायो के कथनानुसार महामूर्ख ही बने है। एक १० मिनट नमस्कार मंत्र के जाप से क्रोडाक्रोड गुणी पूजा के बराबर शुद्ध लाभ को छोडकर केवल एक इकाई जितना लाभ और उसमे भी जीव हिसा के विविध पापो के भागी बने।

१५ "अज्ञान तिमिर भास्कर" ग्रन्थ मदिर मार्गियो का बनाया हुआ है उसमे लिखा है कि—

"मूर्ति पूजा शास्त्रोक्त नही है इसी कारण हम ग्रन्थो का नाम लिखते है शास्त्रो का नही।"

१६ ये मदिर मार्गी साधु अपने ग्रन्थो मे आधाकर्मी दोष के सेवन करने को गाय का मास खाने के बराबर कह देते है फिर भी गाव गांव मे आधाकर्मी आहार फ्रूट्स और गर्म पानी लेकर निडर होकर खाते पीते है। गोमांस के उपमा की बात को लिखने वाले स्वयं ही भुला देते है।

मूर्ति पूजा हेतु पाश्चात्य विद्वान वार्ता—

एक पाश्चात्य विद्वान आचारांग सूत्र की अंग्रेजी अनुवाद की पुस्तक की प्रस्तावना मे लिखते है कि जैन मे मूर्ति पूजा नही है क्योकि उनके तीर्थकरो का यह उपदेश नही है किन्तु उनके हो चुकने के बाद मे उनके अनुयायियो मे दूसरे धर्मो की देखा देखी आई हुई विकृति है वे वाक्य इस प्रकार है—

Mr. Lesson says, "I believe that this worship had nothing to do with original Budhism or Jainism that it did not originate with marks, but with the lay community while the people in general folt the want of a higher call than that of their rude deities and demons, and when the religious development of India found in the Bhagti, the supereme means of salvation. Therefore instead of seeing in the Budhists the original, and in the Jains the immitators, with regard to the erection of temples and worship if statues, I assume that both sects were, independent from each other,

brought to adopt this practice by the perpetual and irresistable influence of the regigious development of the People in India."

भावार्थ—मिस्टर लैसन साहिबा प्रतिज्ञा पूर्वक कहते है कि—''इस बात पर मुझे पूर्ण विश्वास है कि बौद्धो और जैनियो मे पहले मूर्ति पूजा नही थी और इसके प्रणेता भी साधु लोग नही हुए है (अर्थात् गृहस्थो ने चलाई या वे चलाने वाले साधु भी गृहस्थ ही गिने गये है) क्योकि जब लोगो को प्राय पत्थरो एवं दूसरे देवताओ से सहायता लेने की आवश्यकता हुई अर्थात् जब हिन्दुस्तान के अन्य धर्मो से यह विशेष रूप से प्रकट होने लगा कि भक्ति रस भी एक निर्वाण मुक्ति का मार्ग है। तभी इन मे (जैन और बौद्ध मे) मूर्ति पूजा प्रारभ हुई। किन्तु जो लोग यह कहते है कि जैन मे बौद्धो की नकल से मूर्तिपूजा आई यह असत्य है। इन दोनो धर्मो वालो पर अन्य मूर्तिपूजको का प्रभाव अधिक पड गया, तभी इन्होने मूर्ति पूजा को प्रचलित किया।''

सार—उक्त विविध प्रमाणो से यह स्पष्ट हो जाता है कि मूर्ति पूजा जिन धर्म के विपरीत और भद्रबाहु स्वामी आदि विशिष्ट ज्ञानियो के बहुत बाद के जमाने मे अन्य धर्मो के देखा देखी भेड चाल से घुसी हुई एक विकृत त्रस स्थावर जीवो के हिसा रूप पाप से युक्त सावद्य प्रवृति है।

मूर्तिपूजकों की मानस दशा वार्ता—

जिज्ञेश—इस प्रकार के प्रमाण चर्चा युक्त मुहपति और मंदिर मूर्ति पूजा सम्बन्धी प्रकरण से मंदिर मार्गियो के मानस की क्या दशा होगी? शांत या अशात?

ज्ञानचन्द— शांत और विवेक वान प्रकृति के लोग इसे तटस्थ वृति से पढकर कुछ प्राप्त ही करेगे। शांति से प्रमाणो के उपर आत्म चितन कर कल्याण मार्ग मे अग्रसर होने मे उत्साहित होगे।

किन्तु अशात वृत्ति वाले अबूझ लोग या पक्षांध दुराग्रही लोग इस प्रमाण चर्चा से चमके या दमके अथवा भिडके और राग द्वेष करे तो इसमे कोई नई बात नही है। वैसे कुबुद्ध पंडित माने जाने वाले लोग तो यो भी समाज मे कुछ न कुछ कुबुद्ध चलाते ही रहते है उन्हे अपने वाह्याचार का और कुमत का अजीर्ण चलता रहता है। जिससे उत्पन्न होने वाली दुर्गन्ध बदबू कभी उनके मुह से और कभी हाथ मे रही लेखनी से निकलती रहती है।

अभी अभी ३-४ वर्षो से क्रियानिष्ठ कहलाने वाले मूर्तिपूजक रामचन्द्रसूरि के आचार्य भुवन भानुसूरी कई आचार्यो के एव साधुओ के टोले से साथ मे ही

चातुर्मास करते है। उनके उत्पाती गुणसुदर, भुवन सुदर और कर्पूर एण्ड कम्पनी हिण्डौन तथा गुणरत्न सूरी जितेन्द्र सूरी के डेड हुशियार चेले और ऐसे ही मिलिभगत से मणिसागर आदि लोग कपट प्रपच धूर्ताई के हथकडो के साथ कुबुध कर्तव्य कर रहे है। ये लोग ''शकाए सही समाधान नही'' नामक पुस्तक की सालोसाल आवृतियां निकाल कर कई पापो का, प्रपचो का, सेवन करके कर्म बाध कर भारी कर्मा बनते हुए भी खुश होकर, मन ही मन मानो फूल कर कुप्पा हो रहे है। जैसे इसी कर्तव्यो मे इन्हे मोक्ष का पट्टा मिलने जा रहा हो।

ये लोग अपनी आत्म साक्षी से भी ऐसे कामो मे पक्के चोर जैसी वृति अपना रहे है। क्योंकि पुस्तक के लेखक ये ही कम्पनी के लोग होते हुए भी डरपोक होकर छिपते है अर्थात् उस पुस्तक मे प्रेस का नाम भी नही लगाने देते, लेखक का स्वय का नाम भी गायब? अथवा उस पुस्तक को स्थानकवासियो द्वारा छपाने का और जिज्ञाशाए दिखाने का ढोग करते है और ऐसे ही झूठे नाम पते भी खोज कर डाल देते है। फिर उस पुस्तक की सप्लाई ये चार पांच मिली भगत के लोग अपने चातुर्मास के गांव से खुद करते है किन्तु पडोस के गांव से पोस्ट करवाते है और फ्रोम की छाप राणी के किसी व्यक्ति के पते की लगाते है और खुद चोर बन कर छिपना चाहते है। राणी मे यदि पूचछताछ की जाय तो वे अनजान बन जाते है और तत्सम्बन्धी बाहर से आये चर्चा पत्र व बेरंग पत्र रद्दी की टोकरी मे पडे रखते है।

चोर स्वभाव के ये लोग स्वयं जब करामाती पत्र भी पोस्ट से डालते है तो उसमे अपना पता देवे भी नही। और फिर झूठ भी बोल जाय कि हमने ऐसा पत्र दिया नही किन्तु दूसरे तरह से इनकी चोरी पकडी जाती है अर्थात् पोस्ट की छाप एवं हस्ताक्षरो से। कभी ये फ्रोम मे हिडोन सीटी के कर्पूर क का पता लिख देते है जो कि राजस्थान मे है और पत्र डाले जाते कोयम्बतूर या हुबली आदि दक्षिण प्रान्त से। कभी मुंहपति से ३६ दोष का पेपलेट मणिसागर के नाम से प्रकाशित करके भेजते है उसी अपनी चोर बन कर छिपने की वृति से। इसका कारण यह है कि ये सामने नही आना चाहते। पाप करके समाज मे बदबू गंदगी खुद के अजीर्ण की फैला कर भी ये सच्चे खुशबुदार बनने की सफाई रखना चाहते है। ऐसे धूर्त और धूर्त शिरोमणी और चोर वृति वाले अपने आप को शास्त्रो के ज्ञाता पंडित समझे तो यह उनकी मूर्खता और दब्बूपन है जो ज्ञान चर्चा मे छिप छिप कर तीर फेकने की वृति करके हिजडे बनकर कितने ही झूट प्रपंचो का आश्रय लेते है। इनकी यही वृति वास्तव मे इनके अपने पक्ष की असत्यता एव कमजोरी सिद्ध करती है।

ऐसे लोगो का किसी चर्चा विषय से क्या हाल होगा, इसे सोचने मे हमे कोई लाभ नही है।

सत्यान्वेषक बुद्धि वालो के लिये निष्पक्ष बुद्धि से एव सही प्रमाण पुरस्सर दी गई हमारी यह ज्ञान चर्चा अत्यन्त हितकर ही होने की आशा है। अत इस सत्य तत्व के कथन मे हिचक करने की अपने को कोई आवश्यकता नही है। हा झूठ कपट या धोखा वृति का आश्रय तो हमे कभी भी नही लेना चाहिये। और जो लोग ऐसी वृति का आश्रय लेकर भी अपने को जैनी, धर्मी या साधु, पडित समझे, तो यह उनकी केवल आत्म वंचना है साथ ही डरपोकपन एव दब्बूपन है।

जब इनका चोट्टापन सरेआम पकड कर फटकार लगाई गई तो अब कुछ नाम ठाम पुस्तक मे देने लगे हैं। किन्तु वृति तो अदर जो भरी है, वह साफ नही होती।

जिज्ञेश— मंदिर मार्गी जैनी होते हुए भी ऐसे कुबुद्ध वृत्ति के होते है क्या?

ज्ञानचन्द—इन मदिरमार्गियो का अपना माना हुआ सूत्र महानिशीथ सूत्र इनके कर्तव्यो से इन्हे मिथ्यादृष्टि आदि कई उपाधियो से विभूषित कर रहा है। यह उपर मंदिर मूर्ति चर्चा मे सप्रमाण बताया गया है। उसी के प्रभाव से ऐसे कई कुबुद्ध लोग निम्न कोटि के कर्तव्य करते रहते है। किन्तु सभी मंदिर मार्गी श्रमण श्रमणोपासक ऐसे नही होते है। फिर भी एक मछली सारे सरोवर को गदा कर सकती है। वैसे ही कोई कुबुद्ध कपनी समूचे समाज का नाम बदनाम करा देती है। आज भी मूर्ति पूजक समाज मे और इन्ही भुवन भानुसूरि तथा रामचन्द्रसूरि के समुदाय मे कई शांत, सौम्य, सुंदर प्रकृति के महात्मा लोग है, जिनके प्रत्यक्ष मिलने पर भी प्रेम शाति आत्मीयता आनद आदि की ही प्राप्ति एव वृद्धि होती है। एक खास बात यह भी है कि कर्पूर एण्ड क और मिली भगत के धूर्त लोग भी कभी दिखाऊ प्रेम से मिलते बोलते हैं। कुछ ही लोग ऐसे दूषित स्वभाव के होते है जिससे पूरा समाज कलकित होता है। वास्तव मे तो—

सभी सरीखे नर नही, नही सरीखी नार
कई भले कई बुरे, चला जात ससार।।

पीताम्बर जैन वार्ता—

जिज्ञेश—पीताम्बर धर्म जैन मे कब हुआ?

ज्ञानचन्द— यह कोई धर्म या सिद्धात या नया मत नही है। कभी किसी की व्यक्तिगत परिस्थितिक प्रवृति हुई थी जिसकी कुछ बुद्धि विहीन जनो ने नकल चालू रख दी है। जैसी कि एक बहुत बडी मूर्खता कुछ प्राचीन

मंदिर मार्गी साधुओ ने की थी वह यह है कि एक किसी आचार्य ने राजा सम्बन्धी विशेष परिस्थिति मे पाचम की सवत्सरी के लिए उस राजा की मजूरी न होने पर और अन्य दिवस सवत्सरी करने का आग्रह होने पर चौथ की संवत्सरी कर दी थी तो फिर बहुतो ने आगम आज्ञा से आंख मीच कर उसी को पकड लिया। ऐसी मूर्खो की बुद्धि पर बडी दया आती है कि ये लोग जानबूझ कर भगवद् आज्ञा के बिल्कुल विपरीत प्रवृति किसी की खोटी नकल से कर लेते है, फिर उसे परंपरा बना देते हैं, आगे चल कर उसे सिद्धांत मानने के दुराग्रह मे पड कर मन मुताबिक शास्त्र मे पाठ भी जोड देते है, भले वह पाठ वहा बेतुका ही क्यो न दिखे। सार यह है कि पीताम्बर कोई सैद्धान्तिक स्वतंत्र धर्म नही है किन्तु विकृत नकल मात्र है। प्रमाण के लिये—

जैन तत्वादर्श'' नामक ग्रन्थ मे पीताम्बरी आत्माराम जी लिखते है कि—
''महावीर प्रभू के साधुओ के वस्त्र तो सफेद ही होते थे किन्तु गणि सत्यविजय जी ने किसी विशेष कारण से वस्त्र पीले रग से रंगे थे। इस कारण रगना प्रारभ हो गया चल गया। हमारे वृद्ध गुरुओ की यह श्रद्धा नही थी कि साधु वस्त्र रग कर धारण करे।''

इसी प्रकार चौथ की संवत्सरी की नकल चलाई यह भी इन्ही मंदिर मार्गियो के ग्रंथो व्याख्याओ मे लिखा हुआ है। ऐसी मूर्खतापूर्ण नकलो से इस ज्ञानी जैन समाज मे भी कई भेड चाल की परंपराएं चल रही है, यह महदाश्चर्य है। उन भेड चाल की कई परंपराओ का दुराग्रह भी इतना अधिक हो मया है कि कितने ही प्रमाणो से और आगम से भी समझा दिया जाय तो भी आज के ये कई लोग पकडी परंपराओ को छोडने के लिये तैयार ही नही होते अपितु ज्यो त्यो करके खोटे पहलुओ से भी आगम विपरीत खोटी परंपराओ को सत्य और शास्त्रोक्त एवं कल्याण कर सिद्ध करने की बुद्धिमानी करते रहते है। साथ ही सही आगमोक्त चितन प्रकट करने वालो का ये कई गुणी शक्ति के साथ विरोध भी करते है। यह स्पष्ट ही व्यक्ति और समाज की पतन की एक दशा है। क्योकि आगम श्रद्धा और बौद्धिक विकास युक्त समाज होते हुए भी यह ऐसे परंपराओ के व्यामोह मे फंसता जा रहा है।

''चतुर्थ स्तुति निर्णय शंकोद्धार'' नामक ग्रन्थ मे एवं ''जैन मत वृक्ष'' नामक ग्रन्थ मे भी लिखा है कि पहले साधु सफेद वस्त्र ही रखते थे और सफेद वस्त्र की धारणा थी।

''**गच्छाचार पइण्णा**'' मे रंग वाले वस्त्र या रंग बिरगे वस्त्र का उपयोग करने वालो के लिये लिखा है कि ''वह जैन साधु ही नही है किन्तु भाड है और गच्छ मर्यादा से बाहर है।''

''योग शास्त्र'' पृ २६३ मे रंगे वस्त्र धारण करने वालो को ''कुपात्र'' लिखा है।

ये मंदिर मार्गी समस्त साधु-साध्वी रजोहरण पर लगाने वाले निशीथिया मे भी अंदर एक रग-बिरंगे चित्रामयुक्त कसीदा कारीगरी से भरा हुआ कपडा रखते है। जिसे अन्य कपडो से ढक कर छिपाकर रखते है।

इस प्रकार गणधरो के शास्त्र विधानो की उपेक्षा तो ये लोग करते ही है किन्तु खुद के बडेरे गुरूओ के कथनो की भी उपेक्षा करके, बहुमत मिलाकर बेधडक कोई भी प्रवृति चला देते है चाहे वह दंडा हो या हडा हो या तर्पणी हो या स्थापनाचार्य चाहे वासक्षेप हो या दंडासण, चाहे रजोहरण को भी रजोहरण का बच्चा बना दे जिससे कि चलते समय पूंजना भी न हो सके तो एक डडासन पूंजने के लिये और रखले। फिर उस अर्थात् रजोहरण की लकडी पर ढेर सारे कपडे लपेट दे एव कसीदे से भरा कपडा भी अंदर छिपाकर डाल दे फिर पूंजने के लिये नया डंडापन (डाडिया) रख ले, इत्यादि यह तो इन लोगो मे एक व्यापक प्रवाह है कि जो जचा सो चलाया। बस बहुमत मिल जाना चाहिये फिर ये मस्त है, चाहे आगम कुछ कहो या इनके बडेरे भी कुछ भी लिखते रहो। इन्हे किसी की परवाह नही है।

रात्रि में पानी की वार्ता—

जिज्ञेश— रात्रि मे साधुओ मे पानी रखने की परपरा कैसे चली ?

ज्ञानचन्द—गणधरो के रचित आगमो मे और इन मंदिर मार्गी ग्रन्थो मे, राजेद्र सूरि के संपादित राजेन्द्र कोष मे भी जैन साधु साध्वी को रात्रि मे पानी रखना या आहार रखना पूर्णतया निषिद्ध है एवं स्पष्ट रूप से निशीथ सूत्र के दसवे उद्देशे मे प्रायश्चित विधान भी है। फिर भी किसी व्यक्ति ने कभी किसी अपवाद परिस्थिति से रख लिया होगा और प्रायश्चित भी ले लिया होगा। तो भी भेड चाल वाले फौरन नकल कर ही लेते है। आज भी प्रमाण रूप मे वे शास्त्र और ग्रन्थ आदि मौजूद ही है फिर भी बेधडक रात्रि मे पानी रखने लग गये है।

जिज्ञेश—वे लोग ऐसा भी कहते हैं कि पानी के अभाव मे साधु रात्रि मे शौच

निवृत्ति के समय शुचि किससे करते, क्या यो ही रहते या फिर मूत्र से शुद्धि करते है?

ज्ञानचन्द—मूत्र एक शरीर का निष्कासित पदार्थ है फिर भी उसे लोक मे एकांत अशुचि मानकर व्यवहार नही किया जाता है। प्रसंग प्रसंग पर लोग बच्चो को स्वयं का मूत्र पिलाते है। कोई चोट या चीरा आने पर मूत्र का प्रयोग किया जाता है। वैद्यक ग्रन्थो मे इसे ''सर्वोषधि'' कह कर कई रोगो के उपचार मे पीने एवं लेप या मालिस करने का निर्देश किया गया है। जैनागमो मे आचाराग मे ''**मोय समायारे**'' शब्द से साधु को समय समय पर उसका उपयोग करने वाला कहा है। मूर्ति पूजक श्री राजेन्द्र सूरि के बनाये अभिधान राजेन्द्र कोश के ''पिसा कप्प'' शब्द मे भी इसके लिये अशुचि निवारण आदि के उपयोग मे आने का क्थन है। तथा जैनागम व्यवहार सूत्र के मूल पाठ मे सात दिन की चौविहार तपस्या वाली विशिष्ट पडिमा मे दिन को अपना निर्दोष मूत्र पान करना कहा गया है। उसकी व्याख्या मे मंदिर मार्गी आचार्यो ने उस मूत्र का गुणानुवाद करते हुए बताया है कि इससे शरीर स्वस्थ एवं कंचन वर्णी बन जाता है। अत पानी के अभाव मे रात्रि मे साधु अपनी रुचि अनुसार कुछ भी विवेक कर सकता है।

यद्यपि आगम ''व्यवहार सूत्र'' के मूल पाठ मे रात्रि मे मूत्र पीना स्पष्ट निषेद्य किया गया है फिर भी हमारे ये निदक मूर्तिपूजक अपने ही संस्कृत ग्रन्थो मे, कोषो मे तो लिखते ही है किन्तु आम जनता के उपयोग मे आने वाले पंच प्रतिक्रममण सूत्र की पुस्तक मे भी छपा देते है।

प्राचीन पच प्रतिक्रमण की पुस्तक पृ ४७९ मे लिखा है कि यद्यपि चौविहार के नियम वाला रात्रि मे कोई वस्तु खाता पीता नही है फिर भी सर्व जाति का अनिष्ट मूत्र यदि रात्रि मे पी ले तो कोई हानि नही।

इस वाक्य को जब नाभा की राजसभा मे सप्रमाण बताया गया तो उसके बाद इन्होने वैसा वाक्य पच प्रतिक्रणमण की पुस्तक मे से निकाल कर उसकी जगह दूसरा पन्ना छपाकर जोड दिया, किन्तु इनके कोष और ग्रन्थो मे आज भी वैसा क्थन मौजूद है।

अत इनको ऐसी, व्यर्थ की निदा करने का कोई अधिकार ही नही है और ये विवेक हीन स्वार्थ वश ऐसी झूठी निदा कर्म करके जिन धर्म को लज्जाते है इसलिये भी शर्महीन महा कुपात्र की कोटि मे आते है। क्योकि खोटी निदा के नशे मे इनको यह भी भान नही रहता कि हम अपनी जघा उघाड कर जगत मे

जिनधर्म को लजाकर शर्म हीन बनते है और व्यर्थ मे ही लोक हंसी के पात्र बनते है।

शास्त्र पाठ में चोरियों की वार्ता—

जिज्ञेश—क्या उपर कहे अनुसार शास्त्रो मे पन्ने या शब्द आदि भी जैन साधु लोग पलटते रहले है?

ज्ञानचन्द—एक अंग्रेज उपासक दशा सूत्र का अंग्रेजी मे अनुवाद कर रहा था किसी पाठ मे उसे संदेह सा हुआ उसने अनेक प्रतिएं देखी फिर निश्चय करके यह लिखा कि—

सवत १६२१ और सवत्त १७४५ तथा संवत् १८२४ मे लिखी हुई प्रतियो मे केवल ''चेइयाइ'' इतना ही शब्द है और सवत् १९१६ और सवत् १९३३ मे लिखी हुई प्रतियो मे ''अरिहत्त चेइयाइ'' ऐसा शब्द है। इससे यह स्पष्ट मालूम होता है कि सवत् १८२४ के बाद की प्रति मे किसी ने भी यह शब्द प्रक्षिप्त किया है।

प्रमाण के लिये सन् १८८८ मे अर्थात् संवत १९४५ मे छपी हुई अंग्रेजी की उपासक दशा की पुस्तक के पृ २३ मे नोट न ९६ देख सकते है। इस पुस्तक के अनुवादक है ''ए एफ रोडाल्फ हारनल साहब पी एच डी '' यह पुस्तक आज से १४७ वर्ष पहले छपी है।

पाठक सोचे कि एक अंग्रेज ने यह फैसला दिया है उसी से सिद्ध है कि, जब जिसको जो मन भाया शास्त्र मे प्रक्षिप्त करने की चोरिया करते नही चूकता है। इस उपासक दशा मे जो यह शब्द डाला गया है यह मंदिर मार्गियो के द्वारा अपने जैन मदिर के पक्ष का आगम प्रमाण बनाने के लिये डाला गया है। कैसे रंगे हाथ पकडे गये है ये चोर। फिर भी ''परोपदेशे पाडित्यं'' की उक्ति चरितार्थ करके कहते रहते है कि शास्त्रो मे एक शब्द भी हीनाधिक करना महापाप है। महान संसार भ्रमण का कार्य है। यह घोष भी खुद की चोरी और धूर्तता की पालिसि को कोई हटा न दे इसके लिए है अर्थात् हमने अरिहंत शब्द डाला जो तो कुछ नही किन्तु अब जो निकालेगा उसे शास्त्र की और शास्त्रकारो की महान आशातना लगेगी और घोर संसार मे पडेगे। हां हम चोरो की आशातना लगेगी ऐसा तो ये नही कहते है, यही इनकी अपनी बुद्धिमानी और इमानदारी है।

ऐसे ही कई प्रक्षेप इन लोगो ने स्वार्थ वश किये है, जो अन्वेषक बुद्धि वालो को ही समझ मे आ सकता है। चाहे वह हिन्दु हो या अंग्रेज **''जिन खोजे तिन पाइया, गहरे पानी पेठ''** वह सही तत्व पा ही लेता है।

खोटी पकडी परंपरा की पापमय विधिवाली मूर्ति पूजा के लिये ऐसे खोटे पाप

करने पड रहे है। इसी वृति से जगह जगह ''**णमोत्थुणं**'' का पाठ भी लगा रखा है, कही मूर्तियो का वर्णन डाल रखा है, कही देवलोको मे भी महावीर और ऋषभ नाम डाल रखा है, ऐसा तो मूल आगम पाठो मे इन्होने कर रखा है, तो ग्रन्थो मे और शास्त्र की टीका चूर्णि निर्युक्तियो मे कहा क्या क्या डाला होगा इनकी करतूतो को तो भगवान ही जाने। अत किसी भी प्राचीन आगम या ग्रन्थ या व्याख्याओ को पढने मे समझने मे उक्त अंग्रेज के समान विवेक आंख तो खोल कर ही रखनी चाहिये। अंधे बने रहने मे तो धूर्तो की धूर्ताई ही पल्ले पडने वाली है। क्योकि ''जिनका जैसा पड्या स्वभाव जासी जीव सूं।'' सांच को कही आंच नही है। कोई न कोई मार्ग उपाय मिल ही जाता और झूठे को एक झूठ के लिए अनेक (सौ) झूठ करने पडते है। फिर भी दुर्भाग्य से बुरी तरह फंस कर कभी पकडा ही जाता है।

इसीलिए एक मंदिर मार्गी अन्वेषक विद्वान ने स्पष्ट शब्दो मे कहा है '' जिसका आशय यह है कि आज के उलब्ध आगम सर्वज्ञ वाणी नही है यह मानने की तो आवश्यकता नही है। तथापि उपलब्ध आगम का एक एक अक्षर सर्वज्ञ वाणी ही है इसमे किंचित भी किसी ने परिवर्तन नही किया या इतने लम्बे काल मे कोई अक्षर कम ज्यादा नही हुआ ऐसा मानना भी सर्वथा अनुचित है। तथा भगवतो को और उनकी वाणी को दोषी ठहराने का ही कर्तव्य होता है'' **देखे– वृहत्कल्प भाष्य भाग ६ की प्रस्तावना।** यहां शास्त्रोद्धारक मूर्तिपूजक मुनिराज श्री पुण्य विजयजी ने अपने अन्वेषण अनुभव से गीतार्थ मुनियो को आगमो मे भी विवेक बुद्धि रखने की सूचना की है। तब स्थानकवासी श्रमण यदि विकृत जैन साहित्य मे और जैन अजैन धूर्तो की धूर्तता से अंकित आगम स्थलो मे विवेक बुद्धि रखे और विवेक बुद्धि रखने की प्रेरणा करे, तो इसमे किसी भी प्रकार का अपराध क्या है? फिर भी कोई अपराध माने तो वह उनकी स्वार्थपूर्ण अंधबुद्धि का प्रभाव ही है ऐसा मानना चाहिए।

बावीस अभक्ष्य वार्ता—

जिज्ञेश—२२ अभक्ष्य के सम्बन्ध मे क्या समझना चाहिए।

ज्ञानचन्द—किसी भी साधु ने या समुदाय ने त्याग बुद्धि से चलाये हो वहां तक तो ठीक है। क्योकि जिनशासन मे त्याग का तो विशेष महत्व है ही। किन्तु उनमे से किसी भी वस्तु के लिए एकातिक सर्व व्यापक निषेध करना अनुचित है। साथ ही उन पदार्थो के विषय मे कोई निरुपण प्ररूपण आगम निरपेक्ष एवं आगम विरुद्ध करना तो सर्वथा अनुचित कर्तव्य है।

२२ अभक्ष्यो के लिये भी ऐसे अनेक कर्तव्य हो रहे है अर्थात् आगम निरपेक्ष एव आगम विरुद्ध खोटी परुपणाएं चल गई है। अत यह त्यागवृति मूलक २२ अभक्ष्य का विषय भी आत्मा को गुस्सा घमड परापकर्ष निदा कुतर्को आदि के द्वारा खोटी प्ररुपणा और मन चाहा आगमो मे प्रक्षेप करने के महापाप का भागी बना रहा है।

इसमे मक्खन त्याग के साथ ऐसी फिजूल की बाते लगादी है, जो मूल आगमो से विरुद्ध है तथा निर्युक्तिकारो से भी विरुद्ध है। क्योकि आगमो मे अनेक जगह मक्खन साधु को लेने का विधान है और १० घटे तक रखने का भी मौलिक आगम मे विधान है।

''**परिठावणिया निर्युक्ति**'' मे भी मक्खन लाने, खाने आदि सम्बन्धी विवेक बताया गया है।

अत मक्खन सम्बन्धी एकातिक खोटी मान्यता जो चलाई गई है, वह अप्रमाणिक है और उसी कारण एकांत अभक्ष्य कहना दुराग्रह है।

जमीकद का भी एकांतिक आग्रह और प्ररुपण आगम विरुद्ध है आगम आचारांग मे अचित लेने का विधान भी है। दशवैकालिक मे सचित कदमूल लेने का निषेध है।

द्विदल के सम्बन्ध मे दही संयोग से जीवोत्पति मानने की परंपरा भी तर्क से असगत एवं अप्रमाणिक है। क्योकि कोई भी वस्तु के तत्काल विकृत होने और जीवोत्पति होने का कायदा करना ही गलत है। जैसे कि मक्खन के लिये भी तत्काल जीवोत्पति होने का किया गया कायदा आगम प्रमाण से गलत सिद्ध हो चुका है। उसी आगम प्रमाणो से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्येक चीज का स्वभाव और शुद्ध रहने की क्षमता अलग अलग होती है। क्षेत्र काल वातावरण भी उसमे सहयोगी होते है।

उसकी परीक्षा का ज्ञान यह है कि उस वस्तु के अंदर वर्ण मे गंध में रस मे स्पर्श में अशुभ विकृति होने पर जीवोत्पति होने का स्वभाव हो सकता है, उसका कोई समय निर्धारित नही किया जा सकता किन्तु वातावरण, संयोग, विवेक आदि की तारतम्यता से उसके विकृत होने के समय मे अंतर पडता है। **यथा**—गीला आटा सर्दी के दिन है तो १० घंटे भी खराब नही होगा, गर्मी के दिन है तो ४-५ घंटो मे भी विकृति आ सकती है। किन्तु फ्रीज मे रख दिया तो उसकी अवधि और बढ जाती है। उसी प्रकार मक्खन को पानी या छाछ के संयोग मे रखने पर, गर्मी के मौसम मे फ्रीज मे रखने पर और बिना पानी छाछ के गर्मी मे रखने पर, उसके अदर विकृति आने के समय मे अंतर पड जायेगा। इसी तरह

सभी पदार्थों के लिये समझना चाहिये। जिसकी परीक्षा चक्खने से विकृत अशुभ स्वाद लगे, सूघने मे विकृत अशुभ गध आवे, स्पर्श रूप मे लार बनती दिखाई दे या लील फूल आ जावे इत्यादि तरीको से खाद्य या पेय सामग्री की परीक्षा की जा सकती है और विकृति समझ मे आने पर ही उसमे जीवोत्पति का निर्णय किया जा सकता है। यह सब ज्ञान भी अनुभव चितन एव विवेक बुद्धि तथा अभ्यास से प्राप्त होता है।

शहद और मक्खन को महा विगय कहा गया है अत इनका त्याग करना तो श्रेष्ठ ही है। किन्तु मद्य और मांस के आहार को आगम मे नरकायु बंधने का कारण बताया है उसके समकक्ष अखाद्य अभक्ष्य तो इन शहद और मक्खन को नही कहा जा सकता।

अन्य अभक्ष्य मे रात्रि भोजन एव अनेक वनस्पतिया है जिनके त्याग करने मे लाभ ही है हानि का कोई प्रश्न ही नही है।

सार यही है कि २२ और २२ से भी अधिक वस्तुओ का त्याग या त्याग की प्रेरणा करना श्रेष्ठ ही है किन्तु उसके स्वरूप कथन मे आगम विपरीत 'अतिशयोक्ति युक्त कथन प्ररुपण नही होना चाहिये। तथा भेड चाल या दृष्टि भ्रम भी नही होना चाहिये।

जानकारी के योग्य वे प्रचारित २२ अभक्ष्य ये है—

१-५ बड, पीपल, प्लक्षु, उम्बर, कालुंबर इन पांच के फल, बहुबीज एव सूक्ष्म बीजी होने से। ६-९ शहद, मक्खन, मद्य, मांस, ये चार महाविगय है इनमे दो प्रशस्त है दो अप्रशस्त है। १० बर्फ, ११ वर्षा मे गिरने वाले ओले (गडे) १२ खड्डी मिट्टी १३ विष १४ रात्रि भोजन १५ द्विदल (कच्चा दही और द्विदल का संयोग) १६ रस चलित पदार्थ (विकृत रस होने पर दुर्गन्ध आने लग जाय। १७ तुच्छ फल १८ बहु बीज फल १९ अजाण फल २० बेगन २१ बोर नु अथाण २२ अनत काय

अनंत काय वार्ता—

जिज्ञेश—अनंत काय का क्या मतलब है?

ज्ञानचन्द—जिसमे एक छोटे से शरीर मे अनंत जीव रहते है, प्रतिक्षण जन्मते मरते रहते है, वह अनंत काय के पदार्थ कहे जाते है।

जिज्ञेश—छोटे शरीर से क्या आशय है?

ज्ञानचन्द—एक सूई की नोक पर आवे उतने अश मे असंख्य गोले (वृत) होते है, प्रत्येक गोले मे असंख्य प्रतर होते है, प्रत्येक प्रतर मे असंख्य शरीर होते है और उस छोटे से प्रत्येक शरीर मे अनत अनंत जीव होते है।

जिज्ञेश—ये अनंतकाय क्या कद मूल ही होते है?

ज्ञानचन्द—कंद मूल तो अनत काय होते ही है, इसके अतिरिक्त भी अनेक अनतकाय होते है। यथा—

१ जहां भी, जिसमे भी, फूलण (काई) होती है, वह अनंतकाय है।

२ जिस वनस्पति के पत्ते आदि किसी भी विभाग मे दूध निकलने की अवस्था है जैसे— आकडे का पत्ता, कच्ची मुंगफली (सिग) आदि।

३. जो कोई भी हरी तरकारी या वनस्पति का हिस्सा तोडने से एक साथ ''तट्ट'' ऐसी आवाज करते टूटे और सम कट जाय जैसे भीडी तुराई ककडी।

४ जिस वनस्पति को गोलाकार चक्कू से काटने पर उसकी सतह पर रजकण सरीखे जलकण हो जाय।

५ जिस वनस्पति की छाल भीतरी तने से भी जाडी हो वह तना अनंतकाय।

६ जिस पतो मे नसे न दीखे।

७ जो कंद और मूल भूमि के अंदर पक कर निकलते है।

८. सभी वनस्पति की कच्ची जडे।

९ सभी वनस्पति की कच्ची कौपल।

१० कोमल एवं नसे न दिखने वाली पंखुडियो वाले फूल।

११. भीगाये हुए धान्यो मे तत्काल निकले हुए अंकुर।

१२ कच्चे कोमल फल यथा– इमली आदि, मंजरी आदि।

इत्यादि लक्षण वनस्पति के किसी भी विभाग मे दिखते हो वे सभी विभाग अनत काय होते है। विशेष जानकारी एवं प्रमाण के लिये पुष्प ९ का वनस्पतिज्ञान सम्बन्धी परिशिष्ट देखना चाहिए अथवा पन्नवणा सूत्र का अध्ययन करना चाहिये।

कद मूल के कुछ नाम इस प्रकार है—

१. आलु २. रतालू ३. सूरण कद ४ वज्रकंद ५ हल्दी ६ अदरक ७ कांदा (प्याज) ८ लसण ९ गाजर १० मूला ११ अरवी १२ शकरकंद इत्यादि।

वासक्षेप वार्ता—

जिज्ञेश—वासक्षेप क्या है क्यो डाला जाता है?

ज्ञानचन्द—कल्पसूत्र कथित भगवान महावीर स्वामी का २००० वर्ष का भस्मग्रह समाप्त होने पर जब पुन: शुद्ध धर्म अर्थात् स्थानकवासी धर्म चला। महान आत्मा श्री लोकाशाह द्वारा उस सत्य अहिसा पूर्ण धर्म का जोरो से प्रचार बढने लगा। मंदिर मार्गियो का अपना प्रभाव कम पडने लगा तब उन्होने लोगो पर मंत्रित पावडर (भुरकी) डालना शुरु किया ताकि

जिसके शिर मे यह पावडर डाला जाय, वह उन लोकाशाह के प्रभाव मे न आ सके। किन्तु यह चमत्कार भी उन का ज्यादा कामयाब नही हुआ था। आधे से ज्यादा अर्थात् १५ लाख जैनी मे से आठ लाख जैनी को उन्होने शुद्ध धर्म से संलग्न कर दिया था। उस समय के उनके उपदेश का मौलिक विषय था जैन साधु का शुद्ध महाव्रत एवं आचार का स्वरूप बताना एव व्यर्थ के पापकारी आडम्बरो का अर्थात् संघ निकालना, पूजा प्रतिष्ठा करना, मदिर बनवाना आदि सावद्य सपाप प्रवृतियो का विरोध करना और ''अहिसा परमोधर्म'' को साकार करना।

अब तो यह वासक्षेप पावडर चंदन का चूरा आदि अच्छी अच्छी ४०-५० चीजो के पिष्ट मिश्रण से कुछ मंत्र जाप संयोग द्वारा तैयार किया जाता है और अब इसका उपयोग केवल भक्तो को खुश रखने के लिये या पैसा पटकवाने के लिये किया जाता है और भगत लोग अपने ऐहिक पारिवारिक सुख सुविधा की आशा लेकर डलवाते है। प्राय सभी पदवी प्राप्त और संघाडा प्रमुख के पास यह रेशमी कपडे का डिब्बा सरीखा पोटला वासक्षेप से भरा रहता है। ऐसा उक्त मंदिर मार्गी समुदाय मे वह रिवाज है अन्य दिगबर तेरापंथ या स्थानकवासी समुदायो मे यह रिवाज नही है।

''कय वलि कम्मा'' की वार्ता—

जिज्ञेश—आगमो मे अनेक जगह ऐसा पाठ आता है कि– ''**कय वलि कम्मा**'' इसका क्या तात्पर्य है?

ज्ञानचन्द—यह एक प्रकार का संक्षिप्त पाठ है यथा– किसी विस्तृत वर्णन को संक्षिप्त मे कहना हो तो उसके लिये आगमो मे ''**वण्णओ**'' शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार आगमो मे स्नान की विधि का विस्तृत वर्णन होता है वहां प्रश्नगत शब्द नही आता है किन्तु जहां पर भी स्नान की विधि का संक्षिप्त कथन किया गया है वहां उक्त ''कय वलि कम्मा'' शब्द का प्रयोग किया गया है। अत यह स्पष्ट होता है कि यह एक प्रकार का संक्षिप्त पाठ रूप संकेत शब्द है। इसका अर्थ है ''अन्य भी संपूर्ण स्नान सम्बन्धी कर्तव्य किये। कय = किये, वलि = और भी अन्य, कम्मा = स्नान सम्बन्धी कर्तव्य विधि।

यह उक्त शब्द प्रयोग का सही प्रयोजन- आशय है। किन्तु वलि के स्थान पर भ्रम से ''बलि'' पढ लिया जाता है और अर्थ बलिकर्म से जोड दिया जाता है वास्तव मे यह लिपि दोष और मतिभ्रम से चल पडा है। किन्तु स्नान की शास्त्रोक्त विस्तृत विधि मे बलिकर्म नामक कोई वस्तु या विधि है ही नही। उदार बुद्धि से विचार करने पर समझ मे आ सकता है कि स्नान और स्नान स्थल मे कपडे पहनने के पूर्व बलिकर्म कृत्य का कोई सम्बन्ध संभव नही है। उसे वहां जोडना मात्र अविचारकता है।

क्योकि स्नान की संक्षिप्त विधि मे बलिकर्म किया जाय तो विस्तृत विधि मे कहां जाएगा। वहा तो अवश्य मिलना चाहिए किन्तु ऐसा वर्णन शास्त्र मे है नही।

यह उक्त भ्रम केवल ''व'' को ''ब'' पढने से चल पडा है। इस मे और कोई सूक्ष्म विचारणा की वार्ता नही है। शब्दार्थ और भावार्थ दोनो ही उपर कर दिये गये है।

इस प्रसग मे भी विद्वान कहे जाने वालो की भेड चाल वृति आज तक रही है। नकल मे अकल लगाने की स्टेज तक वे नही पहुंच पाये है। उन्होने किसी न किसी तरह स्नान के समय बलि कर्म करने प्रवृति को समझाने की कोशिश की है। किन्तु सीधा और सरल चितन कोई भी नही कर सके कि बलि कर्म कब कहां होता है क्या कभी स्नान घर के अंदर बैठे बैठे भी बलिकर्म हो सकता है? क्या वहां भोजन सामग्री या बलि की सामग्री लेकर बैठते है?

अत स्नान के साथ बलिकर्म नामक कोई तत्व नही जुड सकता है। **''कय वलि कम्मा''** यह स्नान विधि का सूचक संक्षिप्त पाठ है। ऐसा नि संदेह मान्य करना चाहिये। ऐसा समझ लेने पर किंचित भी उलझन नही रहती है। एवं सूत्र पाठ का प्रसंगानुकूल उचित अर्थ भी समझ मे आ जाता है।

एकलविहारी वार्ता—

जिज्ञेश—एकल विहारी साधु विचरणे सम्बन्धी क्या परंपरा है?

ज्ञानचन्द—साधु का एकल विहार तो आगमोक्त एक विशिष्ट साधना है। प्रत्येक साधु का और गच्छ प्रमुख का भी यह सदा का मनोरथ मनोकामना है कि कब मै गच्छमुक्त एकल विहार चर्या धारण करूं। इस मनोरथ का वर्णन ठाणांग सूत्र के तीसरे अध्याय (ठाणे) मे है।

कुछ साधु अपनी आत्मा की आपत्कालीन उत्पन्न कर्मजन्य परिस्थिति से भी एकल विहार धारण कर सकते है यह भी आचाराग दशवैकालिक उत्तराध्ययन सूयगडांग सूत्र आदि मे स्पष्ट कथन है। इस प्रकार आगमो के वर्णन से यह एकलविहार दो प्रकार का सिद्ध होता है (१) पहला विशिष्ट साधनाओ के लिये

गुरू आज्ञा और सत्कार सन्मानपूर्वक मर्यादित काल या आजीवन के लिये होता है। दूसरा (२) अपनी कर्मजन्य, शरीर जन्य अथवा शुद्ध सयम साधना निमित्तक उत्पन्न परिस्थिति से गच्छ से उदासीन होकर विवेक पूर्वक स्वत वहां से अपने को अलग करके विचरण करना।

यह दूसरी एकल विहार साधना भी स्पष्ट रूप से आगम कथित होते हुए भी गच्छाभिमानी कषाय पूर्ण एवं स्वार्थपूर्ण मानस वाले लोगो एवं साधु-साध्वियो द्वारा निदा और विरोध तथा तिरस्कार पूर्ण वातावरण मे परिवर्तित कर दी गई है और बहुलपक्ष होने से ऐसी एकांत प्ररूपण का दौर भी चला दिया गया है जो कि एकांत प्ररूपण होने के कारण आगम विपरीत एवं द्विष्ट बुद्धि जन्य होने से स्व पर अहित कारक है।

इस सम्बन्धी विशेष आगम प्रमाणो की चर्चा सहित तटस्थ जानकारी पुष्प ४ सूयगडांग सूत्र सारांश के परिशिष्ट मे देखे।

पर्व तिथि वार्ता—

जिज्ञेश—संवत्सरी पक्खी चातुर्मासी आदि दिनो के लिये ऐसी बहुरूपता की परंपराएं क्यो चल रही है? एकता क्यो नही होती है?

ज्ञानचन्द—पंचमी और पूनम अमावश की चली आई प्राचीन परंपरा मे कभी परिस्थिति से परिवर्तन करना पड जाय तो ढर्रे पंथी की बुद्धि वाले लोग या गधे का पूंछडा एक बार पकड के फिर लातो की मार खावे तो भी नही छोडने की वृति वाले लोग, उसे ही विकृत परंपरा बना लेते है और जिस प्रकार भवितव्यता वश अनेक खोटे धर्म भी जगत मे चल जाते है, वैसे ही जैन धर्म मे ऐसी कई अनागमिक या विकृत परंपराएं चल जाती है। कभी किसी बात का कोई आगम से समाधान नही कर पाने से भी मन चाही प्रवृति चल जाती है। इस सम्बन्ध स्वतंत्रता निबंध पुष्प ६ मे एवं पुष्प १२ मे देखे तथा ईसी पुष्प मे आगे ''संवत्सरी विचारणा संवाद'' देखे।

धातु ग्रहण धारण वार्ता—

जिज्ञेश—धातु की चीज रखने सम्बन्धी परंपरा क्या है?

ज्ञानचन्द—तीन जाति के पात्र रखने एवं अन्य जाति के न रखने का वर्णन आगम मे है। एवं सकारण रखा जाने वाला दंड भी काष्ठ बेत आदि का रखने का विधान है। साधना प्रमुख साधक की प्रत्येक उपधि अत्यावश्यक एवं सामान्य जातीय ही होनी चाहिये। यह उसके अपरिग्रह

महाव्रत का विषय है। किन्तु समय प्रभाव से जब लेखन कार्य स्वीकार करना पडा है तब उसमे समय शक्ति के खर्च का विवेक तो रखना ही चाहिए। परंपरा का दुराग्रह नही रखना चाहिये किन्तु हानि लाभ का विचार कर आगम से उसकी चितवना करनी चाहिये। ऐसा करने पर अत्यावश्यक उपकरण चश्मा पेन आदि धातु के हो जाय तो किसी भी आगम से विरूद्ध नही है एवं अन्य अनेक दोषो प्रमादो का भी इससे बचाव हो जाता है। इस विषय मे विशेष सप्रमाण चर्चा का संवाद पुष्प १२ छेद सूत्र परिशिष्ट खंड २ मे दिया है वही से विस्तार मे समझ लेना चाहिये।

पोस्टेज रखने सम्बन्धी वार्ता—

जिज्ञेश—पोस्टेज रखना भी क्या अशुद्ध परंपरा है; परिग्रह महाव्रत मे दोष है ?

ज्ञानचन्द—जैन साधु का पोस्ट लिखना और लिखाना अथवा गृहस्थ द्वारा समाचार भेजना या मंगाना भी एक सपरिस्थितिक प्रवृति है। यो कुछ भी लिखना भी एक परिस्थितिक प्रवृति है। क्योकि प्रश्न व्याकरण आदि सूत्रो मे साधु के उपकरणो मे कही भी लिखने की सामग्री या पुस्तके रखने का उल्लेख नही है। यह लेखन प्रवृति और तत्संबन्धी अनेक उपकरण सपरिस्थितिक प्रवृतिया ही है।

सपरिस्थितिक प्रवृतिमे यह विवेक रखना आवश्यक है कि कितनी प्रवृति की आवश्यकता है और किस तरह करने मे क्रिया, प्रमाद, गृहस्थ सेवा आदि कम से कम लगे।

अत. जब लेखन आवश्यक हो रहा है या पोस्ट आदि का कार्य भी आवश्यक हो रहा है तो तत्सम्बन्धी लेखन की एवं पोस्टेज सामग्री रखने मे प्रमाद आदि की कमी होने से विवेक ही कहलायेगा।

परिग्रह सम्बन्धी आगम निर्देश तो धन, सोना, चांदी के लिये ही है अन्य उपयोगी सामग्री के लिये नही। धन का अर्थ किया है कि आदान प्रदान खरीदी बिक्री के व्यवहार मे उपयोगी मुद्राएं रूपये पैसे आदि।

व्यवहार दृष्टि से भी जो इकाई बाजारमे लेन देन विक्रय क्रय मे आम तौर से उपयोगी होती है वे पैसे रूपये आदि इकाई ही धन मे कही जाती है और ऐसा उत्तराध्ययन सूत्र की टीका मे भी स्पष्ट है। अन्य अल्प या अधिक कीमत की आवश्यक उपयोगी वस्तुएं धन रूप परिग्रह मै नही कही गई है। यो तो साधु के उपकरण रजोहरण पात्र वस्त्र आदि की भी अत्यधिक कीमत होती ही है। इस विषय के प्रमाणोल्लेख भी उपरोक्त धातु सम्बन्धी निबंध मे १२वे पुष्प मे देखे।

सूर्य प्रज्ञप्ति वार्ता—

जिज्ञेश—चन्द्र प्रज्ञप्ति और सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र एक ही है या अलग अलग सूत्र है।

ज्ञानचन्द—ये सूत्र भी मध्यकाल मे हुई विकृति के प्रभव से प्रभावित है। सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र के प्रारम्भ मे जो प्रतिज्ञा की गई है उसमे इस का नाम ''ज्योतिष राज प्रज्ञप्ति'' कहा गया है। चन्द्र प्रज्ञप्ति या सूर्य प्रज्ञप्ति का नाम भी नही है। इस विषयक विशेष चितन उसी सूत्र के सारांश पुष्प नं. २८ मे देखे। वर्तमान ये दोनो एक सूत्र मे ही उपलब्ध है।

जिज्ञेश—इस सूत्र मे मांस खाने सम्बन्धी कथन भी है?

ज्ञानचन्द—जैनागमो मे मांस भक्षण को नरक मे जाने का कारण स्पष्ट रूप से बताया है तब उसके खाने सम्बन्धी विधान आगमो मे नही हो सकता है ऐसा निश्चित समझना चाहिये। अत इस सूत्र मे एव अन्य सूत्रो मे भी जो ऐसे वर्णन है वे मध्यकाल मे लहियो आदि के द्वारा अथवा अशुद्ध मानस वालो के द्वारा अथवा किया हुआ परिवर्तन या प्रक्षेप है अथवा लिपि दोष हुआ है।

लोगस्स प्रतिक्रमण वार्ता—

जिज्ञेश—दो प्रतिक्रमण, ४० लोगस्स का कायोत्सर्ग और धर्मध्यान का कायोत्सर्ग आदि की परम्परा क्या है?

ज्ञानचन्द—दो प्रतिक्रमण करने की प्रवृत्ति भ्रम से चली हुई एक परंपरा है, तत्सम्बन्धी स्पष्टीकरण पुष्प १४ ज्ञाता सूत्र सारांश मे देखे।

लोगस्स और धर्मध्यान का कायोत्सर्ग भी समय समय मे चलाई गई परंपराएं हैं। लोगस्स एक गुण कीर्तन का पाठ है जो उच्चारण करने योग्य है उसे काउस्सग मे गिनना उपयुक्त नही कहा जा सकता। गुजरात की कई संप्रदाये लोगस्स का काउसग्ग नही करती है। इस विषय की विस्तृत चर्चा ३२वे पुष्प आवश्यक सूत्र (प्रतिक्रमण सूत्र) मे देखे।

मस्तक ढांकने की वार्ता—

जिज्ञेश—साधु को रात्रि मे मस्तक ढक कर जाने की परम्परा क्या है?

ज्ञानचन्द—साधु को मकान से बाहर कही भी मस्तक ढंककर जाने का निशीथ सूत्र मे प्रायश्चित कहा गया है। अचेल सचेल दोनो तरह के साधक जिन शासन मे होते है। अत वस्त्र सम्बन्धी या उनी वस्त्र सम्बन्धी कोई

भी एकांतिक कायदा संयम जीवन के लिये नही बनाया जा सकता।

अत साधु का कपडा ओढ कर ही बैठना या मस्तक ढंक कर बाहर जाना या कम्बली ओढना आदि कोई भी एकांत कायदा बनाना आगम सम्मत नही हो सकता। एतद्विषयक जानकारी सप्रमाण पुष्प आठ दशाश्रुतस्कंध-सूत्र मे एवं पुष्प १२ छेद सूत्र परिशिष्ट खंड दो मे देखे।

नित्य गोचरी जाने सम्बन्धी वार्ता—

जिज्ञेश—गोचरी जाने के संबंध मे आज जाना, कल नही जाना, सुबह जाना, शाम को नही जाना इत्यादि क्या परंपरा है।

ज्ञानचन्द—एषणा के ४२ दोष मे इस सम्बन्धी कोई चर्चा नही है आगम वर्णित अन्य विधि निषेधो मे भी ऐसा एकांतिक कोई नियम नही निकलता है। हां निमंत्रण और तैयारी पूर्वक नित्य नियत एक घर मे जाकर आहारादि लेना नियागपिंड नामक दोष है। नित्यपिंड नामक एक दान पिंड दोष आचारांग मे है जिसका अर्थ है कि जिस घर मे हमेशा दान पिंड बनाकर पूरा ही दान मे दे दिया जाता है वहां गोचरी जाना निषिद्ध है। और निशीथ मे उसका प्रायश्चित कथन है। इस विषयक विशेष सप्रमाण चर्चा पुष्प ३ दशवैकालिक सूत्र सारांश के परिशिष्ट मे देखे।

कपड़े का माप सम्बन्धी वार्ता—

जिज्ञेश—७२ हाथ कपडा या ९६ हाथ कपडा इत्यादि उपकरण सम्बन्धी मर्यादा की परंपरा क्या है?

ज्ञानचन्द—आगम मे ऐसा कोई स्पष्टीकरण युक्त पाठ उपलब्ध नही है। आवश्यकता के उपकरण विवेक से रखना एवं मूर्छा भाव संग्रह वृति न होना। इस सम्बन्धी अन्य विस्तृत जानकारी पुष्प १२ छेद सूत्र परिशिष्ट खंड दो मे दी गई है वही देखना चाहिये।

छेद सूत्र अध्ययन वार्ता—

जिज्ञेश—छेद सूत्रो सम्बन्धी अर्थ परमार्थ की जानकारी के लिये कौन से प्रकाशन देखने चाहिये?

ज्ञानचन्द—छेद सूत्रो का सर्वांगीण अध्ययन करनेसे ही साधक गीतार्थ एवं आचार शास्त्रो मे पारंगत बनना है। अत. संस्कृत प्राकृत के अभ्यासी जिज्ञासुओ को छेद सूत्र पर प्रकाशित भाष्य, टीकाएं एवं चूर्णियो रूप व्याख्याओ का अध्ययन अवश्य करना चाहिये और हिन्दी भाषा के

अभ्याषियो को आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से प्रकाशित विवेचन युक्त छेद सूत्रो का अध्ययन करना चाहिये। वे दो जिल्द मे उपलब्ध है (१) निशीथ सूत्र (२) तीन छेद सूत्र-दशाश्रुतस्कध, व्यवहार और वृहत्कल्प सूत्र।

धोवण पानी वार्ता—

जिज्ञेश—मंदिर मार्गी साधु साध्वी धोवण पानी नही लेते और निषेध करते है। स्थानकवासी कोई धोवण पानी लेते है, कोई गर्म पानी लेते है। ये अलग अलग परपराये क्यो ?

ज्ञानचन्द—आगमो के अनुसार गर्म पानी एव धोवण पानी मे से जब जो सुलभ निर्दोष मिले वही लिया जा सकता है। आधाकर्मी आदि दोष लगता हो तो वह धोवण भी नही लेना चाहिये और गर्म पानी भी आधाकर्मी आदि दोषयुक्त बनता हो तो नही लेना चाहिये। ऐषणा दोष की गवेषणा के अतिरिक्त इनका कोई भी एकातिक आग्रह नही रखना चाहिये।

थोवण या गर्म पानी सम्बन्धी अन्य विविध विस्तृत जानकारी के लिए पुष्प १२ छेद सूत्र परिशिष्ट खंड दो का अध्ययन करना चाहिये।

मंदिर मार्गियो के मान्य परम प्रिय कल्प सूत्र मे तेले तक की तपस्या मे भी धोवण पानी पीने का उल्लेख है। तो सामान्य आहार के दिनो मे धोवण पानी पीना सहज सिद्ध है। फिर भी ये लोग अपनी पकडी परंपरा के नशे मे सूत्रो और ग्रन्थो के सभी प्रमाणो को हजम करने की अद्‌भुत शक्ति रखते है।

तेरापंथ धर्म पंथ वार्ता—

जिज्ञेश—तेरापंथ धर्म क्या है ?

ज्ञानचन्द—यह कोई पथ या धर्म या सिद्धांत नही है यह तो स्थानकवासी ही है इनके आचार विचार सिद्धांत और आगम सब स्थानकवासी के ही प्राय है। एक संप्रदाय मे या एक गच्छ मे अनेक साधुओ के अनेक विचार होते है अंतर और अलगाव हो जाते है, वैसे ही ये लोग कोई सामान्य से विचारो के कारण गुरु से अलग होकर विचरने लग गये है और इनकी अपनी सप्रदाय और अनुशासन व्यवस्था चल गई है। ऐसे तो मंदिर मार्गियो मे भी अनेक संप्रदाय और अनेक विचार भेद अन्यान्य गच्छो मे है। फिर भी तीन थूई, चार थुई, तपा, खरतर आदि सभी का धर्म तो मदिर मार्गी ही कहलाता है। स्थानकवासियो मे भी विभिन्न संप्रदायो मे विभिन्न मान्यता है, फिर भी मौलिक सिद्धांत और आगम

एक ही है। अत स्थानकवासी धर्म तो एक ही है। वैसे ही स्थानकवासी से एक गच्छ समूह सामान्य विचारो से अलग विचरने लगा है जिसका नाम प्रसिद्ध हो गया है तेरापंथी समुदाय।

यह समुदाय भी मंदिर मूर्ति पूजा आदि सिद्धान्त नही मानता है। आगम की मान्यता एव प्रामाणिकता भी स्थानकवासियो के समान ही मानता है। वेशभूषा मे भी कोई खास परिवर्तन नही है। अत यह एक स्थानकवासी समुदाय विशेष ही है। स्थानकवासियो के मुख्य सिद्धान्त मुहपति बांधना और मंदिर मूर्तिपूजा धर्म को आगम सम्मत नही मानना है और वही तेरापंथ समुदाय भी मान्य करता है। जैसे श्वेताम्बर मे से निकले स्थानकवासी श्वेताम्बर स्थानकवासी कहे जाते है वैसे ही स्थानकवासियो मे से निकले तेरापंथी भी स्थानकवासी तेरापंथी है।

जिज्ञेश—इनके अलग समुदाय बनाने के विचार भेद प्रमुख क्या हुए ?

ज्ञानचन्द—आगम विषय के सूक्ष्म चितन मे किसी पहलू के कथन करने की वाक्य शैली मे और कुछ दृष्टिकोण मे अंतर हो गया और चर्चा मे तनाव हो जाने से कुछ साधु गुरू को छोड अलग विचरने चल दिये। ये विषय निम्न है —(१) जीवो की हिसा नही करना यह धर्म है सो बराबर है किन्तु कोई जीव स्वत मर रहा है किसी को कोई मार रहा है तो उसके बीच मे जाकर छुडाना नही (२) अन्न पुण्य आदि जो पुण्य बताये गये है उसमे यदि किसी भी जीवो की हिसा होती है तो उसे एकांत पाप कहना, पुण्य नही कहना।

छोटी सी बाते भी विवाद और विरोध मे पड जाने से बढती रहती है। इस कारण ये तेरापंथ समुदाय स्थानकवासी से अपने आप को अलग मानने एवं कहने लग गये। वास्तव मे वेशभूषा, आगम एवं मौलिकता एक होने से स्थानकवासी की एक स्वतंत्र समुदाय विशेष ही है। अलगाव होने से हीनाधिक समाचारी भेद हो जाना तो स्वाभाविक ही है।

दया दान वार्ता—

जिज्ञेश—ऐसा कहा जाता है न कि तेरापंथी दया दान को नही मानते ?

ज्ञानचन्द—यह तो आग्रह मे पडी बाते शब्दावली मे अधिक रह जाती है किन्तु इनके भोजन या पानी मे कोई मक्खी आदि गिर कर तडफने लगे तो ये भी तत्काल निकाल कर उसकी रक्षा करते है। गुरू से अलग होने के बाद भी वे साधु ऐसा करते ही थे एवं कभी किसी के जुएं पड जाती तो उन्हे भी अपना खून वे समय समय पर पिलाकर खून दान करते थे। दया और अनुकंपा तो सम्यक्त्व का लक्षण है वह कैसे कहा जा सकता

है? दान शील तप और भावना ये चार आत्म कल्याण के अंग है, इसमे भी दान प्रथम है।

जिज्ञेश—कोई जीव स्वयं मर रहा या उसे अन्य कोई मार रहा है तो हम उसे नही बचावे तो हमारा क्या नुकशान है?

ज्ञानचन्द—जिस तरह जैन साधु के स्वयं के गच्छ का या अन्य किसी भी गच्छ का परिचित या अपरिचित साधु पानी मे बह रहा है और कोई साधु उसे देख ले और देखने वाले साधु को तैरना आता हो तो उसे निकालने की ठाणांग सूत्र मे आज्ञा है अत पानी और पानी के जीवो की हिसा प्रत्यक्ष होते हुए भी इसे साधु का कर्तव्य आगम मे बताया है।

जब पानी मे मरते हुए साधु को साधु बचा सकता है आहार पानी मे गिरे जीव (तिर्यञ्च) को किसी आगम मे नही होते हुए भी साधु बचा सकता है जूओ को अपना खून पिला सकता है यह साधु का धर्म है। वैसे ही गृहस्थ मानव के द्वारा किसी मानव को या पशु को मरते हुए को बचाना यह उसका गृहस्थ का धर्म है।

साधु को बचाने मे नदी के त्रस स्थावर जीवो की प्रत्यक्ष हिसा उस अनुकम्पा की प्रमुखता से गौण हो सकती है। जिन्दगी भर जीने वाला साधु भी गमनागमन क्रियाएं करेगा, खायेगा, शौच जायेगा।

उसी प्रकार मानव भी मानव की या पशु की रक्षा करता है उसमे भी जो कुछ प्रत्यक्ष या परोक्ष द्रव्य और भाव हिसा संभव है वह भी अनुकंपा की प्रमुखतामे गौण हो जाती है।

यदि कोई व्यक्ति किसी के सामने फांसी या जहर खाकर मर रहा या कोई किसी को मार रहा है उसे दूसरा व्यक्ति देखकर भी कोई प्रयत्न नही कर रहा है अथवा एक व्यक्ति चोरी कर रहा है दूसरा वही खडा देख रहा है कि मै क्यो अंतराय का भागी बनू तो व्यवहार मे वह भी अपराधी गिना जाता है।

उसी प्रकार मरते या मारते जीव को अपनी क्षमता अनुसार देखते हुए भी मानव का कुछ प्रयत्न नही करना यह भी प्रत्यक्ष अनुकंपा भाव का हनन है।

तीर्थंकर प्रभू अपने संयम भाव के सातवे गुणस्थान की स्टेजमे जब लाखो करोडो का अनुकपा दान दे सकते है तो उसे एकांत पाप तो नही कहा जा सकता है। जबकि उनके द्वारा दी गई सोना मोहर तो संसार के पाप कार्यों मे ही काम आने वाली होती है। फिर भी दान का महत्व और लाभ समझ कर ही देते है। तीर्थंकर प्रभू के द्वारा एकांत पाप की प्रवृति धर्म भावना की प्रमुखता से करना संभव नही हो सकता है। अत अनुकंपादान भी एकांत हेय समझना उपयुक्त नही है।

सूयगडाग सूत्र के ग्यारहवे अध्ययन मे ऐसे अनुकपा दान के कार्यो को एकात पाप कहने का स्पष्ट निषेध किया गया है और उसका कारण भी स्पष्ट कर दिया है कि उससे अंतराय कर्म का बध होता है।

आगम मे स्पष्ट रूप से नौ प्रकार के पुण्य कहे है उनका निषेध नही किया जा सकता।

प्रदेशी राजा ने धर्मी बनने के बाद दान शाला खोली जिसे केशी श्रमण ने निषेध करके बद नही करवायी और शास्त्रकार ने भी धर्मी बनने के बाद के उस कार्य का कथन किया।

दुष्ट एवं विधर्म फैलाने वाले गौशालक को लेश्या से जलते हुए को भी भगवान ने तत्काल बचा लिया उसे खोटा समझ कर कोई प्रायश्चित लिया हो ऐसा कथन भगवती मे गणधरो ने नही किया।

अत विविध आगम प्रमाणो से एवं अन्य पहलुओ से यह स्पष्ट है कि किसी भी मरते प्राणी को बचाना अनुचित नही है, एकांत पाप या अधर्म भी नही है किंतु महापुरुषो से आचरित और आगमोक्त है।

विशेष जानकारी के लिए ब्यावर से प्रकाशित निशीथ सूत्र उद्देशा १२ के प्रथम सूत्र का विवेचन देखना चाहिये एवं इस प्रकाशन का पुष्प १२ छेद सूत्र का परिशिष्ट खड दो भी देखना चाहिये।

स्थानकवासी की धर्म वार्ता :–

जिज्ञेश :– स्थानकवासी धर्म कब चला किसने चलाया ?

ज्ञानचन्द :– वीर निर्वाण के २००० वर्ष बाद लोकाशाह ने शुद्ध धर्म का पुनरूद्धार किया। वही शुद्ध धर्म स्थानकवासी धर्म के नाम से प्रचलित हुआ।

कल्प सूत्र के अनुसार भगवान महावीर के मोक्ष पधारते समय उनके जन्म नक्षत्र पर भस्मग्रह का संयोग था जिसके फल से २००० वर्ष तक भगवान के शासन का अवनति मे चलने का अर्थात् असंयति पूजा होने का कथन है। उस अवधि मे धर्म के नाम से हिसा, आडंबर अधिकाधिक बढता गया था और जैन साधु भी अधिकाधिक परिग्रह वृत्ति वाले एवं आगम विपरीत आचारण वाले बनते गये थे। अनेक प्राकर की कुरीतियां, दुष्ट और अन्यायपूर्ण प्रवृत्तियां भी जैन यति वर्ग मे प्रविष्ट हो चुकी थी। शिथिलाचार एवं मनमाने परूपणा भी चरम सीमा पर पहुच चुके थे। ऐसे २००० वर्ष के समय संयोग मे लोकाशाह ने आगम सापेक्ष शुद्ध अहिसा संयम प्रधान एव आडंबर आरंभ समारंभ रहित धर्म का उपदेश दिया एवं खोटे हिसा परिग्रह मूलक रिवाजो का विरोध कर साधु साध्वी श्रावक

श्राविकाओ को पुन शुद्ध धर्म के मार्ग मे प्रेरित किया। इस प्रकार वीर निर्माण के २००० वर्ष बाद और अभी से ५०० वर्ष करीब पूर्व यह स्थानकवासी धर्म चला है। वास्तव मे मध्यकाल मे विकृत बने वीतराग धर्म का पुनरूद्धार मात्र हुआ है। आगमानुसार शुद्ध धर्म का पुन· जोर शोर से प्ररुपण प्रचार हुआ है इस अपेक्षा से यह स्थानकवासी धर्म अपने सिद्धात और प्ररूपण एवं लक्ष्य की अपेक्षा तो मौलिक वीतराग धर्म ही है, जो प्रारम्भ से तीर्थंकर के शासन का धर्म है। बीच मे आई विकृति का भान (ज्ञान) कराकर उसे हटाने रूप पुनरूद्धार से अनंतर यह स्थानकवासी नाम चल पडा है।

जिज्ञेश ·– स्थानकवासी के मुख्य उद्देश्य क्या क्या है ?

ज्ञानचन्द :– मध्यकाल मे आई आगम विपरीत विकृति का त्याग करना, शास्त्राज्ञा के अनुसार ही संयम के महाव्रत समिति गुप्ति आदि नियमो का यथार्थ पालन करना। मंदिर मूर्ति बनाने की प्रेरणा न करना, मूर्तिपूजा को धर्म का अंग नही समझना, धर्म के नाम से आडंबर आरंभ समारंभ को प्रेरणा न देना, मुहपति मुख पर बाधना, आगम विपरीत कोई भी प्ररुपण नही करना, आगम विपरीत कोई भी उपकरण रिवाज रूप मे नही रखना। धर्म के नाम से द्रव्य पूजा के चक्कर मे नही आना। शास्त्र से अधिक या शास्त्र के समकक्ष ग्रन्थो को महत्व नही देना। मूर्ति पूजा के नाम से पृथ्वी, पानी, अग्नि, फल, फूल के एकेन्द्रिय जीवो का पाप नही करना, तीर्थ यात्राओ के लिए नही फिरना किन्तु केवल संयम पालन या धर्म प्रचार के लिए योग्य क्षेत्र मे विचरण करना। चलते समय पूंजने मे उपयुक्त हो इतना लम्बा रजोहरण रखना।

ये सभी सिद्धात तेरापंथ के और स्थानकवासी के एक सरीखे ही है। मंदिर मार्गी भी इन उक्त कई सिद्धांतो को सही मानते है किन्तु आचरण मे गतानुगतिक परंपरा वाले ही ज्यादा बने रहते है।

स्थानकवासी धर्म रूप वीतराग धर्म का पुनरूद्धार करने वाले लोकाशाह का जीवन परिचय आगे पुष्प २२ मे दिया गया है।

विकृत प्रवृतियों की वार्ता—

जिज्ञेश—स्थानक बनाने की प्रेरणा, मंदिर बनाने की प्रेरणा, अपने (साधु के) पगल्या करना, गले मे साधुओ के ताबिज रखना, साधु की समाधि स्थल बनाना इत्यादि प्रवृतियो की परंपरा के विषय मे क्या मतव्य है।

ज्ञानचन्द—स्थानक हो या मंदिर उसके निर्माण कार्य की प्रेरणा साधु को करना

उचित नही है। इससे प्रथम महाव्रत दूषित होता है। अन्य पगत्या ताविज आदि की प्रवृति भी भक्ति मूलक शिथिलाचार की प्रवृतिया है। ये देखा देखी या मान सन्मान की वृतियो से एवं एहिक चाहनाओ से चल जाती है। ऐसी कई प्रवृतिएं सावधानी नही रखने से शिथिलाचार के वातावरण से चल जाती है।

मंजन स्नान वार्ता—

जिज्ञेश—मंजन करना, स्नान करना अथवा साबुन सोडा आदि से कपडे धोकर साफ सुथरे रहने की प्रवृति परंपरा उचित है?

ज्ञानचन्द—मंजन करना एवं स्नान करना दशवैकालिक सूत्र मे अनाचार कहा गया है इसलिये ये कार्य करना साधु को सर्वथा अनुचित है। मंजन करने नही करने सम्बन्धी अन्य जानकारी विवेचन के लिये पुष्प ३ परिशिष्ट विभाग मे देखे। उपचार की आवश्यक परिस्थिति से कुछ भी करना पडे तो स्थविर कल्पी के लिये विकल्प रहता है।

वस्त्र धोना तो स्थविर कल्पी को एकांत निषेध और अनाचार है भी नही किंतु उसमे विभूषा की वृति हो तो वह अनाचार है। विभूषा की वृति का अभाव है अर्थात् क्षमता की कमी आदि कारणो से धोना है तो वह मैल परीषह से हारना है और जीव रक्षा हेतु धोना है तो वह विवेक है। किंतु आदत और सफाई की वृति से धोना शिथिलाचार एवं बकुशवृति है। अत वस्त्र धोने मे मानस वृति क्या है उसका मूल्यांकन होना चाहिये किन्तु धोने सम्बन्धी एकांतिक निषेध नही समझना चाहिये।

दैनिक समाचार पत्र वार्ता—

जिज्ञेश—दैनिक अखबार पढने की प्रवृति क्या है?

ज्ञानचन्द—यह भी शिथिलाचार युग की देन है इसमे विशेष कर विकथा विभाग ही अधिक होता है। जिसकी कि साधुओ के लिये आगम मे मनाई की हुई है।

शिथिलाचार प्रवृतियों की वार्ता—

जिज्ञेश—संयम एवं भगवदाज्ञा से विपरीत मुख्य क्या क्या प्रवृतियां जैन समाज मे चल रही है अर्थात् वर्तमान युग की अत्यंत विकृत प्रवृतियो की परंपराएं क्या है?

ज्ञानचन्द—शिथिलाचार से चलने वाली प्रमुख प्रवृतियां इस प्रकार है।

१ एक दूसरे की परस्पर निंदा अवहेलना करना, २ तम्बाकू रखना सूंघना

३ मजन तम्बाकू करना पेष्ट करना, ४. मध्यम या बडी स्नान करना, ५ मैल परीषह किंचित भी सहन नही करना, ६ बाल संवारना, दाढी बनाना, ७. विभूषा वृति करना, प्रयत्न पूर्वक साफ सुथरा रहना, अति प्रक्षालन वृति करना, ८ चप्पल जूते पहनना, ९. ठेला गाडी, डोली, व्हिल चेअर आदि से विचरण करना, १० लाउडस्पीकर (माइक) मे बोलना, ११. फोटो आदि खिचवाना, रखना, १२ वीडीओ कैसेट करवाना, १२ बिजली पंखा का उपयोग करना, १३ नल का पानी उपयोग करना, १४ फलस संडास का उपयोग करना, १५. दैनिक समाचार पत्र पढना, १६ चारो काल मे स्वाध्याय नही करना, १७ शास्त्र का कंठस्थ ज्ञान नही करना, १८. दिन मे सोना, १९. साध्वियो से सीवण, वस्त्र प्रक्षालन, प्रतिलेखना, गोचरी आदि कार्य करवाना उनके साथ आहार करना या आहार का लेन-देन करना। उनके साथ गमनागमन भ्रमण या विहार करना, अति संपर्क रखना, २० गृहस्थो से सेवा लेना, काम करवाना, विहार मे सामान उठवाना और उसे पैसा दिलवाना, २१ आपरेशन करवाना, २२ खरीदवा कर दवा आदि मांगना, २३ खरीदवा कर कपडा पात्र रजोहरण आदि मंगवाना अथवा क्रीतदोष वाले ये पदार्थ लेना, २४ चंदा इकट्ठा करवाना, २५ बैको मे खाता रखना, २६ निर्माण कार्यो मे भाग लेना, प्रेरणा करना, जैसे कि स्थानक, स्कूल, मंदिर, अस्पताल, बोडिग, संस्था आदि, २७ अपने पास दवा रखना, २८ प्रतिलेखन प्रमार्जन नही करना, २९ प्रतिक्रमण नही करना, ३० रात्री मे विहार करना या घूमने जाना, ३१ स्वयं नही उठा सके इतने उपकरण सामान आदि रखना, ३२ आधाकर्मी निमित का गर्म पानी या धोवण पानी लेना, ३३ आधाकर्मी आदि दोष युक्त आहार पानी लेकर आयबिल करना, ३४. कोई भी जगह अपना सामान का भंडार रखना, संग्रह वृति करना, ३५ टी वी (टेलीविजन) देखना, ३६ रेडियो का उपयोग करना, ३७. दर्शनीय स्थल देखने जाना, ३८. पत्रिकाएं छपवाना, ३९ बेड बाजो या जुलुस के साथ चलना, ४० खुले मुंह बोलना, ४१ अपनी तपस्या का या जन्म आदि तिथियो के फंक्शन कराना, ४२ शिष्यो को क्रम से आगमो की वांचना नही देना। अध्ययन अध्यापन की देख रेख नही करना, शिक्षित कर योग्य बनाने का प्रयत्न नही करना, ४३ साधु के द्वारा स्त्रियो का अति संपर्क करना या करने देना और साध्वी के द्वारा पुरुष का संपर्क करना या करने देना, ४४ बहुमूल्य उपकरण मालाएं आदि रखना गले मे पहने रहना, ४५. भाषा का कोई विवेक नही रखना योग्यायोग्य का विचार नही करना, ४६. सामने लाया हुआ या टीपन का आहार लेना, ४७ उतावल से चलना, ४८. बाते करते हुए चलना, ४९ यंत्र, मंत्र,

तत्र चिकित्सा आदि प्रवृतिएं करना निमित एवं शुभ मुहुर्त आदि गृहस्थो को बताना, ५० दीक्षा वय श्रुत ज्ञान गंभीरता विचक्षणता आदि योग्यता प्राप्त किये बिना ही मुखिया बनकर अथवा अकेले होकर विचरण करना या करने देना, ५१ चितन जागृति युक्त प्रतिक्रमण नही करना अपितु नीद लेना बातें करना, ५२ चाय, दूध, मेवे, फ्रूट्स आदि के लिये निमंत्रण पूर्वक या संकेत पूर्वक जाना, ५३ रात्रि व्याख्यान के लिये या शौच निवृति के लिये दूर जाना, ५४ प्रकाशन कार्य मे भाग लेना, निबंध देना, पुस्तक छपाना अथवा छपाने के लिये पुस्तक लिखना।

जिज्ञेश – शिथिलाचार की सही और संक्षिप्त परिभाषा क्या है?

ज्ञानचन्द – (१) आगम विपरीत, भगवदाज्ञा विपरीत, प्रवृतियो को परंपरा रुप मे आचरण करना उसका प्रायश्चित नही लेना या प्रायश्चित लेने का संकल्प नही रखना, अकारण या सामान्य कारण से भी आगम विपरीत प्रवृतिएं करते रहना, यह सब शिथिलाचार है और ऐसी वृत्ति वाले को शिथिलाचारी जानना।

(२) सकारण परिस्थिति वश हानि लाभ का विवेक रख कर आगम विपरीत छोटा या बडा आचरण करना, उसे छोडने का और प्रायश्चित लेने का संकल्प रखना, उस प्रवृति को ढर्रा या परंपरा रुप नही करना और उस अपने दोष को दोष कहना और अंतरमन मे भी दोष समझना यह शिथिलाचार नही है। ऐसी वृत्ति वाला शिथिलाचारी नही कहा जाता।

संजया - नियंठा वार्ता:-

जिज्ञेश – णियंठा अवस्था की या सयम अवस्था की क्या सीमा है?

ज्ञानचन्द – आगम मे नियंठे रुप संयमावस्था के ६ प्रकार बताये है जिसमे से अभी इस युग मे तीन नियंठे पाये जा सकते है। यथा - १ बकुश २ प्रतिसेवना ३ कषाय कुशील।

(१) शरीर उपकरण सम्बन्धी प्रमाद वृत्तिये एवं संयम स्वाध्याय आदि योगो मे जागृति की कमी के आचरण करने के अतिरिक्त संयम की मूल गुण उत्तर गुण की आगमोक्त सभी प्रवृतियो का यथावत् पालन करने वाला एवं सही प्ररुपणा करने वाला बकुश नियंठे की सीमा मे गिना जाता है।

(२) परिस्थिति वश उत्सर्ग अपवाद का, उसकी सीमा और क्षेत्र काल का विवेक रखते हुए, मूलगुण मे या उत्तर गुणो मे अत्यावश्यक दोष लगाने वाला और उसे यथासमय छोडकर शुद्धि करने की भावना वाला, प्रतिसेवना कुशील

नियठा की सीमा मे गिना जाता है। इसमे भी ज्ञान के सम्बन्ध से मूल गुण और उत्तर गुण मे दोष लगाने वाला और फिर दोष को छोडकर शुद्धि करने का सकल्प रखने वाला, ज्ञान प्रतिसेवना कुशील गिना जाता है। विशेष ध्यान यह रखना चाहिये कि सीमित आवश्यक दोष के अतिरिक्त अन्य सभी सयम विधि विधानो का आगमोक्त विधि से पालन करने वाला हो और सही प्ररुपण करने वाला हो, वही प्रतिसेवना कुशील निर्गन्थ कहा जाता है।

(३) कषाय कुशील निर्ग्रन्थ शुद्ध निरतिचार सयम पालन करता है किसी भी निमित से कुछ भी सयम दूषित नही करता है।

नोट – नियंठो सम्बन्धी विस्तृत जानकारी के लिये और शिथिलाचार शुद्धाचार सम्बन्धी विस्तृत आकर्षक पद्धति युक्त जानकारी के लिये पुष्प १७ (सतरह) का परिशिष्ट देखना चाहिये।

स्वगच्छीय समाचारी पालन वार्ता :-

जिज्ञेश - अपने गच्छ की समाचारी नही पालने से शिथिलाचारी होता है या अन्य गच्छो की समाचारी को नही पालने से भी शिथिलाचारी होता है अथवा केवल आगमोक्त समाचारी का पालन नही करने से ही शिथिलाचारी होता है?

ज्ञानचन्द.- आगमोक्त समाचारी के अपालन से शिथिलाचारी होता है। अन्य गच्छो की समाचारी के पालन अपालन से शिथिलाचार का सम्बन्ध नही करना चाहिये।

स्वगच्छ समुदाय या अपने संघ की समाचारी का पालन नही करना, जिसकी निश्राय मे, आज्ञा मे विचरना और उसी की उपेक्षा करना महान अपराध है। ऐसा करने वाला छोटा साधु हो या बडा साधु, चाहे अनुशास्ता हो अथवा अनुशासित हो, वह शिथिलाचारी के साथ साथ स्वच्छंदाचारी भी है। ऐसा करना तो नैतिकता से भी बाहर है। अत जिस गच्छ समुदाय या संघ मे जिसे रहना हो उसकी निर्णित प्रत्येक समाचारी का निष्ठापूर्वक ईमानदारी से पालन करना चाहिए।

इन आगमोक्त ज्ञातव्य समाचारियो की, आगम से अतिरिक्त समाचारियो की सूची या तालिका जाननी हो तो पुष्प १७ अणुत्तरोपपातिक सूत्र सारांश का परिशिष्ट ध्यान पूर्वक देखे। तथा वहां पर स्थानकवासी महा सघ (श्रमण संघ) की चुनिदा समाचारियो की तालिका भी दी गई है उस प्रकरण का भी ध्यान पूर्वक अध्ययन करना चाहिये।

अंतिम उपसंहार वार्ता :-

जिज्ञेश:- शिथिलाचारी की परिभाषा मे आने वालो मे कोई नियंठा होता है और नियंठा की परिभाषा मे आने वाला शिथिलाचारी भी होता है क्या? तथा ये शिथिलाचारी और णियंठे वाले आपस मे वंदन व्यवहार कर सकते है? नियंठे वाले नियंठे वालो का वंदन व्यवहार बद कर सकते है एवं शिथिलाचारी दूसरे हीनाधिक शिथिलाचारी को वंदन कर सकता है?

ज्ञानचन्द:- शिथिलाचारी कहलाने योग्य व्यक्ति नियंठा वाला नही कहा जा सकता किन्तु नियंठा के अभिमुख हो सकता है और किसी भी नियंठा की परिभाषा मे गिना जाने वाला शिथिलाचारी नही कहा जा सकता किन्तु शिथिलाचार के अभिमुख हो सकता है। व्यवहार की वंदन व्यवस्था व्यवहार पक्ष को लेकर की जाती है। और भाव वंदना भाव संयमवान गुणवानो को ही भाव से हो जाती है।

नोट – वंदन व्यवहार सम्बन्धी विभाजन युक्त एवं अनुभव पूर्ण विस्तृत खुलाशा पुष्प १३ के परिशिष्ट मे किया गया है उस पुष्प का ध्यान पूर्वक अध्ययन करना चाहिये।

– ऐतिहासिक विस्तृत सवाद समाप्त –



ज्ञान - गोष्ठी (रोचक संवाद)

आगम विचारणा :-

धुरधर विजय:- केवल मुनि सा। आप लोग शास्त्र कितने मानते हो?

केवल मुनि.- धुरंधर विजय जी। हमारे पूर्वाचार्यो ने ३२ शास्त्र माने है।

धुरधर विजय:- हमारे आचार्य तो ४५ शास्त्र कहते है फिर आप लोगो ने १३ शास्त्र क्यो छोड दिये?

केवल मुनि:- १० पूर्वी या १४ पूर्वी के ही शास्त्र कहे जाते है उससे कम ज्ञान वालो के शास्त्र नही कहे जाते, इसलिए हम १३ नही मानते।

धुरंधर विजय - नही जी शास्त्र तो ४५ ही होते है, तुम्हारे लोकाशाह को ३२ ही मिले इसलिए तुम ३२ मानते हो और अब तो तुम्हे सभी मिलते है, इसलिए ४५ ही मानने चाहिए।

केवल मुनिः- नन्दी सूत्र मे कहा है कि १० पूर्वी १४ पूर्वी का सूत्र सम्यक् होता है उससे कम ज्ञानी का शास्त्र सम्यक् या मिथ्या दोनो तरह का हो सकता है इसलिए सच्चे शास्त्र तो ३२ ही मानना चाहिए। ४५ मानने मे मिथ्यात्व लगता है।

धुरधर विजयः- नन्दी सूत्र मे ४५ के नाम मिलते है इसलिए कम मानने पर आपको मिथ्यात्व लगता है।

पडितजीः- मत्थएण वंदामि। धुरंधर विजय जी म.सा । नन्दी सूत्र मे सूत्रो के नाम गिनाए है और हजारो प्रकीर्णक होने का कहा है किन्तु वहा ४५ तो नही कहा?

धुरधर विजयः- तो वहा कितने नाम गिनाए है?

पडित जीः- वहा १२ अंग + २९ उत्कालिक सूत्र ३० कालिक सूत्र और एक आवश्यक सूत्र यो कुल ७२ शास्त्रो के नाम है।

केवल मुनिः- धुरंधर विजय जी म । तब तो ४५ मानने पर आपको भी कम मानने का मिथ्यात्व लगेगा।

धुरधर विजय.- केवल मुनि सा ।अभी तो नन्दी मे कहे गये सूत्रो मे से ४५ ही मिलते है बाकी तो लोप हो गए है इसलिए ४५ ही मानना चाहिए। और उनकी टीका चूर्णी भाष्य निर्युक्ति बडे-बडे आचार्यो ने की है, इसलिए उसे भी मानना चाहिए। नही तो उन महापुरुषो की आशातना लगती है।

केवल मुनि.- धुरंधर विजय जी सा। हरिभद्र सूरि हेमचन्द्राचार्य मलयगिरी आदि कई बडे-बडे विद्वान महापुरुषो के सैकडो ग्रन्थ आज मिलते है फिर भी आप ४५-४५ रटते हो तो आपको भी कितनी आशातना का पाप लगेगा। इन बडे-बडे आचार्यो के शास्त्रो को तो आप ४५ मे गिनते ही नही है तो ३२ मानने को खोटा क्यो समझते है?

प. न्यायचद्रजी.- मत्थएणं वंदामि। नंदी सूत्र देवर्धिगणी क्षमाश्रमण ने बनाया उन्हे एक पूर्व का ज्ञान था उन्होने ही सभी शास्त्र लिखवाए। नंदी सूत्र मे उन्होने उस समय जितने आचार्यो के शास्त्र बने थे उन सबको श्रुत ज्ञान के खुलासे मे नाम गिनवाकर बता दिया है। उसमे से अभी जितने मिलते है, उन्हे ही आगम शास्त्र समझना चाहिए उसके बाद मे भी महापुरुषो ने बनाए उसे जैन साहित्य और जैन ग्रन्थ समझना चाहिए।

नंदी सूत्र मे जिनका शास्त्र रुप मे नाम नही है उसे शास्त्र मानने का आग्रह करना भी खोटा है। और जिनका नाम नंदी मे है एवं अभी मिलते है तो उसे शास्त्र नही कहना यह भी उचित नही है।

दोनो मुनिवर - पडित जी! अभी कितने शास्त्र मिलते है?

पडित जी:- मत्थएण वंदामि! ११ अंग, १ आवश्यक सूत्र, १८ प्रकीर्णक और अन्य २० लगभग यो कुल ५० शास्त्र करीव मिलते है जिसमे मदिर मार्गी साधु करीब १० शास्त्र नही मानते है और स्थानकवासी साधु करीव २० शास्त्र नही मानते।

दोनो का ३२ - ४५ का आग्रह एकान्त दृष्टि वाला है। १० पूर्वी और १४ पूर्वी के शास्त्र तो कुल १०-१५ ही होगे बाकी का कोई इतिहास भी नही मिलता और जो मिलता है वह भी पूर्ण प्रामाणिक नही है। इसलिए नदी के अनुसार लगभग ५० शास्त्र दोनो को मानने चाहिए।

केवल मुनि·- पडितजी! कई शास्त्रो मे भेल सम्भेल (मिश्रण) हो गया है, दोष आ गया है, इसलिए सव नही मानना? ३२ ही मानना अच्छा है।

पडित जी - मत्थएण वंदामि! भगवान् के हजार वर्ष बाद शास्त्र लिखकर व्यवस्थित किए गए, तभी कितना शास्त्र घट गया, कितने ही वाक्य विषय नए जोड कर उस समय लगाए गए, और अब तक १५०० वर्ष लहियो ने लिखते-लिखते कितनी भूले करी है जिसका कोई माप ही नही कई लहियो ने जानकर भी कुछ का कुछ लिख दिया और कई आचार्यो ने भी परम्परा भेद से, समझ भेद से, सुधार वधार किया है। आज तो कोई भी शास्त्र ५००-७०० वर्ष से ज्यादा पुराना लिखा नही मिलता है और शास्त्रो को छपाने वाले कई पंडित मुनिराज लिखते है कि वहुत दोषो से भरे पाठ मिलते है, सम्पादन करने मे दिमाग भी चक्कर खा जाता है। वडा विवेक से निर्णय करना पडता है।

अत मुनिराज द्वय! आपको अर्ज करना है कि विवेक बुद्धि तो सर्वत्र रखना ही है। सभी पूर्वाचार्यो के वचनो को आदर से सुनना पढना चाहिए और शास्त्र तो नदी मे कहे उन्हे ही मानना चाहिए। विवेक बुद्धि तो शास्त्र मे, ग्रन्थो मे, टीका-भाष्य मे, सभी मे रखनी ही चाहिए। क्योकि छद्मस्थ तो भूल का पात्र होता ही है तभी व्यव उ ३ मे कहा है कि आचार्य ने मरते समय कहा हो कि 'अमुक को आचार्य वनाना' उसके बाद सब को योग्य लगे तो उसे बनाना और अयोग्य लगे तो नही वनाना, दूसरा जो योग्य हो तो उसे आचार्य वनाना। ऐसा स्पष्ट आदेश है।

वृहत्कल्प उ ४ मे कहा है कि आचार्य जो प्रायश्चित्त दे और वह शास्त्र के अनुसार है तो ग्रहण करना और शास्त्र अनुसार न हो तो ग्रहण नही करना ऐसा स्पष्ट अधिकार दिया गया है। इस प्रकार छद्मस्थो से भूल सर्वत्र सम्भव है ऐसा

शास्त्रकार को भी मान्य है। अत वर्तमान मे किसी के वाक्यो को एकान्त सच्चे मानने का (अर्थात् बाबा वाक्यं प्रमाणं) का आग्रह करना भी अनुचित है और सम्पूर्ण खोटा कहने का दूराग्रह करना या प्रेरणा करना भी गलत है। विवेक बुद्धि ही प्रशंसनीय है।

धुरधर विजय:- पंडित जी। विवेक बुद्धि कैसे रखी जाए?

पडित जी.- सामान्य बुद्धि वालो को अपने गुरु आदि के निर्देश अनुसार श्रद्धा रखकर पाप का, कषायो का त्याग करते हुए तप संयम मे लीन रहना चाहिये।

विशेष प्रज्ञा वालो को नंदी कथित उपलब्ध करीब ५० आगमो मे लिपि दोष आदि का कुशाग्र बुद्धि से निर्णय करना और अन्य टीका भाष्य निर्युक्ति ग्रन्थ साहित्य निबंध व्याख्यान चर्चा आदि को उन आगमो से ज्यादा महत्व नही देना। अर्वाचीन आचार्यो और ग्रन्थो की अपेक्षा प्राचीन आचार्यो और ग्रन्थो को अधिक महत्व देना और उक्त शास्त्रो को सर्वोपरी निर्णायक समझना तथा १८ पाप त्याग, शान्ति, संयम, समिति, गुप्ति को प्रमुखता देना और तीन करण तीन योग से महाव्रतो की शुद्ध आराधना करना, पाप कार्यो की प्रेरणा अनुमोदन भी कभी नही करना। नंदी मे कहे सूत्रो की आज्ञाओ से न्याय पूर्वक निर्णय करना। कथा वर्णनो की अनेक वार्ताओ से सूत्रो की आज्ञाओ की उपेक्षा नही करना, इत्यादि।

ऐसा करने पर किसी को मिथ्यात्व नही लगेगा और अनेकान्त एवं शांत दृष्टि से शुद्ध आराधना होगी।

धुरधर विजय·- पंडित जी। आपने तो बहुत सौम्य दृष्टि और अनेकान्तिक दृष्टि का बोध दिया इससे तो आपने किसी शास्त्र की संख्या के आग्रह को और किसी शास्त्र या ग्रन्थ आदि को मानने मनवाने के आग्रह करने को जडमूल से उखाड दिया। इसलिए कुछ और भी छोटी-मोटी बातो के विषय मे विचार विमर्श कर लेना चाहिए।

मदिर-मूर्ति विचारणा :-

केवल मुनि:- पंडित जी। आपने जो विद्वानो के लिए विवेक बुद्धि का विमर्श दिया तो आगमो मे जगह-जगह जिन भवन, मूर्तियो का विस्तृत एवं संक्षिप्त वर्णन आता है और ग्रन्थो मे हजारो लाखो करोडो मन्दिर मूर्ति जीर्णोद्धार का वर्णन आता है। जबकि मंदिर बनाना बनवाना या प्रेरणा अनुमोदना करना भी सावद्य है, महानिशीथ मे बताया है कि एक मंदिर

प्रेमी साधु के द्वारा मंदिर बनवाने के आग्रह और विनती को छिटका कर उसे सावद्य काम कहने वाले निडर आचार्य कुवलयप्रभ सूरि ने तीर्थंकर नाम कर्म का बध कर लिया। इस विषय मे क्या विवेक समझना चाहिए।

पडित जी:- केवल मुनि सा। नंदी मे कथित सूत्रो मे मंदिर मूर्ति का वर्णन है किन्तु वे मूर्तिया शास्वत है उनका कोई बनाने वाला नही है। अन्य कथा ग्रन्थो आदि मे आगम प्रसिद्ध महापुरुषो के साथ अनेको मंदिर व मूर्तिएं बनवाने का और प्रेरणा करने का वर्णन है किन्तु उन्ही पुरुषो का आगम मे आया वर्णन मंदिर मूर्ति की प्रेरणा आदि से रहित है। उसमे मंदिर की गध भी नही है।

उपासक दशा मे श्रावको की विस्तृत जीवनचर्या कही है किन्तु मंदिर बनाने या पूजा करने आदि का कोई कायदा या दिनचर्या का विधान उनके लिये नही है। न ही उनके परिग्रह मे एक भी मंदिर होने का उल्लेख है।

आचारांग सूत्र, सूयगडांग सूत्र, दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र, बृहत्कल्प सूत्र, निशीथ सूत्र, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक आदि सूत्रो मे साधु-साध्वी के आचार का वर्णन है। किन्तु मंदिर बनाने या दर्शन करने जाने या चैत्यवंदन करने का वर्णन वहा कही भी नही है। निशीथ सूत्र मे हजार-दो हजार प्रायश्चित्त कहे है किन्तु उसमे मंदिर मूर्ति दर्शन आदि सम्बन्धी एक भी प्रायश्चित्त विधान नही है।

देवलोक आदि की मूर्तिया तो शास्वत है अर्थात् अनादि से है किन्तु प्रत्येक तीर्थंकर की तो आदि होती है। अत· शास्वत अनादि मूर्तियें तीर्थंकरो की नही होती है।

ऊंचा लोक तिर्छालोक मे मूर्तिया है किन्तु उक्त साधु श्रावक के आचार शास्त्रो मे कोई विधान प्रायश्चित्त नही होने से और आगमोक्त मूर्तिया अनादि होने से तीर्थंकरो की नही हो सकती। इसलिऐ सावद्य कार्य के त्याग मे रत साधु या श्रावक को मूर्ति पूजा से कोई सम्बन्ध नही है। श्रावक की ग्यारह प्रतिमा वर्णन मे भी मूर्ति पूजा का उल्लेख नही है।

अत आगमोक्त कभी किसी के द्वारा नही बनाये गये अनादि अनेक जिन भवन, मंदिर, मूर्तियो के वर्णन से और ग्रन्थो के हजारो मंदिर बनवाने के वर्णनो से साधु श्रावक के आचार सम्बन्धी कोई विधान या नियम की कल्पना नही करना ही विवेक है। किन्तु उन वर्णनो के नाम

से साधु श्रावक के जीवन चर्या मे मूर्ति पूजा का आग्रह करना अविवेक है।

धुरधर विजय - पडित जी। द्रौपदी ने भी मूर्ति पूजा की थी ऐसा ज्ञाता सूत्र मे वर्णन है न?

पंडित जी:- ज्ञाता सूत्र के उस पाठ मे किसी ने विकृति की है। यह पुरानी प्रतियो की शोध करके विद्वानो ने निर्णय किया है। अर्थात् द्रौपदी के वर्णन मे प्राचीन प्रति में अर्वाचीन प्रतियो जैसा पाठ नही है।

दूसरी बात यह भी ध्यान रखने की है कि द्रौपदी पूर्वभव मे भोग का निदान करके आई थी अत निदान पूर्ण होने के पूर्व उसका श्राविका होना तो दूर रहा किन्तु वह तो सम्यग् दृष्टि भी नही थी।

तीसरी बात का विवेक जो पहले कहा था, वह भी याद रखना कि आचार सम्बन्धी विधान को आचार शास्त्रो से समझने की कोशिश करना चाहिए, न कि कथाओ आदि से। कथा मे तो एक उच्च श्रावक के १३ पत्नियो का वर्णन है, मासाहारी पत्नि भी श्रावक के घर मे कही गई है और एक पतिव्रता सती के पांच पति करने का भी वर्णन है। तो क्या श्रावक के अधिक विवाह करने का और मासाहार का एवं अनेक पति बनाने का विधान होगा? ऐसा निर्णय करने वाला अविवेकी ही कहलाएगा। अत कथा वर्णनो के खोटे चक्कर मे नही आना ही विवेक बुद्धि है।

उपकरण परिमाण विचारणा:-

केवल मुनि - पंडितजी। साधु-साध्वी के उपकरणो के नाम शास्त्र मे है किन्तु उन सब का माप एवं सख्या का स्पष्टीकरण नही है तो भाष्य निर्युक्ति में कहे अनुसार मानना ही विवेक बुद्धि है क्या?

पडित जी.- मत्थएण वदामी। दशवै अ ६ मे कहा है कि साधु-साध्वी वस्त्र पात्र कम्बल पादप्रोछन जो उपकरण रखते है उन्हे संयम के लिए और लज्जा निवारण के लिये रखते है और प्रश्नव्याकरण मे शरीर रक्षा हेतु से भी उपकरण रखना कहा है उन्हे दशवै मे परिग्रह नही कहा गया है और कहा है कि मूर्छा आशक्ति ही परिग्रह है आगम मे साधु-साध्वी के चादर की संख्या कही गई है अन्य उपकरणो की नही। फिर भी भाष्य निर्युक्ति मे कहे गए परिमाण संख्या एकान्त आग्रह करके मानने योग्य नही है। संयम और शरीर की रक्षा हेतु, लज्जा हेतु, आशक्ति रहित भावो से रखने का विवेक बुद्धि से निर्णय करना चाहिए।

इसका कारण यह है कि भाष्य मे एक पात्र या दो पात्र ही रखने का आग्रह किया गया है जब कि आगम मे अनेक पात्र रख सकने के अनेक प्रमाण है।

आगम मे रजोहरण को जीव रक्षा और भूमि प्रमार्जन के लिए उपकरण कहा है और भाष्य निर्युक्ति मे भी कहा है कि इतना लम्बा रजोहरण भी नही रखना कि इधर-उधर आख मुंह के लकडी की लगे और इतना छोटा भी नही रखना कि प्रमार्जन करने के लिए अधिक झुकना पडे जिससे कमर दुखे अर्थात् चलते समय खडे-खडे आराम से प्रमार्जन हो सके इतना प्रमाणोपेत रजोहरण करना। वही भाष्य मे ३२ अंगुल का माप भी छोटे बडे सभी साधु-साध्वियो के लिए कह दिया जो उचित भी नही है। क्योकि ऐसा करने से उस छोटे-से रजोहरण से चलते समय प्रमार्जन भी नही होता और दडासन नामक (डाडिया) अधिक उपकरण पूजने के लिए साधु साध्वियो को रखना पडता है और भाष्य मे उक्त स्वकथन से विरोध भी होता है। अत ३२ अगुल का सबके लिए एकान्त आग्रह संयम मर्यादा के अनुकूल नही होने से आगम विरूद्ध है। अत विवेक यही है कि अपनी ऊंचाई के अनुसार योग्य माप का रजोहरण रखना चाहिए। और दडासन उपकरण को व्यर्थ मे नही बढाना चाहिए।

चोलपट्टा और चद्दर भी भाष्य मे छोटा बताया है जो लज्जा और शरीर रक्षा के लिए पर्याप्त नही होता है। इसलिए मूर्तिपूजक और स्थानकवासी सभी लोग भाष्य की मर्यादा का पालन नही करते है। पात्र के लिए भी भाष्य मे कही गई मर्यादा को दोनो ही समुदाय वाले पालन नही करते किन्तु ४-६ आदि इच्छानुसार पात्र रखते है। इसलिए कम से कम रखना एव आवश्यक उपकरण ही रखना और आशक्ति भाव नही रखना यही विवेक बुद्धि है।

श्रावक को आगम अध्ययन विचारणा :-

धुरधर विजय·- पंडत जी। तीन वर्ष की दीक्षा के पहले साधु को भी शास्त्र पढाने की मनाई है तो गृहस्थ तो कभी शास्त्र पढने का अधिकारी नही हो सकता ?

पडित जी.- मत्थएणं वंदामि। अनेक जगह आगम विधान के अर्थ की परम्परा बराबर उपलब्ध नही है अत विकृति से पेश की जाती है।

शास्त्र मे ३ वर्ष की दीक्षा वाले को उपाध्याय पद देने का विधान

किया है और उस तीन वर्ष की दीक्षा वाले को उपाध्याय बनने के लिए बहुश्रुत होना भी आवश्यक कहा है। अत तीन वर्ष की दीक्षा होने के पहले शास्त्र नही पढाना यह शास्त्र का खोटा अर्थ है। उन सूत्रो का अर्थ ऐसा समझना चाहिए कि तीन वर्ष वाले योग्य साधु को कम से कम उतना (शास्त्र कथित) अध्ययन तो करा ही देना चाहिए योग्यता हो तो ज्यादा करे करावे उसका निषेध नही समझना चाहिये।

गृहस्थ को शास्त्र पढाने का निशीथ मे प्रायश्चित्त कहा है उसका मतलब भाष्यकार ने भी मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा किया है और बताया है कि वह दुरुपयोग करेगा किन्तु जिन भगवान के प्रति जो अनुरक्त है और श्रावक है, उनके लिए कदापि निषेध नही समझना चाहिए। नदी सूत्र और समवायाग सूत्र मे जिस तरह साधुओ का शास्त्र अध्ययन और उपधान का कथन है, वैसा की कथन श्रावको के लिए भी है। अन्य आगम वर्णनो से योग्य श्रद्धालु श्रावक भी आगम ज्ञानी, बहुश्रुत, कोविद, जिनमत मे निपुण आदि हो सकते है। आगम मे श्रावक को भी साधु के समान ही तीर्थ कहा है तथा चार प्रकार के श्रमण सघ मे भी श्रावक को गिना है अत आगमकार की दृष्टि से श्रावक के लिए आगम अध्ययन का निषेध या अनधिकार नही है। अत उक्त एकान्तिक आग्रह भी अविवेक है।

क्योकि मुनिराजो! मैने आगम अध्ययन किया तो उससे आपको नुकसान हुआ या लाभ? जिन शासन का लाभ है या हानि?

दोनो मुनिराज:- पंडितजी आपका ज्ञान तो हमारे भी विवेक बुद्धि को विकसित करने वाला है। आपका महान उपकार है और ऐसे श्रावक तो जिनशासन के तीर्थरुप है उनको शास्त्र पढने मे कोई दोष नही है उल्टा महान् लाभ है। अत सत्य विवेक यही है कि योग्य हो वह साधु-साध्वी या श्रावक श्राविका शास्त्र अध्ययन करे करावे, तो इसमे कोई प्रायश्चित्त नही आता है। यह आपका कहना सत्य है।

मुखवस्त्रिका विचारणा:-

केवल मुनि:- धुरंधर विजय जी! आप मुखवस्त्रिका हाथ मे क्यो रखते हो बांधते क्यो नही हो?

धुरधर विजय जी:- केवल मुनि सा! शास्त्र मे मुखवस्त्रिका रखना ही कहा डोरा लगाना नही कहा, अत डोरा लगाना गलत है।

केवल मुनि - शास्त्र मे तो साधुओ के चोलपट्टा कहा है डोरा नही कहा तो आप

इतनी मोटी रस्सी ऊपर क्यो बांधते हो। साध्विया भी साडी मे डोरा क्यो डालती है, ऐसे ही लूगी जैसा बाध लेना चाहिए।

धुरधर विजयजी:- बोलने से मुहपति पर थूक लग जाता है उसमे समुर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते है जिससे जीव हिसा का पाप लगता है इसलिए भी हम मुंहपति बाधते नही किन्तु हाथ मे रखते है।

केवल मुनि.- धुरधर विजय जी! शास्त्र मे कहे चौदह समुर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होने के बोलो मे टट्टी, पेशाब, कफ, श्लेष्म, खून, रस्सी, वीर्य, कलेवर आदि कितने ही नाम स्पष्ट कह दिए गए है। थूक का नाम कफ श्लेष्म के साथ भी नही कहा है। अत थूक मे समुर्च्छिम मनुष्य की उत्पति कहना अतिप्ररुपणा दोष है।

धुरधर विजय:- पंडित न्यायचन्द्रजी! हम तो थूक और पसीना मे जीवोत्पति मानते है आपने मुख वस्त्रिका के विषय मे आगम से क्या समझा है? स्पष्ट करे?

पडित जी - मत्थएण वंदामि! इस उपकरण के नाम से ही स्पष्ट है कि यह मुंह पर रहती है न कि हाथ मे या कमर मे।

मुखवस्त्रिका और रजोहरण दो उपकरण जिनकल्पी को एवं अचेल भिक्षु को भी रखना आवश्यक होता है ये दोनो जैन लिग के आवश्यक उपकरण है और ये दोनो संयम रक्षार्थ उपकरण है, शरीर रक्षार्थ नही है।

भगवती सूत्र मे खुले मुंह (वस्त्र से मुख ढके बिना) बोली जाने वाली भाषा को सावद्य भाषा कहा है। मुखवस्त्रिका से मुख को ढके बिना नही बोलना यह सिद्धांत मन्दिरमार्गी और स्थानकवासी दोनो ही स्वीकार करते है।

श्रावको के देव गुरु के दर्शन हेतु अवग्रह मे प्रवेश करने पर भी मुख पर वस्त्र लगाना आवश्यक विधि है। जिसका कथन भगवतीसूत्र आदि अनेक सूत्रो मे है।

अत बोलते समय, उपाश्रय से बाहर जाते समय, प्रतिक्रमण करते समय मुख पर मुखवस्त्रिका होना आवश्यक है। इस नियम को तोड देने पर अधिकांश मंदिर मार्गी साधु-साध्वी निरकुश रुप से खुले मुह ही बोलते रहते है, उनका थूक सामने बैठे व्यक्ति पर और शास्त्रो पर भी गिरता है। जिससे महान आशातना लगती है और सावद्य भाषा का पाप भी लगता है। यदि डोरे मे ही कुछ पाप होता तो चोलपट्टे मे रस्सी

लगाना प्रारम्भ नही किया जाता। इस प्रकार डोरे मे तो कोई पाप नही और खुले मुह बोलना भी नही। इत्यादि कारणो से मुख वस्त्रिका मुंह पर बाधना ही उचित है।

सामने वाले व्यक्ति पर और शास्त्र पर थूक नही गिरने का भी फायदा हो जाता है।

पसीने मे और थूक मे समुच्छिंम मनुष्य की उत्पति नही होती है। क्योकि साधु-साध्वी को घंटो तक विहार करने का और घंटो तक व्याख्यान वांचने या बैठने का प्रसग आता है। तब गर्मी मे कपडे पसीने से तरबतर हो जाते। उसमे समुच्छिंम मनुष्य उत्पन्न होवे तो साधु जीवन का पालन भी असम्भव हो जाएगा।

धुरधर विजयः- पडित जी। पसीने के कपडे शरीर से संलग्न रहते है, इसलिए उनमे जीवोत्पत्ति नही होती।

मुनिवर। जब शरीर से सलग्न पसीने के कपडे मे समुच्छिंम मनुष्य उत्पन्न नही होते तो मुख के पास अत्यन्त निकट लगी मुंहपति मे समुच्छिंम मनुष्य उत्पन्न होने की कल्पना करना ही व्यर्थ है।

निष्कर्ष यह हुआ कि मुंहपति मुख पर बाधने से समुच्छिंम का पाप नही लगे और सावद्य भाषा भी न बोली जावे और शास्त्र की आशातना भी नही होवे। यद्यपि आगमो मे कही पर भी मुखवस्त्रिका हाथ मे रखने का या मुंह पर बांधने का स्पष्ट उल्लेख नही है। फिर भी आगम विधानो के आशय से यही विवेक प्रगट होता है कि बोलने के समय और उपाश्रय से बाहर जाते समय मुख पर मुखवस्त्रिका बांधना लिग के लिए एवं सावद्य भाषा से बचने के लिए आवश्यक है। सोते, जागते, मौन, ध्यान सभी अवस्थाओ मे २४ ही घन्टे मुखवस्त्रिका बाधे रहने का आग्रह रखना भी अनावश्यक आग्रह है और मुंहपति कभी भी बाधना ही नही और बेधडक खुले मुंह बोलते जाना, यह भी मर्यादा को भग करने के साथ एक आगम विपरीत दुराग्रह है। उसमे लाभ कुछ भी नही है, हानि ही हानि है। अत विवेक पूर्वक यथा समय मुंहपति बाधकर दोषो से बचना चाहिए।

****

मासिक धर्म में धर्मानुष्ठान विचारणाः-

धुरंधर विजयः- केवल मुनि जी। आप मासिक धर्म को अस्वाध्याय मानते है?

केवल मुनिः- हां, जी हम मासिक धर्म को अस्वाध्याय मानते हैं।

धुरधर विजयः- आप श्राविकाओ को सामायिक का नियम कराते है तब क्या तीन दिन का आगार रखते है?

केवल मुनिः- नही जी। सामायिक और स्वाध्याय का कोई सम्बन्ध ही नहीं है। साध्वी बिना किसी आगार के जीवन भर की सामायिक का पच्चक्खाण कर सकती है। सामायिक का अर्थ है १८ पाप का त्याग करना। एक मुहूर्त की या जीवन भर की सामायिक लेने के बाद मासिक धर्म आदि कोई भी अस्वाध्याय हो तो भी उससे सामायिक भंग होने का कोई प्रयोजन नही है।

क्यो पण्डित जी। अस्वाध्याय स्वाध्याय का आप क्या मतलब समझते है?

प. न्यायचद्र जी:- मत्थएणं वंदामि। अभिधान राजेन्द्र कोष भाग प्रथम पृ ८२७ मे बताया गया है कि 'सत्शास्त्र का अध्ययन करना स्वाध्याय है। वह अध्ययन जब जहां न करना हो वह हेतु अस्वाध्याय कहा जाता है यथा – रुधिर आदि। ऐसे अस्वाध्याय ३२ है। उनमे सूत्र के मूल पाठ का अध्ययन उच्चारण करना नही कल्पता है।'

अत. मुनिवरो। अस्वाध्याय का सम्बन्ध केवल मूल पाठ के उच्चारण से है। नित्य नियम, धार्मिक-क्रिया, पाप-त्याग, तपस्या आदि कार्यो का अस्वाध्याय से कोई प्रयोजन ही नही है। प्रतिक्रमण रुप नित्य नियम का भी ३२ अस्वाध्याय से कोई सम्बन्ध नही है। चाहे गाज-बीज हो या सूर्य ग्रहण हो, चाहे चैत्र आदि की पूनम एकम हो या सन्ध्या काल (लाल दिशा) हो, नित्य नियम मे उपयोगी होने से आवश्यक सूत्र आगम होते हुए भी उसका उच्चारण करना निषिद्ध नही है अर्थात् ३२ अस्वाध्याय मे भी प्रतिक्रमण किया जाता है।

अत. मासिक धर्म के समय सामायिक प्रतिक्रमण, व्रत-नियम, प्रत्याख्यान, पौषध का निषेध करना, मन कल्पित है किन्तु आगम सम्मत नही है।

धुरधर विजयः- आगम के मूल पाठ के अध्ययन की भी अस्वाध्याय क्यो होती है? आगम तो स्वयं मंगल रूप होते है उन्हे भी अस्वाध्याय के समय पढे तो दोष क्या है? शास्त्र मे अस्वाध्याय बताई गई है उसका हार्द क्या है?

पंडित जी:- मत्थएणं वंदामि। तीर्थंकर भगवान द्वारा प्ररुपित भावो को एक विशिष्ट भाषा मे गुंथन करने पर वह शास्त्र कहलाता है। तात्पर्य यह है कि सूत्र हमेशा किसी एक विशिष्ट एव अल्प प्रचलित भाषा मे बनाये जाते है। व्याख्यान, विचारणा, अर्थ-भावार्थ समझाना, यह प्राय

जनसाधारण की भाषा मे होता है।

तदनुसार भगवान के द्वारा प्ररुपित भावो को गणधर एक विशिष्ट भाषा मे गुथन करते है। वे गणधर इसके लिए देवो की भाषा का चयन करते है अर्थात् देववाणी (अर्धमागमधी भाषा) मे आगम रचना करते है। इस प्रकार हमारे आगमो की मौलिक भाषा (अर्धमागधी) देवो की भाषा है।

देवो मे कई हल्के-कुतुहली एवं मिथ्यात्वी देव भी होते है। उनके कुतुहल या उद्दंडता-करने के समय भी नियत होते है। यथा - पाठशाला मे बच्चो के लिए खेलकूद मनोरंजन के समय भी होते है।

उन समयो मे देववाणी वाले इन शास्त्रो के उच्चारण मे भूल हो जाने पर वे देव कुतुहल या रोष प्रकट कर सकते है। अत स्वाध्याय के निमित आपत्ति न आवे इसके लिए ही वैसे समयो मे (३२ अस्वाध्यायो मे) स्वाध्याय का निषेध किया गया है। रूधिर पीप आदि की अस्वाध्याय आत्म (स्व) अस्वाध्याय कही गई है। यह निजी व्यक्तिगत अस्वाध्याय तीन या अनेक दिन तक निरंतर रह सकती है। इस कारण व्यवहार सूत्र उ ७ तथा निशीथ सूत्र उ १९ मे परस्पर साधु साध्वी को सूत्रार्थ वाचना देने का विधान किया गया है। साथ ही स्वत अकेले को स्वाध्याय करने का निषेध किया है। निर्युक्ति भाष्य मे स्वयं की खून रस्सी के विषय मे शुद्धि करने एवं वस्त्र पट लगाकर परस्पर वाचना देने की स्पष्ट विधि बताई है।

इस प्रकार सूत्रो की अस्वाध्याय मे भी आवश्यक सूत्र (प्रतिक्रमण) के पाठो (नमस्कार मंत्र, लोगस्स, णमोत्थुणं आदि) का उच्चारण करना और अन्य आगमो की वाचना देना आगम और भाष्यो से सिद्ध है। तब अस्वाध्याय का जहां किंचित् भी सम्बन्ध नही है, उन धार्मिक क्रियाओ का निषेध करना कदापि उचित नही है।

शुचि प्रधान समाज के निकट रहने से वीतराग धर्म मे विकृति आई है कि धार्मिक क्रियाएं भी नही करना। किन्तु हमारा धर्म विनय मूल धर्म है। शुचि मूलक नही है।

आगम मे तो सात दिन की चौविहार तपस्या करने वाले निरंतर कायोत्सर्ग मे लीन रहने वाले पडिमाधारी साधु को स्वमूत्र पान करने का भी विधान किया गया है।

आचारांग सूत्र मे गृहस्थो को शुचि धर्मी कहकर भिक्षुओ को मोयसमाचारी वाला कहा है। अर्थात् आवश्यक होने पर वह मूत्र का उपयोग करने वाला होता है। वे शुचि धर्मी नही होते है।

रात्रि मे साधु को आहार या पानी सभी खाद्य या पेय पदार्थ रखने की मनाई है, निशीथ मे उसका प्रायश्चित भी कहा गया है। तथा अन्य विलेपन के पदार्थों को भी रात्रि मे रखने का निषेध एव प्रायश्चित कहा गया है।

साधु-साध्वी को परस्पर एक दूसरे का मूत्र लेकर पीना या अन्य उपयोग करने का भी विधान सूत्र मे है। अत शुचिधर्मी जनसाधारण की नकल करके धार्मिक क्रियाओ का एकान्त निषेध करना आगम सम्मत नही है।

धुरधर विजय— पण्डितजी! हम तो संवत्सरी के दिन भी सम्पूर्ण धर्म आराधना का ऋजुस्वला बहिन को पूर्णतया निषेध करते है वह एक नमस्कार मंत्र भी नही गिन सकती?

पडित जी—मुनिराज यह अर्वाचीन अशुद्ध नकल की हुई परम्परा है। आगमो से और उनके भाष्य व्याख्या ग्रन्थो से भी विरूद्ध है। ऊपर कहे गए राजेन्द्र कोष के स्पष्टीकरण से भी विरूद्ध है।

पूज्य मुनिराज! आप चितन करे कि पौषध, सामायिक या संयम लेने के बाद मासिक धर्म होने पर वह व्रत खण्डित नही होता है तो उसके करने का निषेध क्यो?

स्वाध्याय करते समय तो यदि कोई अस्वाध्याय का हेतु बन जाए तो ज्ञात होते ही स्वाध्याय का त्याग कर दिया जाता है। किन्तु संयम का या सामायिक, पौषध, प्रतिक्रमण का त्याग नही किया जाता।

अत अस्वाध्याय का सम्बन्ध सूत्र पाठ के अध्ययन से ही है किंतु धार्मिक क्रिया से नही, ऐसा समझना चाहिए और लोकरूचि प्रवृति को धर्म सिद्धात मे रूढ नही करना चाहिए। क्योकि वैसा करने पर निष्प्रयोजन ही धर्म आराधना का अन्तराय लगता है और वह आगम विरूद्ध भी है।

केवल मुनि—हां पण्डित जी! वास्तव मे ऐसा करने पर बहुत बडी अन्तराय लगती है। संवत्सरी महापर्व के दिन अट्ठम हो, किसी बहिन को प्रतिपूर्ण पोषध करना हो और उसे मासिक धर्म का अवसर आ जाए तो वह दिन भर एक नवकार मंत्र भी न गिने, कोई भगवान की स्तुतिस्तवन भी नही कर सके, उपाश्रय मंदिर मे पांव भी नही रख सके, तो वह फिर दिन भर अव्रत मे रहकर सावद्य कार्य करे या आलस्य करे और सम्पूर्ण धर्म आराधना से वंचित होकर इधर-उधर घर मे चक्कर काटे यह कुछ भी उचित नही है। ऐसे नियम घडना सर्वज्ञो के विधानो को दूषित करना है। आगम मे तो यथावसर मासिक धर्म मे परस्पर वाचना देने लेने की भी छूट दे दी गई है। भाष्य मे मंदिर मार्गी

प्राचीन आचार्यों ने उसकी विधि भी बता दी है तब फिर स्वछंद बुद्धि से ऐसे नित्य नियम के सबंध मे एकान्त निषेध करने मे कोई भी लाभ नही है। नुकशान का कायदा चलाना सर्वथा अनुचित है।

धुरधर विजय—पण्डित जी। किसी व्यक्ति का एक्सीडेट हो जाए और उसके शरीर से घंटो तक खून बहता रहे तो क्या वह प्रभूभक्ति या नमस्कार मन्त्र आदि गिन सकता है?

पण्डितजी—हा मुनिवर। यही विवेक सीखने का है ऐसे समय मे कोई धर्म सिद्धान्त प्रभू स्मरण आदि का एवं त्याग प्रत्याख्यान का, पापो के त्याग का निषेध नही कर सकता। किसी को दीर्घ कालीन अशुचिमय रोग कोढ आदि हो जाए तो वह भी उस अवस्था मे यथा शक्ति धर्माराधन कर सकता है इसका किसी भी ३२-४५ या ७२ आगम मे निषेध नही है।

आगम की अस्वाध्याय का आशय तो इतना ही है कि आवश्यक सूत्र (प्रतिक्रमण) के पाठो को छोडकर अन्य सभी आगमो के मूल पाठ का उच्चारण अस्वाध्याय काल मे नही करना।

अत सभी अस्वाध्यायो मे आगम पाठ के उच्चारण के अतिरिक्त सामायिक पौषध व्याख्यान श्रवण, प्रतिक्रमण, गुरू दर्शन, जाप ध्यान आदि अन्य कोई भी धर्माराधन की प्रवृतियां की जा सकती है।

● ● ●

लघु संवाद – प्रश्नोत्तर

दिगम्बर मान्यता विचारणा

प्रश्न— स्त्री को मोक्ष हो सकता है?

उत्तर— श्वे और दिगम्बर दोनो को ही पन्द्रह भेदे सिद्ध होना मान्य है क्योकि दिगम्बरो के अपने मान्य शास्त्रो मे भी स्त्रीलिग सिद्ध कहा है।

प्रश्न— वस्त्र धारण करने वाले साधु साध्वी मोक्ष जा सकते है?

उत्तर— स्वलिग, अन्य लिग और गृहस्थलिग ये तीन प्रकार वस्त्र के बिना सभव नही हो सकते और तीनो को अचेल मानना तो मूर्खता है। क्योकि दिगम्बर की मान्यतानुसार नगे नगे सभी स्वलिगी होगे फिर तीन प्रकार कहना निरर्थक होगा। केवल एक स्वलिग ही कहा जाता है। क्योकि सभी नगो का एक लिग मे

ही समावेश हो जाता है। अलग-अलग लिग कहने की आवश्यकता ही नही रहती।

प्रश्न— क्या हमारे आगम प्राचीन नही है? सभी आगम आचार्यो ने बनाए है?

उत्तर— दिगम्बरो का इस विषय मे जो कहना है वह भ्रमपूर्ण है।

क्योकि सम्पूर्ण ज्ञान का विच्छेद मानने पर उनके आचार्यो को श्रुतहीन अज्ञानी मानना पडेगा। और अज्ञानी के द्वारा स्वछंद बुद्धि से बनाया श्रुत भी मिथ्याश्रुत होगा।

प्रश्न— अपने शास्त्रो की प्रामाणिकता प्राचीनता का कोई प्रमाण है?

उत्तर— यदि दिगम्बर से अलग निकल कर श्वे ने अपने शास्त्र बनाए होते तो श्वे शास्त्रो मे जगह जगह वस्त्र रहति होने का निषेध किया जाता यह स्वाभाविक है। जबकि इन शास्त्रो मे अचेल होना तो प्रशस्त कहा गया है। अचेलकता का इतना सुन्दर विधान होना और खडन का अभाव होना इन शास्त्रो की प्राचीनता सिद्ध करते है।

किन्तु दिगम्बर शास्त्रो मे वस्त्र का निषेध एव खडन भी है अत उनकी अर्वाचीनता स्पष्ट सिद्ध है।

कोई भी छद्मस्थ अपने द्वारा नवनिर्मित शास्त्रो मे अपने आग्रह एव निर्णय को निश्चित ही स्थान देता है यह छद्मस्थता भी दिगम्बर शास्त्रो मे है किन्तु श्वे शास्त्रो मे नही। अत हमारे शास्त्र मौलिक है न कि कृत्रिम। इनमे बडे ही समान रूप से सचेल अचेल दोनो प्रकार के वर्णन है।

प्रश्न—स्त्रीलिग सिद्ध से स्त्री को मोक्ष नही समझना किन्तु कोई पुरुष स्त्री का वेश पहने उसकी अपेक्षा स्त्रीलिग सिद्ध समझना।

उत्तर—सूत के एक तार के पास मे रह जाने पर भी जिनकी मुक्ति अटक जाती है, तो स्त्री के कपडो से युक्त पुरुष को मोक्ष कैसे भेजेगे? यह आश्चर्य है।

प्रश्न—भाव की अपेक्षा स्त्रीवेद हो जाय तो मोक्ष हो जाना स्त्रीलिग सिद्ध मानना चाहिए?

उत्तर—ऐसा सोचना भी गलत है भाव वेद तो कोई भी हो मुक्ति नही हो सकती है। भाव की अपेक्षा अवेदी को ही मुक्ति हो सकती है।

जिन मंदिर एवं आगम में प्रक्षेप विचारणा—

प्रश्न—अन्य मत के शास्त्रो मे भी जिन मंदिर का कथन है अत मंदिर पूजा प्राचीन है?

उत्तर—अन्य मत के शास्त्रो का भी रचना समय लेखन काल के बाद का ही

समझना चाहिए और उस काल मे सभी लोगो ने अपने शास्त्रो मे जो मन भाया वह करने का अधिकार रखा है। अत अन्य मत के शास्त्रो का महत्व तो हमारे ग्रन्थो जितना भी नही है।

उस मध्य काल मे कई अयुक्त बाते ग्रन्थो मे भरी गई है और मौका लगा तो पूर्वाचार्यों के रचनाओ मे भी बेधडक प्रक्षेप करने की सत्ता रखी गई है।

प्रश्न—इसके लिए उदाहरण दे—

उत्तर—१. रावण को तीर्थंकर गोत्र बंध कर चौथी नरक् मे जाना कह दिया जो आगम से एवं कर्म ग्रन्थ से भी विपरीत है।

२ एक तीर्थ पर पाव धरे तो मोक्ष, एक मंदिर बनावे तो मोक्ष, वास्तव मे यदि पैसो से ही धर्म या मोक्ष होता तो चक्रवर्ती नरक मे क्यो जावे और धनवानो को साधुपन के कष्ट सहन करने की क्या जरूरत? उस संपति से मंदिर बना के मजे मे मोक्ष प्राप्त कर लेनी चाहिए।

३. गोतम स्वामी के साथ १५ सौ साधुओ को केवल ज्ञान होना कह दिया जबकि भगवान के केवली साधु की संपदा ७०० की ही बताई है। गणधरो के शिष्य भी भगवान की सपदा मे गिने जाते है तभी १४००० साधु होते है।

४ कल्प सूत्र को देखेगे तो उसमे प्रक्षेपो और झूठी कल्पनाओ की मानो बाढ ही आ गई है। एक छेद सूत्र के एक अध्ययन के नाम से इतना बडा घोटाला तो भयंकर अपराध है। ऐसी करतूतो के करने वालो से इमानदारी की क्या आशा की जाय? शास्त्र के नाम इतना घोटाला करने वाले निर्युक्ति भाष्यो मे मर्जी मुताबिक कर बैठे उसमे तो आश्चर्य ही क्या है? वास्तव मे पर्यूषणा कल्प सूत्र के स्वतंत्र अस्तित्व का मलयगिरी आचार्य तक नामोनिशान भी नही था।

प्रश्न— कई अच्छे अच्छे प्रामाणिक ग्रन्थो मे पूर्तिपूजा मंदिर का वर्णन है न?

उत्तर— नंदी सूत्र मे कहे गए श्रुत ज्ञान रूप ७२ शास्त्रो मे से किसी मे भी श्रावक साधु के द्वारा मूर्ति पूजा या मंदिर निर्माण का उल्लेख नही है। न ही किसी आचार शास्त्र मे इस सम्बन्धी विधान है।

उन ७२ शास्त्रो के अतिरिक्त अन्य कोई भी ग्रन्थ या व्याख्या निर्युक्ति भाष्य आदि है वे सभी नदी के बाद बने है यह निश्चित है। क्योकि वे सभी स्वतत्र ग्रन्थ रूप मे बनाये गये है। नदी कर्ता को एक पूर्व का ज्ञान था उन्होने एक पूर्वधरो द्वारा रचित अनेक शास्त्रो को श्रुत मे कहा है और ७२ नाम के बाद अंत करते हुए कहा कि जिस भगवान के शासन मे जितने साधु हो उतने प्रकीर्णक श्रुत जानना। किन्तु निर्युक्ति भाष्य टीका आदि को कोई श्रुत सख्या

मे नही कहा, न ही हिमवत स्थविरावली आदि को श्रुत मे कहा है। अत ये सभी बाद की रचनाए है, यह स्पष्ट है। अन्यथा तो देवर्द्धि के द्वारा पूर्वधरो की रचनाओ को श्रुत मे नही गिनाने के कोई कारण नही था। खुद की रचना को भी श्रुत मे गिन लिया है।

निर्युक्तियो मे चौदहपूर्वी भद्रबाहु को एव वज्र स्वामी आदि को नमस्कार किया गया है। निर्युक्ति की चूर्णी करने वाले जिनदास गणि भी यही कहते है कि यहा प्रथन गाथा मे निर्युक्तिकार महाराज सूत्रकर्ता श्री चौदह पूर्वी भद्रबाहु को प्रणाम करते हैं।

शास्त्रोद्धारक प र श्री पुण्यविजय जी लिखते है कि निर्युक्तियो की रचना के सम्बन्ध मे प्रचलित घोटाला चूर्णिकार के समय नहीं था। यह तेरहवी चौदहवी शताब्दी मे नामसाम्यता से उठा हुआ घोटाला है। जो इतिहास की विकृतियो युक्त प्रचार से उत्पन्न हुआ है।

प्रश्न—जिनदास गणी का समय कौन सा है?

उत्तर—वीर निर्वाण १२वी १३वी शताब्दि का माना जाता है।

प्रश्न—कितने ही श्रावको साधुओ ने मदिर बनाए ऐसा कई कथाओ मे वर्णन आता है?

उत्तर—नंदी मे कहे गये शास्त्रो मे करीब २००० पृष्ट जितनी कथाएं है किन्तु एक भी जगह साधु या श्रावक के द्वारा मंदिर बनाने या प्रेरणा करने का नामोनिशान भी नही है। तो बाद के रचे कथा ग्रन्थो मे कहा से आवे? स्वछंद मति कल्पित होने के सिवाय उसे कोई स्थान प्राप्त होने वाला ही नही है।

प्रश्न— मंदिर मार्गी लोग हमे तो कहते है कि तुम पूर्वाचार्यो महापुरुषो के शास्त्रो को नही मानते यह ठीक नही। किन्तु वे स्वयं ४५-४५ ही क्यो कहते?

उत्तर— हाथी के दात खाने के अन्य और दिखाने के अन्य होते है। उसी तरह दूसरो पर आक्षेप करना हो जब तो वे सभी ग्रन्थ साहित्य को शास्त्र मानने का आग्रह करेगे, किन्तु खुद ही अपने मुह से ४५ शास्त्र कह कर हरिभद्र सूरी, देवेन्द्र सूरि, हेमचन्द्राचार्य, मलयगिरि रचित अनेक ग्रन्थो को आगम मे नही गिनते। यह दुहरी चाल चलने की उनकी आदत बन गई है। कर्म ग्रन्थ, त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र, परिशिष्ट पर्व, बृहत्सग्रहणी आदि को वे ४५ शास्त्र मे नही गिनते है। फिर भी उन्हे कोई दोष नही लगता और ३२ आगम मानने वालो को वे अनेक ग्रन्थो के मानने का आग्रह एवं आक्षेप करते रहते है यह उन्हे ''दिया तले अंधेरा'' नही दिखने की स्थिति है।

इन विषयो का स्पष्टीकरण विस्तृत संवाद मे कर दिया गया है अत यहां छोटे रूप मे दिया गया है।

—ऐतिहासिक संवाद परिशिष्ट समाप्त—

आगम नवनीत माला

पुष्प - २२

ऐतिहासिक परिशिष्ट

खण्ड - २ (निबंध)

नवज्ञान गच्छप्रमुख
आगम मनीषी
तिलोकमुनि

अनुक्रमणिका

ऐतिहासिक परिशिष्ट खंड - २ (निबंध)

लिपि कर्ता के ''मंगल पाठ और प्रशस्तियां'' :—

यह भारतीय सस्कृति है कि प्रत्येक सुज्ञ अपने प्रत्येक कार्य को प्रारम्भ करने मे अपने ''ईष्ट'' को मगल रूप मे याद कर के उनका विनय करता है।

जैनागमो के अध्ययन कर्ता सर्व प्रथम आवश्यक सूत्र का अध्ययन करते है। उसके प्रथम अध्याय मे आदि सूत्र **''नमस्कार मंत्र''** है। यही सम्पूर्ण जैनागम का आदि मगल है। इस सर्वोत्कृष्ट मगल के बाद किसी भी आगम के आदि मध्य अत मे ''मगल'' की आवश्यकता नही रहती है। ऐसा आगमो का अन्वेषण युक्त अध्ययन करने से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है।

नमस्कार मत्र की रचना मे गणधर भगवन्तो ने जिन शासन के समस्त नमस्करणीयो को समाविष्ट कर दिया है। इसके सिवाय जिनवाणी के रसिक मुमुक्षु आत्मा के लिये ईष्ट रूप नमस्करणीय कुछ भी नही है।

नमस्कार मत्र मे बिना किसी नाम निर्देश के देव तथा गुरू पदस्थ सभी आत्माओ का समाविष्ट-कर दिया गया है। तीन तत्व मे देव गुरू के साथ धर्म तत्व का भी समावेश होता है। फिर भी धर्म तत्व को आचरणीय आदरणीय ही समझना चाहिये। नमस्करणीय तो देव गुरू तत्व को ही कहा गया है।

इससे यह सिद्धात निर्णित होता है कि गुणों को धारण करने वाला गुणी आत्मा नमस्करणीय है और गुण आदरणीय है किन्तु नमस्करणीय नही। अन्यथा नमस्कार मत्र की रचना मे गणधर ''णमोधम्मस्स'' ''णमोसुयस्स'' आदि अन्य पद भी रखते। गणधरो की रचना मे अपूर्णता न मानने से अन्य नमस्करणीय पदो के मानने की आवश्यकता जिनशासन मे नही रहती है।

दशवैकालिक सूत्र की प्रथम गाथा मे देवो के लिये भी नमस्करणीय कौन होता है, यह बताया है। वहा भी अहिसा आदि धर्मों (गुणों) को नमस्करणीय न कह कर धर्म धारक धर्मी-गुणी को ही नमस्करणीय कहा

''**देवा वि त णमसति, जस्स धम्मे सया मणो**''

इस के पूर्वार्द्ध मे अहिसा-सयम-तप रूप धर्म को उत्कृष्ट मगल कहा है किन्तु नमस्करणीय नही कहा है।

नमस्कार मत्र मे पाच पदो को नमस्कार करने के बाद, यह भी बताया गया है कि ''यह पच परमेष्ठी पद को किया गया नमस्कार, सभी पाप कर्मो को नष्ट करने वाला है तथा सभी मगलो मे प्रधान मगल है।

इस प्रकार जिनवाणी के रसिक मुमुक्षु आत्माओ के लिये लौकोत्तर आराधना मे देव गुरू के पाच पद नमस्करणीय है और देव गुरू धर्म ये तीन तत्व ही उत्कृष्ट-प्रधान मगल है। जिनवाणी की आराधना करने वाले साधक आगमो की स्वाध्याय आदि के पूर्व भी देव या गुरू को वदन नमस्कार करते है।

ससार मे अनेक लौकिक मगल भी माने जाते है, किन्तु धर्म आराधना मे या जिनवाणी रूप आगम के लिये, उस मगल की कोई आवश्यकता नही होती है।

देवगति के देव, जिनवाणी की आराधना करने वाले मुमुक्षु आत्माओ के आराध्य नही है। उनके लिये अरिहत सिद्ध - देव पद रूप आराध्य है। किन्तु देवी-देवता तो ससारी प्राणी है। देव गति की अपेक्षा वे देव कहे जाते है, उनकी चार जातिया है, वे दिव्य सासारिक भौतिक ऋद्धि के कारण देव कहलाते है। आध्यात्मिक व धार्मिक रिद्धि की अपेक्षा जिनवाणी का छोटा सा आराधक भी उनसे विशिष्ट होता है। अत धार्मिक आराधना की दृष्टि से ये देव देविया श्रावक-श्राविका और साधु-साध्वी के लिये नमस्करणीय देव नही है किन्तु इन देव देवियो के लिये धर्मनिष्ट साधु-साध्वी और श्रावक श्राविका नमस्करणीय है। भगवती सूत्र मे साधुओ को ''धर्मदेव'' भी कहा गया है।

''**चमत्कार को नमस्कार**'' यह एक लौकिक उक्ति है। इसका धर्म क्षेत्र मे कोई महत्त्व नही हो सकता है।

आगम की कठस्थ परम्परा के बाद लेखन काल आता है। लेखक अपने कार्य के प्रारम्भ मे कुछ मगल शब्द लिखते है अंत मे कुछ प्रशस्ति,

नमस्कार आदि करते है। इसके अनेक प्रकार बनते है। वर्तमान मे भी प्रदेश-देश व्यक्ति से मगल रूप आद्य शब्द के अनेक प्रकार है।

आगम लेखन कार्य अधिकत साधु स्वय ही किया करते थे। अत मुख्यत आगमो के लिपि कर्ता वे ही है। उनके द्वारा किये गये ये मगल प्रशस्तिया सूत्र की आदि व अत मे अलग रूप लिये हुए होती थी।

आगम निष्ठा होते हुए भी समय प्रभाव व छाद्मस्थिक दोष से लिपि को, श्रुत को, देवी-देवता को भी नमस्कार किये गये। फिर भी उन्हे आगम से बाह्य रूप मे रखा जाता व माना जाता रहा। किन्तु जब आचार की शिथिलता बढी, यतिकाल का जोर बढा, तबगृहस्थ लिपिको को मेहनताना दिलवाकर आगम सग्रह कराया जाने लगा, तब उन लिपिको के द्वारा ये मगल प्रशस्तियो का अलगाव न रह सका।

भगवती सूत्र सभी आगमो मे विशाल काय है। अत इसमे मगलो की अधिकता आज आगम पाठ के रूप मे उपलब्ध है - सर्व प्रथम प्रधान मगल नमस्कार मत्र रखा गया और धीरे धीरे क्रम से नमो सुयस्स, ''नमो बभीए लिवीए'' ने प्रवेश पाया। आगे बढते गौशालक अध्ययन के मगल के लिये ''श्रुत देवता भगवती'' एक श्रुताधिष्ठाता देवी को नमस्कार किया गया। इसी प्रकार अनत काय वर्णन के २३ वे शतक के प्रारभ मे देवी को नमस्कार हुआ। सूत्र के अत मे गोतम स्वामी को नमस्कार करने के साथ श्रुताधिष्ठाता देवी, शासनाधिष्ठाता देवी, कुम देव, शातिकरी वैरोट्या देवी, विद्या देवी आदि को नमस्कार करना भी किन्ही लिपि कर्ता को आवश्यक हुआ। उसकी नकल आगे से आगे चलती गई।

आगमो का सपादन और प्रकाशन करने के लिये धुरधर पडित ही प्राय आगे आते है। वे लहियो की अनेक प्रशस्तिया सवत् मितिया, श्रीरस्तु, कल्याणमस्तु आदि को ज्यो का त्यो प्रकाशित नही करते है। इन्हे आगम पन्नो से निकालने मे वे कोई अपराध नही मानते है।

लिपिको की प्रवृतियो को ध्यान मे रखते हुए ही लिपिकाल से प्राप्त आगमों को प्रकाशित करने मे चितन पूर्वक शुद्ध आगम पाठ का प्रकाशन किया जाता है।

किन्तु भगवती सूत्र के प्रकाशन मे अनेक सपादको से चूक हुई है यहा वे

भेडचाल मे ही रह गये है। भगवती सूत्र की टीका करने वाले आचार्य श्री अभय देव सूरि जी स्पष्ट लिख रहे है कि ''यह गोतम गणधर की स्तुति के बाद का लेखन लिपिको का है'' ऐसा कह कर उन्होने उसकी व्याख्या की उपेक्षा रखी है। अर्थात् व्याख्या नही की है।

भगवती सूत्र की इस अतिम प्रशस्ति मे श्रुत देवता (देवी) आदि अनेको के नाम है। ये लिपिको के द्वारा लिखित है यह टीकाकार ने स्पष्ट बता दिया है। तो बुद्धिमान प्रकाशक इन लिपिको के शब्दो को आगम भगवती मे प्रकाशित करके ही क्या अपने को ईमानदार और बुद्धि निधान समझ सकते है? अथवा इसे अपनी एक भूल स्वीकार कर सकते है।

जब अत मे श्रुताधिष्ठित देवी को किया गया नमस्कार लिपिको का है। यह निर्णित हो जाता है तब शतक १५ व २३ की नमस्करणीय देवी भी लिपिको की ही रही । इस प्रकार मगल प्रशस्तिया आदि लिपिक काल के ही है, यह नि सदेह है।

भगवती के सपादन का कार्य करने वाले महापुरूष अपनी भूल स्वीकार कर स्पष्टीकरण करे। इसी मे विवेक पूर्ण आगम सेवा है, अन्यथा भेड चाल या अधानुकरण ही कहलायेगा।

सपादको को हस्तलिखित सूत्रो मे से 'श्री' ''कल्याण'' सवत, मिती, लिपिक के नाम आदि निकालने मे कोई दोष नही होता, तो इन देव देवी आदि के नमस्कार आदि को निकालने मे कौन सा दोष हो सकता है? अर्थात् कोई किचित भी दोष नही है।

श्रुतदेवी, शासन देवी आदि कल्पनाए भी मध्यकाल की देन है। जो लिपि काल के बाद आगम ग्रन्थो मे प्रवेश पाई है।

सार :- (१) वास्तव मे धर्माराधन मे देव देवी नमस्करणीय नही हो सकते। किन्तु देव गुरू रूप पाच परमेष्टी पद ही नमस्करणीय मानने चाहिये। जिनशासन मे गुणी को ही नमस्करणीय समझना किंतु गुणो को नमस्करणीय नही समझना चाहिये। यथा---णमो णाणस्स, णमो सुयस्स, आदि कहना यह अशुद्ध परपरा है।

(२) मूल पाठ के सपादन मे लहियो आदि के द्वारा लगाये गये मगल शब्द आदि को अलग करके सपादन प्रकाशन करना चाहिए अन्यथा

अविवेक और अतिप्ररूपणा का दोष लगता है।

(३) नमस्कार मत्र के अतिरिक्त सूत्रो के समी आदि एव मध्य मगल पाठ और अतिम प्रशस्तियो रूप वाक्य गाथाए एव शब्द, उस आगम का अश नही है, लिपि कर्ता के अपने शब्द है।

(४) भगवती सूत्र सपादन सरीखे महान कार्य और ऐसे महान प्रामाणिक आगम के मूल पाठ मे जो मगल और प्रशस्तिया ज्यो की त्यो प्रकाशित कर दी जाती है, यह आगम प्रकाशन मे सपादन कर्ताओ का अविवेक है।



-: निशीथ सूत्र का ऐतिहासिक परामर्श :-

आचारप्रकल्प :- (१) व्यवहार सूत्र उद्दे ३ सूत्र ३ मे ''**आचारप्रकल्पधारी**'' होने का विधान है।

(२) व्यवहार सूत्र के दशवे उद्देशक मे साधु को सर्वप्रथम ''आचार-प्रकल्प नामक अध्ययन'' की वाचना देने का विधान है।

(३) व्यवहार सूत्र के पाचवे उद्देशक मे ''**आचार-प्रकल्प अध्ययन**'' को भूल जाने वाले तरूण साधु एव साध्वियो को प्रायश्चित्त देने का विधान है। इस प्रकार इस व्यवहार सूत्र मे कुल सौलह बार ''**आचार प्रकल्प**'' या ''**आचार-प्रकल्प-अध्ययन**'' का कथन है । यथा –

उद्देशक	सूत्र
३	३, १० मे एक-एक बार,
५	१७, मे एक बार,
१०	२१,२२,२३, मे एक-एक बार
५	१५,१६,१८, मे दो-दो बार
६	१७,१८ मे दो-दो बार

नदी सूत्र मे कालिक उत्कालिक सूत्रो की सूची मे ७१ आगमो के नाम दिये गये है। उसमे ''आचारप्रकल्प'' या ''आचारप्रकल्प अध्ययन'' नाम

का कोई भी सूत्र नही कहा गया है। अत. यह समझना एव विचारणा आवश्यक हो जाता है कि यह ''आचारप्रकल्प'' किस सूत्र के लिए निर्दिष्ट है और कालपरिवर्तन से इसका नाम परिवर्तन किस प्रकार हुआ है? इस विषय मे व्याख्याकार पूर्वाचार्यो के मतव्य इस प्रकार उल्लिखित मिलते है.-

(१) पचविहे आयारप्पकप्पे पण्णत्ते तं जहा - १ मासिए उग्घाइए, २. मासिए अणुग्घाइए, ३. चाउमासिए उग्घाइए, ४. चाउमासिए अणुग्घाइए ५. आरोवणा। ----ठाणंग ५,

टीका :- आचारस्य प्रथमांगस्य पदविभाग-समाचारी लक्षण - प्रकृष्टकल्पाभिधायकत्वात् प्रकल्पः आचारप्रकल्पः निशीथाध्ययनम् । स च पंचविधः, पंचविधप्रायश्चित्ताभिधायकत्वात्।

(२) आचारः प्रथमांगः, तस्य प्रकल्पो अध्ययनविशेषो, निशीथम् इति अपराभिधानस्य...।

— समवायाग - २८

(३) अष्टाविंशतिविधः आचारप्रकल्पः, निशीथाध्ययनम्, आचारांगम्, इत्यर्थः । स च एवं -- (१) सत्थपरिण्णा जाव (२५) विमुत्ती, (२६) उग्घाइ, (२७) अणुग्घाइ (२८) आरोवणा तिविहमो निसीहं तु, इति अट्ठावीसविहो आयारप्पकप्पनामोत्ति।

- राजेन्द्र कोश भा २ पृ ३४९ ''आयारपकप्प शब्द।

- प्रश्नव्याकरण सूत्र अ १०

(४) आचारः ''आचारागम्, प्रकल्पो-निशीथाध्ययनम्, तस्येव पंचमचूला। आचारेण सहितः प्रकल्पः आचारप्रकल्प, — पंचविंशति अध्ययनात्मकत्वात् पंचविशति विधिः आचारः, १. उद्घातिम २. अनुद्घातिमं ३. आरोवणा इति त्रिधा प्रकल्पोमीलने अष्टाविंशतिविधः।

— अभिधान राजेन्द्रकोश भाग २, पृ ३५० ''आयारप्पकप्प'' शब्द,

विचारणा :- यहा समवायाग सूत्र एव प्रश्नव्याकरण सूत्र के मूल पाठ मे अट्ठाईस प्रकार के आचारप्रकल्प का कथन किया गया है, जिसमे सपूर्ण आचाराग सूत्र के २५ अध्ययन और निशीथ सूत्र के तीन विभाग का समावेश करके अट्ठाईस का योग वताया है, इससे स्पष्ट है कि आगमो मे निशीथ को आचाराग सूत्र का ही विभाग या अध्ययन वताया गया है।

क्योकि केवल आचाराग सूत्र ग्रहण करे तो ''प्रकल्प'' शब्द निरर्थक हो जाता है और केवल निशीथ सूत्र समझे तो आचाराग का अध्ययन किए बिना निशीथ सूत्र का अध्ययन करना मानना होगा, जो कि सर्वथा अनुचित है। इसका कारण यह है कि प्रायश्चित्त-विधानो के अध्ययन के पूर्व आचार-विधानो का अध्ययन करना आवश्यक होता है। ''समवायाग और प्रश्नव्याकरण सूत्र मे भी सूत्रकार ने आचार सम्बन्धी पच्चीस अध्ययन के साथ ही प्रायश्चित्त रूप तीन अध्ययन कह कर अट्ठाईस अध्ययन एक साथ गिनाए है।

नदी सूत्र की रचना के समय प्रायश्चित्तविधायक तीन विभागो के बीस उद्देशक, आचाराग सूत्र से पूर्णत· पृथक हो चुके थे और उनका नाम निशीथ अध्ययन नाम के आधार से ''निशीथ सूत्र'' रख दिया गया था। इसी कारण नदी सूत्र मे ''प्रकल्प'' या ''आचारप्रकल्प'' नामक कोई सूत्र नही कहा गया है तथा नदी सूत्र के पूर्व रचित सूत्रो मे अनेक जगह 'आचारप्रकल्प' का कथन है कितु वहा ''निशीथ सूत्र'' का नाम तक नही है।

समवायाग सूत्र के उपर्युक्त टीकाश मे टीकाकार ने स्पष्ट किया है कि ''आचार का मतलब प्रथमाग-आचाराग सूत्र और प्रकल्प का मतलब उसका अध्ययन विशेष। जिसका कि प्रसिद्ध दूसरा नाम निशीथ सूत्र.है'' इस प्रकार दोनो सूत्र मिलकर ही सूत्रोक्त सपूर्ण आचार प्रकल्प सूत्र है।

''आचार-प्रकल्प'' शब्द के वैकल्पिक अर्थ इस प्रकार होते है -

(१) आचार और प्रायश्चित्तो का विधान करने वाला सूत्र निशीथ अध्ययन युक्त आचाराग सूत्र।

(२) आचार विधानो के प्रायश्चित्त का प्रतीक सूत्र = निशीथ सूत्र

(३) आचारविधानो के बाद तत् सम्बन्धी प्रायश्चित्तो को कहने वाला अध्ययन =आचारप्रकल्प अध्ययन = निशीथ अध्ययन

(४) आचाराग से पृथक किया गया खण्ड या विभाग रूप सूत्र अथवा अध्यन = आचारप्रकल्प अध्ययन = निशीथ सूत्र।

व्यवहार सूत्र मे प्रयुक्त ''आचारप्रकल्प'' इन चार विकल्पो मे प्रथम विकल्प की अपेक्षा ही सगत होता है।

संख्या प्रधान ठाणाग और समवायाग सूत्र मे अनेक अपेक्षाओ से अनेक प्ररूपण किये गये है। उसे एकात अपेक्षा से समझना उचित नही है। यथा – निशीथ सूत्र के २० उद्देशक है किन्तु उन्हे विभिन्न अपेक्षाओ से तीन या पाच सख्या से ही गिनाये गये है। ठाणाग सूत्र मे तीन अनुद्घातिक भी कह दिए है। इसी प्रकार आचार प्रकल्प के पांच विभाग भी कहे गये है और अठाईस विभाग भी कहे गये है। ऐसे अनेक उदाहरण है। अत अल्पसख्या के कथन का आग्रह न रखकर अधिक सख्या अर्थात् अट्ठाईस को पूर्ण मानना चाहिए।

साराश यह है कि सक्षिप्त - अपेक्षा से उपलब्ध निशीथ सूत्र को आगम और व्याख्याओ मे आचारप्रकल्प कहा गया है और विस्तृत एव परिपूर्ण अपेक्षा से उपलब्ध आचाराग और निशीथ सूत्र दोनो को मिलाकर भी आचारप्रकल्प कहा गया है। अत निष्कर्ष यह है कि ये दोनो एक ही सूत्र के दो विभाग है।

नदी सूत्र की रचना के समय तक उसका विभक्त होना एव निशीथ नामकरण हो जाना सभव है।उसके पूर्व आगम स्थलो मे निशीथ सूत्र नाम का कोई अस्तित्व नही है, केवल ''आचार प्रकल्प'' या ''आचारप्रकल्प अध्ययन'' के नाम से विधान किये गये है।

निशीथ सूत्र के रचनाकार :-

निशीथ सूत्र के अलग हो जाने के कारण उसके रचनाकार के सम्बन्ध मे अनेक विचार प्रचलित हुए है यथा–

(१) यह विशाखागणी द्वारा पूर्वो से उदधृत किया गया है।

(२) समय की आवश्यकता को लेकर आर्यरक्षित ने इसकी रचना की है।

(३) चौदह पूर्वी भद्र बाहू स्वामी ने निशीथ सहित चारो छेद सूत्रो को पूर्वो से उदधृत किया है, इत्यादि कल्पनाए की गई है।

विचारणा :-

१. व्यवहार सूत्र मे ''आचारप्रकल्प अध्ययन'' का वर्णन है एव उसे साधु-साध्वी दोनो को कठस्थ रखने का कथन है, और यह व्यवहार सूत्र चौदह पूर्वी भद्रबाहू स्वामी के द्वारा रचित (निर्यूढ) है। अत भद्रबाहु

स्वामी के बाद होने वाले विशाखागणि और आर्य रक्षित के द्वारा आचारप्रकल्प की रचना करने की कल्पना करना तो स्पष्ट ही आगम से विपरीत है।

२ उन दोनो आचार्यो मे से किसी एक के द्वारा पूर्व श्रुत से उद्धृत करना मान लेने पर निशीथ सूत्र को पूर्वश्रुत का अश मानना होगा। जब कि व्यवहार सूत्र मे साध्वियो को इसके कठस्थ रखने का विधान है जबकि साध्वियो को पूर्वो का अध्ययन करना भी वर्जित है। अत इन दोनो आचार्यो के द्वारा पूर्वो से उद्धृत करने का विकल्प भी सत्य नही है। किन्तु उन आचार्यो के पहले भी यह आचार प्रकल्प पूर्वो से भिन्न श्रुत रूप मे उपलब्ध था एव साधु साध्वियो को इसकी सर्व प्रथम वाचना करके कठस्थ धारण करना भी आवश्यक था, यह निश्चित है।

३ भद्रबाहू स्वामी ने चार छेद सूत्रो की रचना नही की थी, किन्तु तीन छेद सूत्रो की ही रचना की थी, यह दशाश्रुतस्कध सूत्र के निर्युक्ति की प्रथम गाथा से स्पष्ट है–

गाथा – *वदामि भद्दबाहु पाईण, चरिम-सगल-सुय-णाणि।*
सुत्तस्स कारगमिसि, दसासु कप्पे य ववहारे।।

दशाश्रुतस्कध के निर्युक्तिकर्ता द्वितीय भद्रबाहु स्वामी ने प्रथम भद्रबाहू स्वामी को प्राचीन भद्रबाहु के नाम से वदन करके, उन्हे तीन सूत्रो की रचना करने वाला कहा है।

भद्रबाहुस्वामी ने यदि निशीथ सूत्र की रचना की होती तो वे व्यवहारसूत्र मे सोलह बार 'आचारप्रकल्प'' का प्रयोग करने के स्थान पर या अध्ययन क्रम कहने के वर्णन मे कही 'निशीथ' का भी नाम-निर्देश कर देते। किन्तु अध्ययन क्रम मे भी ''निशीथ'' यह नाम नही दिया गया है, आचार प्रकल्प और ''दसा-कप्प-ववहार'' नाम दिये है। अत निशीथ सूत्र को भद्रबाहु की रचना कहना भी प्रमाण सगत नही है।

उपसहार :- इन सब विचारणाओ से यह सिद्ध होता है कि यह किसी की रचना नही है किन्तु आचाराग के अध्ययन को किसी आशय से पृथक् किया गया है। कब किसने पृथक किया, कब तक आचार प्रकल्प नाम रहा है और कब निशीथ नाम हुआ, यह जानने का परिपूर्ण आधार नही मिलता

है। तथापि नदी सूत्र की रचना के समय यह पृथक् हो गया था और इसका नाम भी 'निशीथ सूत्र' निश्चित्त हो गया था तथा आचार प्रकल्प नाम का कोई भी सूत्र उस समय प्रसिद्धि मे नही रहा था। फिर भी आचार प्रकल्प के नाम से अनेक विधान तो आज तक भी आगमो मे उपलब्ध है। अत. पृथक्करण के समय से लेकर प्रथम भद्रबाहु के समय तक इसका कथन ''आचार प्रकल्प'' नाम से ही होता था। ''निशीथ सूत्र'' यह बहुत वाद मे प्रचलित किया गया नाम है।

व्यवहार सूत्र उद्दे ३ के सूत्र ३-४ मे उपाध्याय पद योग्य भिक्षु के लिए इसके अध्ययन करने का और अर्थ सहित कण्ठस्थ धारण करने का विधान है। यह उपाध्याय पद योग्य भिक्षु के लिए अत्यावश्यक ''जघन्य श्रुत'' है। इसके अर्थ सहित कण्ठस्थ न होने पर वह भिक्षु उपाध्याय पद पर स्थापित करने के अयोग्य कहा गया है।

सार ·-निशीथ सूत्र गणधर रचित आचाराग सूत्र का प्रथक् किया हुआ अध्ययन है, पृथक्कर्ता का नाम अज्ञात है। ''आचार प्रकल्प'' शब्द से आचाराग और निशीथ दोनो सूत्रो के अध्ययन आदि का विधान श्रुत केवली प्रथम भद्रबाहु स्वामी ने व्यवहार सूत्र मे किया है। वहा उन्होने १६ बार आचारप्रकल्प शब्द का प्रयोग किया है, किन्तु निशीथ सूत्र इस नाम का प्रयोग नही किया है।

इसका कारण यह है कि केवल निशीथ अध्ययन का कथन करना हो तव 'निशीथ सूत्र' यह प्रयोग किया जाता है और जब सपूर्ण आचाराग का अर्थात् दोनो खडो का कथन करना होता है, तव 'आचार प्रकल्प' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

नदी सूत्र कर्ता को प्रथक् सूत्र मे इसका कथन करना था इसलिये वहा ''निशीथ सूत्र'' इस निर्णीत नाम का प्रयोग किया है और व्यवहार सूत्र के कर्ता को अध्ययन अध्यापन के प्रसग मे, दोनो सूत्रो का एक साथ निर्देश करना है, इसलिये वहा ''आचार प्रकल्प'' शब्द का ही प्रयोग किया है।

रचनाकार सम्बन्धी उक्त तीनो कल्पनाए असगत एव भ्रम पूर्ण है।

प्रत्येक साधु-साध्वी को यह आचार प्रकल्प (आचाराग एव निशीथ) अर्थ सहित कठस्थ धारण करना आवश्यक होता है। अन्यथा वे सघाडा प्रमुख

आदि किसी भी जिम्मेदारी के पद को धारण करने के अयोग्य ही होते है।

इस प्रकार यह ''आचार प्रकल्प'' जिन शासन मे प्रारम्भ से ही होना आवश्यक है। अत यह गणधर रचित सपूर्ण आचाराग सूत्र के ही दो विभागो मे विभाजित अशो का परिचायक शब्द है।



:निर्युक्तियों के कर्ता द्वितीय भद्रबाहू स्वामी:

(१४ पूर्वी प्राचीन भद्रबाहु नहीं)

(विशेष - जैन शास्त्रो के महान उद्धारक संशोधक साक्षर शिरोमणि मूर्तिपूजक समुदाय के पडित रत्न मुनि श्री पुण्यविजय जी म सा ने बृहत्कल्प भाष्य की प्रस्तावना मे चर्चा प्रमाणो द्वारा यह स्पष्ट किया है कि ''निर्युक्ति नामक व्याख्याओ के कर्ता प्रथम (प्राचीन) भद्रबाहु स्वामी नही थे'' उसी प्रस्तावना से चर्चा प्रमाणओ के कुछ अश बहुत ही उपयोगी होने से गुजराती से हिन्दी भाषानुवाद एव भावानुवाद करके यहा दिये जा रहे है।)

ज्ञातव्य -प्राचीन भद्रबाहु स्वामी १४ पूर्वी थे, उन्होने तीन छेद सूत्रों (१ दशाश्रुतस्कध २ बृहत्कल्प ३ व्यवहार) की रचना की है। वीर निर्वाण की दूसरी शताब्दि मे हुए है। द्वितीय भद्रबाहु स्वामी ज्योतिष वेत्ता के रूप मे प्रसिद्ध हुए। देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के बाद वीर निर्वाण ग्यारहवी शताब्दि मे हुए है। ये वराहमिहिर के बडे भाई थे। वराही सहिता एव भद्रबाहु सहिता के कर्ता भी ये दोनो भाई थे। भगवती सूत्र के अनुसार उस समय पूर्वज्ञान व्यवछिन्न हो चुका था।

यहा जो प्रमाण दिये जायेगे वे वीर निर्वाण तीसरी शताब्दि और ग्यारहवी शताब्दि के बीच की शताब्दियो के है -

वदामि भद्दबाहु पाईण, चरिम सगल सुयणाणि।
सुत्तस्स कारगमिसिं, दसासु कप्पे य ववहारे।।

अर्थ –दशाश्रुतस्कध, वृहत्कल्प और व्यवहार इन तीन सूत्रो की रचना

करने वाले अतिम श्रुत केवली प्राचीन भद्रबाहु स्वामी को मै वदन करता हू।

कोई भी व्यक्ति स्वय को नमस्कार तो कर ही नही सकता है। इस प्रथम निर्युक्ति गाथा मे १४ पूर्वी प्राचीन भद्रबाहु स्वामी को तीन सूत्रो का कर्ता विशेषण लगाकर वदन किया भी गया है। अत भद्रबाहु स्वामी के लिए प्राचीन विशेषण एव तीन सूत्रो के कर्ता विशेषण लगाकर आदि मगल रूप वदन करने वाले श्रमण द्वितीय भद्रबाहु स्वामी है।

इस निर्युक्ति गाथा की चूर्णि करते हुए चूर्णीकार ने प्रारभ मे यह कहा है कि ''अब भाव मगल निर्युक्तिकार कह रहे है–

''तत्थ भाव मगल निज्जुत्तिकारो आह''

यहा कोई दूसरी कल्पना को भी स्थान नही रहता है, क्योकि चूर्णी करने वाले आचार्य भी यह स्वीकार कर रहे है कि यह गाथा निर्युक्तिकार की है और इसमे उन्होने आदि मगल रूप मे सूत्र कर्ता प्राचीन भद्रबाहु स्वामी को वदन किया है।

अत इस गाथा को प्रक्षिप्त गाथा भी नही कहा जा सकता क्योकि चूर्णिकार के समक्ष यह गाथा थी और उन्होने निर्युक्तिकार से सूत्रकार का भिन्न होना भी स्पष्ट स्वीकार किया है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि चूर्णिकार के जमाने मे यह भ्रम नही था कि सूत्र के और उसकी निर्युक्तियो के कर्ता एक ही भद्रबाहु स्वामी है। क्यो कि ऐसी भ्रात धारणा उस समय होती तो इस प्रथम गाथा की चूर्णि करने मे वे चक्कर मे पड जाते कि खुद ही खुद को वदन कैसे किया गया है? किन्तु यहा व्याख्या करते हुए चूर्णिकार ने किचित भी उलझन मे नही पडते हुए सरलता पूर्वक इस निर्युक्ति गाथा की चूर्णि कर दी है।

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि चूर्णिकार के समय तक यह घोटाला नही उठा था कि ''निर्युक्ति कर्ता और सूत्र कर्ता एक ही व्यक्ति है और वह भी १४ पूर्वी भद्रबाहू स्वामी ही है।'' वास्तव मे यह घोटाला चूर्णिकार के बहुत वर्षो बाद मे नाम साम्यता के भ्रम से पडा हुआ है।

२– उत्तराध्ययन सूत्र के पाचवे अध्ययन की निर्युक्ति गाथा–

सव्वे एए दारा मरणविभत्तिए वण्णिया कमसो।
सगल निउणे पयत्थे, जिण चउद्दसपुव्वी भासंति।२३।

अर्थ –मरण विभक्ति सम्बन्धी अनेक द्वारो से क्रमश यह वर्णन किया गया है किन्तु और ज्यादा स्पष्ट और सपूर्ण विवेचन तो तीर्थकर एव १४ पूर्वधारी ही कर सकते है।

ऐसा कथन करने वाले स्वय १४ पूर्वी तो नही हो सकते। इस निर्युक्ति गाथा की टीका करने वाले शात्याचार्य के समय नाम साम्यता का भ्रम प्रचलित हो चुका था, इसीलिये उन्होने इस उक्त निर्युक्ति गाथा के सबध मे शका उपस्थित की है कि निर्युक्तिकार स्वय १४ पूर्वी होते हुए भी ऐसा क्यो कह रहे है। फिर वैकल्पिक समाधान दिये है कि १ अपने से भी विशिष्ट १४ पूर्वी के लिए ऐसा कह दिया होगा, २ अथवा तो द्वार गाथा से लेकर यहा तक कि सब गाथा भाष्य गाथा होगी किन्तु निर्युक्ति गाथा नही होगी, अत शका नही करनी चाहिये।

ऐसा वैकल्पिक समाधान उपयुक्त नही है, क्यो कि दशाश्रुतस्कध के चूर्णिकार ने उक्त गाथा को निर्युक्तिकार की होना स्वीकार करते हुए व्याख्या की है। उन्हे व्याख्या करते समय किचित भी सदेह उत्पन्न नही हुआ। अत टीकाकार का सदेह एव वैकल्पिक समाधान भ्रमित घोटाले के प्रभाव से युक्त है।

३ सूत्रकृताग सूत्र के निर्युक्तिकार ने ''पुडरीक'' पद का निक्षेप निरूपण करते हुए द्रव्य निक्षेप मे तीन मत कहे है। वे तीन मत वृहत्कल्प सूत्र की चूर्णी अनुसार स्थविर आर्य मगू, आर्य समुद्र और आर्य सुहस्ती इन तीन स्थविरो की अलग अलग मान्यता रूप है। ये तीनो आचार्य १४ पूर्वी भद्रबाहु से पश्चात्वर्ती है और द्वितीय भद्रबाहु से पूर्ववर्ती है। इन तीनो की मान्यता का सकलन निर्युक्ति मे होने से भी यही सिद्ध होता है कि इन आचार्यो के पहले निर्युक्ति की रचना नही हुई किन्तु बाद मे ही निर्युक्तियो की रचना हुई।

४ गोष्ठामाहिल निन्हव और दिगम्बर मत के उत्पत्ति की हकीकत भी निर्युक्ति मे बताई गई है। ये दोनो घटनाए प्राचीन भद्रबाहु और आर्य रक्षित से भी बाद के जमाने की है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि ये निर्युक्तिया प्राचीन १४ पूर्वी भद्रबाहु स्वामी की नही है।

मुनि श्री पुण्य विजय जी के मन्तव्यो का एक पेरा यहा उनकी भाषा मे

ही उदृत करना उपयुक्त होगा जिसका सार यह है कि भ्रम एव दुराग्रह से निर्युक्तियो को १४ पूर्वी भद्रबाहु स्वामी की मानने पर अनेको विषयो मे कई शकाए होती है, जिसके समाधान के लिये व्यर्थ की कई दूषित कल्पनाएँ करनी पडती है। ऐसा नीद बेचकर उजागरा मोल लेने मे कुछ भी सार नही है। अत निर्युक्तियो के लिए १४ पूर्वी भद्रबाहु स्वामी की रचना मानने की खोटी पकड को ही छोड़ देनी चाहिये। नाम साम्य वाले द्वितीय भद्रबाहु स्वामी की रचना है, ऐसा सत्य ग्रहण कर लेना चाहिये। ऐसे सत्य के ग्रहण कर लेने पर स्वत ही सारी समस्याए सुलझ जाती है। अथवा तो वैसी कोई उलझने खडी ही नही होती है। इस सार वाँला वह गुजराती भाषा का पेरा इस प्रकार है–

''अही प्रसग वशात् एक बात स्पष्ट करी लइए के चौदपूर्वी भगवान भद्रबाहु ना जमाना ना निर्युक्ति ग्रन्थो ने आर्यरक्षित ना युग मा व्यवस्थित कराय अने फरी थी पछी ना युग मा व्यवस्थित करवा मा आवे, एटलू ज नहि पण ए निर्युक्ति ग्रन्थो मा उत्तरोत्तर गाडा ने गाडा भरी ने वधारो घटारो करवा मा आवे, आ जात नी कल्पना करवी जराय युक्ति सगत नही। कोई पण मौलिक ग्रन्थ मा आवा फेर फार कर्या पछी, ए ग्रन्थ ने मूल पुरूष ना नाम थी प्रसिद्ध करवा मा खरेज ऐना प्रणेता मूल पुरूष नी तेजम पछी ना स्थविरो नी प्रामाणिकता दूषित ज थाय छे। (अत बाद के स्थविर की रचना मानने से ये सारी कल्पनाए नही करनी पडती है।) वस्तुत विचार करवा मा आवे तो कोई पण स्थविर महर्षि प्राचीन आचार्यना ग्रन्थ ने अनिवार्य रीते व्यवस्थित करवानी आवश्यकता उभी थता - तेमा सम्बन्ध जोडवा पूरतो घटतो उमेरो के सहज फेर फार करे ए सह्य होई सके। पण तेने बदले ते मूल ग्रन्थकार ना जमानाओ पछी बनेली घटनाओ ने के तेवी कोई बीजी बावतो ने मूल ग्रन्थ मा नवेसर पेसाडी दे ऐथी ऐ ग्रन्थ नु मौलिक पणु, गौरव, के प्रामाणिकता, वधसे खरा? (बढेगी क्या?) आपणे निर्विवाद पणे कबूल करवू जोइये के मूल ग्रन्थ मा एवो नवो उमेरो क्यारेय पण वास्तविक व मान्य न करी शकाय। कोई पण महर्षि एवो उमेरो करे पण नही, अने ते जमाना ना बीजा स्थविरो पण तेने स्वीकारे नही। ऐ निर्युक्तियो ने चौदपूर्वी भद्रबाहु नी रचना मानवा थी ज ऐवी अघटित दूषित कल्पनाओ करवी पडे।''

५ निर्युक्तिकार १४ पूर्वी भद्रबाहु स्वामी होते तो निर्युक्तियो मे निम्न वर्णन नही मिलने चाहिये थे जब कि वे वर्णन आज मिल रहे है। यथा –

१ आवश्यक निर्युक्ति गाथा ७६४ से ७७६ तक मे ·- स्थविर भद्रगुप्त (वज्र स्वामी के गुरू) आर्य सिह गिरि, श्री वज्र स्वामी, श्री तोसलीपुत्र, आचार्य आर्य रक्षित, आर्य फल्गुरक्षित आदि ये सब प्राचीन भद्रबाहू स्वामी के बाद के आचार्य है, इनके सम्बन्धी वर्णन उक्त गाथाओ मे है।

२ पिंड निर्युक्ति गाथा ४९८ मे पादलिप्ताचार्य सम्बन्धी वर्णन एव गाथा ५०३ से ५०५ मे वज्रस्वामी के मामा आर्यसमित द्वारा बह्मद्वीपिक तापसो की प्रवृज्या और बह्मद्वीपिक शाखा की उत्पत्ति का वर्णन है। इसका तात्पर्य यह होता है कि बह्मद्वीपिक शाखा की उत्पत्ति के बाद मे ये निर्युक्तिया रची गई है।

३ उत्तराध्ययन सूत्र की निर्युक्ति गाथा १२० मे - कालकाचार्य सम्बन्धी घटना, का उल्लेख है।

४ आवश्यक निर्युक्ति ७६४ से ७६९ तक मे वज्रस्वामी का गुणानुवाद करते हुए पुन· पुन उन्हे नमस्कार करने का वर्णन है जो १४ पूर्वी भद्रबाहु स्वामी के लिए सर्वथा अनुपयुक्त ठहरता है। क्योकि वज्रस्वामी उनके गुरू या रत्नाधिक नही थे किन्तु शिष्यानुशिष्य थे। वे नमस्कार वाली गाथाए इस प्रकार है –

जो गुज्झएहि बालो, निमतिओ भोयणेण वासते।
णेच्छइ विणीय विणओ, त वइर रिसि नमसामि।७६५।
जो कन्नाइ धणेण य, णिमंतिओ जुवणम्मि गिहीवइणा।
णयरम्मि कुसुमणामे, त वइररिसि नमसामि।
जेणउद्धरिया विज्जा, आगास गमा महापरिण्णाओ।
वदामि अज्जवइर, अपच्छिमो जो सुयहराण।७६९।

५ आवश्यक निर्युक्ति गाथा ७७३ और ७४ मे बताया कि अनुयोग का प्रथक्करण आर्य रक्षित के समय हुआ। वज्र स्वामी तक नही हुआ था। ये भूत काल वाची वाक्य है। इनसे भी यही सिद्ध होता है कि निर्युक्तिया प्राचीन भद्रबाहु की रचना नही है।

६ आवश्यक निर्युक्ति ७७८ से ८३ तक और उत्तराध्ययन निर्युक्ति

गा १६४ से १७८ तक मे सात निन्हवो और आठवा दिगबर मत की उत्पति एव उसकी मान्यताओ का विस्तृत वर्णन किया गया है। जिसमे वीर निर्वाण के ७०० वर्ष बाद तक के प्रसग एव घटित घटनाए भी है।

साराश ·निर्युक्तियो की रचना ''भद्रबाहु स्वामी'' ने की, ऐसा जो इतिहास प्रसिद्ध है एव ग्रन्थो मे व्याख्याओ मे उल्लिखित है उसका किचित भी विरोध नही है रचनाकार का नाम जो प्रसिद्ध है वह सत्य है उसे जुठलाने की कोई आवश्यकता नही है। तथा वराहमिहिर का भाई होना, भद्रबाहु सहिता के रचनाकार होना आदि भी निर्युक्तिकार भद्रबाहु के जीवन के साथ जो सबधित प्रसग उपलब्ध है वे भी निर्युक्तिकार भद्रबाहु के साथ मानने मे स्वीकार करने मे कोई आपत्ति नही है। किन्तु नाम साम्यता से निर्युक्तिकार भद्रबाहु से सेकडो वर्ष (८८०) पूर्व हुए प्राचीन १४ पूर्वी भद्रबाहु के लिये, निर्युक्ति कर्ता का सम्बन्ध जोड कर जो घोटाला हुआ है वह किचित भी उचित और न्याय सगत नही है।

स्वय निर्युक्तियो का जो कलेवर (विषय वर्णन) है वह भी इस बात की साक्षी दे रहा है कि नाम साम्यता से, १४ पूर्वी भद्रबाहु से जोडा गया निर्युक्ति कर्ता का सम्बन्ध, स्पष्ट ही गलत और भ्रम पूर्ण है।

१ यह घोटाला शास्त्र लेखन के समय नही था क्योकि उन शास्त्रो मे प्राचीन भद्रबाहु की दस निर्युक्तियो का कही उल्लेख नही है।

२ निर्युक्ति कर्ता द्वितीय भद्रबाहु के समय भी यह घोटाला नही था। उन्होने तो तीन छेद सूत्र कर्ता प्राचीन भद्रबाहु स्वामी को प्रथम गाथा मे आदि मगल के लिये वदन किया है।

३ चूर्णी कर्ता के समय तक भी यह नाम साम्यता के भ्रम का घोटाला नही हुआ था। क्यो कि चूर्णिकार ने बिना किसी हिचकिचाहट के स्पष्ट अर्थ किया है कि अब दशाश्रुतस्कध सूत्र के निर्युक्ति कार आदि मगल रूप मे उस सूत्र सहित तीन छेद सूत्र के कर्ता प्राचीन भद्रबाहु स्वामी को नमस्कार करते है।

इन्ही कारणो से मूर्तिपूजक प्रसिद्ध आगमोद्धारक विद्वान मुनि श्री पुण्य विजय जी म सा ने इसे नाम साम्यता से उत्पन्न भ्रमित घोटाला कहा है और वास्तव मे इस घोटाले का निर्युक्ति, भाष्य एव चूर्णिकारो के जमाने

तक कोई अस्तित्व ही नही था। बाद मे टीकाकारो के जमाने मे जो कि शिथिलाचार का और खोटे हथकडे करने के उत्कृष्ट माहोल का जमाना था उस समय मे यह घोटाला भ्रम से उत्पन्न हुआ होगा। अथवा तो किसी ने सकल्प पूर्वक (कल्प सूत्र के घोटाले के समान जानकर) भी चलाया हो तो भी असभव नही है।

उपलब्ध निर्युक्ति ग्रन्थो मे—

१ वज्र स्वामी को सभक्ति बारबार किया गया नमस्कार,

२ स्थूल भद्र के लिये ''भगव'' शब्द का प्रयोग (उत्तराध्ययन निर्युक्ति),

३ अनेक घटनाओ के घटित होने का भूतकालीन वाक्यो मे प्रयोग, (आगम मे भावी तीर्थकर श्रेणिक का पूरा वर्णन है किन्तु वहा भविष्यकाल की क्रियाओ का प्रयोग है अर्थात् उन वर्णनो घटनाओ के प्रकरण मे भूत कालीन क्रिया लगी है कि - १ अनुयोग का प्रथक्करण किया, निन्हव इस प्रकार हुए, अमुक मत निकला, इत्यादि।

यदि किसी को भविष्य की बातो का ज्ञान है, तो भी उसका कथन करते समय वह भूतकाल की क्रिया नही लगायेगा, किन्तु भविष्य काल की क्रिया लगाकर ही अपने ज्ञान को व्यक्त करेगा। जब कि निर्युक्तियो मे अनेको वर्णन भूतकालीन क्रिया के साथ उल्लिखित है। अत निर्युक्ति कर्ता के रूप मे भद्रबाहु स्वामी का जो नाम प्रसिद्ध है वह इन वर्णित घटनाओ के पूर्व का व्यक्ति नही हो सकता बाद का व्यक्ति ही हो सकता है।

निर्युक्तियो मे वर्णित विषय और अनेक आचार्यो के जो प्रसग है वे प्राचीन भद्रबाहु के बाद मे हुए है और उनके लिये भूतकालीन प्रयोग है। अत उन सभी प्रसगो से बाद मे हुए भद्रबाहु स्वामी ही इन निर्युक्तियो के रचनाकार है यह ध्रुव सत्य है और वे है द्वितीय भद्रबाहु स्वामी, जो कि वराहमिहिर के भाई थे और भद्रबाहु सहिता के रचनाकार भी थे।

१४ पूर्वी प्राचीन (प्रथम) भद्रबाहु स्वामी ने निर्युक्ति ग्रन्थो की रचना नही की थी, किन्तु तीन छेद सूत्रो के कर्ता वे थे, यह बात दशाश्रुत स्कध सूत्र की प्रथम निर्युक्ति गाथा से स्पष्ट है।

भ्रमित घोटाले मे १४ पूर्वी भद्रबाहु स्वामी को निर्युक्ति कर्ता कहने के

साथ जो वराहमिहिर का भाई कहा जाता है और उन दोनो से सबधित सारी जीवन घटना कही जाती है वह भी सफेद झूठ के समान स्पष्ट ही असत्य है। क्योकि वराहमिहिर ने जो ''पचासिका'' ग्रन्थ बनाया है उसके अत मे उसका शक सवत भी निर्दिष्ट है और वह समय है देवर्द्धिगणी के बाद का एव द्वितीय भद्रबाहु के समय का अर्थात् वीर निर्वाण ग्यारहवी शताब्दि का है।

उपसहार - इस प्रकार आगम प्रमाणो से एव अकाट्य तर्क विचारणाओ से एव मूर्ति पूजक विद्वान मुनि श्री पुण्य विजय जी के उक्त मन्तव्यो से यह सत्य सिद्ध है कि ''**निर्युक्ति कर्ता भद्रबाहु स्वामी है इसमे किंचित भी सदेह नही है किन्तु वे १४ पूर्वी प्राचीन (प्रथम) भद्रबाहु स्वामी नही होकर वराहमिहिर के भाई द्वितीय भद्रबाहु स्वामी है।**

इस सत्य को स्वीकार कर लेने पर कई उलझने समाप्त हो जाती है और कई शकाओ की जड ही समाप्त हो जाती है। वास्तव मे भ्रमित मान्यताए अनेक असमाधित सदेहो की जननी होती है।

चितनशील विद्वानो को परपराओ का दुराग्रह और व्यामोह छोडकर प्राप्त होने वाले सत्य तत्व को सरलता के साथ स्वीकार कर लेना चाहिए। किन्तु प्रदेशी राजा के द्वारा दिये गये बाप दादो की 'परपरा व्यामोह' के तर्क मे नही फसना चाहिये और केशी श्रमण के द्वारा दिये उत्तर मे निर्दिष्ट लोहवाणिए के साथी भी नही बनना चाहिये।

अत आज से ही अपनी धारणा मान्यता को परिवर्तित कर लेना चाहिये कि 'निर्युक्ति कर्ता द्वितीय भद्रबाहु स्वामी है और छेद सूत्र कर्ता प्रथम (प्राचीन) भद्रबाहु स्वामी है।'' निर्युक्तियो की रचना आगम लेखन एव नदी रचना के बाद मे ही हुई है, पहले नही हुई है।



निर्युक्ति ग्रन्थ और संख्याता निर्युक्तियां
(हार्द चिंतन)

निर्युक्तिया द्वितीय भद्रबाहू स्वामी द्वारा रचित है ऐसा मान लेने पर एक शका यह खडी होती है कि नदी सूत्र एव समवायाग सूत्र मे **''संखेज्जाओं निज्जुत्तिओ''** पाठ आता है जिससे यह मानना चाहिये कि नदी के पूर्व भी निर्युक्तियो का अस्तित्व था।

समाधान :- समवायाग व नदी के कथित निर्युक्ति शब्द को किसी व्यवस्थित रचित ग्रन्थ का सूचक न समझ कर, उस सूत्र से सबधित भिन्न भिन्न आचार्यो की अर्थ प्रतिपादक युक्ति की अपेक्ष समझना चाहिये। हमारे आगम और उनका अर्थ जब मौखिक परपरा मे था, आगम के अर्थो को बहुश्रुत भगवत अनुयोग पद्धति से शिष्यो को समझाते थे, वे ही अर्थ प्रतिपादक युक्तिया नदी मे निर्युक्ति शब्द से सूचित है। उन अनेक बहुश्रुत भगवतो की सभी की मिलाकर अर्थ प्रतिपादिका युक्तिया निर्युक्तिया सख्याता हो जाती है। इस अपेक्षा से यहा सख्याता समझना चाहिये। इन्हे ग्रथ रूप मे समझ लेना उपयुक्त नही है कि ''आचाराग आदि अग सूत्रो पर प्रत्येक पर सख्याता (सेकडो हजारो) निर्युक्ति ग्रन्थ रचे हुए थे''। क्योकि तब तो यह प्रश्न होगा कि वे सेकडो हजारो किसके रचे हुए थे और वे सब कहा गये? जब आगम लिपिबद्ध हुये तो उनका भी लेखन हुआ होता एव श्रुतज्ञान मे उन ग्रन्थो के नाम का एक विभाग होता तथा फिर बाद मे आचार्यो को व्याख्या ग्रन्थ रचने की जरूरत ही नही पडती। क्योकि सेकडो हजारो थे ही। और फिर भी कोई रचते तो स्पष्टीकरण भी करते कि हम अमुक अमुक आचार्यो की निर्युक्तियो के आधार से रचना कर रहे है, इत्यादि। किन्तु वास्तव मे ऐसा कुछ भी हुआ नही है। सख्याता निर्युक्ति ग्रन्थ एक-एक सूत्र पर मानना समझना कदापि उचित नही हो सकता है। मौखिक व्याख्या करने के प्रकार प्रत्येक सूत्र के सख्याता होते है यही समझाने के लिये **''सखेज्जाओ निज्जुत्तिओ''** प्रयोग है और ऐसा समझना ही उचित प्रतीत होता है।

अत निर्युक्तियो की स्वतत्र व्याख्या ग्रन्थ रूप रचना और उनके रचनाकार जिनकी निर्युक्तिया आज ८-९ उपलब्ध है, आगम लेखन व

नदी रचना के बाद मे हुई है। अन्यथा नदी मे व्याख्या ग्रन्थ का श्रुत ज्ञान मे एक स्वतत्र विभाग होता। क्यो कि देवर्द्धिगणी व उनके समय के एक पूवधरो की रचना रूप नदीसूत्र, प्रकीर्णक सूत्र आदि को श्रुत ज्ञान मे कहा गया है, तो उनसे पहले हुए अधिक पूर्वधरो की रचनाए रूप निर्युक्तिया आदि यदि उपलब्ध होती तो उनको श्रुत ज्ञान मे अलग विभाग करके अवश्य बताते किंतु ऐसा है नही।

अत नदी कथित सख्याता निर्युक्तिया और उपलब्ध निर्युक्ति ग्रन्थो मे भिन्नता समझनी चाहिए। निर्युक्ति ग्रन्थ तो एक एक शास्त्र पर एक ही होता है वह भी आज ५-७ शास्त्र पर उपलब्ध है।

जबकि नदी एव समवायाग सूत्र मे सख्याता निर्युक्तिया प्रत्येक प्रत्येक अग आगम की कही गई है। जिसमे से ५-५ भी उपलब्ध नही है।

तो उपलब्ध निर्युक्ति व्याख्या ग्रन्थ और नदी मे कही गई सख्याता (हजारो) निर्युक्तियो का तात्पर्य अलग-अलग समझना चाहिये।

सार :- १ निर्युक्ति व्याख्या ग्रन्थ द्वितीय भद्रबाहु स्वामी द्वारा रचित ग्रन्थ है २ नदी सूत्र और समवायाग सूत्र मे प्रत्येक अग आगम की सख्याता निर्युक्तिया - मौखिक समझाई जाने वाली प्रत्येक वाचानाचार्य की विभिन्न पद्धतियो को कहा गया है। जिन शासन मे अनेको वाचनाचार्य होने से ही इन निर्युक्तियो को सख्याता कहा गया है।



:-:महानिशीथ सूत्र से नोंध:-:

(महानिशीथ सूत्र का परिचय कराने के लिये उसके मूलपाठ के विषयो का उद्धरण देकर उसके उपर की गई मंदिर मार्गी विद्वान मुनि कल्याण विजय जी की टिप्पणी भी साथ मे दी जा रही है, इतिहास शोध के पाठक ध्यान से पढेगे।)

(१) ''सबलो (शिथिलाचारियो) के सम्बन्ध मे नही लिखा जाता, क्योकि ग्रन्थ का विस्तार हो जाने का भय है, भगवान ने भी इस प्रसंग मे

कुशीलादिको का अधिक वर्णन नही किया।''

इत्यादि वचनो का सार देखने से यही ज्ञात होता है कि उपलब्ध ''महानिशीथ'' सूत्र नही बल्कि एक प्रबन्ध है। सूत्रकार सूत्रो मे इस प्रकार कभी नही लिखते कि ''भगवान ने भी नही किया'' यह कथन तो महानिशीथ की असौत्रिकता प्रमाणित करता है। जो सूत्र गणधर रचित होता है उसमे यह कभी नही होता कि 'भगवान ने भी अधिक नही कहा''। इसलिए यही कहना पडता है कि महानिशीथ एक अर्वाचीन ग्रन्थ है, गणधर रचित शास्त्र नही है।

इस तीसरे अध्ययन के अत मे कहा है कि ''**बहुतेरे श्रुतधरो ने सम्मिलित होकर अग उपांगात्मक द्वादसाग श्रुत समुद्र मे से अंग उपाग श्रुतस्कध अध्ययन उद्देशको का चयन करके कुछ सम्बन्धित पाठ लेकर इसे व्यवस्थित कर लेखबद्ध किया है। अपना काव्य नही किया (अर्थात् अपना राग नही अलापा है)'' पृ ९१,**

(२) चौथे अध्ययन के अत मे कहा है –''**यहा चौथे अध्ययन मे कई सैद्धान्तिक विद्वान कतिपय अलापको पर श्रद्धा नही करते और उनके श्रद्धा न करने से हमको भी उन पर श्रद्धा नही होती ऐसा हरिभद्र सूरि कहते है। परन्तु सारा चौथा अध्ययन अथवा अन्य अध्ययन ऐसे नहीं है अर्थात् चौथे अध्ययन के ही कुछ आलापक अश्रद्धेय है। क्योकि स्थानांग समवायाग जीवाभिगम पन्नवणा आदि सूत्रो मे ऐसी बातें कही भी नही लिखी है। जैसे प्रतिसतापस्थल आस्थित तद् गुफावासी मनुष्य के रूप मे परमाधर्मिको का सात आठ बार उत्पन्न होना, कठोर वज्रशिलापुडो के बीच मे पीडित होने पर भी एक वर्ष के पहले प्राणो का न निकलना इत्यादि । किन्तु वृद्धो का कथन तो यह है कि यह सूत्र आर्ष है। इसमे कुछ भी विकृति प्रविष्ट नही हुई, इस श्रुतस्कध मे भरपूर अर्थ भरे पडे है। और इसमे विशिष्ट प्रकार के गणधरोक्त वचन है। इसलिये इस विषय मे कुछ भी शका नही करनी चाहिये।**'' एक नही पच्चासो बाते इस तरह की है जो अन्य सूत्रो से प्रमाणित नही की जा सकती इसका प्रायश्चित निरूपण तो छेद सूत्रो से मेल ही नही खाता। इससे भी प्रमाणित होता है कि ''**महानिशीथ**'' खडित महानिशीथ का अवशेष नही किन्तु एक स्वतन्त्र कृति है।- पृ ९२,

(३) जहा आवश्यक चूर्णी मे प्रायश्चित का नाम ही नही था, वहा २०० वर्ष बाद निशीथ विशेष चूर्णी मे लघुमास प्रायश्चित आया। (प्रतिक्रमण के बाद जहा चैत्य हो और वदन नही करे) और प्रतिक्रमण के प्रारभ मे चैत्य वदन का कोई सूचन तक भी नही था, जो महानिशीथ मे आ गया कि बिना चैत्यवदन के प्रतिक्रमण प्रारभ करे तो उपवास का प्रायश्चित।

मौलिक छेद सूत्रो मे देव (चैत्य) वदन करे या नही करे कि कही कोई चर्चा ही नही है। तब प्रायश्चित की बात ही कैसी? आगे चलकर वि स ११वी सदी के बाद की समाचारियो मे ७ बार चैत्य वदन करना निश्चित हुआ।

''त्रिकाल चैत्य वदन न करे तो उपवास का प्रायश्चित्त और दूसरी बार गलती करे तो छेद का प्रायश्चित्त, तीसरी बार मूल प्रायश्चित और अविधि से करे तो पाराचित प्रायश्चित्त।''

–अध्ययन ६ मे।

(४) भगवान के मेरू पर्वत को हिलाने का कथन किया है। – **अध्ययन ४ मे।**

(५) अध्ययन ६ मे कैसे गुरू को गच्छपति बनाना विस्तार से लक्षण गुण दिये है। इस अध्ययन मे **चैत्य वास की उत्पति का विस्तृत वर्णन है। प्रायश्चित वर्णन भी है।**

(६) ''जो कोई हरियाली, बीज, पुष्प या फल का ''पूजार्थ'' महिमार्थ या शोभार्थ सघट्टा करे, सघट्टा करावे, उक्त हरितादि का छेदन करे दूसरो से करावे सघट्टन छेदन करने वालो का अनुमोदन करे तो इन सर्व स्थानो मे गाढ आगाढ भेद से यथाक्रम से उपस्थापना, क्षपण (बेला), चउत्थ भक्त, आयबिल, एकासन, निवी प्रायश्चित देना।''

(७) महानिशीथ के निर्माता यदि सुविहिताचार्य होते तो उपधान के अत मे जिन चैत्य मे नदी की क्रिया कर श्वेत ताजे पुष्पो की माला ''जिन'' के पूजा देश से अपने हाथो मे लेकर गृहस्थ के गले मे पहनाने का विधान कभी नही करते। इससे ज्ञात होता है कि रचियता स्वय शिथिलाचारियो की पक्ति के विद्वान थे। (शिथिलाचारियो को भी अन्य शिथिलाचारियो की कई

प्रवृतिया पसद नही होती है तो वे उसका जिक्र जोर शोर से करते है और ऐसा आज भी देखा जाता है। वैसा ही कथन लगभग महानिशीथकार ने भी किया है।

(८) विचित्र प्रायश्चित – ''**जिन वंदन या प्रतिक्रमण करने वालो के बीच मे से बिल्ली निकल जाय तो उन सभी साधुओ को लोच करना चाहिए और कठोर तप करना चाहिए। अगर ''यह प्रायश्चित'' न करे तो उसे गच्छ से बाहर कर दिया जाय।**

पाव मे जूते पहन कर घूमे तो नई दीक्षा। जूते न रखे तो क्षपण (बेला)। देव वदन बिना प्रतिक्रमण करे - उपवास। आवश्यक प्रसग पर जूते न पहने - बेला। रात्रि मे प्रथम प्रहर मे प्रतिक्रमण के बाद स्वाध्याय न करे तो ५ उपवास। पहला प्रहर पूरा होने के पहले सथारा आदेश ले तो बेला। आदेश बिना सोवे तो उपवास। स्थडिल प्रतिलेखन किये बिना सथारा करे तो ५ उपवास। अवधि से सथारा करे तो उपवास। उत्तरपट्टे बिना सथारा करे तो उपवास। दुपट्ट सथारा करे तो उपवास।

सोते समय आयरिय उवज्झाए का पाठ न करे, कान मे रूई न डाले, सागरी सथारा पच्चक्खाण न करे तो प्रत्येक मे नई दीक्षा। फिर परम मत्राक्षरो से शरीर की १२ भावना भाकर सर्प सिंह हाथी दुष्ट प्रात वाणव्यतर पिशाचादि से रक्षा न करे तो नई दीक्षा।'' सुख साधनो का उपयोग नही किये जाने पर उन्हे कोई प्रायश्चित नही लगता है। तो उपसर्ग दूर करने के कार्य और जूते पहनने आदि कार्य नही करने पर प्रायश्चित कैसा? यह विधान करना अनागमिक है। उत्तर पट्टा भी पूर्व काल मे उपधि मे नही था। महावीर निर्वाण के सैकडो वर्षो बाद इसे स्थान मिला है। अत उसका भी प्रायश्चित कैसा?

''१२ भावना न भावे तो २५ आयबिल का प्रायश्चित और न करे तो ५ उपवास । रात्रि मे छीक खासी आदि आवे तो एक बेला। दिन रात मे कभी हास्य, क्रीडा, कदर्प, नास्तिक वाद की बाते करे तो नई दीक्षा। तेउकाय, अपकाय का सघट्टा हो जाय तो २५ आयबिल। स्त्री सबधी सेवन का प्रायश्चित - यदि महातपस्वी हो तो उसे ७० मास खमण ७० अर्धमास खमण ७० पचोले यावत् उपवास, आयबिल, एकलठाणा, निवी, एकासन

सभी ७०-७०''

ये सारे विधान अन्य किसी सूत्र मे नही हुए है।

(९) ''यह प्रायश्चित विधान कब तक चलेगा ? - आचारांग सूत्र रहेगा तब तक उक्त प्रायश्चित पद्धति भी चलती रहेगी। प्रायश्चित सूत्र का विच्छेद होने पर ७ दिन मे चन्द्र सूर्य की काति कम होगी।'' आचार्य, महत्तर और प्रवर्तिनी को इसका (इन सभी प्रायश्चितो का) चार गुना प्रायश्चित समझना।''

यह विधान भी आगमिक नही है।

(१०) ''हे भगवन् कुगुरू कब होगे?—साढे १२ सौ वर्ष बीतने पर कुगुरू प्रगट होगे। हे भगवन् कोई गणी प्रमादी हो जाय आवश्यक कार्य मे, तो क्या करना? उत्तर-- उसे अवदनीय ठहराना। निष्कारण क्षणभर भी प्रमाद करे उसका यह प्रायश्चित है''।

विक्रम की आठवी सदी (वीर निर्वाण १२५०) जैन श्रमणो के शैथिल्य का प्रधान समय था। श्री धर्मदास गणी की उपदेश माला, हरिभद्र सूरि के ग्रन्थ और महानिशीथ के अमुक लेखो से सिद्ध होता है कि वह समय शिथिलाचारियो के प्राबल्य का समय था।

(११) अध्ययन ८- ''हे भगवन् आचार्यो को कितना प्रायश्चित आता है? उत्तर-- उसी अपराध मे १७ गुना प्रायश्चित। यदि शील मे स्खलना वाले हो तो उन्हे तीन लाख गुणा प्रायश्चित आवे।''

(१२) अध्ययन दूसरे मे - स्त्री की योनि मे हर वक्त ९ लाख समुर्च्छिम पचेन्द्रिय जीव रहते है। एक ही बार मे व्यक्ति उन जीवो का नाशक बनता है। सर्व केवली उन जीवो को देखते है।'' और उसके आगे की गाथा मे कह दिया कि ''वे जीव केवल ज्ञान का विषय मात्र है। पर केवली उन्हे देखते नही है। अवधिज्ञानी जानते है, पर देखते नहीं। मनपर्यव ज्ञानी जानते भी नही, देखते भी नही।''

(१३) सूक्ष्म पृथ्वी काय को किलामना हो तो सर्व केवली उसे अल्पारंभ कहते है और जीव का विनास सभव हो तो महारभ कहते है।

(१४) तीसरे अध्ययन मे - ''जिसे रात-दिन घोखने पर आधा श्लोक भी याद न हो उसे क्या करना चाहिए? - उत्तर मे भगवान ने कहा - उसे

स्वाध्यायी की सेवा करनी चाहिए और २५०० नवकार मत्र को एकाग्र चित्त से घोखना चाहिए।''

(१५) अध्ययन चौथा मे - रत्नद्वीप के मनुष्यो द्वारा जल मनुष्यो से अडगोलक प्राप्त करने की विधि बताई। यह विधि भी अन्य आगम मे नही आई। बाद के ग्रथो मे इसकी नकल हुई। और ''ज्यादा विवेचन के लिये प्रश्न व्याकरण के वृद्ध विवरण को देख लेना'' ऐसा सकेत मूल पाठ मे ही कर दिया गया है।

(१६) अध्ययन पाच मे - शासन मे आचार्यो की सख्या ५५ करोड लाख, ५५ करोड हजार ५५ सौ करोड ५५ करोड अर्थात् - ५५, ५५, ५५, ५५, ००, ००, ०००'' होगी,'' यह भी कोई आगम मे नही है।

(१७) इसी अध्ययन मे - मुनि, सघ, तीर्थ, गण, प्रवचन, मोक्ष मार्ग, दर्शन ज्ञान चारित्र घोरोग्रतप, और गच्छ, इन सब को एकार्थक बताया है।

गाथा - ***मुणिणो, संघ, तित्थ, गणपवयण मोक्ख मग्ग एगट्ठा।***

दसण णाण चारित्ते घोरूग्गतवं चेव गच्छ णामे ।। अ. ५ गा. ९३

(१८) एक स्थान पर लिखा है कि ''ऐसे नाम धारी सूरि होगे कि जिनका नाम लेने से भी प्रायश्चित लगेगा यह निश्चित समझो''

गाथा - ***भूए अजाइ कालेण केइ होहिति गोयमा सूरि।***

णाम गहणेण वि जेसि होज्ज नियमेण पच्छित।।

(१९) दुप्पसह आचार्य और विष्णु श्री साध्वी उपवास मे काल कर प्रथम देवलोक मे जायेगे।

(२०) साध्वी सपर्क –

''जत्थ य गोयमा साहु अज्जाहि सगे पहम्मि अहूणा।
अववाएण वि गच्छेज्जा, तत्थ गच्छम्मि का मेरा।।
जत्थ य अज्जा लद्ध पडिग्गहमादि विविहमुवकरणे।
परिभुजई साहुहि ते गोयमा केरिसे गच्छ ।। अ. ५ गा. १००

(२१) आचार्य वज्र - उनके ५०० शिष्य बिना आज्ञा तीर्थ यात्रा के लिये रवाना हुये। उनके पीछे जाते हुए आचार्य वज्र ने कहा कि हे महाभागो! साधु साध्वी के लिये तीर्थकर भगवान ने २७००० स्थडिल कहे। उनको

शोधते हुए उपयोग पूर्वक चलाना चाहिए। उपयोग शून्यता से जैसे तैसे नही चलाना चाहिए। बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय के संघट्टा जनित कर्म का सर्व तत्वो का सारभूत सूत्र भूल गये क्या? विचार करो। इस प्रकार समझाने पर भी हितावह वचन नही माना तो एक का वेष छीन लिया तो शेष सब भाग गये। (सक्षिप्त)

(२२) एक समय आचार्य कुवलय प्रभ विहार क्रम से चैत्य वासियो के क्षेत्र मे पहुचे। चैत्यवासियो ने वदन कर सत्कार कर ठहरा कर कहा - आप यही वर्षावास करे। आपके उपदेश से सुन्दर चैत्य बन जायेगा और बहुत लाभ होगा। ''**ताहे भणिय तेण महाणभागेण गोयमा जहा भो भो पियवए। जइवि जिणालए तहावि सावज्जमिण णाह वायामितेण एय आयरिज्जा, एय च समय सारवर तहि जहाठिय, अविवरीयं णीसक भणमाणए ण तेसिं मिच्छदिड्डी लिंगीण साहु वेसधारीण मज्झे गोयमा। आसकलियं तित्थयर नाम कम्म गोय तेण कुवलय पमेण, एगभवावसेसी कओ भवोयहि।** ''५/१२९४

भावार्थ : चैत्य की प्रेरणा के उत्तर मे कुवलय प्रभ आचार्य ने उस कार्य को सावद्य और अकरणीय बताकर निषेध कर दिया। इस तरह के निडर सार पूर्ण वचन कहते हुए उन आचार्य ने उन शिथिलाचारी मिथ्यादृष्टि वेषधारियो के बीच उसी समय तीर्थकर नाम कर्म का बध कर लिया और एक भवावतारी बन गये।

(२३) व्रत भग करने वाले के लिये मच्छीमार के भव से आठ गुणा पाप कहा -

आजम्मेण तु जे पावे, बधेज्जा मच्छ बधगो।
वय भगे काउमाणस्स, तं चेव अट्ठगुण मुणे (६(१४९)

महानिशीथ भलेही ऐसा कह दे पर सिद्धात ऐसा नही कहता ११ सिद्धात से तो वत शुद्ध पालने वाला उत्तम, अशुद्ध करने वाला मध्यम और अव्रती जघन्य माना जायेगा।

(२४) जो निर्दयी पुरूष एक लाख स्त्रियो के ७-८ मास के गर्भ को पेट चीर कर निकाल कर काटे, उसको जितना पाप होता है उससे नवगुणा स्त्री सग से साधु बाधता। साध्वी सग से हजार गुणा और प्रेम वश यह

काम करे तो करोड गुणा और तीसरी बार करे तो बोधि का नाश करे।

(२५) सातवे अध्ययन मे कठोर, कर्कश भाषा, कषाय, क्लेश के अनेक प्रायश्चित वर्णन है।

उद्धृत - ''प्रबध पारिजात'', प. कल्याण विजय गणी

नोट – यह निबध लगभग उक्त प्रबध पारिजात ग्रथ से सकलन मात्र है अर्थात् इसमे कथित वाक्य महानिशीथ सूत्र के और मूर्तिपूजक प श्री कल्याण विजय गणी के है।



कल्प सूत्र की रचना सम्बन्धी विचारणा

आगम लेखन काल के समय मे तीन कल्प सूत्र विद्यमान थे जिनका देवर्द्धिगणी ने नदी सूत्र मे कथन किया है। १ ''कप्पो'' (वृहत्कल्प सूत्र) जो कि छेद सूत्र है एव कालिक श्रुत है। २ चुल्लकप्प सूत्र'' ३ ''महाकप्प सूत्र'' ये दोनो उत्कालिक सूत्र है और दोनो ही आज अपने नाम से स्वतत्र रूप से अनुपलब्ध है।

यदि चौथा पर्यूषणा कल्प सूत्र देवर्द्धि गणी ने सपादित कर पृथक किया होता तो वे इसका नाम भी कालिक सूत्र की सूची मे नदी सूत्र मे अवश्य देते। यदि आठवे अध्ययन को ही सवर्धित सपादित किया होता तो निर्युक्तिकार के सामने दशाश्रुतस्कध मे रहना चाहिये था। अत नदी सूत्र मे अनिर्दिष्ट यह पर्यूषणाकल्पसूत्र देवर्द्धि के समय भी स्वतत्र सूत्र रुप मे नही बना था, न दशाश्रुतस्कध की आठवी दशा मे इसका यह स्वरूप था। देवर्द्धि के बाद करीब २०० वर्ष तक भी इसका स्वतत्र अस्तित्व नही था, यह स्पष्ट है। अत देवर्द्धि के समकालीन चतुर्थ कालकाचार्य ने इसका सभा मे वाचन किया, यह कथन भी कल्पना मात्र है। क्योकि इस सूत्र का प्रादुर्भाव ही नही हुआ था।

ध्रुवसेन राजा तीन हुए है। जिसमे प्रथम ध्रुवसेन राजा का पुत्र आनदपुर मे विक्रम सवत ५८४ मे काल धर्म को प्राप्त हुआ। चतुर्थ कालकाचार्य

विक्रम सवत् ५२३ तक रहे। क्योकि दुषमाकाल श्रमणसघ स्तोत्र मे भूतदिन्न के बाद कालकाचार्य को ग्यारह वर्ष तक पाट पर रहना बताया है। अत राजा के पुत्र शोक के दूर करने के लिये सभा मे कल्पसूत्र कालकाचार्य के द्वारा वाचना, यह भी असत्य मनघडत असगत कल्पना है।

सूत्र लेखन के बाद निकट काल में ही (४०-५० वर्ष मे) आवश्यक सूत्र व आचार सूत्रो की व्याख्या रूप निर्युक्तियो की रचना हुई। फिर उनके भाष्य चूर्णी बने। उसके बाद आठवी शताब्दि मे हरिभद्र सूरि ने आवश्यक सूत्र की टीका करी। गधहस्ती ने अग सूत्र की टीका शुरू की। जो प्रथम आचाराग के आगे न बढ पाये। फिर शिलाकाचार्य दो अग शास्त्र के टीकाकार हुए। उसके बाद मलयगिरि महान उत्साही टीकाकार हुए।

यदि कल्प सूत्र की रचना देवर्द्धि गणी और कालकाचार्य के समय होकर सभा मे वाचन शुरू होता तो ऐसे प्रचलित सूत्र की आठ सौ वर्ष तक हुए महान व्याख्याकारो मे से एक भी विद्वान ने टीका क्यो नही की? उन व्याख्याकारो एव विद्वानो ने कही भी पर्यूषणाकल्पसूत्र का प्रथक्करण व सभा मे वाचन जैसी बात का कोई निर्देश भी नही किया। न ही इस सूत्र का कही नामोल्लेख किया।

महान टीकाकार श्री मलयगिरि ने देवी से वरदान प्राप्त करके अनेक सूत्रो की टीकाए रची। यदि पर्यूषणाकल्पसूत्र भी कोई स्वतत्र सूत्र होता और व्याख्यान मे वाचा जाता होता तो उस सूत्र के टीका की रचना करना भी उन मलयगिरिजी के लिये अत्यत आवश्यक हो जाता, परन्तु ऐसा नही हुआ।

पर्यूषणाकल्पसूत्र का स्वतत्र स्वरूप बनने और सभा मे वाचन शुरू होने के बाद शीघ ही उसकी व्याख्याए बननी शुरू हुई। प्राथमिक व्याख्याये कल्पातरवाच्य कहलाई। जो विक्रम की चौदहवी शताब्दी मे हुई। उसके बाद टीकाए आदि बनी।

यदि कल्प सूत्र दशाश्रुतस्कध का आठवा अध्ययन रूप इन कल्पातर वाच्य व टीकाकारो के सामने होता तो इसकी टीका की रचना निर्युक्ति आदि को अपने मे समावेश करते हुए होती। जैसा कि छेद सूत्रो की तथा दशवैकालिक, आवश्यकसूत्र की टीकाए निर्युक्तियो को अपने मे समाविष्ट

करते हुए बनी हुई है। कल्पातरवाच्य श्री मलयगिरी आचार्य के बाद (१३वी १४वी शताब्दि के लगभग रचे गये है। अत मलयगिरी की बाद कल्प सूत्र का यह स्वरूप बना और सभा मे वाचन शुरू हुआ।

दशाश्रुतस्कध कालिक सूत्र है और कल्प सूत्र उत्कालिक सूत्र है तभी इसका दुपहर मे वाचन होता है अत इसका आधार उत्कालिक सूत्र ही रहा है, न कि कालिक दशाश्रुतस्कध। सभा मे वाचन शुरू करने वालो ने सूत्र का काल ध्यान न रखा हो ऐसा भी सभव नही हो सकता।

आठ सौ वर्ष बाद सम्बन्ध जोडने वालो से यह भूल होना भी सभव है। तभी चतुर्थ कालकाचार्य और प्रथम ध्रुवसेन के पुत्र मृत्यु का समय भी सम्बन्धित नही होता है और उपरोक्त अनेक तर्को से असगतता सिद्ध हो जाती है।

चुल्लकल्पसूत्र उत्कालिक सूत्र है जो साडिल्य के अज्ञात नामा शिष्य ने बनाया है। उसमे तीर्थकर वर्णन व स्थविरावलि साडिल्य तक गद्य पाठ मय बनाई होगी। उन दोनो के विषयो को १३वी १४वी शताब्दि मे किसी आचार्य ने एक रूप किया होगा और फिर व्याख्यान मे शुरू हुआ होगा। बाद मे उस सूत्र का महत्व कथन करते-करते आगे बढ कर नाम साम्य होने से दशाश्रुतस्कध के आठवे अध्ययन को भी इच्छित सुधारा वधारा करके जोड दिया गया। प्रक्षिप्तता-मिश्रणता को गुप्त रखने हेतु देवर्द्धि तक स्तुति वदन बढाया गया तथा ९८० व ९९३ के सवत्सर का असगत विकल्प भी जोड दिया गया। फिर और ऊची प्रामाणिकता का सिक्का लगाने के लिये एव १२०० श्लोक प्रमाण पूरा सूत्र प्राचीन भद्रबाहू के नाम से प्रसिद्ध कर दिया।

किसी ने तो १४वी शताब्दि मे दशाश्रुतस्कध सूत्र की आठवी दशा मे पूरा कल्पसूत्र लिख भी दिया। उसके पहले की दशाश्रुत स्कध की किसी भी हस्त प्रत मे ऐसा पाठ नही है, न चूर्णि निर्युक्तिकार के सामने था। अत यह लेखन भी किसी मूर्तिपूजक के अपने अभ्यस्त प्रक्षेप दोष का परिणाम हुआ।

सार - उक्त प्रमाण चितन से निष्कर्ष यह हुआ कि महान टीकाकार श्री मलयगिरी के बाद ही कल्प सूत्र बना है। पहले चुल्लकल्प सूत्र के रूप मे

व्याख्यान मे वाचन शुरू हुआ। फिर अन्य सामग्री जोड कर उसे पर्यूषणाकल्पसूत्र कहा जाने लगा। फिर नाम साम्य से दशाश्रुतस्कध का आठवा अध्ययन कहने लग गये। अत मे उसे ही प्राचीन भद्रबाहु कृत और भगवद् भाषित सूत्र कहा जाने लगा।

''मुनि दर्शन विजय पट्टावली समुच्चय'' प्रथम भाग - पृष्ट प्रथम (अंतिम पेरा)-

चतुर्दश पूर्वधरी श्री भद्रबाहु स्वामी ने नवम पूर्व से ''दशाश्रुत स्कध'' उदृत किया, जिसके आठवे अध्ययन मे कल्प सूत्र की रचना[1] हुई। ''कप्प सुत्त थेरावली'' ग्रन्थ का समावेश उसी कल्प सूत्र मे होता[2] है। पश्चात्[3] उस परपरा मे, देवर्धिगणि क्षमाश्रमण ने वी नि स ९८० की वल्लभी वाचना मे विद्यमान एव अपने नाम तक के गणनायको की पट्टावलि योजित कर दी - जोडदी।''

टिप्पण :- श्री भद्रबाहु स्वामी ने ''दशाश्रुतस्कध सूत्र'' का ९वे पूर्व से उद्धार किया इसमे तो कोई चर्चा को स्थान नही है। शेष विषय प्राय विचारणीय है।

(१) दशाश्रुतस्कध मे १० दशा कही गई है न कि अध्ययन । तथा अन्य तीन छेद सूत्रो मे उद्देशे कहे गये है। उसकी आठवी दशा मे चातुर्मास (पज्जोसवणा) के कल्प्याकल्प्य की कुछ समाचारी का वर्णन स्थान प्राप्त था। जिसका नाम अन्य दशा के समान ''आठवी दशा'' - इतना रहा होना सभव है। भद्रबाहु स्वामी ने इस दशा मे कल्प सूत्र की रचना करी यह कथन पुरातन आधार चितन की अपेक्षा रखता है।

दशाश्रुतस्कध के शेष ९ दशाओ के विषय मे विचार-प्रेक्षा करने से ज्ञात होता है कि उन दशाओ की उत्थानिका अपने आप मे विशिष्ट ढग और प्राय एकता को लिये हुए है। उस मे या तो स्थविर भगवतो के द्वारा या स्वय भगवान के मुखारविद द्वारा शीर्फ एक विषय का सीमित रूप से कथन किया गया है। तद्नुरूप आठवी दशा मे भी चातुर्मासिक सामाचारी रूप एक विषय का कथन होना ही उचित प्रतीत होता है।

जबकि कल्प सूत्र तो स्वतत्र सूत्र रूप है। उसकी उत्थानिका का ढग

दशाश्रुतस्कध की अन्य दशाओ जैसा नही है। कल्प सूत्र का नाम नदी सूत्र की सूत्र सूची मे भी नही है। वहा चुल्लकप्पसुय और महाकप्पसुय दो सूत्रो का नाम है जो देवर्द्धिगणी के लेखन व्यवस्था तक भी प्राचीन रूप मे थे जिसमे २४ तीर्थकर और गणधर रूप स्थविरो तक का वर्णन था। जिसकी भलावण लेखन काल के समय समवायाग मे लगाई गई है। यथा–

''कप्पस्स समोसरण जाव गणहरा सावच्चा निरवच्चा वोछिण्णा''

इसलिए पर्यूषणाकल्पसूत्र चुल्लकल्पसूत्र और महाकल्पसूत्र आदि के सम्मिश्रण से बना हुआ यह सूत्र है।

अत ''जिसके आठवे अध्ययन मे कल्पसूत्र की रचना हुई'' यह कथन सत्यता के किंचित भी नजदीक नही है।

(२) जब चुल्लकल्पसूत्र मे गणधर रूप स्थविरो तक का वर्णन ही रहा था। जिसकी भलाचण समवायाग मे है। अत अन्य स्थाविरो का कथन चुल्लकल्पसूत्र मे मौलिक रूप मे नही था। जो स्थविरावली आज कल्पसूत्र मे उपलब्ध है वह अनेक विकल्प और सक्षेप विस्तार और अव्यस्था और अस्पष्टता को लिये होने से वह सौत्रिकता के गुण से भी युक्त नही है। अत ''प्रस्तुत ग्रन्थ मे **''कल्पसूत्र थेरावली'' का समावेश उसी कल्प सूत्र मे होता है''** यह कथन भी अनुपयुक्त है। उस स्वतत्र कल्पसूत्र मे यह स्थविरावली कब कितनी किसने - किसने जोडी, इसकी भी कसौटी करनी चाहिये।

(३) देवर्धिगणी ने कल्प सूत्र मे कुछ भी जोडा हो, उसका कोई मौलिक प्रमाण उपलब्ध नही है। ये मात्र बहुत बाद की कल्पनाए है। क्योकि देवर्द्धिगणी का या उनके समय के रचित किसी ग्रथ का ऐसा कोई उल्लेख नही है। अत किसी की रचना मे अत्यन्त आवश्यकता या प्रसग के बिना कुछ भी प्रक्षिप्त करना देवर्द्धि के लिये कहना, सगत नही है। उनका कार्य तो मात्र पूर्व की दोनो वाचनाओ का समन्वय कर व्यवस्थित चिरस्थाई लेखन कराना था। अत उनके द्वारा स्थविरावली जोडना या ९८० व ९३ का पाठ प्रक्षेप करना आदि कल्पना बहुत बाद की है और विचारणीय भी है। क्योकि दशाश्रुत स्कध के निर्युक्तिकार द्वितीय भद्रबाहु ने इन दोनो बातो की कोई चर्चा विवेचन नही किया और उस विषय को छुआ भी नही

है। अत कल्पसूत्र का यह रूप भी द्वितीय भद्रबाहु के बाद का बना है। जो इतिहास वेत्ता मुनि श्री कल्याण विजय जी के कथन के भी अनुकूल जाता है। उन्होने बताया है कि धुवसेन नाम के राजा तीन हुए है जिसमे एक तो द्वितीय भद्रबाहु के समय वीर नि १०४६ से ७६ मे हुए और दूसरे तीसरे धुवसेन राजा भद्रबाहु के बाद हुए। अत कालकाचार्य से किसी का भी सम्बन्ध नही बैठ सकता है। अत. ''देवर्द्धिगणी ने अपने नाम तक की पट्टावली जोड दी'' इत्यादि कथन भी असत्य है। क्योकि उनके द्वारा किया गया होता तो द्वितीय भद्रवाहू उस विषय को निर्युक्ति मे जरूर स्पर्श करते और उसकी चर्चा विचारणा करते ॥

देवर्द्धिगणी के द्वारा स्वय खुद को वदन करना कदापि उचित नही हो सकता। जैसा कि कल्प सूत्र मे आज भी मौजूद है। अत जो यह कहा गया है कि ''**उस वलभी वाचना (लेखन समय) मे विद्यमान अपने नाम तक के गणनायको की पट्टावली देवर्धिगणी ने योजित करदी**'' यह कथन भी कसौटी करने पर सगत नही हो सकता। क्योकि उस समय मे विद्यमान कालकाचार्य, शातिसूरि, देव वाचक आदि का तो नाम निशान भी नही है जब कि शाति सूरि और कालकाचार्य की मौजदगी भी इतिहास प्रसिद्ध है। तथा अपने नाम तक के गणनायको का पाठ जोडना देवर्द्धि के लिये कैसे सगत हो सकता है। आज का एक साधारण लेखक भी ऐसा वर्णन वदन खुद के लिये नही कर सकता।

इस तरह यह कथन चितन की कसौटी पर खरा नही उतर सकता।

इसलिये इस ऐतिहासिक ग्रन्थ का प्रथम पृष्ट का यह वाक्य भी केवल ढर्रा रूप की नकल मात्र है। हमारे इतिहासज्ञ बनने वालो को ऐतिहासिक ग्रन्थ पढने और नकल करने के अतिरिक्त मौलिक आगमो की बारबार स्वाध्याय करते रहना चाहिए और अपने चितन को उन आगम प्रकरणो, अनुभवो की कसौटी पर उतारने का प्रयत्न भी अवश्य करना चाहिए। केवल ग्रन्थो के अधानुकरण मे या नकल करने मे ही अपनी बुद्धि को सीमित नही करना चाहिये।



मध्य कालीन इतिहास और आगम साहित्य

आज हमारे सामने इतिहास को जानने की सामग्री जो भी उपलब्ध है, वह बहुत ही विशाल मात्रा मे है। उसके आधार पर अनेक विद्वानो ने अपने चितन प्रकट किये है। फिर भी मूल आधार इतना शुद्ध और मजबूत नही होने से, नूतन विज्ञान के समान हमारा इतिहास भी नई खोज व सत्य समीक्षा की सदा अपेक्षा रख ही रहा है।

आज जो भी साहित्य हस्तलिखित उपलब्ध है, उसमे एक हजार वर्ष से पुरानी कोई भी प्रत नही मिलती है। जो भी ग्रन्थ उपलब्ध हो रहे है, जिनमे कि एतिहासिक सामग्री या पट्टावली आदि इतिहास उपलब्ध है, वे भी वीर निर्वाण २०वी शताब्दि के या बहुत बाद के है। खुदाई की सामग्री मे भी श्वेताबर दिगबर या अन्य एक दूसरे के कुशल बुद्धि करामात पर शकित है। उस पर भी कहा तक विश्वास किया जाय यह विचारणीय है। क्योकि वीर निर्वाण के हजार वर्ष के बाद का जो समय है, वह अपने अपने धर्म की जडो को सब तरफ से मजबूत करने के वातावरण वाला था। जिसमे ग्रथ रचना, चैत्य व बिब रचना, शिला लेख रचना, राज्य सहयोग, मत्र विद्याबल, चमत्कार और अनैतिक बल प्रवृति का भी अवलबन था। यह सब उपलब्ध इतिहास की जानकारी से ज्ञात होता है।

वीर निर्वाण की दसवी शताब्दि तक का जो काल व्यतीत हुआ उस काल मे कुछ आगम रचना सकलना तो हुई है किन्तु देवर्द्धिगणी की लेखन व्यवस्था तक का जो भी आगम आज उपलब्ध है उसमे ''उस हजार वर्ष सबधी इतिहास विषयक जानकारी नही के समान है, ऐसा कह दिया जाय तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी।

पट्टावलिया और गुरू, कुल, शिष्य-परिवार लेखन की परपरा भी वीर निर्वाण के डेढ हजार वर्ष के भी बाद मे चलाई गई प्रणालिका है। अर्थात् १७वी १८वी शताब्दि की है।

नदी सूत्र के प्रारभ मे ५० गाथाओ से जो स्तुति की गई है, वह भी कोई पट्टावली नही है। शासन पति, सघ, २४ तीर्थकर, ११ गणधरों का स्मरण किया है। उसके बाद सुधर्मा स्वामी से दूष्यगणी तक वदन गुणग्राम किया

है। इसमे कोई शिष्य परपरा या पाट परपरा की कल्पना करना या युग प्रधान पट्टावली कहना एक जटिल समस्या खडी करना है। स्वय रचनाकार ने ऐसी कोई प्रतिज्ञा या उत्थानिका नही करी कि मै क्रमिक पाट परपरा या शिष्य परपरा या युगप्रधान पट्टावलि कह रहा हू। तथा उपसहार रूप अतिम गाथा मे भी ऐसा कुछ नही कहा कि ''ये क्रमिक पाट परपरा प्राप्तो को वदन किया और शेष सभी साधुओ को अब समुच्चय वदन हो ''इत्यादि स्पष्टीकरण नही है।

अत नदी सूत्र मे कोई पट्टावली सग्रहित हुई हो यह बात नही है। किन्तु स्मृति परपरा मे और प्रसग प्राप्त जो भी विशिष्ट श्रुतधर कालिक श्रुत व अनुयोग के धारी प्रसिद्धि प्राप्त दिवगत पूर्वधर एव दूष्यगणि, लौहित्य, भूतदिन (सभवत) परिचय प्राप्त पूर्वधरो को बडे छोटे के क्रम से (भले ही वे कोई-कोई समकालीन भी थे) वदन किया है और उपसहार रूप अतिम गाथा मे शेष बचे हुए अर्थात् जिनका नाम स्मृति मे या प्रसग मे नही आया है ऐसे कालिक श्रुत अनुयोगधरो को वदन किया है। जब परिशेष मे भी कालिक श्रुत अनुयोगधरो (पूर्वधरो) को वदन किया तो जिन्हे नाम और गुण कीर्तन सहित वदन किया वे भी कोई पाट परपरा या शिष्य परपरा न हो कर ऐसे ही विशिष्ट प्रख्यात् श्रुतधर मात्र है ऐसा स्पष्ट ज्ञात होता है। स्कदिलाचार्य से लेकर दूष्य गणी तक के जो श्रुतधरो के नाम है, उनकी उस १४० वर्ष के काल मे पाट परपरा जमाना भी बहुत उलझन युक्त है। क्योकि उसमे के तीन महापुरूष - स्कदिल, हिमवत, नागार्जुन, समकालीन लगभग, व विभिन्न प्रातवर्ती रहे। तथा दो महापुरूष नागार्जुन और भूत दिन क्रमश ७८ व ७९ वर्ष की उम्र के हो गये है। जो सात महापुरूषो के काल को अपने मे ही समाविष्ट कर लेते है। अत यहा जिन सात को वदन किया है उन्हे पाटनुपाट मानना सगत हो ही नही सकता।

इस तरह नदी सूत्र के रचना प्रसग मे भी पाट परपरा = पट्टावलि लेखन पद्धति का प्रादुर्भाव नही हुआ था ऐसा समझना ही युक्ति सगत है।

निर्युक्तियो के रचनाकार भद्रबाहु स्वामी थे, जो कि आगम लेखन के या नदी रचना के या देवर्द्धि के बाद मे हुए। यह बात अनेक अकाट्य प्रमाणो से मदिरमार्गी विद्वान सत श्री पुण्य विजय जी ने बृहत्कल्प भाष्य

भाग ६ की प्रस्तावना मे विस्तार सहित समझाई है। जिसे इस पुष्प मे दिया जा चुका है।

(१) दशाश्रुतस्कध पर भी निर्युक्ति रचना की गई। उसमे प्रारभ की गाथाओ मे दस दशाओ के नाम के साथ निर्युक्तिकार ने यह भी समझाया कि इस सूत्र मे छोटी-छोटी (दस) दशाओ का कथन है और बडी दशाए ज्ञाता सूत्र आदि मे है। इस कथन से, आठवी दशा रूप कहा जाने वाला कल्पसूत्र, अकेला १२०० श्लोक प्रमाण का होने से, निर्युक्ति रचनाकार के समाने नही था, यह स्पष्ट होता है।

(२) आठवीदशा की निर्युक्ति गाथाओ मे प्रारभ से चातुर्मास (पर्यूषणा) कल्प समाचारी का कथन हुआ है और अत तक सम्भवत· कोई विषयातर नही है। अत नमस्कार की आदि युक्त पट्टावलि तक का कल्पसूत्र का पाठ यदि रचना काल से ही आठवी दशा मे होता और अत मे पर्यूषण कल्प समाचारी का पाठ होता, (जैसा कि आज के कल्प सूत्र मे है) तो उसका कथन निर्देश उसकी निर्युक्ति मे भी प्रारभ मे ही किया जाता। जबकि ऐसा नही है।

(३) तीर्थंकर वर्णन के अत मे आया सवत्सर सम्बन्धी वैकल्पिक पाठ व देवर्द्धि तक के वदन गुणग्राम का वर्णन भी, भद्रबाहू प्रणीत आठवे अध्ययन मे मानना और (१२००+९००) एकवीस सौ श्लोक प्रमाण दाशाश्रुतस्कध सूत्र चौदह पूर्वी भद्रबाहु रचित मानना तो हास्यास्पद ही है।

(४) निर्युक्तिकार के एक शताब्दि से भी अधिक पश्चातवर्ती चूर्णीकार ने भी सवत्सर व वैकल्पिक पाठ सबधी कोई निर्देश या स्पष्टीकरण अथवा चर्चा नही की है। इस पाठ की चर्चा १३वी शताब्दि के पूर्व किसी भी व्याख्याकार ने कही पर भी नही की है।

(५) निर्युक्तिकार ने आठवी दशा के प्रसग मे न तो कल्पसूत्र का नामकरण बताया। न इस दशा के प्रथक्करण का जिक्र किया। न इसके परिचय मे ऐसा बताया कि इसमे देवर्द्धि ने सशोधन वर्धन किया और कालकाचार्य ने सभा मे वाचन शुरू किया। जब निर्युक्ति एव चूर्णिकार इस दशा के वर्णन मे ऐसा कुछ भी इतिहास का कथन नही कर रहे है जो कि देवर्द्धि व कालकाचांर्य के निकटवर्ती (छठी सतावी आठवी शताब्दि के) है

तो फिर सैंकडो वर्षो बाद १३वी १४वी शताब्दि वाले वह इतिहास लाये ही कहा से ? अत निर्युक्ति चूर्णी रचना के बाद ओर १३वी १४वी शताब्दि के आसपास कल्प सूत्र का उपलब्ध स्वरूप तेयार किया गया समझना चाहिए।

(६) प्राचीन भद्रबाहु स्वामी ने छेद सूत्रो की रचना साध्वाचार के विषय को लेकर पूर्वो के आधार से की है तो उसमे नौ व्याख्यान रूप उपलब्ध कल्पसूत्र विषयातर रूप ही होता है। चितनाधार के लिये वृहत्कल्प, व्यवहार व दशाश्रुत स्कध का सपूर्ण वर्णन पाठ का,देखा जा सकता है।

इस तरह जब कल्पसूत्र की मौलिकता, प्रामाणिकता ही सदेह पूर्ण है, तो उसमे उपलब्ध पट्टावलि की प्राचीनता कितनी हो सकती है ? यह स्वत समझा जा सकता है।

इस प्रकार कल्पसूत्र और नदी सूत्र की पट्टावली सम्बन्धी वर्णन को अलग कर दिये जाने के वाद जो भी पट्टावलिया उपलब्ध है, वे १३वी शताब्दि अर्थात् वीर निर्वाण १८ वी शताब्दि के पूर्व नही जाती है। अत यह सिद्ध होता है कि आज जो भी पट्टावलिया अथवा इतिहास उपलब्ध है उसका अधिकाश विभाग वीर निर्वाण की १८ वी शताब्दि की रचना और कल्पना एव अनुभव का है। प्राचीन व्याख्या ग्रन्थो मे कुछ कुछ सामग्री उपलब्ध है उसमे भी समय समय पर विकृतिए एव प्रक्षेप दोष हुए है।



ऐतिहासिक गंभीर उलझनों का समाधान

(नंदी सूत्र एवं पाट परंपरा विचारणा)

नदी सूत्र के रचनाकार देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के लिये प्राय सभी सम्मत है। उसमे ज्ञान के विषय के प्रारभ की ५० गाथाओ मे श्रमण पुगवो की स्तुति गुणग्राम एव वदन किया गया है। उनके सवध मे विद्वान इतिहासज्ञ कई प्रकार की विचारणाए प्रगट करते है। साथ ही कल्पसूत्र और अन्य पट्टावलियो आदि से तुलना विचारणा करते है। किन्तु उसके मौलिक

सत्य को पकडे बिना समाधान की अपेक्षा, उलझने ही विशेष सामने आती है।

नदी के अतिरिक्त देवर्धिगणी की अन्य कोई रचना या सकेत नही मिलते है कि सवत भेद कब क्यो पडे? किसने गुर्वावली लिखी या पाट परपरा लिखी या युग प्रधानावली लिखी अथवा स्थविरावली लिखी।

कौन सी परपरा देवर्द्धिगणी की है, कौनसी कालकाचार्य की है, ऐसा भी कोई उल्लेख नही मिलता है। माथुरी युग प्रधान पट्टावली है या वल्लभी युग प्रधान पट्टावली है या कितने कितने वर्ष किसका पाट चला है? ऐसा विधिवत् व्यवस्थित प्राचीन उल्लेख भी नही मिलता है। इसलिये इस सबधी अधिक कल्पनाए प्राय बाद मे की गई है। इसी कारण पूर्ण सत्यता को समझ पाना विद्वानो के लिये अत्यन्त कठिन हो रहा है।

एक तरफ वलभी युग प्रधानावली नागार्जुन और भूतदिन्न इन दो के क्रमश ७८ और ७९ वर्ष करके कालकाचार्य तब पहुच जाती है। दूसरी तरफ माथुरी युग प्रधानावली इन दोनो को शामिल रखते हुए उसी काल मे (१५० वर्ष मे) अन्य ५ महापुरूषो को और भी समाविष्ट कर लेती है, तब देवर्द्धिगणी तक पहुचती है। जबकि कल्प स्थविरावली इन सात मे से एक का भी नाम लिये बिना अन्य नामो से साडिल्य तक पहुच जाती है और देवर्द्धि को साडिल्य का शिष्य भी मान लिया जाता है। और कालकाचार्य को देवर्धि के समकालीन माना जाता है।

वीर निर्वाण सवत् ८४० के आसपास माधुरी-वलभी वाचना हुई, उसमे स्कदिल और नागार्जुन की मुख्यता बताई जाती है। नदी रचना वीर निर्वाण ९९० के आसपास मानी जाती है। स्कदिल से देवर्द्धि तक के सात महापुरूषो का अतर काल १५० वर्षो का होता है।

१५० वर्ष का काल तीन प्रकार से मिलता है १ नागार्जुन और भूतदिन इन दो से पूर्ण होता है २ स्कदिल से दूष्यगणि तक नागार्जुन और भूतदिन सहित सात महापुरूष से पूर्ण होता है। ३ कल्प सूत्र गत धर्म सिह और साडिल्य दो व्यक्ति से पूर्ण होता है।

साडिल्य का शिष्य देवर्द्धि को माना जाय तो नदी मे उसके गुरू साडिल्य का नाम ही नही है और कल्प सूत्र मे दूष्य गणी तक आये नदी

सूत्रोक्त उन सातो ही महापुरूषो मे से एक का भी नाम नही है। इत्यादि विविध कल्पनाओ की उलझने मूल सत्य को समझे बिना सुलझ नही सकती है।

यदि नदी और कल्प सूत्र का कर्ता एक है तो वह दूष्यगणी का शिष्य है या साडिल्य का? इसका कोई समाधान नही हो सकता और कल्प सूत्र मे देवर्धि को भी वदन क्यो किया गया है? यह प्रश्न एक जटिल समस्या को उपस्थित करने वाला है, साथ ही सत्य समाधान को उजागर करने वाला भी है।

समाधान :- नदी सूत्र मे किसी भी प्रकार की ''आवलिका'' नही है अर्थात् स्थविरावली युगप्रधानावली, गुर्वावली अथवा पाटावली नही है। अत क्रम की या समय की किसी भी उलझन मे पडने की आवश्यकता ही नही पडती है।

वास्तव मे नदी कर्ता ने उक्त किसी भी गुर्वावली आदि की प्रतिज्ञा भी नही करी है। न किसी अन्य रचना मे उन्होने कहा कि मैने नदी मे गुर्वावली आदि का कथन किया है। नदी सूत्र मे नाम सहित गुण ग्राम मे और अत मे जो भी सकेत सूचित किया गया है उससे तो यही सिद्ध होता है कि नदी कर्ता का लक्ष्य किसी प्रकार की आवलिका करने का नही रहा है। क्योकि उन्होने वैसे किसी शब्द का प्रयोग न करके केवल कालिक श्रुत एव उसके अनुयोग को धारण करने वाले विख्यात बहुश्रुतो का स्मरण किया है गुण-कीर्तन, वदन किया है। इस वर्णन मे उन्होने कही समकालीन २ या ३ महापुरुषो का भी कथन कर दिया, कही आर्यरक्षित से (२५०) ढाई सौ वर्ष के काल मे ४ नाम ही दिये और पिछले डेढ सौ (१५०) वर्ष मे सात नाम भी दे दिये है । जबकि सात मे दो की उम्र बहुत लम्बी ७८ और ७९ वर्ष की भी थी।

अत क्रम और काल एव आवलिका का आग्रह छोड देने पर कितनी ही उलझने स्वत समाप्त हो जाती है। अन्यथा उनके काल को और पाट परंपरा को जमाने मे निरर्थक ही बुद्धि की कसरत करते हुए कई कल्पनाए घडनी पडती है फिर भी उससे कोई सार नही निकलता है। उलझने और बढती जाती है।

कल्प सूत्र और अन्य पट्टावली सम्बन्धी जो भी उलझने है, उसके लिये यह समझना चाहिए कि कल्प सूत्र की मौलिक रचना काल ही घोटाले मे है, इसकी रचना और प्रचलन तेरहवी शताब्दि से पूर्व नही जा सकता है ऐसा पुष्ठ ८ मे और इस पुष्ठ मे अनेक विध विचारणा करके समझाया जा चुका है। अन्य पट्टवलियो की रचना भी तेरहवी शताब्दि से पूर्व नही हुई है। मदिरमार्गी विद्वान भी इसमे सम्मत है। अत नदी सूत्र के वर्णन से उन्हे उलझाने की कोई आवश्यकता ही नही है। नदी रचना काल प्राचीन है एव उसका वर्णन प्रामाणिक भी है। यदि किसी आवलिका मे व्यर्थ ही नही उलझे तो नदी सूत्र मे कोई उलझन नही है। इस सूत्र की पचासवी गाथा मे भी उपसहार करते हुए रचनाकार ने स्पप्ट कर दिया है कि ''इस उक्त गुण वर्णन के अतिरिक्त अन्य और कोई भी कालिक श्रुत अनुयोग के धारण करने वाले हुए और है, उन सब को नमस्कार करके अब मैं ज्ञान की प्ररूपणा करूगा''।

नदी के लिये युग प्रधानावली की कल्पना करना ही अवास्तविक है। कारण कि आचार्य या गुरू पाट परपरा तो चल सकती है, गुरू और शिष्य तो बना अथवा बनाया जाताहै, आचार्य पद भी दिया व लिया जाता है, एक के बाद एक हो भी सकते है किन्तु युग प्रधानो के लिये ऐसा कोई व्यवहार और परपरा नही हो सकती। ये तो अपने गुणो से या जिन शासन की प्रभावना करने से क्रम एव परपरा रहित जब कभी जहा कही भी हो सकते है। अत युग प्रधान के पीछे आवलिका लगा कर उलझना भी कोई मतलब नही रखता है। नदी वर्णित कालिक श्रुत अनुयोगधरो को युग प्रधान भी समझ लिया जाय तो कोई अनुचित नही है। क्योकि अनुयोग और श्रुत के धारण करने वाले विख्यात बहुश्रतो का युगप्रधान होना स्वाभाविक ही है। किन्तु क्रम के चक्कर मे नही पडना चाहिये।

क्रम या आवलिका के आग्रह मे फसने से अनेको विकल्प - कल्पनाए उम्र की, वर्षो की और उन उम्र वर्षो को जमाने की करनी पडती है। इसके अनुभव के लिये देखे ''वीर निर्वाण सवत एव जैन काल गणना प मुनि श्री कल्याण विजय जी द्वारा सपादित।

सार - नदी सूत्र मे प्रसिद्धि प्राप्त, और उस स्थल पर वदन स्मरण

गुण ग्राम करने योग्य लगने से उन महापुरूषो का स्मरण वदन एव गुण कीर्तन किया गया है। अतिम वदनीय श्री दूष्यगणी ही देवर्द्धि के परम उपकारी गुरू थे इसमे सदेह करने की किचित भी आवश्यकता नही है।

कल्प सूत्र की रचना नदी से ८०० वर्ष करीब बाद की है एव अन्य पट्टावलिया भी उतनी ही बाद की है। उन्हे ज्यादा प्राचीन समझने के आग्रह से ही उलझने पैदा होतीहै। लेकिन वास्तव मे वे सभी लगभग देवर्द्धि से ८०० वर्ष बाद की है। वे सभी पट्टावलिया अलग-अलग अनुभव एव परपरा और उद्देश्य से बनाई गई है। अत इन पट्टावलियो को नदी से या आपस मे मिलान करने की एव काल, अतर और उम्र के विभिन्न आग्रह मे पडने की आवश्यकता नही है। कल्प सूत्र एव अन्य पट्टावलियो के रचनाकाल सम्बन्धी चर्चा इस पुष्प मे यथास्थान कर दी गई है।

इस प्रकार के चितन सार को हृदय मे स्थिर कर लेने पर लगभग उलझनो का समाधान हो जाता है। सूत्र विपरीत कुछ भी निर्णय नही करना पडता है। बल्कि नदी सूत्र की ५० गाथाओ से सम्मत निर्णय होता है।



चर्चा विषय में सूचित महापुरूषों की सूची

कल्प सूत्रीय गुर्वावली	माथुरी युगप्रधानावली नदी सूत्रोक्त	वल्लभी युग प्रधानावली
३१ वे सिह सूरि	२४ ब्रह्मदीपिक सिह सूरि (७८ वर्ष उम्र)	२४ सिह सूरि (७८ वर्ष)
३२ वे धर्म सूरि	२५ स्कदिलाचार्य	२५ नागार्जुन (७८ वर्ष)
३३ वे साडिल्य	२६ हिमवत	२६ भूतदिन (७९ वर्ष)
३४ वे देवर्द्धि	२७ नागार्जुन (७८ वर्ष उम्र)	२८ कालकाचार्य (११ वर्ष)
	२८ गोविद	यह धर्मघोष सूरि कृत
	२९ भूतदिन (७९ वर्ष उम्र)	''सिरि दुसमाकाल श्रमण
	३० लोहित्य	सघ थव (स्तोत्र) मे है।
	३१ दूष्यगणी	तेरहवी शताब्दि मे
	३२ देववाचक (देवर्द्धि)	रचना हुई । वाचक वश

के आचार्यों की नामावली है।

नोट –मूर्तिपूजक विद्वान मुनि श्री कल्याण विजय जी कृत वीर निर्वाण सवत और जैन काल गणना नामक ग्रन्थ से यह तालिका उद्‌ृत की गई है।

इस प्रकार इस चितन मे सूचित विचारणा को स्वीकार कर लेने पर पट्टावलियो को टकराने की उलझने एव ९८० और ९९३ के सवत मिती सम्बन्धी दिमागी कसरतो की परिसमाप्ति हो जाती है। अर्थात् १३वी शताब्दि के आसपास कल्प सूत्र के तैयार करने मे देवर्द्धि गणी के समय की काल गणना एव धारणा मे अतर होना स्वाभाविक है। जिसे ही किसी ने इस सूत्र मे डाल दिया है। अन्यथा ९८० और ९९३ सवत को देवर्धिगणी आदि की उलझन मानना और निरर्थक ही सूत्र मे प्रक्षिप्त करवाने की कल्पना करना, उन आचार्यों की महान आशातना एव अवहेलना करना ही होता है कि ''वे बडे बडे आचार्य अपने व्यक्तिगत एक तुच्छ हठाग्रह मे पडे और उसे बिना प्रसग उन्होने सूत्र मे फसाया।'' ऐसी कल्पना और सगति करने वाले भी दया के पात्र होते है। उन्हे उक्त निबन्ध चर्चा का चितन मनन करके उक्त महान अपराध और आशातना से बचने का मानस एव अवसर प्राप्त करना चाहिए।

कल्प सूत्र सम्बन्धी विशेष अनुभव वार्ता पुष्प ८ दशाश्रुत स्कध के साराश के परिशिष्ट मे देखे।

० यदि युगप्रधानावली कभी चली होती तो अभी तक भी चालू क्यो न रही ? थोडे से समय तक ही क्यो चली ?

० यदि कभी वीर निर्वाण सवत मे ९८० और ९९३ का मतातर था तो अभी भी रहना चाहिये था कब सुलझ गया ? जिसे कि देवर्धि आदि भी नही सुलझा सके थे।

वास्तव मे दोनो ही अनावश्यक क्लिष्ट कल्पनाए है एव फालतू की पकडी गई उलझने है।

तीन आगमों मे णमोत्थुणं पाठ की विचारणा :-

मूर्तिपूजक समाज के एक प्रतिष्ठित विद्वान अपनी- **''जैन साहित्य मा विकार थवा थी थेयेली हानि''** नामक पुस्तक मे- **''मूर्तिपूजा आगम विरूद्ध है, इसके लिये तीर्थंकरो ने शास्त्र मे कोई विधान नही किया है, यह कल्पित पद्धति है।''** इस प्रकार मूर्तिपूजक विद्वान भी मूर्तिपूजा को

आगमिक नही मानते है। तब उन्हे तीर्थकर भगवान समझ कर उनके समाने "**णमोत्थुणं**" देने का तो प्रश्न ही नही रहता। अर्थात् उन लोगो की मान्यता मे भी णमोत्थुण के पाठ को प्रक्षिप्त माना है। आगमो मे जहा कही भी प्रतिमा सम्बन्धी वर्णन है प्राय वहा पर पाठ सरीखा ही है। द्रौपदी के प्रतिमार्चन के सम्बन्ध मे स्वय टीकाकार भी बिना णमोत्थुण के पाठ को अधिक महत्व देते है। इस प्रकार प्रतिमार्चन का पाठ सर्वत्र सरीखा होने से सूर्याभ देव एव विजय देव के वर्णन मे भी णमोत्थुण का पाठ प्रक्षिप्त ही समझना चाहिये।

विक्रम की आठवी नौवी शताब्दियो मे जब कि चैत्यवासियो का जोर सर्वत्र फैल चुका था, वे मठाधीश यति बन चुके थे। मदिरो के पैसो की उघराणी करते थे एव सारा बहीवट स्वय की देख रेख मे रखते थे। जिस का खडन सबोध प्रकरण मे तथा महानिशीथ मे हुआ है। सभवत इसी युग मे णमोत्थुण का पाठ इन तीन प्रतियो मे प्रक्षिप्त हुआ हो तो असभवित नही है। १२वी शताब्दि मे होने वाले नवागी टीकाकार के समय तो दोनो प्रकार की प्रतिया उपलब्ध होती थी। जिससे ही उन्होने ज्ञातासूत्र मे बिना णमोत्थुण वाले पाठ को प्रधानता दी है। इसलिये सातवी आठवी शताब्दि मे लिखी गई पुरानी प्रतियो से इस पाठ का मिलान होने पर इसकी प्रक्षिप्तता जानी जा सकती है। अत पुरानी प्रति से मिलाने का प्रयत्न करना चाहिये। रायप्पसेणीय व जीवाभिगम सूत्र के टीकाकार श्री मलयगिरी जी नवागीटीकाकार श्री अभयदेव सूरि के पश्चात वर्ती है। इनको प्रक्षिप्त पाठ वाली प्रतिया ही उपलब्ध होने की सभावना है। जिससे उन्होने अपनी टीका मे णमोत्थुण आदि पाठ की भी टीका की है। किन्तु उसकी सगति के विषय मे वे मौन है। मूर्ति पूजक आचार्य स्वय अनेक ग्रन्थो मे मूर्ति पूजा जिनागम विरूद्ध सिद्ध करते है। णमोत्थुण पाठ की प्रक्षिप्तता का उहापोह भी इनकी टीकाओ मे किया गया है।

सार :- ज्ञाता सूत्र, रायप्पसेणीय सूत्र और जीवाभिगम सूत्र इन तीनो सूत्रो मे णमोत्थुण का पाठ प्रक्षिप्त है, ऐसा पुरानी प्रतियो को देखने से एव इनके व्याख्या ग्रन्थो को देखने से स्पप्ट होता है।

यह भी एक स्वार्थपूर्ण घोटाले के विषय का परिणाम है। जो विक्रम

सवत की आठवी शदी के पश्चात १२वी तेरवी शताब्दि तक बीच के काल मे होना सभव है। यह ४००-५०० वर्ष का मध्यकाल उत्कृष्ट शिथिलाचार का समय था, साथ ही विरोध करने वाले धुरधर विद्वान मूर्तिपूजको के साथी श्रमण भी उस समय थे। वे भी किसी न किसी तरह अपनी शुद्धाचार मूलक प्ररूपणा जगह जगह कर ही देते थे। स्वतत्र उपदेशी ग्रन्थ रचकर उसमे भी अपनी श्रद्धा रूचि अनुसार प्ररूपणा एव मूर्ति पूजा, आडबर आदि का खडन कर ही देते थे। अनेको ऐसे प्रमाण आज उपलब्ध है। कुछ प्रमाण पुष्प २१ मे ऐतिहासिक विस्तृत सवाद मे दिये जा चुके है। ऐसे विरोध के, प्रतिस्पर्धा के, प्रतिवाद के, उस मध्य कालीन जमाने मे कल्पित प्रक्षेपो, कल्पित रचनाओ, आगम सम्बन्धी चोरियो, झूठे शिलालेखो, आदि अनेको कारनामे उस जमाने मे हुए है। अत आगमो के प्रति अध श्रद्धा बुद्धि न रखकर विवेक बुद्धि रखना ही उपयुक्त है।



मध्य काल का एक चित्रण एवं ऐतिहासिक नोंध का सार

(१) देवर्धिगणी के बाद के काल को अर्थात वीर निर्वाण १००० वर्ष के बाद के काल को यहा मध्य काल कहा गया है।

''दिगम्बरो के द्वारा नग्न मुर्तिया मथुरा के स्तूप मे बना कर रख दी गई तथा अन्यत्र भी इस प्रकार कर दिया गया । झूठे सच्चे शास्त्र घड दिए गये। खरतर गच्छ आदि गच्छ की पट्टावलियो मे जो वर्णन है वह तो कल्पित और किवदति के तुल्य या उससे भी हीन दशा से परिपूर्ण है। लोकामत की पट्टावलिया भी गलत है भ्रमित है। देवर्द्धि के बाद अनेक पथो मे अनेक साहित्यो की रचनाए मोह एव राग द्वेष के परिणामो से युक्त होकर की गई है और उनमे विश्वस्त अविश्वस्त घटनाए, इतिहास घड कर रखे गये है''।

इत्यादि कितनी ही सारी बातो को मूर्तिपूजक मुनि श्री कल्याणविजयजी ने बडे ही ठोस ढग से गलत ठहराया है। कही किसी बात को किसी के

भेजे की उपज कही है और कही ये ऐसे कार्य करने मे (अर्थात् झूटे शास्त्र रचने, जोडने, इतिहास जमाने मे) सिद्ध हस्त थे, आदि भाव कहे है। इस प्रकार मूर्तिपूजक विद्वान सत श्री कल्याण विजय जी ने उस मध्य युग के कुछ हुशियारो की होशियारियो का भडाफोड ही किया है। दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनो के लिये बहुत कुछ लिखा है। इससे सार यह निकलता है कि देवर्द्धिगणी के बाद कुछ ईमानदार शास्त्रीय व्याख्याकार भी हुए है तो उनके साथ-साथ कई ऐसे हत्थकडे करने वाले तथा अपने मत और अपनी हर प्रवृति को आगे भविष्य मे प्रमाणित सिद्ध होने के लिये आधार मिल सके ऐसी नीति से साहित्य रचना, शिला लेख लिखना, मूर्तिया बनाना, तत्व विवेचन करना, कल्पित कथाए, कल्पित महावीर गौतम सवाद घड देना, पूर्व का इतिहास कल्पित व सत्य मिश्रित कर जमा देना, वर्तमान एव भूतकाल की पट्टावलिया अतिश्योक्ति युक्त कल्पनाओ वाली बनाना, अपनी बढाई और दूसरो की हल्काई हो ऐसी कई प्रकार की लेखन सामग्री लिखी जाने लगी। इस तरह का यह बीच का काल रहा है। अपने अपने महत्व के लिए जो कुछ किया वह अलग परन्तु आगमो के नाम से भी भ्रम करने मे परिश्रम चले। किसी की रचना किसी के नाम की करनी शुरू हुई। कही णमोत्थुण के और मूर्तियो के पाठ तथा चैत्य, अरिहत आदि शब्द डालने की चोरिया चली। कही जीताचार या अपवाद के आचरण को आगे हमेशा के लिए (जो कि आगम से विपरीत है या प्रायश्चित रूप है उसे) दृढ पकड लेना, उसके लिए कल्प सूत्र मे चौथ की सवत्सरी का पाठ बना लेना, कालकाचार्य के नाम से भी जो मन आया वह जोड देना, कल्प सूत्र को दशाश्रुतस्कध का अध्ययन घड देना, तो महानिशीथ जैसी विचित्र उटपटाग रचना करके महान आचार्यो की सम्मति की असत्य छाप मूल पाठ मे लगा देना। कई बडे आचार्यो राजाओ के जीवन मे मन्दिर मूर्तियो के सबध जोड़ देना। जब कि १४ पूर्वी, १० पूर्वी या गणधर कृत जो आगम है उसमे किसी भी साधु या श्रावक के जीवन मे मदिर बनवाया या बनाने की अथक प्रेरणा करना और उससे जल्दी मोक्ष जाना आदि कोई कथन लेश मात्र भी नही है। उन्ही आगमोक्त व्यक्तियो के जीवन कथाओ मे बाद के आचार्यो ने मदिर के अनेको खोटे सबध घड दिये। उपलब्ध आगमो मे साधु के आचार के कितने ही सूत्र है, दिनचर्याओ का वर्णन भी

शास्त्र मे है। श्रावक की ऋद्धियो का भी वर्णन है। श्रावक साधु के त्याग-तप, पडिमाए, घर-परिवार, ज्ञान-अध्ययन का वर्णन है परन्तु उन गणधरो एव पूर्वधरो के शास्त्रो मे किसी के मदिर रचना से, उसके उपदेश से, मदिर के परिग्रह से, कोई सम्बन्ध ही नही है, तब भी बाद के ग्रन्थ अनेक साधु, श्रावक, राजा के जीवन के साथ मदिर मूर्ति प्रतिष्ठा घड देते है। निशीथ मे हजार उपर प्रायश्चित के बोल है परन्तु कही भी यह नही कहा कि भगवान की मूर्ति के दर्शन वदन नही करे तो इतना प्रायश्चित। जब कि असवत्सरी मे सवत्सरी करने का भी प्रायश्चित कह दिया और छोटी बडी अनेक आचार की बातो का प्रायश्चित्त वहा गिना दिया है। किन्तु मदिर जाना या स्थापनाचार्य रखना, द्विदल नही खाना या मक्खन नही खाना या २२ अभक्ष्य नही खाना आदि कोई भी वर्णन आचाराग, दशवैकालिक आदि सूत्रो मे नही है और निशीथ मे उनका प्रायश्चित भी नही है और बाद के ग्रन्थो ने और प्रवृति ने कितनी ही ऐसी बाते चला दी।

अत देवर्द्धि के बाद की छोटी बडी अनेक रचनाए और इतिहास और खुदाई की उपलब्धिया कोई खास विश्वसनीय नही है। इन सब मे उस देवर्द्धि के बाद के अनेक बुद्धिमानो के भेजे की उपजे है। जो कल्पनाए कल्याण विजय जी ने अन्य दिगबरो आदि के लिये की है वही उस काल के श्वेताबरो के लिये भी है। ये क्यो कम रहे, भविष्य के लिये प्रमाण तैयार करने मे। अत शिलालेख और खुदाई की चीजो से भी कोई सही इतिहास नही बन सकता है जिसकी जैसी बुद्धि, रूचि हो वैसा सिद्ध कर सकता, समझ सकता है।

इसलिए आगम जो विशिष्ट पूर्व धरो के है, परपरा से विश्वस्त है उनके सामने ऐसे धोखो से भरे इतिहासो और ग्रथो को ज्यादा महत्व देना ही अज्ञान दशा है, आत्मा को अधकार के गर्त मे पटकना है। आगम पाठो को और उनके भावो को समझने पूरता ही ग्रथो का अवलबन या उन्हे महत्व देना योग्य है, पर्याप्त है और वही उचित है।

जिनको आत्म साधना मे आचार साधना करनी है, वे उन आगम मे आये श्रावक साधु के जीवन से त्याग तप ज्ञान का अनुसरण करेगे और आचाराग, सूयगडाग, छेद सूत्र, उत्तराध्ययन और दशवैकालिक सूत्र

कथित आचारो का यथा शक्य इमानदारी से पालन करेगे। तदनुरूप ही अपना चलना, बोलना, खाना, रहना आदि प्रवृति करेगे, समिति - गुप्ति, स्वाध्याय-ध्यान मे लग जायेगे। तो भी सही मार्ग की आराधना हो सकेगी।

उक्त विषयो की स्पष्ट विस्तृत जानकारी के लिये मूर्तिपूजक विद्वान मुनि श्री कल्याणविजय जी म सा द्वारा सपादित ''प्रबध पारिजात'' नामक ग्रन्थ का अध्ययन करना चाहिये।

• • •

साधु का वसति वास या वनवास-आगम चिंतन

(जैन आचार विचार मे अनैकांतिकता)

''साधु पहले पहाडो में रहते थे, फिर बाद मे कमजोरी से वसति वास (गावो मे रहना) शुरू किया।'' ऐसा विद्वानो एव इतिहासज्ञो द्वारा कहा जाता है किन्तु वह कथन आगमानुसार नही है।

आर्य भद्रबाहु स्वामी कृत छेद सूत्रो और आचाराग सूत्र आदि गणधर कृत आचार शास्त्रो से सर्वज्ञ कथित वीतराग मार्ग का ऐसा एकातिक रूप होना सिद्ध नही हो सकता है। भगवान के समय मे भी नवदीक्षित, स्थविर, वृद्ध, ग्लान, अशक्त, ठाणापति (स्थविर वास विराजित) साधु या साध्विया आदि अनेक प्रकार के साधक होते ही थे।

अग सूत्रो मे और छेद सूत्रो मे जहा उपाश्रयो का वर्णन है वहा १८ प्रकार के अथवा २१ प्रकार के मकान साधु साध्वी के ठहरने के लिये कहे है।

बृहत्कल्प सूत्र मे कहा है कि साधु को पुरूष सागरिक उपश्रय मे ठहरना कल्पता है किन्तु स्त्री सागारिक उपाश्रय मे रहना नही कल्पता है, तथा अनाज एव खाने की सामग्री आदि से युक्त मकान मे किस व्यवस्थित स्थिति मे शेष काल मे रहना कल्पता है और कब चातुर्मास रहना कल्पता है, इत्यादि स्पष्ट वर्णन है। दुकानो मे, गली के किनारे तथा तीन रास्ते,

चार रास्ते, मे बने मकानो मे साध्वी को ठहरना नही कल्पता है, किन्तु साधु को रहना कल्पता है, ऐसा स्पष्ट विधान है। किन्तु दोनो को ही नही कल्पता है, ऐसा कथन नही किया है। इस प्रकार आर्य भद्रबाहु रचित इस छेद सूत्र मे ग्राम आदि मे रहने का निषेध नही है अपितु विधिरूप से रहने का ही सिद्ध हो रहा है।

स्थविर कल्पी एव जिनकल्पी के एक वस्त्र एव अनेक वस्त्र का, कर पात्री एव पात्र धारी होने का, कारण से असमर्थ आदि को अधिक पात्र देने का और निष्कारण नही देने का इत्यादि अनेक वैकल्पिक व्यवस्थाओ का अग सूत्र और छेद सूत्रो मे उल्लेख है। अनेको आचार विधान भी अनेकातिकता लिये हुए है जैसे कि –

१. कही विगय रहित सदा नीरस आदि आहार करना कहा गया है, कही साधु को बार-बार विगय सेवन नही करने वाला होना कहा है, कही विगय सेवन करके जो मुनि तप मे रत नही रहे तो उसे पापी श्रमण कहा जाता है किन्तु विगय युक्त आहार करके जो तप मे लीन रहता है उसे पापी श्रमण नही कहा है।

२ कही ऐसा विधान है कि गोचरी मे नया बर्तन नही भरवाना, तो कही बता दिया गया कि पश्चात् कर्म न हो तो ले लेना तथा कही थाली मे मोदक भर कर बहरावे तो भी लेने का वर्णन किया गया है।

३ कही पर बताया गया कि ''**पत कुलाइ परिव्वए स भिक्खु**'' अर्थात् निर्धन-गरीब घरो मे भिक्षाचरी करने वाला सच्चा भिक्षु है। तो कही बडे-बड़े श्रीमतो और राज घरानो मे भी गोचरी जाने के स्पष्ट वर्णन है। कही खीर खाड के भोजन प्राप्ति के वर्णन भी है।

इस तरह हमारे जैन आगम तात्विक सिद्धान्तो की अपेक्षा जैसे स्याद्वाद को लिये हुए है वैसे ही आचार विधानो के भी अनेक विषयो मे अनेकातता धारण किये हुए है।

अत जैन साध्वाचार सबधी नियमो के लिये, बिना गहरा शास्त्र-चितन किये, केवल ग्रन्थो, इतिहासो या उद्धरणो और शिलालेखो से अथवा कथाओ से कोई भी एकात कल्पना करना युक्ति सगत नही है। कम से कम दो अग सूत्र, चार छेद सूत्र और दो मूल यो आठ आचार सूत्रो के चितन

युक्त अनुभव ज्ञान रखना एव उसे समक्ष रखते हुए चितन करना भी पर्याप्त हो सकता है। अर्थात् इतना ध्यान रख लेने पर भी बिना मतलब के वर्तमान साधुओ की कमजोरी बताने की स्थिति पैदा नही होगी। वास्तव मे ऐसी कल्पित अवास्तविक कमजोरी बताने से धर्म श्रद्धा और उत्साह मे किसी प्रकार के लाभ की भी कोई समावना नही है।

सर्वज्ञो की वाणी मे और उसमे भी आचार सबधी विधानो मे तो सब तरह के साधको को ध्यान मे लेकर के ही अनेक दर्जे के विधान समाविष्ट किये जाते है। जघन्य दर्जे की भी अपनी एक सीमा होती है इसीलिए भगवती सूत्र मे बताया गया है कि बकुश और प्रतिलेखना नियठा वाला भी वैमानिक देवो के सिवाय कही भी नही जाता है। उसके जघन्य चारित्र पज्जवे भी पुलाक के उत्कृष्ट चारित्र पज्जवो से अनत गुणे अधिक ही होते है, तभी वह नियठा टिकता है अन्यथा नीचे गिर जाता है। अर्थात् असयम *अवस्था प्राप्त कर लेता है।*

स्वय भगवान महावीर स्वामी के छद्मस्थ काल का वर्णन आचाराग सूत्र मे है, उसे ध्यान पूर्वक समझ लिया जाय तो भी मकान सम्बन्धी सही स्थिति मालुम हो जायेगी।

अत व्यर्थ मे ही ऐसी भ्रमणाए चलाना कि ''पहले साधु वसति मे नही रहते थे पहाडो मे ही चौमासा करते, वसति वास बाद मे हुआ'' यह स्पष्ट ही आगम विपरीत प्ररूपणा है। आजकल उत्कृष्टता की ऐसी ही अनेको फालतू बाते इतिहास या आगम के नाम से थोपी जाती है। किंतु सत्य बात यह है कि पहले जमाने मे ऐसे भी उत्कृष्टता वाले अनेक साधक होते थे सामान्य साधक भी होते थे। फिर भी उस उत्कृष्टता को बिना आगम प्रमाण के मात्र इधर उधर के उद्धरण इतिहास शिलालेखो से सब के लिए थोप कर एकातिक कथन कर देना बहुत ही अनुचित है। साधु के आचार और जैन सिद्धात के मुख्य तत्वो के सम्बन्ध मे सदा, प्रमाणिक पूर्व धरो के आगम से ही कसौटी और चितन करके निर्णय करना चाहिए। यह सही निराबाध मार्ग है।

हमारे आगम नग्नता का खडन और भर्तस्ना नही करते है। सचेलकता का भी विस्तृत कथन करते है और अचेलकता को भी प्रशस्त कह देते है।

उसी तरह आगमो मे तीन जाति के पात्र कहे गये है। असमर्थ साधु तीनो जाति के पात्र एक साथ रख सकते है। समर्थवान साधु केवल एक जाति के ही पात्र रख सकते है। स्थविर कल्पी साधु के आहार करने का वर्णन करते हुए व्यवहार सूत्र मे बताया गया है कि वह अपने पात्र मे, अपने पलासक मे, अपने कमडलू मे, अपने हाथ मे और अपने हस्त युगल (धोबे-खोबे) मे ले लेकर खा सकता है। इस तरह अनेक पात्र होने का एव उसमे खाने का तथा हाथ मे खाने का वर्णन भी कर दिया गया है और उणोदरी करना हो तो एक वस्त्र रखने का या परित्यक्त उपकरण ही लेने का निर्देश किया गया है किन्तु एकात एक ही पात्र रखने की प्ररूपणा नही की गई है।

औषध की चाहना करने मात्र का भी (परीषह सहने की अपेक्षा) निषेध उत्तराध्ययन सूत्र अध्य २ एव १८ मे कर दिया गया फिर भी निशीथ सूत्र मे स्वस्थ साधु को औषध सेवन का प्रायश्चित्त कहा है अस्वस्थ साधु के लिये वहा प्रायश्चित नही कहा है। एव उसी भव मे मोक्ष जाने वाले साधुओ के औषध उपचार कराने का वर्णन भी आगमो मे कर दिया गया है।

साधु की मर्यादाओ मे सयम समिति-गुप्ति महावत सुरक्षित रहना ही मुख्य है। बाकी अन्य विधियो मे कई तो लोगो की दृष्टि से व्यवहारिक भी है और कई अव्यवहारिक सी लगने वाली भी अनेक विधिया आगम से सिद्ध है यथा - अदत धावन, अस्नान, लोच आदि। उनके सम्बन्ध मे भी यदि कोई मात्र व्यवहार दृष्टि कस्रकर खिल्लिया उड़ावे तो वह उसकी व्यक्तिगत असभ्यता और अविवेक ही है, जिसका तो कोई इलाज नही है।

दुनिया मे सब तरह के लोग होते रहते है। साधु को व्यवहार का भी ध्यान तो रखना ही होता है परन्तु भगवद आज्ञा, मूल महाव्रत, समिति, गुप्ति एव आगम सम्बन्धी सभी विवेको की उपेक्षा न करते हुए ही। क्योकि अपने नियमो मे तप मे भगवद आज्ञा मे रहना तो साधु का परम कर्तव्य है और व्यवहार तो बनावे जैसा बन सकता है।

दुनिया मे कोई वस्त्र द्वारा व्यवहार रखता है तो कई नग्न रह कर भी। कोई मुहपति को मुह पर बाध कर भी व्यवहार रखता है तो कोई बिना बाधे ही रहते है। कोई डडा आदि औपग्रहिक उपधियो को ओधिक (आवश्यक) कर देता है उसका भी बेधडक व्यवहार चलता है। यो अनेक तरह के

व्यवहार जब जो चला देते है समाज मे चल जाते है और आज भी उन सभी तरह के लोगो के व्यवहार दुनिया मे चल रहे है।

अत व्यवहार के नाम से सयम के मौलिक एव आगम कथित नियमो की उपेक्षा भी नही करनी चाहिए तो उत्कृष्टता के नाम से आगम से सिद्ध विभिन्न सामान्य आचार विधियो का निषेध कर के, उन्हे शिथिलाचार भी नही कह देना चाहिये एव समय परिवर्तन के नाम से ऐसे कोई एकात प्ररूपण भी नही करने चाहिए।

इस प्रकार साधु का वसति वास और वन विहार दोनो ही आगम सिद्ध है। किन्तु ''वसति वास'' समय के परिवर्तन से आई हुई विकृत प्रवृति है, ऐसा नही समझना चाहिए और ऐसी आगम विरूद्ध खोटी प्ररूपणा भी नही करनी चाहिये।

उक्त विचारणा से यह स्पष्ट है कि जो मनीषी यह कथन कहते है कि **''पहले सभी जैन मुनि जगलों मे ही रहते थे, बगीचो मे ही ठहरते थे, गाव या नगर की वसति मे अब समय दोष से ठहरने लगे है''** उनका यह कथन आगमो की श्रद्धापूर्वक अध्ययन चितन एव परस्पर समन्वय युक्त दृष्टिकोण वाला नही है किन्तु स्वय की एकागी दृष्टि की प्रमुखता युक्त और आगम निरपेक्ष भ्रम पूर्ण निर्णय है। सुज्ञ श्रद्धालुओ को ऐसे व्यक्तिगत एकागी विचार प्रवाहो से दूर रह कर अपने ज्ञान दर्शन चारित्र को सुरक्षित रखते हुए सम्यग् श्रद्धा के साथ सम्यग् आराधना करनी चाहिये।

भगवान महावीर स्वामी द्वारा प्रयुक्त शय्याएं :-

१ धर्मशालाओ मे २ प्याऊ मे ३ दुकानो मे ४ लुहार, सुनार, सुथार की शाला मे अर्थात् कारखानो मे, ५ झोपडियो मे ६ यात्रीगृहो मे ७ आरामगृहो मे, ८ ग्रामो मे ९ नगरो मे १० श्मशान मे ११ शून्य गृह मे १२ वृक्ष के नीचे।

उक्त स्थानो मे तीर्थकर भगवान महावीर स्वामी ने छद्मस्थ काल मे विचरण करते हुए निवास किया था। – आचारांग सूत्र अध्य. ९

साधु साध्वी की कल्पनीय शय्याएं –

१ पथिक शाला (धर्मशाला) २ विश्रामगृह ३ गृहस्थ का घर ४ मठ - आश्रम।

१ लुहार शाला २ धर्मशाला ३ सभा स्थल ४ प्याऊ ५ देवालय ६ दुकान ७ गोदाम ८ यानगृह ९ यान शाला १० चूने का कारखाना आदि ११ घास के या चमडे आदि के कारखाने १२ कोयले का कारखाना १३ सुथारशाला १४ श्मशान गृह १५ पर्वत गृह १६ गुफा १७ शातिकर्म गृह १८ पत्थर के कारखाने आदि निर्दोष भवनो एव गृहो मे साधु साध्वी को ठहरना कल्पता है। **–आचाराग सूत्र श्रुतस्कध २ अध्ययन २**

साध्वी के अयोग्य और साधु के योग्य शय्याएं –

१ दुकान युक्त घर मे २ गली के प्रारम्भ के मकान मे ३ तिराहे मे आये मकान मे ४ चौराहे पर आये मकान मे ५ सिघडाकार मार्ग मिलते हो वहा बने घर मे ६ अनेक मार्ग मिलते हो ऐसे स्थान पर बने घर मे ७ दुकान मे (ठहरने योग्य खाली जगह होने से) साधु ठहर सकते है किन्तु साध्वियो को इन स्थानो मे नही ठहरना चाहिए।

– वृहत्कल्प सूत्र उद्देश्क - १ सूत्र १२

इन आगम वर्णनो एव विधानो से स्पष्ट है कि नग्न रहने वाले तीर्थकर एव साधु साध्वी गावो मे बसती मे अथवा बगीचो मे कही भी उपयुक्त स्थानो मे निवास कर सकते है। साध्वी को ब्रह्मचर्य रक्षा के निमित्त अनेक असुरक्षित स्थानो का निषेध है किन्तु कही पर भी वस्ती मे रहने का निषेध आगम से किचित भी सिद्ध नही होता है। ''उपाश्रय'' शब्द का प्रयोग भी आगमो मे स्पष्ट रूप से है एव कही पौधशालाए भी कही गई है फिर भी जो अनघड कल्पानाए आगमाधार के बिना ही चला दी जाती है, यह विद्वत्ता का सही उपयोग नही है। आगम सापेक्ष चितन होना नीतात आवश्यक है। जब कि हमारे कई विद्वान लोग एक बार थोडा सा आगम अध्ययन कर लिया, फिर आगम निरपेक्ष इतिहास शिलालेख कथा ग्रन्थो आदि से चितन निर्णय करके भ्रम फैलाते रहते है। यह जिन शासन की सेवा नही किन्तु अनायास ही होने वाली कुसेवा है। उन विद्वानो को यह चाहिये कि अपने प्रत्येक निर्णय को पहले अपने मान्य एव उपलब्ध सभी आगमो से पुन परीक्षण करके सर्वथा आगम अविरूद्ध चितन को ही प्रस्तुत करने का प्रयत्न करना चाहिये। साथ ही अपने उस नये चितन को स्पष्ट आगम पाठ का सबल मिले इसका भी पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये।

नोट – इस आगम नवनीत पुष्पो मे भी कई नये चितन प्रस्तुत किये गये

है, जो कि प्रचलित परपराओ और धारणाओ से बिल्कुल अलग भी है किन्तु उनके लिये उक्त आगम सापेक्ष चितन एव प्रमाणो का पूर्ण ध्यान रखा गया है। फिर भी किन्ही विद्वान की दृष्टि मे कोई भी आगम विरूद्ध या आगम निरपेक्ष बिदु दिखाई दे तो वे उसे मन मे नही रख कर लेखनी द्वारा सपर्क सूत्र के स्थान पर सूचित करने का प्रयत्न कर जिन शासन की सच्ची सेवा का लाभ प्राप्त कर अपने को धन्य बनावेगे।



आगमों की रचना में बार बार परिवर्तन - एक चिंतन

गणधर या १४ पूर्वी आदि जिन शासन मे जो भी आचार शास्त्र की रचना करते है उसमे वे परिपूर्ण शासन काल के साधुओ का ध्यान रख कर ही विधि-निपेध के नियम रचते है। उनके नियमो सम्बन्धि विधान के लिये यह कल्पना करना सर्वथा अनुचित है कि **''वे अपने शासन काल के आचार शास्त्र बनावे जिसके कायदे २०० या ४०० वर्ष बीतने के बाद चले ही नही फिर कोई उन्हे पलटे। उसके २०० या ३०० वर्ष बाद फिर किसी को उस आचार शास्त्र के नियमो को पलटना पडे।''** ऐसी कल्पना करने मे पूर्व धरो की और शास्त्र रचनाकारो की अयोग्यता घोपित करना होता है।

ऐसा कोई लिखित परपरा प्राप्त प्रमाण है भी नही कि १४ पूर्वी या गणधरो के बनाए आचार शास्त्रो के कायदे अब आगे के काल मे नही चल सकते इसलिये आर्य रक्षित ने या अमुक ने पलटे। श्रुत केवली की रचना मे ऐसा दूषण समझना या कल्पना करना किंचित भी समझदारी की बात नही है।

यह बात सदा ध्यान रखने की है कि इतिहास कल्पना या ग्रन्थो को आगम से ज्यादा महत्व नही देना चाहिए। ऐसा ध्यान रखने पर उक्त प्रस्तुत कल्पना को स्थान ही नही मिल सकता। आचार शास्त्रो मे जो विधान है उनमे किसी प्रकार का फेर बदल किये बिना भी अनेक साधक वस्त्र, पात्र या अन्य उपकरण वाले हो सकते है और विशिष्ट साधना करने

वाले या पहाडो मे जाने वाले, विशेष त्याग, तप, अभिग्रह, पडिमा, जिनकल्प आदि साधनाए करने वाले भी इन्ही आचार शास्त्रो के आधार से हो सकते है।

आगमो के बारबार परिवर्तन की आवश्यकता मानने पर शास्त्र का महत्व ही क्या रहेगा? क्योकि इस तरह आचार शास्त्र के कायदे पलटने का अधिकार हर २००-४०० वर्ष के बाद किसी आचार्य के हाथ मे हो जाय तो सारा अव्यवस्था दोष हो जायेगा। इक्कीस हजार वर्ष तक कितने नियम पलटने पडेगे। वास्तव मे यह सब सोचना ठीक नही है जो भी विधि निषेध आगमो मे है वे जिन शासन की दीर्घ दृष्टि को पूर्ण लिए हुए ही है।

व्यक्तिगत या अमुक सघ से या अपवाद से कमी किसी को कुछ करना पडे, वह बात अपवाद परिस्थिति या रूचि अथवा वातावरण पर रहती है। जिसका सकेत मी आगमो से एव उनकी व्याख्याओ से स्वत प्राप्त हो जाता है। आचार शास्त्रो मे कही उत्कृष्ट से उत्कृष्ट कर्तव्यो की शिक्षा भी है, तो कही मध्यम आचार विधान भी है और कही अपवाद परिस्थिति की छूटे भी है। इसके उपरात भी किसी से अन्य विपरीत आचरण हो जाय या करना पडे तो उसका प्रायश्चित वर्णन भी आगमो मे कर दिया गया है।

आगम भगवती मे कहे गये कोई नियठे मूल गुण पडिसेवी भी है, तो कोई उतर गुण पडिसेवी भी है और कोई पूर्ण शुद्ध भी है। उनमे किसी के आराधना भी है किसी के विराधना मी है इस प्रकार अनेक स्थितियो का वर्णन है। इस विविध सदोष निर्दोष नियठों वालो को भी साधुत्व मे गिना गया है।

इक्कीस हजार वर्ष तक कमी मी किसी के लिये आचार शास्त्रो मे पलटा पलटी करना पडने की कल्पना होने जैसा कुछ मी नही है। यदि ये आगम बाद के व्यवस्थित किए गये या सुधारे गये है ऐसी कोई कल्पना करे तो उसे यह सोचना चाहिए कि मेरी कल्पनानुसार एक पूर्वधर के द्वारा व्यवस्थित किये गये शास्त्र अब २०,००० वर्ष चले जैसे हो गये और १४ पूर्वी एव गणधरो की रचना के विधान १००-२००-४००-९०० वर्ष मे बार बार पलटने पडे ऐसा कैसे उचित हो सकता है। अत. यह बहुत ही गलत एव अनुचित कल्पना है। ऐसी कल्पना से कोई लाम मी नही है। साथ ही

पूर्वधरो की योग्यता को और आगम के महत्व को कलकित करने का कार्य होता है। अत ऐसी कल्पना किसी भी आगम प्रमाण के बिना नही करनी चाहिए। चाहे इतिहास कहो या ग्रन्थ कहो, यह तो अघटित और अनुचित कल्पना ही कहलायेगी।

छद्मस्थो की स्मरण शक्ति की कमी से शास्त्रो मे विकृत बने पूर्वापर सम्बन्धो को जोडना या कुछ भी अव्यवस्थित हुए को व्यवस्थित करना, सक्षिप्त करना, स्पष्ट करना, यह सब आगे की स्मरणशक्ति का विचार करके या पहले की स्मृति दोष के कारण को समझ कर सशोधन करना आदि प्रयत्न तो योग्य ही कहे जायेगे। क्योकि ऐसा करने मे रचनाकार पूर्वधरो या गणधरो पर कोई आपत्ति नही जाती है।

अत आचाराग, सूयगडाग, ४ छेद, दशवैकालिक तथा और भी आगमो मे जहा आचार विधान है उनमे क्षेत्र-काल के कारण बदला बदली करनी पडी है ऐसा मानना सोचना असत्य कल्पना है।

इन आचार आगमो मे आये हुए विधानो, निषेधो और अपवादो के सभी नियमो को समझकर, उनका पूर्वापर समन्वय कर, एव सही विधि का निर्णय कर के यथा सभव उत्सर्ग मार्ग पर ही चलना चाहिए तथापि परिस्थितिवश कभी अपवाद मार्ग पर भी चलना पड सकता है एव कभी-कभी प्रायश्चित मार्ग पर चल कर के भी वापिस उत्सर्ग मार्ग पर आया जा सकता है। यह सब व्यक्तिगत निर्णय एव परिस्थिति पर अधिक निर्भर करता है। परतु आगम विधान को हमेशा के लिए अयोग्य मानकर अथवा अपर्याप्त ठहरा कर किसी को पलटने की जरूरत कदापि नही पड सकती। बल्कि इन्ही आगम वर्णनो से और उनकी व्याख्याओ से, सभी परिस्थितियो का हल निकाला जा सकता है, जो कि बहुश्रुतगम्य है।

इतना स्पष्ट होते हुए भी यदि कोई सब के लिये या हमेशा के लिये मूल पाठ मे या अन्य ग्रन्थ बनाकर कायदा ही पलट दे, तो वह उसका व्यक्तिगत दूषण है एव आगम विपरीत प्ररूपण प्रवर्तन है।

जिस विषय मे आगम के मूल पाठ मे कोई स्पष्ट विधि निषेध नही है प्रायश्चित भी नही कहा है, उस विषय का सपूर्ण विधि निषेध प्रायश्चित आदि का निर्णय बहुश्रुत के निर्णय पर निर्भर करता है। किन्तु उन्हे भी उस

निर्णय को आगम पाठ मे घड देने का अधिकार तो नही होता है। एव उस अपने निर्णय को अन्य बहुश्रुतो पर या समुहो पर थोप देने का अधिकार भी नही होता है।

चश्मा पुस्तक आदि ज्ञान सम्बन्धी उपकरणो का आगमो मे कही भी विधि-निषेध नही है और प्रायश्चित भी नही है। उसके लिए बहुश्रुत की आज्ञानुसार किया जा सकता है।

चौदह पूर्वी भद्रबाहु स्वामी ने समी साधु साध्वी के लिये निशीथ सूत्र के अध्ययन अध्यापन की ध्रुव आवश्यक आज्ञा दी है एव जो साधु या साध्वी उसे भूल भी जाय तो उसकी कठोर सारणा और दड विधान भी किया है। ऐसी सूत्रोक्त स्पष्ट आज्ञा को ४०० वर्ष बाद किसी को अनुचित लगवाना और उसके विपरीत मौखिक कायदा करवाने की कल्पना करना बिल्कुल ही अनुचित चितन का परिणाम है। क्यो कि ऐसे चितन का तात्पर्य यह होता है कि चौदह पूर्वी भद्रबाहु स्वामी को आचार और छेद सूत्रो के विधान करने मे इतनी भी अकल नही थी कि ४०० वर्ष भी उनका विधान नही चले और आर्यरक्षित करे वह १५०० वर्ष चले जैसा हो जावे ऐसा कोई भी बुद्धिमान स्वीकार नही कर सकता और वास्तव मे ऐसा सभव ही नही है।

अत यह सब गलत कल्पनाए या भ्रमणाए है कि आर्य रक्षित को आचार शास्त्र के विधानो को परिवर्तन करना आवश्यक हो गया। वास्तव मे तो मध्यकाल मे इस प्रकार के वातावरण के कई ढर्रे चलते थे ?

यथा - १४ पूर्वी भद्रवाहू स्वामी ने जब असवत्सरी मे सवत्सरी करने का गुरू चौमासी प्रायश्चित शास्त्र मे उल्लेख कर दिया है जिस पर भी किसी के द्वारा अपनी परिस्थिति से आगे पीछे सवत्सरी करने की कल्पना कर दी गई, फिर उसका आगमोक्त प्रायश्चित लेकर शुद्ध होने की तो बात ही नही की गई, किन्तु उस अपवाद का ही हमेशा के लिये कायदा कर दिया गया और वैसा सूत्र पाठ भी बना दिया गया । जिससे वह ढर्रा चल भी गया। ऐसे कई ढर्रे सैकडो हजारो वर्षो तक भी चल जाते है कितु वे ढर्रे कोई आगम से अधिक प्रमाण भूत या महत्वशील नही हो सकते। आगम प्रमाण तो सर्वोपरी है ही। उसके आधार से ही सत्य खोजना, सोचना और ढर्रे मिटाना चाहिए।

१४ पूर्वी गणधर आदि की जो स्पष्ट आज्ञा है उसके विपरीत कोई भी बाद का कम ज्ञानी ईमानदार आचार्य आज्ञा करेगा ही नही, यह निश्चित है। अगर किसी अपवाद परिस्थिति से किसी ने आज्ञा दी भी तो उस अपवाद आचरण का महत्व अपवाद जितना ही होगा। उस आचरण की परपरा नही चलाई जायेगी। किन्तु कई नामधारी दूषित बुद्धि वाले आचार्य आदि आगम विपरीत आज्ञा मोखिक या लिखित चलादे तो वह उनका चलाया ढर्रा ही कहलायेगा, उसका महत्व आगम विधान के सामने शून्य के तुल्य होगा। अन्यथा बाद के कम ज्ञानी लोग कुछ भी शास्त्र विपरीत विधान करते जायेगे।

आज के आचार्य ऐसा ही कुछ अधिकार जीताचार के नाम से ले बैठे है। वे अपवादिक परिस्थितिक आचरणओ की आमरूप से परपराए चलाते जा रहे हैं यह ''निगथ पावयण पुरओ काऊ विहरई'' की प्रतिज्ञा से च्युत होना हे। किसी भी मुखिया को शास्त्र विपरीत विधि मार्ग खोल कर कायदा बनाने की सत्ता नहीं है। अपवाद को अपवाद तक ही सीमित रखने की सत्ता तो सभी गीतार्थो को है ही।

शास्त्र मे निर्देश है कि रत्नाधिक का विनय करना, परन्तु सयम का सतत पूर्ण रूपेण ध्यान रखना, जिससे कि उसमे किसी प्रकार की कमी न आवे। सूत्र मे यहा तक भी निर्देश है कि गुरू प्रायश्चित दे और वह आगमानुसार न हो तो स्वीकार न करे, किन्तु स्पष्ट ही ना कह दे।

गुरू सलेखना सथारा की अवस्था मे कहदे कि इसे आचार्य पद देना, तो भी यदि वह योग्य हो तो उसे देना योग्य न हो तो दूसरा कोई योग्य हो उसको पद देना, ऐसा स्पष्ट विधान है। अत आगम महत्व के आगे १० पूर्व से कम यावत् आज के आचार्य या बीच के देवर्द्धि कालक आदि किसी की भी आज्ञा होती है वह तो इत्वरिक ही हो सकती है। उसे हमेशा के लिये बनाना महान अनर्थकारी कर्तव्य होगा। दस पूर्वी या उससे ज्यादा ज्ञान वाले तो आगम विहारी होते है उनके लिये व्यक्तिगत आचरण मे शास्त्र के कायदे बाधक नही होते। परन्तु १० पूर्व से कम ज्ञान वालो को तो शास्त्र को ही बलवान प्रमाण मानकर चलना होगा। यही आगमिक पद्धति है। ऐसा नही करने पर तो मनमानी बहुतम से कुछ भी चला दिया जाएगा।

अत श्रुत केवलियो की रचना मे अधूरता की कल्पना करना भ्रम पूर्ण है। जो कि पुन विचारणीय है।

छेद सूत्र पूर्वो से उद्दृत कहे जाते है अत उन्हे गणधर रचित ही समझना चाहिए। उद्धार कर्ता कोई भी क्यो न हो, पूर्वो की मौलिक रचना तो गणधरो की ही है।

अत अपने समय की आचार शिथिलता को देख कर आर्य रक्षित या स्कदिलाचार्य से आगमो मे परिवर्तन कराने की कल्पना करना ठीक नही है।

उपलब्ध व्यवहार, वृहत्कल्प या निशीथ सूत्र को समय प्रभावी रचना नही मानकर के गणधरो की रचना मानने मे कोई विरोध नही है। श्रुत केवली द्वारा आचार शास्त्रो की रचना पूरे शासन काल को लक्ष्य करके ही की जा सकती है अन्य कल्पना करना उनकी प्रामाणिकता को ही अथवा योग्यता को ही चेलेज देना होता है। जो कि सर्वथा अनुचित है।

अत आगमो को अपर्याप्त (अधूरे) कह कर पश्चात्वर्ती आचार्यो द्वारा परिवर्तित किया जाना मानने की कल्पना करना अक्षम्य दोष है। ऐसी कल्पनाओ एव इतिहास वाक्यो से सावधान रहकर शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और विवेक के साथ ज्ञान दर्शन चारित्र की आराधना करनी चाहिए।



: अक्षय तृतीया और भ. ऋषभदेव का पारणा - प्रमाण चिंतन :

(१) ''त्रिषष्टि शालाका चारित्र'' अधिकार १,३, और गाथा ३०१-३०२ मे अक्षय तृतीया को पारणा कहा अर्थात एक वर्ष एक मास आठ दिन बाद भगवान का पारणा हुआ।

(२) **एक्कवरिसेण उसहो, उच्छुरस कुणई पारण, गो-खीरे णिपरूण्ण-अण्णे विदियम्मि दिवसम्मि। —तिलोय पण्णति गाथा ६७८**

अर्थ — ऋषभदेव भगवान ने एक वर्ष से इक्षुरस द्वारा पारणा किया अन्य तीर्थकरो ने दीक्षा के दूसरे ही दिन क्षीरान्न से पारणा किया । इस प्रकार

तिलोयपण्णति मे अधिकार ४ गाथा ६७८ मे – भगवान ऋषभदेव का प्रथम पारणा दीक्षा के एक वर्ष मे इक्षुरस से हुआ।

(३) दिगम्बर ग्रन्थ हरिवश पुराण जिनसेन रचित मे – छह माह के अनसन के बाद ऋषभ देव आहार के लिये निकले और विधि पूर्वक आहार न मिलने से लगातार ६ माह तक वे विहार (भिक्षार्थ विचरण) करते रहे। फिर राजा श्रेयास ने पूर्व जन्म के स्मरण के आधार सें भगवान ऋषभदेव को पारणा के लिये इक्षुरस प्रस्तुत किया। **सर्ग ९ श्लोक १८३-१९०/१४२/१५६ – महापुराण - १००/२०/४५४**

(४) नौवी शताब्दि तक के दिगबर जैन ग्रन्थो मे पारणा तिथी का उल्लेख नही है।

(५) दसवी शताब्दि के पुष्पदत अपभ्रश कवि ने अपने महापुराण मे कहा है कि – भगवान के उपवास का एक वर्ष बीत जाने पर श्रेयास ने अक्षय आहार दान दिया जिससे वह दिन अक्षय तृतीया के नाम से प्रसिद्ध (सार्थक) हो गया। यहा वैशाख शुक्ला तृतीया का उल्लेख नही है।

(६) श्वेताम्बर परपरा के प्राचीन ग्रन्थो में भी इस पारणा तिथी का उल्लेख नही है। कल्प सूत्र तथा जबूद्वीप प्रज्ञप्ति मे तीर्थकर का विस्तृत वर्णन है किन्तु वहा इस विषयक उल्लेख ही नही है और समवायाग और वसुदेव हिंदी मे सवत्सर उपवास के बाद पारणा होने का उल्लेख है किन्तु पारणा तिथि का उल्लेख नही है। त्रिषष्टिशलाका पुरूष चरित्र व खरतर गच्छ बृहत्त गुर्वावलि मे स्पष्ट उल्लेख प्राप्त है कि वैशाख शुदी ३ को पारणा हुआ। इससे स्पष्ट है कि १२ वी शताब्दि के पूर्व (श्वेताबर ग्रन्थो में) ऋषभ देव की पारणा तिथि उनकी दीक्षा तिथि के एक वर्ष बाद की ही निश्चित थी। इसीलिये प्राचीन ग्रन्थकारों ने दीक्षा से एक सवत्सर उपवास का उल्लेख किया है। यदि परवर्ती ग्रन्थकारो द्वारा उल्लिखित अक्षय तृतीया वैशाख सुदी ३ को स्वीकार किया जाय तो एक वर्ष एक मास आठ दिन का तप होता है जो तिलोयपण्णत्ति आदि ग्रथो से प्रमाणित नही होता है।

सार –अक्षय तृतीया लोक मे शुभ तिथी के रूप मे अत्यधिक विख्यात है उसके साथ कभी एकातर तप का पारणा जोडा गया और फिर कालातर से

उसका विशेष महत्व स्थापित करने के लिये ज्यो त्यो करके भगवान ऋषभदेव के एक वर्ष के तप से और इक्षुरस से जोड दिया गया। महत्व स्थापित करने के लिए ऐसे जोडने की पद्धतियो सम्बन्धी मध्यकाल के कई उदाहरण है। यथा – कल्पसूत्र का व्याख्यान मे वाचन कालकाचार्य से जोडना, चूलिकाओ को स्थूलिभद्र की बहिन से जोडना, निशीथ सूत्र को आर्य रक्षित से या भद्रबाहु से जोडना, साध्वियो को छेद सूत्र पढने का आगम विरूद्ध निषेध आर्य रक्षित से जोडना, कल्प सूत्र को दशाश्रुतस्कध की आठवी दशा से जोडना, धुवसेन राजा के पुत्र की मृत्यु को कालकाचार्य से जोडना, भद्रबाहु सहिता और निर्युक्तियो को प्रथम भद्रबाहु से जोडना, दशवैकालिक को ''मनक'' से जोडना, उत्तराध्ययन सूत्र को भगवान की अतिम देशना से जोडना, कल्प सूत्र का भगवान द्वारा बारबार व्याख्यान मे बाचने से सबध जोडने वाला पाठ बना देना। महानिशीथ सूत्र की अनघड और उटपटाग बाते भगवान और गौतम के नाम से जोड देना, । चौथ की सवत्सरी बाद मे चली तो भी उसको सिद्ध करने वाला लम्बा चौडा पाठ कल्पसूत्र के प्रारभ मे जोड देना इत्यादि।



महात्मा लोकाशाह का जीवन
: एक नई ज्योति :

जन्म गाव -	अरहट वाडा, जिला - सिरोही
माता-पिता -	शेठ हेमाभाई, गगा बाई
जन्म दिन -	सवत १४८२ कार्तिक सुदी १५
शादी -	सवत १४९७ माघ, उम्र १५ वर्ष
परिवार -	पत्नी - सुदर्शना, पुत्र - पूनमचन्द
धधा -	साहुकारी ब्याज
उसके बाद -	अहमदाबाद के बादशाह ममदशाह के पाटण मे खजाची

उसके बाद - वादशाह के पास अहमदाबाद मे खजाची - सवत १५०१ मे

गुण - बुद्धिमान, ईमानदार, धार्मिक वृत्ति, अक्षर सुदर

वैराग्य निमित्त - सवत १५०७ मे ''जमल खा'' ने पिता ममदशाह को जहर द्वारा मरवा दिया और अपना नाम कुतुबुदिन बदलकर खुद राजा बन गया।

दीक्षा - सवत १५०९ मे श्रावण सुदी ११ शुक्रवार प्रथम प्रहर चौघडिया दूसरा। पाटण ग्राम मे।

गुरू सानिध्य - यति श्री सुमति विजय जी

दीक्षा नाम - लक्ष्मी विजय (प्रसिद्ध नाम लोकाशाह ही रहा)

गुरू सानिध्य - २२ वर्ष - (अध्ययन, चितन, विचरण, धर्मोपदेश)

क्रियोद्धार - सवत १५३१ अहमदाबाद - जवेरीवाड, नई दीक्षा स्वयमेव अनेक साधुओ के साथ। उम्र ४९ वर्ष। वीर निर्वाण २००१ मे

क्रियोद्धार निमित्त - यति वर्ग की शास्त्र विरूद्ध आचार प्रणाली, श्री पूज्य, राज सन्मान, छडी चामर छत्र पालखी, म्याना आदि वाहन प्रयोग, पगल्या करना, नवागी पूजा करवाना, पैसा लेना, ज्योतिष वैधक चिकित्सा आदि से राजा आदि पर प्रभाव रखना, राज कचहरी (सभा) मे बैठना, उत्सूत्र प्ररूपणा, मूर्तिपूजा, उसके निमित्त का आरभ (पाप क्रिया) महान आडम्बर एव पाप वर्धक सघ निकालना, दोष युक्त, गवेषणा रहित, आहार पानी लेना अर्थात् निमत्रण पूर्वक आधाकर्मी औद्देशिक आहार पानी आदि लेना।

क्रियाद्धार क्षेत्र - अहमदाबाद पाटण गुजरात एव परपरा से सपूर्ण भारत।

उपदेश विषय - (१) श्रमण धर्म एव आगम वर्णन (२) श्रमणोपासक जीवन बारह व्रत १४ नियम तीन मनोरथ पाच अभिगम, नैतिक जीवन धर्म के प्रति एव धर्म गुरूओ के प्रति कर्तव्य (३) शाति, विरति विचारो की पवित्रता, सरलता, विनय, श्रद्धा, आगम ज्ञान, स्वाध्याय, तप, ध्यान,

वैराग्य, वृद्धि, निवृति, एव दीक्षा भावना आदि।

विरोध - श्रमण शक्ति से, राज सत्ता से, परीषह उपसर्ग से, वासक्षेप से, तदनतर सवेग से अर्थात् किचित आचार सुधार करके यति वर्ग ने अपना पुरजोर विरोध प्रदर्शित किया। एव अत मे भिक्षा मे विषयुक्त भोजन प्रदान कर उपसर्ग किया।

सफलता - २२ बावीस वर्ष तक विशाल आगम अध्ययन का शुभ सयोग, चितन, मनन, श्रमणो साथियो का विचार मिलन, उत्साह प्रदर्शन, स्वतत्र विचरण, प्रवचन, चर्चा वार्ता, विचारशील श्रावक समाज का सयोग, अनेक प्रमुख सघपति श्रमणोपासको द्वारा शुद्ध धर्म स्वीकृति, श्रद्धा ग्रहण, अल्प समय मे ही करीबन आठ लाख की जन सख्या को शुद्ध जैन धर्म से भावित कर दिया। साधु साध्वी श्रावक श्राविका रूप चारो तीर्थ मे ज्ञान गगा प्रवाहित कर दी एव धर्म की नई रोशनी प्रदान की। अत मे आराधक पडित मरण को प्राप्त किया। पीछे विशाल चतुर्विध सघ का परिवार, धर्म प्रभावना के लिये छोड गये। जिसमे समय समय पर अधिकाधिक धर्मोत्थान प्रगतिशील होता रहा।

विकृत इतिहास - मूर्तिपूजक यति वर्ग मे अपने स्वार्थ सिद्धि के लिये कोई भी पाप कृत्य कर सकने का दुस्साहस बहुत ही अभ्यस्त हो चुका था। खोटे लेखन प्रेक्षप आदि कर्तव्यो मे उनका माहिरपना, इस इतिहास पारिशिष्ट के दोनो खडो मे प्रकट किया जा चुका है।

इन लोगो ने कपट प्रपच से जगह जगह पुस्तको मे, पन्नो मे, शास्त्रो के पीछे लोकाशाह का जीवन अनेक प्रकार से विकृत रूप मे किया। कही गुण वर्णन, कही विकृत तत्व लेखन, यो मिश्रित लेखन रखते गये। कही लहिया बताया, कही आगम चोरी, कही गृहस्थ जीवन ही बताया, कही लिख दिया कि मेरे नाम की सप्रदाय चलाओ तो मै तुम्हे दीक्षित करता हू (खुद गृहस्थ मे बैठे रहकर अपने नाम से साधुओ की समुदाय चलाने की अहवृति दिखाना, लहिया पन से आजीविका वृत्ति बताना, लूका या लूका मत चलाना आदि तुच्छवृति के लक्षणो का तुच्छ शब्दो मे आक्षेप करना, इस प्रकार अपनी परिपूर्ण शक्ति और बुद्धि से अनेक कर्तव्य विरोधी वर्ग ने किये है।

सार - मूर्ति पूजको के मान्य कल्प सूत्र मे ही वताया गया है कि निर्वाण के समय भगवान महावीर के जन्म नक्षत्र पर भस्मग्रह का सयोग था, जिससे जिन शासन अत्यत अवनति पर चलेगा। उस भस्म ग्रह की २००० वर्ष की स्थिति का सयोग हटने पर जिन धर्म उदितोदित होगा अर्थात् उसका शुद्ध धर्म के रूप मे पुनरूत्थान होगा। ऐसे इस निर्दिष्ट समय मे ही लोकाशाह ने क्रियोद्धार किया था।

मूर्तिपूजको के मान्य महानिशीथ सूत्र मे लिखा है कि हे भगवान । कुसाधु और शिथिलाचारी कब होगे तो भगवान ने फरमाया हे गौतम । आज से १२५० वर्ष वीतने पर कुलिगी शिथिलाचारी, साधु होगे।

इन दोनो सूत्रो के प्रकरण मे लोकाशाह के क्रियोद्धार का सयोग वीर निर्वाण १२५० मे नही किन्तु वीर निर्वाण २००१ मे हुआ। सैकडो वर्षो से चले आ रहे कुत्सित आचार एव उत्सूत्र प्ररूपणा के सामने एव राज्य सत्ता के पक्ष वल के सामने नई क्राति लाने वाला एव भस्मग्रह के प्रभाव के समाप्ति का श्रेय पाने वाला व्यक्ति कोई असाधारण पुरूष ही हो सकता है। उसे लहिया कहदेना या गृहस्थ मे बैठे बैठे ही साधुओ पर हुकुम चलाने वाला कह देना, लिख देना, यह मात्र कुबुद्ध करामाती, खोटे हत्थकडे करने वालो का ही चमत्कार है। वास्तव मे ऐसा विकृत तुच्छ जीवन, पतित धर्म का पुनरूत्थान कर धर्मोध्योत करने वाले एक क्रातिकारी व्यक्ति का नही हो सकता है अत. निबधगत उक्त परिचय वुद्धिगम्य एव शास्त्रोचित भी है।

यह परिचय सवत १६३६ पाटण नगर मे वसत पचमी को लिखा गया है एक हस्त पुस्तक के पिछले दो पृष्टो मे मिला। सवत १९९१ मे अहमदाबाद से प्रकाशित हुआ। ''**श्री जैन धर्म नो प्राचीन सक्षिप्त इतिहास अने प्रभू वीर पट्टावली**'' नामक पुस्तक पृष्ट १६१ मे। गुजराती भाषा मे वह पुस्तक है। उसके आधार से हिन्दी भाषा मे परिचयात्मक तरीके से सपादन करके यहा प्रस्तुत किया है।

शिक्षा प्रेरणा ·- आज स्थानकवासी श्रमण समुदाय शुद्ध उन्नत धर्मी होते हुए भी पुन· शिथिलाचार एवं मूर्तिपूजकता के कई रूपातरो को स्वीकार करते जा रहा है। उसे अपने युग पुरूप जिन शासन की शान

रखने वाले एव सैकडो वर्षो से प्रवृष्ट विकृतियो का शूरवीरता के साथ लोहा लेने वाले, महापुरुष लोकाशाह के जीवन कर्तव्यो का ज्ञान कर, आत्मा मे नई जागृति नया जोश उत्पन्न कर, विकृतियो से सुरक्षित बनना चाहिए। अर्थात् नये नये शिथिलाचारो पर नियत्रण रखना चाहिये। जिसके लिये क्रियानिष्ट एव कर्तव्यनिष्ट आचार्य उपाध्याय प्रवर्तक आदि पदवीधर ही नियुक्त करने चाहिये एव साधु साध्वी समुदाय मे आगम अध्ययन अध्यापन की सुव्यवस्था को गति मान करना चाहिये। अध्ययन की एव विचक्षणता आचार निष्ठता आदि अन्य पूर्ण योग्यताए प्राप्त किये बिना किसी को भी प्रमुख बन कर विचरण करने की आज्ञा नही देनी चाहिये तथा अन्य भी किसी भी प्रकार की प्रमुखता उनके जिम्मे नही करना चाहिये। इस प्रकार ज्ञान एव सुव्यवस्था से तथा शुद्धाचरण से जिन शासन की सही सुरक्षा की जा सकती है। आशा ही नही पूर्ण विश्वास है कि महात्मा लोकाशाह के इस असली जीवन परिचय का कधे से कधा मिलाकर प्रचार प्रसार किया जायेगा।

१. पन्द्रह वर्ष की उम्र मे शादी
२ २७ सतावीस वर्ष की उम्र मे दीक्षा
३. ४९ वर्ष की उम्र मे पुनः दीक्षा एव क्रियोद्धार।



:आचारांग निशीथ धारण करने वाला:

आचार प्रकल्प धारिणा चत्वारो भगा स्तद्या - सूत्र धरो न अर्थ धरः, अर्थ धरो न सूत्र धरः, सूत्र धरोप्यर्थ धरोऽपि, नो सूत्र धरोनाप्यर्थ धर.। अत्र चतुर्थ भंगो शून्य·। आद्याना त्रयाणा भंगाना तृतीयो भंगवर्ती स उपाध्याय उद्दिश्यते। यतः स. उभयधारी तया गच्छस्य सम्यग् परिवर्धको भवति। (यह मुख्य विधान हुआ) तद्भावे – द्वितीय भंग वर्त्यपि, तस्यापि अर्थ धारितया सम्यक् परिवर्धकत्वात्। नतु आद्यवर्ती। तथाच आह - सूत्र धर वर्जिताना आचार प्रकल्पिकाना गच्छ गच्छस्य परिवर्धना त्रिके तृतीय भगे च। ततस्ते एव उपाध्याया स्थाप्या न प्रथम भंग वर्तिन·। एवं दशा कल्प व्यवहार धरादि पदानां अपि व्याख्या कर्तव्याः।

यद्यपि पूर्वमाचार्यादयश्चतुर्दश पूर्वधरादयः आसीरन् तथापि इदानीं आचार्या (उपाध्यायादयश्च) युगानुरूपा दशा कल्प व्यवहार धरादयस्तपो नियम स्वाध्यायादिषु उद्युक्ता, द्रव्य क्षेत्र काल भावोचित यतना परायणा, भवंति ज्ञातव्याः। – व्यवहार सूत्र उद्दे.३.सू. ३ भाष्य टीका।

संक्षिप्तार्थ :- कम से कम आचार प्रकल्प धारणकरने वाला बहुश्रुत ही सघाडा की प्रमुखता करके विचरण कर सकता है उपाध्याय पद ग्रहण कर सकता है और दो अग सूत्र ४ छेद सूत्र को धारण करने वाला ही आचार्य पद ग्रहण कर सकता है।

(१) यहा धारण करने के सूत्र और अर्थ से भग बना कर बताया कि जो सूत्र और अर्थ दोनो को धारण करने वाला होता है, वही वास्तविक योग्य होता है। वही उपरोक्त पदो को अगीकार कर सकता है। यही राजमार्ग है। अपवाद से अर्थात अन्य कोई भी सूत्र और अर्थ उभय को धारण करने वाला नही होने पर केवलअर्थ धारण करने वाले को (अन्य योग्याभाव में) योग्य माना जा सकता है और वह उक्त प्रतिष्ठा के कार्यो का वहन कर सकता है।

यद्यपि पहले पूर्वधर ज्ञानी ही आचार्य होते थे किन्तु अभी युगानुरूप उपरोक्त अध्ययन हो जाने पर भी जो तप सयम मे उद्यत एव द्रव्य क्षेत्र काल भावोचित विवेक रखने मे कुशल हो उसे आचार्यादि पद पर प्रतिष्ठित किया जा सकता है।



द्रव्य पूजा भाव पूजा

छज्जीव काय सजमेसु दव्व थएसो विरूज्झई कसिणो।
तो कसिण सजम विऊ पुप्फाइय न इच्छति (१९३)

- आव २ निर्युक्ति।

अर्थ :- द्रव्य स्तव करने पर पृथ्वी आदि छ काय की हिसा त्याग रूप सपूर्ण सयम का सम्यग् पालन नही होता है। (पुष्पादिना लुंचन सघट्टनादिना कृत्स्न संयम अनुपपद्यते) इसलिये सपूर्ण सयम प्रधान विद्वान

मुनि 'पुष्पादि द्रव्यस्तव' की चाहना इच्छा भी नही करते है।

तर्क – कहा जाता है कि द्रव्य स्तव करने मे जो धन का त्याग होता है उस से शुभ अध्यवसाय होते है।

उत्तर –''**तदपि यत्किंचित, व्यभिचारात्**'' वह तो कोईक मे होवे अधिक मे नही होवे और अविवेकी कम समझ वाले मे भी नही होवे। देखा भी यह जाता है कि अधिकाश लोग मात्र यश कीर्ति के लिये ही करते है (या दिखावा परपरा से) शुभ अध्यवसाय हो भी जाय तो वे तो भाव स्तव से है। क्योकि शुभ अध्यवसाय मे द्रव्य स्तव अप्रधान कारण है। प्रधान कारण तो भाव स्तव है। क्योकि आरम्भ समारभ तो कर्म फल को देने की प्रधानता वाले है। ''**भाव स्तव एव च सति तत्वत· तीर्थस्य उन्नति करणं।** भाव स्तव एव तस्य सम्यग् अमरादिभिरपि पूज्यत्वात् **तमेव च दृष्टवा क्रियमाण अन्येऽपि सुतरा प्रतिबुद्धयते शिष्टा·, इति स्वपरानुग्रहो अपि इहैव इति गतार्थ.।**'' इसके पूर्व गाथा १९२ मे कहा है कि ''द्रव्य स्तव भी अनेक अपेक्षाओ से बहुत गुणकारी भी है, ऐसा कहना ना समझी का कथन है। (**अनिपुण मति वचनमिदं**)। तीर्थकर तो छ काय के हितकारी कथन करते है। 'छ काय की रक्षा', यही प्रधान मोक्ष साधन है ऐसा तीर्थंकर फरमाते है।

गाथा- **दव्वथओ भावथओ दव्वथओ बहुगुणति बुद्धि सिया।
अणिउणमइ वयणमिण, छज्जीव हिये जिणा बेति। (१९२)
पृथ्वी कायादिनो हित प्रधान मोक्ष साधनमिति जिना तीर्थकरा ब्रूवते।** वित्त का परित्याग, शुभाध्यवसाय, तीर्थ की उन्नति देख अन्य भी बोध पावे इस तरह स्व पर का अनुग्रह करने वाला है - द्रव्य स्तव। इसकी असारता बताने के लिये ''**असारता ख्यापनाय आह - अनिउण मई वयणमिण इत्यादि। य· प्रकृत्यैव असुदरः स कथ श्रावकाणामपि युक्तः।।**

तस्मात् सति बोधि लाभे तम सयमानुष्ठान परेण भवितव्य। न यत् किंचित चैत्यादि आलंबन चेतसि आधाय प्रमादादिना भवितव्यं। तपः संयमोद्यमवतः चैत्यादि कृत्येषु अविराधक-त्वात् तथा चाह - चेइय कुल

गणसंघे आयरियाण च पवयण सुए य। सव्वेसु वि तेण कयं, तवसंजमुज्जमतेणं (११०१) इन सबके प्रति भक्ति आदि कृत्य करना उसी का है जो तप सयम मे उद्यमवान है उसने इन सब के प्रति अपना भक्ति विनय कर दिया समझना चाहिए। **यः तप सयमेषु उधमवान् वर्तते तेन एतेषु सर्वेषु स्थानेषु कृत्य** (विनय भक्ति) **कृत।**

भावार्थ :- छ काया जीवो की हिसा रूप द्रव्य पूजा से सयम का सम्यग् पालन नही हो सकता है अत सम्यग् सयम का ज्ञाता मुनि फूल फलादि से पूजा की कभी इच्छा भी नही करे।

द्रव्य पूजा के भावो की शुद्धि होना भी एकात नही है। और द्रव्य पूजा के बिना भी भावो की शुद्धि हो सकती है।

भाव शुद्धि का प्रधान कारण तो भाव स्तुति और भाव पूजा है। और वही तीर्थ की उन्नति का कारण है।

छ काया के जीवो की रक्षा करना यही मोक्ष का प्रथम साधन है। तीर्थकर एव श्रमण छ काया के हितकारी कथन ही करते है। छ काया की हिसा प्रेरक वचन तीर्थकर नही कह सकते।

द्रव्य पूजा द्रव्य स्तव का महत्व बताने वालो के वचन अनिपुण बुद्धि के वचन है। इस लिये बोध प्राप्त करते ही सयम तप मे पुरूषार्थ करना चाहिये किन्तु मूर्तिपूजा आदि के बहाने से सवर धर्म मे आलसी नही होना चाहिये। सयम तप मे जो उद्यम वत होता है वह चैत्यादि कृत्यो का स्वत. आराधक हो जाता है अर्थात् जिसने तप सयम मे उद्यम कर दिया है तो उसने चैत्य, आचार्य, उपाध्याय, गुरू, कुल, गण, सघ, प्रवचन, श्रुत इन सब के प्रति कर्तव्य पालन अथवा विनय भक्ति कर दिया है, ऐसा समझ लेना चाहिये। यह मूर्तिपूजको के मान्य निर्युक्ति ग्रन्थो मे आये स्पष्ट उल्लेख का भावार्थ है। इससे कितना स्पष्ट है कि मूर्तिपूजा तप सयम धर्म गुणो मे आलस या बहानावाजी की उत्पत्ति का निमितक भी है। उससे बहुत अधिक महत्त्व सवर प्रवृति का है। अत सवर सामायिक आदि प्रवृतियो को छोडकर जो केवल पूजा करके धर्म कर लिया, ऐसे सतुष्ठ अमरे बने रहते है, वे वास्तव मे उक्त प्रमाणानुसार अनिपुण बुद्धि अर्थात् मूढ बुद्धि है।



पदार्थों के परठने सम्बन्धी ज्ञान

(द्विदल और मक्खन)

श्रमण सूत्र की चौथी पाटी के ५ समिति के पाठ मे ५वी समिति के विवेचन मे आचार्य हरिभद्र सूरि ने अन्यत्र से सपूर्ण ''पारिटावणिया निर्युक्ति'' अपनी टीका मे उदृत की है। जिसमे अजीव का और जीव के एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक के परठने के प्रसग व विधिए बताई है -

चाउलोदगमाईहि जलयर माइण होई सच्चिता।
जल थल खह काल गयमचित्ते विगिंचण कुज्जा।।

तंदुलाम्बुना सह मत्स्यो मंडूकी वा समेतौ तौ चाल्य अबुना सह जले नयेत। जल स्थल खगेषु कालगतेषु, अचित नो मनुज पारिष्ठापनिका स्यात्। मृतमत्स्य उदुर काकादौ।

त्रस (विकलेन्द्रिय) जीव ऊरणिका (लट) आदि से ससक्त आहार पानी को शुद्ध करने की और खाने पीने की विधि तथा परठने की विधि बताई है। पानी के समान जीव से ससक्त छाछ की विधि कही है।

दही, मक्खन त्रस जीव ससक्त हो उसकी विधि बताई है वह इस प्रकार है – पानी निकाल कर पानी रहित दही व मक्खन को छाछ मे या पानी मे डाल दो, जीव होगा तो दिख जायेगा उन्हे परठ देना जीव न दिखे तो खा लेना। ससक्त तक्रस्य अबुवद विधि।

दधि नवनीतयोस्तु अय विधि – पूर्व जल गालयित्वा पिंडी भूत दध्न. एकाउडी तक्रादौ प्रक्षेप्या चेत्प्राणा स्युस्तदा प्रेक्ष्यते ततस्त्यज्यते, न स्युस्त दा भुज्यते! नवनीतोऽपि एकाउडी त्यादि कार्य.। तक्राभावे गोरस धावने क्षेप्या। तस्या भावे शीती भूते उण्णाप्सु, तस्याप्यभावे तदुलाप्सु क्षिप्त्वा वीक्ष्य शुद्धे, भोज्यम्। अशुद्धयोर्विधिना त्याग।

दध्नि पात्र पतिते ससक्त भ्रातौ दधिः पात्रतीर आनीय पुन. पश्चात् कृत्वा दधि लिप्त तीरे जीवा ईक्ष्याः। इक्षुविकारे कक्कबेप्येष विधिः। परसमुत्थमप्येव। अर्थात् गृहस्थी के बर्तन मे रहते शका हो तो भी इस विधि से परीक्षा कर लेना।

रसज - रसजै ससक्त तु काजिकादि (उदक) सपात्र त्याज्यम्।

संसक्त जल में - जीव परणित हो जाय तो तीन साधु देख कर फिर छान कर पीना अनुज्ञात है। परिणत न हुए हो तो पहले उन्हे निकालने की विधी से निकालना। धोवण मे फवारे (पानी के जीव) - तथा धावन जले पूतरेपु सत्सु - छानकर थोडे पानी मे उन जीवो को लेकर के यदि दाता वापस न ले तो अपकाय मे यतना से परठ देना चाहिए।

पानी मे कीडिया जिवित आ जाय तो तुरन्त छान कर विवेक करना। मक्खी हो तो देखते ही निकालना और मर जावे तो छान कर उपयोग लेना अन्यथा - **मेधा उवहणंति मच्छियाहि वमी हवई ११ - पर हत्थे भते पाणे वा जइ मच्छिया मरई तं अणेसणिज्जं। संजय हत्थे, उद्धिरिज्जई, नेहे पडिया छारेण गुंडिज्जइ।।** *–आवश्यक हरिभद्रीय टीका (पारिठावणिया निर्युक्ति)*

सारार्थ .- १ पानी मे मेडक मछली आ जाय तो उसे जल मे ले जाकर अन्यत्र जल मे परठना २ पशुपक्षी का मृत कलेवर उपाश्रय मे हो तो विवेक पूर्वक यथास्थान परठना ३ आहार मे पानी मे दही छाछ मे और मक्खन तथा इक्षुकी काकब मे त्रस जीव ससक्त है तो विवेक से निकाल कर खाना आदि न निकल सके तो फिर खाना नही किन्तु उस वस्तु को परठ देना। ४ त्रस जीव युक्त जल मे यदि जीव परिणत होकर जीव रहित पानी हो जाय तो तीन साधु निरीक्षण करके फिर छानकर उपयोग मे ले सकते, पी सकते ५ पानी मे फवारे बारीक जीव जल के हो तो उन्हे थोड़े पानी मे निकाल कर दाता वापिस ले तो उन्हे दे देना न ले तो अन्यत्र जल मे यतना से परठ देना चाहिये ६ रसज जीवोत्पति युक्त आहार हो तो उसे परठ देना और ऐसा पानी आ जाय तो पात्र सहित परठ देना। या मिट्टी के बर्तन मे डालकर परठ देना ७ पानी मे कीडिया आ जाय तो तुरत छानकर विवेक करना मक्खी पड जाय तो तुरन्त निकाल देना। स्निग्ध पदार्थ हो तो मक्खी को राख मे डालना। ८ कीड़ी मक्खी आदि मर जाय तो पानी को छानकर उपयोग मे लेना ९ गृहस्थ के हाथ मे रहे आहारादि देते समय उसमे मक्खी पड जाय और मर जाय तो वह आहार अनेषनीय है अग्राह्य है और साधु के प्राप्त किये आहार के पात्र मे वही पर ही मक्खी गिर जाय तो तुरन्त निकाल देना चाहिये।

टिप्पण – (१) यहा मक्खन के सबधी लेने का और सशोधन करने का एव खाने या परठने का जो वर्णन है, उससे स्पष्ट है कि मक्खन को अभक्ष्य कहने की प्रथा इस टीका के कर्ता हरिभद्रसूरि के समय तक उत्पन्न नही हुई थी । बाद मे ही किसी ने प्रचारित की है।

(२) रसज जीवोत्पति वाले आहार का और जीव युक्त आहारादि परठने के इन अनेक प्रकरणो में ''द्विदल'' सबधी किचित भी कथन नही किया गया है। अत यह द्विदल सबधी एव अयुक्त एव अनावश्यक कल्पना भी बाद मे किसी की स्वच्छद मति से उत्पन्न हुई है। २२ अभक्ष्यो की कल्पना भी इन व्याख्याकारो के बाद मे ही चली है।

(३) जल के जीवो को या फव्वारो को परठने की विधि से यह भी स्पष्ट होता है उन्हे कही भी जल मे ही परठना चाहिये।



निर्युक्तिकार भद्रबाहु स्वामी द्वारा स्पर्शित

दशाश्रुतस्कंध का आठवां अध्ययन

कप्पई णिग्गथाण वा णिगाथीण वा वासावासाण सबीसराइए मासे वीइकते पज्जोसवण पज्जोसवित्तए (१)

वासावास पज्जोसवियाण कप्पई णिग्गथाण वा णिगांथीण वा सव्वओ समता सकोस जोयण उग्गह ओगिण्हिताण चिटिठत्तए अहालदमवि उग्गहे। (२)

वासावास पज्जोसवियाणं नो कप्पइ णिगाथाण वा णिग्गथीण वा पज्जोसवणाए इत्तरिय पि आहार आहारित्तए (३)

वासावास पज्जोसवियाण नो कप्पइ णिगांथाण वा णिगांथीण वा अण्णयरिं विगइ आहारित्तए (४)

वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ णिगाथाण वा णिगाथीण वा सथारगाइं गिण्हित्तए वा धारित्तए वा (५)

वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ णिग्गंथाण वा णिगाथीण वा तिण्णि मत्तगाइ गिण्हित्तए वा धारित्तए वा (६)

वासावास पज्जोसवियाणं नो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गथीण वा पर पज्जोसवणाओ गोलोममेताइं पि केसाइं उवाइणावेत्तए।

वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ णिगांथाण वा णिगाथीण वा सेह वा सेहीं वा पव्वावित्तए णण्णत्थ पुव्वभाविएणं संविग्गेणं (७)

वासावासं पज्जोसवियाणं णिगांथाण वा णिग्गथीण वा समिइसु गुत्तीसु सम्म उवउते भवित्तए

वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ णिंग्गंथाण वा णिंग्गंथीण वा परं पज्जोसवणाओ अहिगरणं वदित्तए।

अर्थ :-

१ निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थियो को वर्षावास का एक महिना वीस दिन वीतने पर पर्यूषण करना चाहिये।

२ वर्षावास मे रहे हुए साधु साध्वियो को गमनागमन के लिये एक योजन और एक कोश का सीमित क्षेत्र रखना चाहिये। इससे बाहर गमनागमन नही करना चाहिये।

३ चातुर्मास रहे हुए साधु साध्वियो को पर्यूषण के दिन किचित भी आहार नही करना चाहिए

४ चातुर्मास काल मे रहे हुए साधु साध्वीको किसी भी विगय का सेवन नही करना चाहिए।

५ वर्षावास मे साधु-साध्वियो को सस्तारक (पाट घास आदि) ग्रहण करना एव उपयोग मे लेना चाहिए।

६ चातुर्मास मे साधु साध्वी को तीन मात्रक ग्रहण करने कल्पते है, १ उच्चार मात्रक २ प्रश्रवण मात्रक ३ खेल मात्रक।

७ वर्षावास मे रहे हुए साधु साध्वी को पर्यूषण के दिन गोरोम जितने बडे बाल रखना नही कल्पता है।

८ चातुर्मास मे रहे हुए साधु साध्वी को स्त्री पुरूष किसी को भी दीक्षा देना नही कल्पता है किन्तु चातुर्मास के पूर्व से ही जो पूर्व भावित है उसे

दीक्षा दे सकते है।

९ चातुर्मास मे सत सतियो को समिति गुप्ति मे विशेष उपयोगवत रहना चाहिये।

१० चातुर्मास मे रहे साधु साध्वियो को किसी भी कलह को पर्यूषण के दिन पूर्ण समाप्त कर देना चाहिए। उसके बाद उस कलह को रखना या बोलना नही कल्पता है।

तीर्थकरो का वर्णन, स्थविरावली, सवत-मिति के विकल्प, इत्यादि विषयो का निर्युक्ति मे कथन नही है। निर्युक्ति मे भी अतिम पाच गाथा प्रक्षिप्त हुई है।

मूल पाठ मे भी अनेको प्रक्षेप किया जाना प्रमाण सिद्ध है तो निर्युक्ति मे पाच गाथा का प्रक्षेप कोई असभव नही है। इस विषय मे अन्य विविध प्रमाण तर्क युक्ति जानकारी पुष्प २१ एव पुण्य ८ मे दी जा चुकी है। जिज्ञासु पाठक वहीं देखने का प्रयत्न करेगे।



ऐतिहासिक प्रमुख घटनाएं और उनका समय

वीर निर्वाणसवत	
६४	दस बोल विच्छेद।
२१४	तृतीय अव्यक्तवादी निन्हव
२२०	चतुर्थ शून्यवादी निन्हव
२२८	पचम क्रियावादी निन्हव
३३५	प्रथम कालकाचार्य
४५२	द्वितीय कालाकाचार्य
४७०	विक्रम सवत चला।
५४४	छठ्ठा निन्हव रोहगुप्त
५८४	सातवा निन्हव गोष्ठामाहिल
५८४	वज्र बाहू के स्वर्ग गमन समय १० पूर्व का ज्ञान

चौथासहनन, चौथा सस्थान विच्छेद।

६०९	सहसमल दिगवरमत (शिवभूती)
९८०	सूत्र लेखन वलभपुर
९९२	लब्धिया विच्छेद
१०००	पूर्व का ज्ञान रहा।
१००८	पोसाल उपासरो का निर्माण
१००९	समस्त पूर्व विच्छेद
१००९	वीरभद्र स्वामी देवर्द्धिगणि के पाट पर। २८ वा पाट, १०५ वर्ष की उम्र, ५५ वर्ष आचार्य पद पर रहे। वीर निर्वाण १०६४ सवत ५९४ मे दिवगत हुए।
१६७०	खरतर गच्छ स्थापना
१७५५	तपागच्छ स्थापना
२००१	लोकाशाह द्वारा शुद्ध धर्म, प्रवर्तन विक्रम सवत १५३१
२०५२	तपगच्छ के आनन्दविमलसूरि द्वारा क्रियोद्धार
२०७२	आचलिया गच्छ क्रियोद्धार
२०७५	खरतर गच्छ क्रियोद्धार
२१८६	धर्मदास जी की दीक्षा
२२८५	रूगनाथ जी से भीकनजी का मतभेद

विशिष्ट प्रसिद्ध प्राचीन श्रमण :-

१- हरिभद्रसूरि - सवत ७५० से ८२७ मे । प्रधान टीकाकार हुए। अनेक ग्रन्थ (१४४४) रचे।

२- हेमचन्द्राचार्य - जन्म ११४५ मे, दीक्षा ११५० मे, पदवी ११६६ मे, स्वर्ग १२२९ मे।

३- मलधारी हेमचन्द्र - ११६४ मे विद्यमान । अभयदेवसूरि के शिष्य।

४- स्वयंभवाचार्य - वीर निर्वाण सवत ९८ मे स्वर्ग गमन।

५- श्यामार्य- वीर निर्वाण सवत ३७८ से ३८६ मे। पन्नवणा सूत्र की रचना की (इसमे सदेह भी है)। अपरनाम कालकाचार्य।

६-वादिवेताल शातिसूरि-विक्रम स १०९६ मे स्वर्गगमन। उत्तराध्ययन टीकाकार।

७- शीलाकाचार्य - शक् सवत ७९८ मे और वि स ९३३ से विद्यमान थे। दो अग सूत्रो के टीकाकार

८- स्थूलभद्र - वीर नि स २१९ मे स्वर्ग। इनकी बहिनो के लिए महाविदेह से चूलिका लाने की किवदति प्रचलित है।

९- सिद्धसेन दिवाकर- वृद्धवादी के शिष्य। वीर नि स ५०० मे स्वर्गवासी।

१०- समयसुदर - विक्रम सवत - १६८६ मे विद्यमान।

११- सभूतिविजय - वीर नि स १५६ मे स्वर्गगमन।

१२- सघदासगणी क्षमाश्रमण - पचकल्प भाष्य और वसुदेव हिडी के रचियता वि स ६०० से ६२०

१३- स्कधिलाचार्य - वृद्धवादी के गुरू

१४- वर्धमान सूरि - विक्रम स १०८८ मे। उपमिति भव प्रपच कथा रची।

१५- वज्रस्वामी-वीर नि स ५४८ मे स्वर्गगमन

१६- वज्रसेन सूरि -वज्रस्वामी के शिष्य वीर नि स ५८५ मे थे।

१७- लब्धिसागर जी-विक्रम स १५५७ मे श्रीपाल कथा बनाई।

१८- रत्नप्रभ सूरि - विक्रम स १२३८ मे थे। रत्नाकरावतारिका बनाई।

१९- यशोदेव सूरि- पिड विशुद्धि टीका एव पाक्षिक सूत्र वृति बनाई। वि स ११७६ मे।

२०- मुनि सुदर सूरि- विक्रम सवत १५०३ मे स्वर्ग। हजार अवधान करते।

२१- मानतुग सूरि - विक्रम स ८०० मे। भक्तामर रचनकार।

२२- मल्लिसेन सूरि - विक्रम स १२१४, स्याद्वाद मजरी बनाई।

२३- भद्रबाहु स्वामी - वीर नि स १७० मे स्वर्ग। तीन छेद सूत्र बनाये।

२४- द्वितीय भद्रबाहु- विक्रम स ५५० से ६०० मे। निर्युक्तिया, भद्रबाहु सहिता, उपसर्ग हर स्तोत्र के रचनाकार, वराहमिहिर के

भाई।

२५- वप्पभट्ट सूरि - विक्रम सवत ८०० मे जन्म। ८०७ मे दीक्षा, ८११ मे आचार्य। सिद्धसेन के शिष्य

२६- प्रद्युम्नसूरि - विक्रम स ८०० मे। यशोदेव सूरि के शिष्य।

२७- प्रद्युम्नसूरि - वि.स १३२२, कनकप्रभ सूरि के शिष्य।

२८- पार्श्वचन्द्रसूरि - वि स १५९७, बालावबोध टब्बा।

२९- पादलिप्त सूरि -आकाशगामिनि विद्या सिद्ध।

३०- नेमीचन्द्राचार्य - वि स १२००, वैर स्वामी के शिष्य।

३१- नेमीचन्द्र सूरि - वि स ११२९, उत्तराध्ययन टीका करी।

३२- देवेन्द्र गणी - प्रवचन सारोद्धार, पचसग्रह आदि बनाये।

३३- देवसूरि जी - १२२६ मे स्वर्ग। स्यादवाद रत्नाकर बनाया।

३४- देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण- वीर निर्वाण ९८०, वि स ५१०, आगम लेखन कराया। देववाचक नाम । नदी रचना की ।

३५- देवसेन भट्टारक- वि स ९५१, दिगबर, बहुत ग्रन्थ रचे।

३६- देवभद्रसूरि - वि स ११६८ मे। कथा रत्न कोश बनाया।

३७- देवगुप्त सूरि - वि स ११९५ मे। वृहत्क्षेत्र समास वृत्ति।

३८- तिलकाचार्य - वि स १२९६ मे।

३९- जिनेश्वर सूरि- अभयदेव सूरि के गुरू। खरतगच्छ का प्रारम्भ करने वाले, कथारत्न कोश वि स १०८० मे थे।

४०- जिनदासगणी महत्तर - प्रमुख चूर्णीकार। हरिभद्रसूरि से प्राचीन । वि स ६५०-७५०, नदी चूर्णि ७३२ मे।

४१- जिनवल्लभसूरि- वि स ११६०, अभयदेव सूरि के शिष्य।

४२- जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण - जीतकल्प, विशेषावश्यक भाष्य, क्षेत्र समास, वृहत्सग्रहणी आदि बनाये। वि स ६५०-६० के आसपास है। जन्म ६१० मे

४३- गधहस्ती सूरि- प्रथम आचाराग की टीका प्रारम्भ करी। दूसरा नाम सिद्धसेनाचार्य तत्वार्थ भाष्य की टीका पूर्ण करी।

४४- कुदकुदाचार्य- वीर निर्वाण सवत १००० मे।

४५- कालकाचार्य - तीन हुए (१) वीरनिर्वाण स २८० मे जन्म। दीक्षा ३०० मे। ३३५ मे पद। ३७६ स्वर्ग। पन्नवणासूत्र के रचनाकार (२) वीर नि स ४५३ मे (३)वीर नि स ९९० मे थे।

४६ कोट्याचार्य - विशेषावश्यक भाष्य की अवशेष टीका पूर्ण करी।

४७- उमास्वातिवाचक - वीर नि स १००१, तत्वार्थ सूत्रकर्ता।

४८- उदयप्रभसूरि - वि स. १२२० मे। आरभसिद्धि ग्रन्थ रचा।

४९- आर्य रक्षित - साडे नवपूर्वी। अनुयोगद्वार सूत्र रचनाकार।

५०- अमृतचन्दसूरि- वि स ९६२, दिगम्बर।

५१- अमितगति - वि स १०५० मे थे। गुरू माधव सेन।

५२- अभयदेवसूरि- वि स १०८८ मे आचार्य पद, ११३५ मे देवलोक हुए। नवागी टीकाकार।

५३- अगस्त्यसिह सूरि- आठवी शताब्दि। दशवैकालिक चूर्णि की रचना की।

कुछ चुने चुनाये संकलन और उन पर टिप्पण

(१) मूर्तिपूजक आगमोद्धारक मुनि श्री पुण्य विजयजी ने यह माना है कि कल्प सूत्र के ''समाचारी विभाग मे ''**अतरावि से कप्पइ, नो से कप्पइ तं रयणिं उवाइणावित्तए।**'' यह पाठ सभवत आचार्य कालक के बाद मे बनाया गया है।''

टिप्पण –समाचारी विभाग का वह विस्तृत सूत्र ही घडाघडाया साफ दीख रहा है। इसका स्पष्टीकरण आठवी दशा के ब्यावर से प्रकाशित विवेचन मे एव चरणानुयोग के समाचारी प्रकरण के टिप्पण मे देखे। मूर्तिपूजक तटस्थ चितक आगमोद्धारक मुनि श्री पुण्य विजयजी भी इस पाठ के प्रक्षिप्त दोष से युक्त होने मे सम्मत है।

(२) ''**प्रबध परिजात**'' पृ १ मे लिखा है कि ''निशीथ'' पूर्व श्रुत से पृथक किया और फिर पृष्ट दो पर लिखा कि सत सतियो की सख्या बढी स्थिति ने पलटा खाया, नई अनेक समस्याए खडी हुई, जिसे छेद सूत्र (

दशा, कप्प, व्यवहार) सुलझाने मे अपर्याप्त रहे, नवीन परिस्थिति को काबू लाने, दोषो और दुष्प्रवृतियो को रोकने के लिए, निशीथाध्ययन का निर्माण किया गया।

आचार्य श्री भद्रबाहु स्वामी ने दो सूत्र मे जो प्रायश्चित्त विधान किया था वह तात्कालीन निर्ग्रन्थ श्रमण श्रमणियो के लिए ही पर्याप्त था, परन्तु बाद मे ।''

टिप्पण –आज के अल्पज्ञ आचार्य भी अपने गच्छो की व्यवस्था चलाने के लिए साधारण नियमोप नियम बनाने मे भी लबे काल आदि का विचार करके समाचारी बना सकते है, बीच मे पूर्वधरो की रचना भी सैकडो हजारो वर्षो तक चली आई है एव चलेगी। तब १४ पूर्वी भद्रबाहु की रचना को एव विधानो को ''तत्काल के लिए ही पर्याप्त था'' यह कहना कैसे उचित हो सकता है? क्या ऐसी ही सूत्रो की रचना कहलाती है, वह भी आचार शास्त्रो की, वह भी गणधर कृत पूर्वो की और उससे उदृत व्यवस्थित किए सूत्रो की, वह भी १४ पूर्वी भद्रबाहु स्वामी की? कमाल कर रही है विद्वानो की कल्पना बुद्धि भी।

वीर निर्वाण के ४०० वर्षो मे ही कालदोष और अगणित परिवर्तन हो चुके थे तो २१०० वर्ष तक आगमो का क्या हाल होगा और कितनी बार नये आचार शास्त्रो के बनाने की कल्पना करेगे? वास्तव मे ऐसी कल्पना करना ही योग्य नही है।

समय की शिथिलता से शास्त्र परिवर्तन की कल्पना ऐसी है कि जो १४ पूर्वी के या गणधर के महत्व को अथवा तो ''उदृत'' के महत्व को न समझने से होने वाली एक भूल है। अथवा समझते हुए भी उदय कर्म की भूल भूलैया से उस चितन की तरफ उपेक्षा या अलक्ष रह जाने से, होने वाली यह भूल है। जिसे सुधारने की अत्यन्त आवश्यकता है।

(३) ''श्वेताम्बर साहित्य मे विशाखागणि का नाम ही नही है बारहवी सदी के बाद किसी अर्द्धदग्ध पडित ने ये तीन गाथाए बनाकर किसी लेखक को दे दी उसने निशीथ पुस्तक मे लिख डाली है'' २० उद्देशो के बाद प्रशस्ति रूप।'' – **''प्रबध पारिजात''**

टिप्पण – मुनि श्री कल्याण विजय जी का यह चितन योग्य प्रतीत होता

है इसी तरह मद्य मास विषयक पाठो के और अन्य असगत बातो के लिये भी समझा जा सकता है। तभी आचाराग, दशवैकालिक, भगवती, सूर्यप्रज्ञप्ति आदि सूत्रो की शुद्धि हो सकेगी।

(४) अग्रावतार का कथन किसी भी शास्त्र मे नही होने से सार्वत्रिक विधि रूप मे महत्व देने लायक नही है। अत चोलपट्टक रखना ही आगम प्रश्नव्याकरण सूत्र से प्रमाणित है।

(५) ''भद्रबाहु के सूत्र मे साध्वियो को आचार प्रकल्प पढने का विधान होने से आर्य रक्षित ने विधान नही पलटा, किन्तु मौखिक आज्ञा लगा दी'' जो आज तक चल रही है जिससे साध्वी को छेद सूत्र नही पढाया जाता''

–प्रबध पारिजात''

टिप्पण –चौदह पूर्वी की आज्ञा आज तक सूत्र मे उपलब्ध रहे और उसके विपरीत साढे नौ पूर्वी की आज्ञा भी चलती रहे, ऐसे अघटित खोटे इतिहास उन पूर्वाचार्यो को भी बदनाम करते है और आगम और इतिहास के महत्व को भी नष्ट करते है।

(६) आचार्य कालक एव देवर्द्धि का विवाद समाप्त नही हो सका, अपने आग्रह पर दोनो अडे रहे। इसलिए कल्प सूत्र मे ९८० और ९९३ दो सवत् लगाने पडे।'' **–''प्रबन्ध पारिजात''**

टिप्पण – सूत्र लेखन काल की दो साधुओ की उलझन को भद्रबाहु के सूत्र मे, वह भी बीच मे फसाने की क्या जरूरत पडी। वहा तो वह उस सूत्र का विषय ही नही था। कोई पाठ भेद का या वाचना भेद का कारण भी नही था। यदि होता तो भी जब अनेक सदिग्ध अनिर्णित विषय-सूत्रो से हटा दिये गये, तब यह तो कोई पाठ भी नही था। फालतु की दोनो की अपनी उलझन सूत्र के बीच मे जबरदस्ती क्यो डाले? और फिर वह उलझन वही आगे पार्श्वनाथ एव नेमिनाथ भगवान के वर्णन मे कहा गायब हो गई। देवर्द्धिगणि के द्वारा ऐसा पद्धति विरूद्ध कार्य करने की कल्पना क्यो?

जब भद्रबाहु के सूत्र मे तत्सबधी कोई पाठ था ही नही। तो यह अप्रासगिक चर्चा विवाद बीच मे क्यो उलझाया। उलझन थी तो दोनो अपने मन मे रखते, अन्य ग्रन्थ बनाकर उसमे विस्तार से डालते। ऐसा न

करते हुए उन्हे यहा पर ही डालना क्यो जरूरी हो गया?

'सबसे अंत मे कल्पसूत्र लिखने' की कल्पना भी बिना महत्त्व की है। उस समय तो वह कल्प सूत्र दशाश्रुत स्कध का अध्ययन ही था उसी मे इसका नबर आ गया था उसके बाद मे तो अनेक सूत्रो का नबर रहता।

जब मूल सूत्र पाठो के विवादो मे भी उन आचार्यो के कोई आग्रह नही रहा था। किसी भी तरह समन्वय कर लिया गया था, तो यह तुच्छ दुराग्रह मूल सूत्र मे लिखकर दोनो का सारे भविष्य के इतिहास मे बदनाम होना कि ''एक बात के लिए समझौते की शर्त से दोनो आचार्य हट गये। ऐसी बिना जरूरत की मूर्खता वे क्यो करते? वह भी १४ पूर्वी भद्रबाहू के सूत्र मे, मूल पाठ मे?

अत ये सारी इतिहास की कल्पनाए (सवत सम्बन्धी) मूल मे ही निराधार है अर्थात् न उस कल्प सूत्र का कोई ठिकाना है न उस सवत् मिति के पाठ का। तो फिर उसके लिये प्रतिष्ठित पूर्वाचार्यो (देवर्धि, कालकाचार्य, शातिसूरि) को बदनाम करने मे क्या लाभ? कल्पसूत्र सबधी सारी करामाते मलयगिरी आचार्य के बाद की है। उसके पहले पर्यूषणाकल्प सूत्र नामक कोई सूत्र था ही नही, न कही उसका उल्लेख है। अत सवत का विकल्प देवर्धि के नाम चढाना, केवल स्वार्थान्धता है। ऐसी स्वार्थान्ध दशा मे खुद की एव खुद के बडेरे प्रतिष्ठित पूर्वाचार्यो की प्रतिष्ठा को धूमिल करने मे भी शर्म नही आई यही भस्मग्रह के पूर्ण प्रभाव का परिणाम था।

(७) छेद सूत्र नही पढने सम्बन्धी आर्यरक्षित का प्रस्ताव उस समय सर्वसम्मत नही हुआ, स्कदिलाचार्य की वाचना के समय भी नही हुआ, इसीलिए व्यवहार सूत्र मे आज भी पढने का विधान है। तथापि १५०० वर्ष से साध्वियो को पढना बद है इत्यादि। – प्रबन्ध पारिजात

टिप्पण –यह अधश्रद्धा का इतिहास कैसे चल सकता है। १५०० वर्ष मे कोई भी यह नही सोच सका कि १४ पूर्वी और गणधर की रचना के विपरीत भी आज्ञा लगाने का अधिकार किसी को हो सकता है? क्या आर्यरक्षित जैसे प्रतिष्ठित आचार्य ऐसी मौखिक आज्ञा लगा सकते है? जो सूत्र विधान के विपरीत होते हुए भी चलती रहे। यह आर्यरक्षित को और

अन्य साधुओ को गणधर और भद्रबाहु स्वामी की आशातना से कलकित करना नही है?

(८) जिनदास गणी कृत दशवै चूर्णि मे कही गई ध्यान की परिभाषा का खडन अगस्त्य चूर्णि मे किया गया है।

(९) जिनदास गणी की अनेक भाष्य गाथाओ का प्रयोग चूर्णियो मे किया गया है एव हरिभद्र सूरि ने चूर्णियो का उपयोग किया है। भाष्यकार जिनभद्र का उत्तरकाल विक्रम सवत ६५०-६० के आसपास है।

जिनदास गणि का ६५० से ७५० के मध्य है।

हरिभद्र का सत्ताकाल ७५० से ८२७ के मध्य है।

अगस्त्य सिह सूरि जिनदास गणी के समकालीन या कुछ पश्चातवर्ती है अत आठवी शताब्दि के होना सभव है।

(१०) १४ पूर्वी भद्रबाहू स्वामी के निर्युक्तिकार होने का कथन जो विशेषावश्यक भाष्य की टीका मे है वह स्वोपज्ञ टीकाश मे नही है किन्तु अन्य टीकाकार कोट्याचार्य की टीका मे है। ऐसा प दलसुख मालवणिया ने स्थल निकाल कर बताया एव समझाया है । कोट्याचार्य ८वी ९वी शताब्दि के है। हरिभद्रसूरि के समकालीन या कुछ पूर्ववर्ती है।

(११) ''निशीथ उ १९ के पाठ को लेकर यह कल्पना की गई है कि महाराष्ट्र मे निशीथ की रचना हुई इसलिए अमात मान्यता का प्रभाव सूत्र रचना मे भी आ गया।''

टिप्पण –क्या आर्यरक्षित आदि पूर्वधारी प्रतिष्ठित आचार्य अनेक आगमो से विरूद्ध क्षेत्रिक मान्यताओ से प्रभावित हो सकते है? और उसे सूत्र मे सम्बद्ध कर सकते है? ऐसी क्लिप्ट कल्पना न करके सही ढग से सूत्र का सगत अर्थ कर लेना ही पर्याप्त होता है। जिससे पूर्वाचार्यो को कलकित भी नही करना पडे और आगमो से विपरीत परूपणा भी न हो।

विशेष जानकारी के लिए ब्यावर से प्रकाशित निशीथ उ १९ का विवेचन देखे। साराश पुरुष २२ भी देखे।

(१२) अगस्त्य सिह सूरि की दशवै चूर्णि मे अनेक भाष्य गाथाए होना मुनिश्री पुण्यविजय जी ने स्वीकार किया है । भाष्यकार जिनभद्र गणी का

वि स ६१० मे जन्म होना सभव है। ई स ६०९ मे वे जीवित थे। —

— अगस्त्य चूर्णि की प्रस्तावना पृष्ठ ७ से।

(१३) इस प्रकार ७२ सूत्रो का लेखन देवर्द्धि द्वारा होने के वाद कालातर से व्याख्याए भी समय समय पर क्रम से लिखि गई अर्थात् पहले निर्युक्तिया, फिर भाष्य, फिर चूर्णियो की रचना हुई, जो उनके रचनाकारो के सवतो से स्पष्ट है।

(१४) वराहमिहिर द्वारा - पच सिद्धातिका वि स ५६२ मे रची हुई है। इन्ही वराहमिहिर के भाई द्वितीय भद्रवाहु स्वामी थे उन्हे १४ पूर्वी भद्रवाहू का भाई कह देना भ्रम है। —वृहत्कल्प भाष्य भाग ६ प्रस्तावना पृ १७ के आधार से

१. विक्रम सवत ५१० मे देवर्द्धि गणी कालकाचार्य शातिसूरि आदि द्वारा आगम लेखन हुआ।

२. वि.स ५६०-६०० मे वराहमिहिर के भाई द्वितीय भद्रवाहु स्वामी निर्युक्तिकार हुए।

३ वि स ६००-६२० सघ दासगणि भाष्य एव वसुदेवहिडि के रचनाकार हुए।

४ वि.स ६५०-६० जिनभद्रगणि भाष्यकार का उत्तर काल है इनका जन्म वि स ६१० है।

५ वि स ६८० से ७५० जिनदास गण चूर्णिकार। नदी चूर्णि मे ७३२ वि सवत है।

६. वि स ७०० के वाद अगस्त्यसिह सूरि।

७ वि स ७२०=७० - कोटयाचार्य विशेपावश्यक भाष्य के टीकाकार (अपूर्ण को पूर्ण की)

८ वि स ७५०-८५० गधहस्ति अपरनाम सिद्ध सेनाचार्य-तत्वार्थ भाष्य की टीका पूर्ण एव आचाराग टीका प्रारम्भ की।

९ वि स ७५७-८२७ हरिभद्रसूरि अनेक ग्रन्थ कर्ता एव टीकाकार हुए।

१० वि स ९०० के वाद शीलाकाचार्य दो अगो के टीकाकार हुए।

११ वि स ९५०-१००० - अभयदेवसूरि नवागी टीकाकार हुए।

१२ वि स १०५० से ११३० आचार्य मलधारि हेमचन्द्र तथा देवेन्द्र सूरि और मलयगिरी आचार्य टीकाकार हुए।

१३ वि स १२००-१३०० मे कल्पसूत्र की सरचना हुई।

१४ वि स १३००-१४०० मे कल्पातर वाच्यो की रचना - (क्ल्पसूत्र की टीकाए)

१५ वि स १२००-१४०० पट्टावलियो आदि इतिहासो की रचना।

शक सवत और विक्रम सवत मे १३५ वर्ष का अतर होता है।

वीर सवत् और विक्रम सवत मे ४७० वर्ष का अतर होता है।

वि स और इस्वी सन् मे ५७ वर्ष का अतर होता है।

सिद्धसेन गणि ने अकलक देव के तत्वार्थ वार्तिक का खूब उपयोग किया है और अकलक देव ने प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक धर्मकीर्ति का खडन किया है सिद्ध सेनगणि के दादागुरू सिहसूरि ने नयचक्र टीका मे धर्मकीर्ति का कोई उल्लेख नही किया है। किन्तु विशेषावश्यक भाष्य से गाथाए उद्दृत की। भाष्यकार जिन भद्रगणी का और धर्मकीर्ति का समय निश्चित है अत -

१. भाष्यकार का समय -	वि स ६५० निश्चित
२ सिहसूरि का -	वि स ६७५ अनुमानत
३ धर्मकीर्ति का -	वि स ६८२-७०७ निश्चित
४ अकलक देव का -	वि स ७५० अनुमानत
५ हरीभद्रसूरि का -	वि स ७५७ से ८२७ निश्चित
६ सिद्धसेन गणी का -	वि स ७७५ से ८६० अनुमानत

७ हरिभद्र सूरि ने तत्वार्थ भाष्य टीका मे सिद्धसेन की टीका का अनुसरण किया है।

नोट - इन वर्णनो की मूलत जानकारी के लिए वृहत्कल्प भाष्य भाग ६ की प्रस्तावना और जैन साहित्य का इतिहास (लेखक - प कैलाशचन्द जी शास्त्री) देखना चाहिए।

(१५) सपूर्ण कल्पसूत्र के रूप मे दशाश्रुतस्कध सूत्र का आठवा अध्ययन होने के प्रचार मे निम्न स्थल सदेह पैदा करने वाले होते है एव उसे असत्य सिद्ध करते है – १ किसी भी आगम मे सवत् मान्यता भेद

अनावश्यक एव अनुपयुक्त होता है। इस चर्चा का छेद सूत्र से कोई सम्बन्ध ही नही है २ स्थविरावली गत वदन स्तुति आदि वर्णन को आखमीच कर भद्रबाहु का मान लेना, कह देना तो अधश्रद्धा से ही हो सकता है ३ समाचारी की रचना शैली एव विषय वर्णन चौदह पूर्वी भद्रबाहु स्वामी द्वारा रचित सूत्र पाठो से व अन्य आगमो से विरूद्ध और असगत लगते है ४ उपसहार वाक्य की रचना और भावार्थ भी भक्ति या स्वार्थ के अतिरेक से युक्त है और हास्यास्पद भी है।

(१६) कल्पसूत्र के लिये श्रद्धा या प्रचार कुछ भी हो किन्तु ७२-४५-३२ या ८४ आगमो की प्रचलित सख्या मे कही भी इसका स्वतत्र नाम नही है। निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णिया, टीका आदि मलयगिरि आचार्य तक के किसी भी व्याख्याग्रन्थ मे इस सूत्र का नाम निशान तक नही है।

(१७) आचार्य रामचन्द्र सूरी के विद्वान सत भी इसे पूर्ण शुद्ध एव १२०० श्लोक प्रमाण भद्रबाहू का नही है यह तो लिखित स्वीकार करते है और किसी अन्य कृत चूलिका, परिशिष्ट और हस्त प्रत के शाइड टिप्पणो से मिक्स होने से अशुद्ध और विकृत होना भी स्वीकार करते है इससे भी सपूर्ण भद्रबाहू का होने की प्ररूपणा करने पर तो कुठाराघात होता है।

अनेक कृत प्रक्षेप या स्वत हुए प्रक्षेप ध्यान मे आने के बाद उन स्थलो को उस सूत्र मे रखते हुए, उस सम्पूर्ण सूत्र को मौलिक कर्ता के नाम से प्रचार करना और अक्षर अक्षर का महत्व आगम के बराबर कहना, कभी भी उचित कृत्य नही कहा जा सकता। और जैन साधु के लिये तो ऐसा करना सर्वथा अनुचित ही होगा।

कोई भी मदिर मार्गी विद्वान सत १३वी शताब्दी के पूर्व का ऐसा कोई प्रमाण खोज कर बताने का प्रयत्न करे कि जिसमे इस पर्यूषणा कल्पसूत्र के १२०० श्लोक जितने का नाम सहित स्वतत्र अस्तित्व सिद्ध हो।

(१८) इस नूतन नाम करण युक्ति कल्प सूत्र को व्यवस्थित करने वाले आचार्य ने दशाश्रुतस्कध सूत्र के आठवे अध्ययन के नाम से प्रसिद्ध करने के लिये इसकी मौलिक रचना नही की थी। किन्तु बाद मे इस स्वतत्र सूत्र को छाद्मस्थिक दोष से आठवी दशा के नाम से प्रसिद्ध

किया गया और उसे जमाने के लिये आठवी दशा के मूल मे हस्तक्षेप भी किया। यह सुनिश्चित तत्व है।

इसमे कारण यह है कि सूत्र की सकलना मे प्रारभ से तीर्थकर वर्णन है। सूत्र की सकलना करने वाले आचार्य को आठवी दशा के नाम से करना होता तो वे उसकी निर्युक्ति चूर्णि का अनुसरण करते। निर्युक्ति और उसकी चूर्णि मे प्रारम्भ से ''पर्यूषणा की व्याख्या है, उसे वे १००० श्लोक के बाद नही रखते।

(१९) आज आठवी दशा मे जो सक्षिप्त पाठ प्राय प्रतियो मे उपलब्ध है, दशाश्रुत स्कध चूर्णि (''श्री चपक सागर'' द्वारा सपादित) मे भी वही सक्षिप्त पाठ उपलब्ध है किन्तु यह सक्षिप्त पाठ दशाश्रुत स्कध की निर्युक्ति चूर्णि का अनुकरण करने वाला नही है। किन्तु स्वतत्र बने प्रसिद्ध-कल्प-सूत्र का अनुकरण करने वाला है। यह दोष सूत्रकार या लिपि प्रारभ काल का नही है किन्तु बीच के काल मे अशुद्ध आगम हस्तक्षेप के प्रभाव का फल है। होश्यारी करने वालो ने करी तथा चलाई भी इस स्वतत्र सूत्र के महत्व प्रसिद्धि के लिये। किन्तु सावधानी युक्त होशियारी करते तो निर्युक्ति चूर्णि का ख्याल भी करते। किन्तु उनकी यह भूल अन्वेषको के लिये उपयोगी है। आठवी दशा के उस उपलब्ध सक्षिप्त मूल पाठ मे ''**तेण कलेण तेण समएण** (पाच हस्तुत्तर कहकर) ''**जाव भुज्जो उवदसेइ।**'' ऐसा सक्षिप्त पाठ है जिसकी कि निर्युक्ति एव चूर्णी से ही अप्रामाणिकता स्पष्ट है। निर्युक्तिकार १०००-११०० श्लोक प्रमाण सूत्र पाठ को छोडकर आगे के पाठ से निर्युक्ति करे और उसकी चूर्णि करने वाले आचार्य भी उसकी ही प्रारभिक रूप से व्याख्या करे और कोई स्पष्टीकरण न करे कि हम इतना सूत्र छोडकर आगे से निर्युक्ति चूर्णि इस कारण से कर रहे है इत्यादि। अत आठवी दसा का उपलब्ध सक्षिप्त प्रारम्भ और अत दोनो ही अशुद्ध मानस से चलाया गया पाठ है किन्तु मौलिक नही है।

(२०) गणधर तथा भद्रबाहू स्वामी के अन्य सूत्र भी उपलब्ध है, उनमे किसी भी बीच के अध्ययन मे नवकार मत्र का प्रयोग नही है। यहा तक कि तीन छेद सूत्रो मे तो कोई मगल पाठ का नाम निशान भी नही है।

तो यह नवकार मत्र युक्त नया प्रसिद्ध सूत्र श्री भद्रबाहु स्वामी का अक्षरश १२०० श्लोक प्रमाण का प्रसिद्ध करना कैसे उचित है? और इस पूरे मिश्रित बने सूत्र के लिए भगवान के द्वारा परिषद् मे अनेको बार अर्थ विस्तार आदि सहित व्याख्यान करने का कथन करना, इत्यादि के उपसहार वाक्य से समझाना तो मानो मूर्खो को उल्लू बनाने का ही प्रयास है।

(२१) निर्युक्ति गाथा ६२ मे जो सकेत किया गया है वह सन्दिग्ध भी है विचारणीय भी है । उस गाथा मे मगल निमित भी कहा है। सोचने की बात यह है कि प्रारभ की ६१ गाथा मे एव उसके आधार भूत मूल पाठ मे बिना किसी मगल के ही वर्णन है। मगल की प्रथा वाले आदि मगल तो अवश्य करते ही है मध्य या अत मगल मे भजना या नास्ति होती है। किन्तु इस अध्ययन के लिये निर्युक्ति मे आदि मगल के बिना मध्य मगल क्यो किया?

वास्तव मे इस दशा के मौलिक विषय की व्याख्या ६१ गाथा तक पूर्ण प्राय हो जाती है और इस ६२ वी गाथा की चूर्णि मे 'स्थविर - गणधर' ऐसा वैकल्पिक पाठ स्वीकार किया गया है। (देखे पुण्य विजयजी कृत कल्प सूत्र चूर्णी) मूल पाठ के सक्षिप्त पाठ मे भी जब निर्युक्ति व्याख्या से विपरीत घड कर रखा जा सकता है तो उसके सामने ६२ से ६७ तक पाच निर्युक्ति गाथा को घडना या रखना कोई बडी बात या असभव सा कुछ नही है।

(२२) भगवान के मुख से बारबार कहलाये जाने वाले अध्ययन मे, उनके हजार वर्ष बाद वाले साधुओ के वदन के पाठ घड कर असत् प्ररूपणा कर लोगो को भगवान व भद्रबाहु रचित अध्ययन होने का ढोल पीटकर दैनिक समाचार पत्रो मे छपाकर भ्रमित करना बहुत बडा जघन्य कृत्य है। यदि अनजान से हो तब तो वह क्षम्य है । (फिर भी पदवीधरो को अनुप्रेक्षणा का कर्तव्य भी निभाना आवश्यक होता है।) अत किसी मौलिक सूत्र मे तीर्थकर गणधर का वर्णन रहा होगा और वही से इस कल्प सूत्र मे आकर वृद्धिगत हुआ होगा, तो भी मौलिक तो इतना ही समझना कि ''**जाव गणधरा सावच्चा निरवच्चा वोच्छिण्णा।**'' इतने

को ही आगमिक मौलिक तीर्थकर थेरावली या गणधरावली समझना। जिसका सकेत समवायाग से और पुण्य विजयजी सपादित इस अध्ययन की ६२ वी निर्युक्ति गाथा की चूर्णि से स्पष्ट होता है।

(२३) देवर्द्धिगणी खुद ही खुद को सूत्र मे वदन करे यह भी असभव है अर्थात् वह अन्य कर्तक है अत· **''देवर्द्धि गणी ने सुधार वधार कर स्थविरावली को अतिम रूप दिया''** यह कथन भी व्यर्थ की कल्पना है।

देवर्द्धिगणी और देववाचक एक ही व्यक्ति है ऐसा पूर्वाचार्यो का मत भी है। न भी माना जाय तो भी ये समकालीन थे। इसे इन्कार करने मे तो कोई प्रमाण नही है। देवर्द्धिगणी वीरनिर्वाण ९८० व ९९३ के मध्य मे थे और आगम लेखन कार्य कराया तथा देववाचक भी नदी मे स्कदिलाचार्य के बाद छ महापुरूषो को वदन गुण ग्राम करते हुए दूष्यगणी का कीर्तन करते है। इतिहास व काल गणना से दूष्यगणी को वदन करने वाले इस समय को ही प्राप्त होते है। अत नदी रचना काल और आगम लेखन काल लगभग समकालीन होता है।

देवर्द्धिगणी भद्रबाहु रचित आठवी दशा मे ऐसी मिश्रणता क्यो करे? स्वतत्र पर्यूषणा कल्प सूत्र बनाते तो ८४ आगम मे ३ कल्प सूत्र की जगह चौथा पर्यूषणाकल्पसूत्र नाम और रखा जा सकता था।

खुद को वदन क्यो करे? इस कारण इस कल्प सूत्र को देवर्द्धि तक पहुचाना उनसे सुधारा वधारा कराना इत्यादि कल्पना-परपरा, महत्वशील नही है। अपितु व्यर्थ ही है। जो उपरोक्त प्रमाण चर्चा से स्पष्ट है।

(२४) इन इतिहास सग्रह करने वालो ने नदी की युग प्रधानावली, व कल्प सूत्र की स्थविरावली के बाद श्री धर्मघोष सूरिकृत स्तोत्र गत पट्टावली को तीसरे न मे लिया और उसकी रचना तेहरवी शताब्दि की बताई है। ''कहावली'' ग्रन्थ की पट्टावली को तीसरे न मे स्थान नही दिया है। अत इसका (कहावली का) न चौथा आदि होगा जिससे वह पट्टावली तेरहवी शताब्दि के बाद अर्थात् १४वी शताब्दि की रचना हो सकेगी। १ कल्प सूत्र की २ नदी की ३ स्तोत्रगत पट्टावली ४ कहावलीगत पट्टावली यो इतिहास चितको की कल्पना है। वास्तव मे न

१ स्तोत्र गत है। न. २ मे कहावली गत पट्टावली है। न ३ मे कल्प सूत्र गत है।

(२५) पुण्य विजय जी ने वृहत्कल्प भाष्य भाग ६ की प्रस्तावना मे प्रमाण चितन सहित स्पष्ट निर्णय दिया है। वह उनके चितन अध्ययन परिश्रम का सही परिणाम है। उस प्रस्तावना के प्रकाशन के पूर्व किसी के निरीक्षण व उपालभ से कुछ एकाध प्रमाण तर्क व पर बुद्धि प्रभाव से उसी मे ''आमुख'' लिखा है जो विचारणा की कसौटी पर खरा नही उतरता है। उसके बाद के उनके द्वारा सपादित - दशवैकालिक चूर्णि की प्रस्तावना से उसका कुछ निरसन हो जाता है। दशवैकालिक प्रस्तावना लेखक स्वय मालवणियाजी ने प्रमाण - चर्चा सहित मुझे एल डी मे समझाया कि यह अगस्त्य चूर्णि भाष्यो के बाद की रचना है। पुण्य विजय जी को कुछ देवर्द्धि पूर्व का भ्रम हुआ था, किन्तु वह ज्यादा चितन मे नही गुजरा था, अन्यथा उनके ध्यान मे आ सकता था कि अमुक पहलु मात्र से इसे, उस काल मे नही ले जाया जा सकता है। निर्युक्तियो के द्वितीय भद्रबाहु की होना, देवर्द्धि के बाद की होना, विक्रम सवत ५५० वर्ष के बाद व वीरनिर्वाण १००० वर्ष के बाद होने का उनका आशय प्रस्तावना मे सप्रमाण चर्चित है।

''आमुख'' मे जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण के विशेषावश्यक भाष्य की श्वोपज्ञ टीका के प्रमाण को निरसन करते हुए श्री दलसुख मालवणिया ने सप्रमाण समझाया कि यह टीका बाद के व्याख्याकार कोट्याचार्य की है। जिनभद्रगणि की स्वोपज्ञ टीका भी है किन्तु अधूरी है उसे कोट्याचार्य ने पूर्ण की है । कोट्याचार्य की टीका के अतरगत वह पुण्य विजय जी का ''आमुख'' का कथन है। वास्तव मे पर प्रेरणा व उतावल मे उन्होने ''आमुख'' लिखा होने से यह भूल हुई है। सही चितन तो उनका ''प्रस्तावना'' मे स्पष्ट है। अत निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य, व्याख्याओ सबधी यह एतिहासिक नोध, चितन, निर्णय मूर्तिपूजक पूज्य मुनिराज श्री पुण्यविजयजी म सा व प दलसुख मालवणिया के अनुभव से अविरूद्ध है, सम्मत है।

(२६) प्रथम गाथा मे जो प्राचीन भद्रबाहु को वदन दशाश्रुत स्कुध की

निर्युक्ति मे किया है, उसको भी मुनि श्री पुण्य विजय जी ने अच्छी तरह समझाया है कि चूर्णीकार ने इस गाथा को निर्युक्तिकार की ही मानी है और उन्होने सूत्रकर्ता भद्रबाहू को वदन किया है ऐसा बताया है। वे कोई उलझन मे भी नही पडे कि निर्युक्ति गाथा मे भद्रबाहु को वदन कैसे? अत चूर्णिकर्ता के समय तक तो १४ पूर्वी भद्रबाहु के निर्युक्ति रचने का वातावरण नही था। तभी उन्होने बिना किसी हिचकिचाट के कह दिया कि निर्युक्ति कर्ता सूत्र कर्ता भद्रबाहु को आदि मगल रूप मे वदन करते है। पूज्य पुण्यविजयजी म सा ने यह भी कहा कि इस चूर्णी व्याख्या के होने से कोई ऐसी कल्पना नही कर सकता कि यह तो कोई बाद की प्रक्षिप्त या भाष्य गाथा है। इतने पर भी कोई अपने आग्रह पोषण के लिये कुछ भी कल्पनाए करता रहे और कल्पनाओ रहित मूल शुद्ध तत्व को दुराग्रह के कारण स्वीकार नही करे साथ ही सही अन्वेषण तटस्थ विचारको को अविश्वास पूर्ण मस्तिष्क वाला मानकर आत्म वचना करे उसका तो कोई भी उपाय नही हो सकता।

(२७) हिमवत थेरावली या कल्प थेरावली को नदी पूर्व की रचना कहने मात्र से कुछ सिद्ध नही हो सकता। कल्प सूत्र सबधी तर्को का उत्तर देना पहले आवश्यक है। अन्यथा जिस सूत्र का स्वतत्र अस्तित्व और नामकरण ही नही था उसे प्राचीन प्रमाण कोटी मे कैसे रखा जा सकता है। प्रकाण्ड इतिहास वेत्ताओ ने भी हिमवत थेरावली को नदी पूर्व की नही बताई है जो पट्टावली पराग आदि ग्रन्थो मे देखी जा सकती है।

(२८) शिलालेख और खुदाई के प्रमाण और उनका निर्णय भी भ्रम पूर्ण है। देवर्द्धिगणी के बाद ही प्रतिस्पर्धा से चले जैन जैनेत्तर साधुओ, राजाओ आदि के सस्कारो, नकलो और करामातो का परिणाम है। अत इसके पूर्व समय की कल्पना और इस विषय के वातावरण की कल्पना आदि बहुत अधकार मे है।

(२९) देवर्द्धि के पूर्व हुई वाचनाओ का तात्पर्य मौखिक वाचना को सग्रहित कर व्यवस्थित चलाना मात्र समझना उचित है। ''**१५० वर्ष पूर्व स्कदिलाचार्य ने समस्त पचांगी सहित आगम लिखवा कर सुरक्षित करवाये,**'' यह कथन बहुत बाद की असगत कल्पना मात्र है। क्योकि

मे सावत्सरिक चातुर्मासिक तिथि के सबध का विषय है। जिनप्रभसूरी तपागच्छी विद्वान थे।

(३६) जिनप्रभ सूरि जी ने 'शुद्ध विकट' शब्द का अर्थ काथक आदि से अचित बनाया हुआ जल और 'उष्ण विकट' शब्द से उष्ण जल किया है।

(३७) ''प्रबध पारिजात'' पृ १५६ मे टीका दी है जिसमे धावण जलो का अर्थ बताया हे। उसके अत मे लिखा है कि तेले से उपर की तपस्या वाले के शरीर मे प्राय देवता निवास करते है अत शुद्ध गर्म जल ही पीना रहता है। अर्थात् उसके पूर्व तेले तक धोवण पीया जा सकता है।

(३८) चार बार उपाश्रय प्रमार्जन - १ सुबह प्रतिलेखना के बाद २ आहार करने के पहले ३ आहार करने के बाद ४ चौथे प्रहर के अत मे।

(३९) पन्यास सघविजय जी ने कल्प सूत्र प्रदीपिकावृति मे शुद्धोदक का अर्थ गर्म जल या वर्णातरादि प्राप्त शुद्ध जल लिखा है और उष्ण विकट को केवल उष्ण जल कहा है।

(४०) ''प्रबध पारिजात'' पृ १६० मे प्रादप्रोछन का अर्थ रजोहरण करने का खडन किया है। क्योकि उपाश्रय बाहर जाते हुए श्रमण को अपने उपकरण गृहस्थ को भलाने की सूचना मे पादप्रौछन का नाम है। रजोहरण तो सदा साथ रखने का होता है और साधु के पास एक ही रहता है उसे छोडकर जाने का तो प्रश्न ही नहीं होता हे। किन्तु पादप्रोछन तो छोटा सा एक हाथ प्रमाण का वस्त्र खड होता है। इसे रजोहरण कह देना या मान लेना अविचारकता है।

(४१) ''प्रबध पारिजात'' पृ १८९ पक्ति ५ से – ''स्कदिलाचार्य ने तमाम सूत्र तथा निर्युक्ति आदि आगमो के व्याख्याग लिखवा कर सिद्धात की रक्षा की। नागार्जुन वाचक ने नष्टावशेष तमाम आगमो को पचागी सहित लिखवा कर सुरक्षित किया था।''

तो फिर वह सुरक्षित व्याख्याग देवर्द्धि तक भी नही रहे। उनके द्वारा नदी सूत्रोक्त श्रुतज्ञान मे उल्लेख भी नही है। आज तक कोई उपलब्ध नही। किसी ने देखी पढी नही। रही भी नही, तो कहा गई। ऐसी कैसी सुरक्षा की ? और किस किस रचियता की वह पचागी निर्युक्ति, भाष्य,

चूर्णि, टीका आदि थे? कोई खुलासा ही नही किया। अत यह १४वी शताब्दि की लगाई गई गप्प मात्र है।

वास्तव मे उक्त कल्पना केवल असत्य कल्पना ही है सत्य तत्व इसमे किंचित भी नही है।

(४२)सुविहित श्रमणो के द्वारा सभा मे वाचन मान्य होने के बाद धीरे-धीरे तेरहवी (चौदहवी) शताब्दि से कल्पातर्वाच्य (कल्प सूत्र व्याख्या) की सृष्टी हुई।

(४३)**वराह मिहिर ने** वि स ५६२ मे पचसिद्धातिका ग्रन्थ बनाया उसकी प्रशस्ति मे शक सवत ४२२ लिखा है। जिसमे १४० जोडने पर वि स निकल जाता है।

(४४) तित्थोगालिय पइण्णा, आवश्यक चूर्णी, आवश्यक हरिभद्रीय टीका एव परिशिष्ट पर्व आदि प्राचीन ग्रन्थो मे भद्रबाहु का जीवन चरित्र वर्णित है। उसमे १२ वर्षी दुष्काल, नेपाल देश मे रहना, महाप्राण ध्यान का आराधन, स्थूल भद्र आदि को वाचना देना, छेद सूत्रो की रचना का वर्णन, इत्यादि ''हकीगत आवे छे। पण वराहमिहिर ना भाइ होवानो, निर्युक्तियो रचवानो, उपसर्गहर स्तोत्र, भद्रबाहु सहिता आदि रचवानो आदि ने लगतो कशोय उल्लेख नथी।'' अर्थात् उक्त परिशिष्ट पर्व आदि की रचना के समय तक निर्युक्तिकार द्वितीय भद्रबाहु स्वामी की मान्यता थी किन्तु प्रथम भद्रबाहु के लिये निर्युक्तिकार होने की एव वराहमिहिर के भाइ होने की मान्यता नही बनी थी। - **प्रबध परिजात,**

(४५) केटलाक विद्वानो चौदपूर्वो भद्रबाहुनेज वराहमिहिर ना भाई सहोदर हता एम माने। साथे ज छेद सूत्र, निर्युक्ति, स्तोत्र और सहिता ना प्रणेता पण माने। परतु आ कथन कोई रीते सगत नथी। - **पुण्य विजय जी म सा**

(४६) स्थविर अगस्त्यसिह की चूर्णि मे तत्वार्थ सूत्र, आवश्यक निर्युक्ति, ओधनिर्युक्ति, व्यवहार भाष्य, कल्प (वृहत्कल्प) भाष्य आदि ग्रन्थो का भी उल्लेख है। इस चूर्णी मे भाष्य गाथाए भी उदृत की हुई है।

(४७) चूर्णि साहित्य मे जिनदास गणी महत्तर का मूर्धन्य स्थान है। इनके विद्यागुरू प्रद्युम्न क्षमाश्रमण। जिनदास गणी, जिनभद्र गणी क्षमाश्रमण

तर्क होता हे कि ऐसी कौन सी सुरक्षा थी जो १५० वर्ष मे विलुप्त और पूर्ण विलुप्त हो गई और देवर्द्धि द्वारा की गई सुरक्षा आज १५०० वर्ष तक चल गई और कुल २०००० वर्ष तक भी चल जायेगी ?

यदि स्कदिलाचार्य के समय पचागी (मूल निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी, टीका) की रचना और सुरक्षा हो गई थी तो उन व्याख्याओ के रचनाकार तीन पूर्व से अधिक ज्ञानी थे, यह निश्चित होगा। उनकी लिपिबद्ध रचना उनके नाम से लिखित व मौखिक १५० वर्ष भी नही चली क्या ? नदी सूत्र कर्ता दूष्यगणी के शिष्य एक पूर्वधरो की रचना को श्रुत ज्ञान वर्णन मे, उस ग्रन्थ या आगम के नाम सहित निर्देश करे और १४ पूर्वी से लेकर ३ पूर्वी तक के व्याख्या ग्रन्थो का स्वतत्र सूत्र रूप से या पचागी रूप मे नाम निर्देश भी नदी मे नही करे, यह सभव नही है। अत बाद की उठाई गई भ्रमित धारणाए हे। कई नाम साम्य से व कई अन्य विचारो से चलाई गई धारणा परपराए हे। वास्तव मे यह स्पष्ट निर्णय है कि देवर्द्धि के समय आगम लिपिबद्ध हुए उसके पहले अर्थ और परमार्थ केवल मौखिक गुरूपरपरा मे चलते रहे। जब आगम लिपिबद्ध हुए तो सर्व प्रथम आचार शास्त्रो की निर्युक्तिया, फिर भाष्य, चूर्णिया लिखित तैयार हुई। फिर अन्य सूत्रो की टीकाए और भाष्यो की टीकाए, हरिभद्रसूरि शीलाकाचार्य अभयदेवसूरि व मलयगिरि आदि द्वारा की गई। कई ने सकल्प या सहयोग या प्रारभ मात्र किया या उनकी टीका प्रसिद्धि प्रचार न बढने से लुप्त हुई। ओर प्रसिद्ध पर्यूषणाकल्पसूत्र पर विद्वानो की कृपा दृष्टि मलयगिरि आचार्य के बाद मे हुई। दशाश्रुत स्कध की निर्युक्ति परक चूर्णी मौलिक है और **स्वतत्र पद व्याख्या चूर्णी** अन्य कर्तृक है उसका अलगाव भी ग्रन्थ मे स्पष्ट दिखाई देता है।

(३०) धुवसेन राजा तीन होने का वर्णन मिलता है।

प्रथम - १ गुप्त सवत २०० से २३० मे
वीर निर्वाण सवत १०४६ से १०७६ मे
विक्रम सवत ५७६ से ६०६ मे

दूसरे - २ विक्रम सवत ६४८ से ६९९ मे
वीर निर्वाण ११५४ से ११५९ मे

तीसरे - ३ विक्रम सवत ७०७ से ७११ मे

वीरनिर्वाण ११७७ से ११८१ मे

धुवसेन राजा के पुत्र की मृत्यु विक्रम सवत ५८४ मे

शास्त्र लेखन विक्रम सवत ५१० से ५२३ के बीच।

(३१) गुप्त सवत, वलभी सवत, मैत्रक सवत ये तीनो एक ही पर्याय है।

(३२) ''आज कल का पर्यूषणा कल्प बारह सौ श्लोको से भी अधिक परिमाण वाला है परन्तु यह परिमाण मौलिक नही है। । वर्तमान मे जो अतिम अधिकार समाचारी रूप है उतना पर्यूषणा कल्प था उसका पठन श्रमण वर्ग काल ग्रहण पूर्वक रात्रि के समय मे करते थे। न इसकी उस समय नव वाचनाए (व्याख्यान) थी और न यह चतुर्विध सघ की सभा मे पढा जाता था।''—**मूर्तिपूजक मुनि श्री कल्याणविजय जी म सा**

(३३) ''प्रबधपारिजात'' पृ १५२ सदेह विषौषधि नामक कल्प पजिका (कल्प टीका) मे अपना मगलाचरण करने के बाद लिखा है कि ''पर्यूषणा कल्प की किन्ही २ प्रतियो मे मगलार्थ पच नमस्कार किया हुआ दृष्टिगोचर होता है'' केषुचिदादर्शेषु'' इन शब्दो से यह प्रतीत होता है कि पच नमस्कार प्रारम्भ मे नही था। यह बाद मे जोड कर प्रक्षिप्त किया गया है।

(३४) अठ्यासी (८८) ग्रहो मे भस्मराशि नाम का तीसवा ग्रह है, जो भगवान के जन्म नक्षत्र पर आया हुआ था। उसकी स्थिति दो हजार वर्ष की होती है। यह वर्णन कल्पसूत्र के मूलपाठ मे है। इस ग्रह दशा के कारण मूर्तिपूजा और यतियो का शिथिलाचार चला। इस ग्रहदशा के समाप्त होने पर ही स्थानकवासी धर्म प्रगटा।

(३५) तित्थोगालीय पइण्णा हमने अच्छी तरह पढा है। इसमे इन गाथाओ का नामोनिशान तक नही है। वास्तव मे पूर्णमिक आचलिक आदि नूतन (मूर्तिपूजक) गच्छ प्रवर्तको ने **इस प्रकार की अनेक नवीन गाथाऐ बनाकर तित्योगालीय पइण्णा, महानिशीथ आदि ग्रन्थो मे प्रक्षिप्त करदी** है। उसी प्रकार की कोई पुस्तक जिनप्रभसूरी को हाथ लगी और उसे प्रामाणिक मान लिया, कितु उन्होने वह ठीक नही किया। इन गाथाओ

मे सावत्सरिक चातुर्मासिक तिथि के सबध का विषय है। जिनप्रभसूरी तपागच्छी विद्वान थे।

(३६) जिनप्रभ सूरि जी ने 'शुद्ध विकट' शब्द का अर्थ काथक आदि से अचित बनाया हुआ जल और 'उष्ण विकट' शब्द से उष्ण जल किया है।

(३७) ''प्रबध पारिजात'' पृ १५६ मे टीका दी है जिसमे धावण जलो का अर्थ बताया है। उसके अत मे लिखा है कि तेले से उपर की तपस्या वाले के शरीर मे प्राय देवता निवास करते है अत शुद्ध गर्म जल ही पीना रहता है। अर्थात् उसके पूर्व तेले तक धोवण पीया जा सकता है।

(३८) चार बार उपाश्रय प्रमार्जन - १ सुबह प्रतिलेखना के बाद २ आहार करने के पहले ३ आहार करने के बाद ४ चौथे प्रहर के अत मे।

(३९) पन्यास सघविजय जी ने कल्प सूत्र प्रदीपिकावृति मे शुद्धोदक का अर्थ गर्म जल या वर्णातरादि प्राप्त शुद्ध जल लिखा है और उष्ण विकट को केवल उष्ण जल कहा है।

(४०) ''प्रबध पारिजात'' पृ १६० मे प्रादप्रोछन का अर्थ रजोहरण करने का खडन किया है। क्योकि उपाश्रय बाहर जाते हुए श्रमण को अपने उपकरण गृहस्थ को भलाने की सूचना मे पादप्रौछन का नाम है। रजोहरण तो सदा साथ रखने का होता है और साधु के पास एक ही रहता है उसे छोडकर जाने का तो प्रश्न ही नही होता है। किन्तु पादप्रोछन तो छोटा सा एक हाथ प्रमाण का वस्त्र खड होता है। इसे रजोहरण कह देना या मान लेना अविचारकता है।

(४१)''प्रबध पारिजात'' पृ १८९ पक्ति ५ से –''स्कदिलाचार्य ने तमाम सूत्र तथा निर्युक्ति आदि आगमो के व्याख्याग लिखवा कर सिद्धात की रक्षा की। नागार्जुन वाचक ने नष्टावशेष तमाम आगमो को पचागी सहित लिखवा कर सुरक्षित किया था।''

तो फिर वह सुरक्षित व्याख्याग देवर्द्धि तक भी नही रहे। उनके द्वारा नदी सूत्रोक्त श्रुतज्ञान मे उल्लेख भी नही है। आज तक कोई उपलब्ध नही। किसी ने देखी पढी नही। रही भी नही, तो कहा गई। ऐसी कैसी सुरक्षा की ? और किस किस रचियता की वह पचागी निर्युक्ति, भाष्य,

चूर्णि, टीका आदि थे? कोई खुलासा ही नही किया। अत यह १४वी शताब्दि की लगाई गई गप्प मात्र है।

वास्तव मे उक्त कल्पना केवल असत्य कल्पना ही है सत्य तत्व इसमे किचित भी नही है।

(४२)सुविहित श्रमणो के द्वारा सभा मे वाचन मान्य होने के बाद धीरे-धीरे तेरहवी (चौदहवी) शताब्दि से कल्पातर्वाच्य (कल्प सूत्र व्याख्या) की सृष्टी हुई।

(४३)**वराह मिहिर ने** वि स ५६२ मे पचसिद्धातिका ग्रन्थ बनाया उसकी प्रशस्ति मे शक सवत ४२२ लिखा है। जिसमे १४० जोडने पर वि स निकल जाता है।

(४४) तित्थोगालिय पइण्णा, आवश्यक चूर्णी, आवश्यक हरिभद्रीय टीका एव परिशिष्ट पर्व आदि प्राचीन ग्रन्थो मे भद्रबाहु का जीवन चरित्र वर्णित है। उसमे १२ वर्षी दुष्काल, नेपाल देश मे रहना, महाप्राण ध्यान का आराधन, स्थूल भद्र आदि को वाचना देना, छेद सूत्रो की रचना का वर्णन, इत्यादि ''हकीगत आवे छे। पण वराहमिहिर ना भाइ होवानो, निर्युक्तियो रचवानो, उपसर्गहर स्तोत्र, भद्रबाहु सहिता आदि रचवानो आदि ने लगतो कशोय उल्लेख नथी।'' अर्थात् उक्त परिशिष्ट पर्व आदि की रचना के समय तक निर्युक्तिकार द्वितीय भद्रबाहु स्वामी की मान्यता थी किन्तु प्रथम भद्रबाहु के लिये निर्युक्तिकार होने की एव वराहमिहिर के भाइं होने की मान्यता नही बनी थी। - **प्रबध परिजात,**

(४५) केटलाक विद्वानो चौदपूर्वो भद्रबाहुनेज वराहमिहिर ना भाई सहोदर हता एम माने। साथे ज छेद सूत्र, निर्युक्ति, स्तोत्र और सहिता ना प्रणेता पण माने। परतु आ कथन कोई रीते सगत नथी। - **पुण्य विजय जी म.सा**

(४६) स्थविर अगस्त्यसिह की चूर्णि मे तत्वार्थ सूत्र, आवश्यक निर्युक्ति, ओधनिर्युक्ति व्यवहार भाष्य, कल्प (वृहत्कल्प) भाष्य आदि ग्रन्थो का भी उल्लेख है। इस चूर्णी मे भाष्य गाथाए भी उदृत की हुई है।

(४७) चूर्णि साहित्य मे जिनदास गणी महत्तर का मूर्धन्य स्थान है। इनके विद्यागुरू प्रद्युम्न क्षमाश्रमण। जिनदास गणी, जिनभद्र गणी क्षमाश्रमण

से बाद मे और हरिभद्र से पहले हुए, वि स ६५० से ७५० के वीच मे होना चाहिये। नदी चूर्णी के उपसहार मे शक सवत = ५९८ दिया इसके रचियता भी जिनदासगणी ही हे। इन्होने कितनी चूर्णिया रची यह ज्ञात नही है परतु अभी ७ मिलती है – निशीथ, नदी, अनु , आव दशवै, उतरा, सूय।

(४८) जीतकल्प चूर्णी करने वाले सिद्ध सेन सूरि और वृहत्क्षेत्र समास की टीका करने वाले एक है। गधहस्ति अलग है।

(४९) जिनभद्रगणी क्षमा श्रमण का काल विक्रम सवत ६५० से ६६० के आस पास का सभव है। इनकी नौ रचनाए मिलती है – १ विशेषावश्यक भाष्य २ उसकी टीका ३ वृहत्सग्रहणी ४ वृहत्क्षेत्र समास ५ विशेपणवती ६ जीतकल्प ७ जीतकल्प भाष्य ८ अनुयोग चूर्णी ९ ध्यान शतक।

(५०) **जीतकल्प भाष्य मे** –वृ भाष्य, पच कल्प भाष्य, पिडनिर्युक्ति आदि की गाथाए उदृत की गई है।

(५१) सघदासगणि - भाष्य कर्ता और वसुहिडी के कर्ता यो दो हुए है। जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण भाष्य कर्ता ने अपने विशेषणवती ग्रन्थ मे वसुदेव हिडी की गाथाओ का उपयोग किया है। इनके निशीथ भाष्य मे - वृहत्कल्प भाष्य, नदीसूत्र, सिद्धसेन (गधहस्ति) और गोविद वाचक आदि के नाम आये है।

(५२) सार यह रहा कि भाष्यकार प्राय सभी देवर्द्धि काल के बाद के है अत चूर्णिया भी इसके पहले की सभव नही है चाहे अगस्त्य सिह की चूर्णी भी क्यो न हो। उसमे भी भाष्यो का उल्लेख है। अत विक्रम की तीसरी शताब्दी का कथन (उतावली कल्पना मात्र) है। अगस्त्यसिह सूरि के गुरू का नाम ऋषिगुप्त भी कहा है - ''**प्रबधक पारिजात**'' पृ ४९०

(५३) वृद्धवादी, यक्षसेन, देवगुप्त, यशोवर्धन क्षमाश्रमण के शिष्य रवि गुप्त, नेमिचन्द्र, जिनदास गणी क्षपक, सत्य श्री प्रमुख श्रुतधरो से महानिशीथ सूत्र का समर्थन कराया गया है जो सदेहास्पद है। वे श्रुतधर, समकालीन नही थे। वृद्धवादी और सिद्धसेन दिवाकर हरिभद्र सूरि से ३०० वर्ष पूर्व हुए है। कुछ नाम अप्रसिद्ध है। नेमिचन्द्र का

समय ११ वी सदी के पूर्वार्द्ध मे पडता है तो जिनदास गणी निशीथ चूर्णी कर्ता विक्रम की आठवी सदी के उत्तरार्ध मे हुए है।

(५४) महानिशीथ का हरिभद्रसूरि द्वारा उद्धार होना प्रमाणित नही हो सकता। क्योकि इस सूत्र के बीच मे हरिभद्र का नाम जिस श्रद्धा से दिया है उससे भी स्पष्ट हो जाता है कि इसके कर्ता हरिभद्र के अतिरिक्त है।

हरिभद्रसूरि के लगभग ६० ग्रन्थ पढे है किन्तु उसमे महानिशीथ के उद्धार की बात तो क्या उसका नाम निर्देश भी कही नही मिलता है।

– मुनि कल्याणविजय।

अत महानिशीथ सूत्र दीमक से खडित कर दिया गया और आचार्य हरिभद्र ने इसको अन्यान्य शास्त्रो के पाठो से व्यवस्थित किया और फिर सिद्ध सेन आदि आठ श्रुतधर युगप्रधान आचार्यो ने उसे प्रमाणित ठहराया आदि दन्तकथा सत्य नही है। **– प्रबध पारिजात पृ ७१-७२**

(५५) नदी मे कालिक सूत्र की सूचि मे ''कप्प'' शब्द वृहत्कल्प सूत्र के लिये आया है। और उत्कालिक सूत्र सूचि मे – चुल्ल कल्प सूत्र और महाकल्प सूत्र ये दो कल्प सूत्र के नाम आये है जिसमे मुनि श्री कल्याण विजय जी का मानना है कि महाकल्प का विच्छेद हुए १००० वर्ष से भी अधिक हो गये और चुल्ल कल्प श्रुत को ही आज ''पर्यूषणा कल्प सूत्र कहते है'' **– प्रबध पारिजात पृ १३४**

(५६) आचार्य हरिभद्रसूरी का टीकाकारो मे सर्व प्रथम नाम आता है। उनका सत्ता समय वि स ७५७ से ८२७ का है। गुरू जिन भट्ट (या जिनदत्त) थे। आज हरिभद्र के ७५ ग्रन्थ मिलते है। १४४४ ग्रन्थ रचे। नदी, अनुयोग, दशवै प्रज्ञापना, आव आदि टीका मुद्रित है।

(५७)**कोट्याचार्य** –हरिभद्र के समकालीन या पूर्ववर्ती है। विशेषावश्यक भाष्य पर नवीन वृति लिखी। जिनभद्र गणी की अपूर्ण स्वोपज्ञ भाष्य की टीका को पूर्ण किया है। उनके प्रति श्रद्धा स्मरण किया है। परतु हरिभद्र सूरि का कही भी नाम नही दिया (अत हरिभद्र के समकालीन या परवर्ती होगे। हेमचन्द्राचार्य ने प्राचीन टीकाकार के रूप मे कोटयाचार्य का उल्लेख किया । इनका समय विक्रम की आठवी सदी है तो

शीलाकाचार्य का नौवी दसवी सदी है। अत· दोनो प्रथक प्रथक है। प्रभावक चारित्र मे दोनो (शीलाकाचार्य कोट्याचार्य) को एक कर दिया है।

(५८)शीलांकाचार्य –प्रभावकचारित्रानुसार इनका समय नौवी दसवी सदी माना जाता है। इन्होने आचाराग प्र श्रु स्कध की वृति गुप्त सवत ७७२ (ई १०९२) भादवा की ५ को पूरी करी।

(५९)निर्युक्ति परिभाषा – सूत्रार्थयो परस्पर नियोजने सबधन निर्युक्ति – आ. नि. ८३ निश्चयेन अर्थ प्रतिपादिका युक्ति निर्युक्ति १ आचा. १/२/१, सूत्र और अर्थ का निश्चित सम्बन्ध बताने वाली व्याख्या को निर्युक्ति कहते है।

(६०) गोविदाचार्य की गोविद निर्युक्ति का उल्लेख - वृ भा , अनु चूर्णी व निशीथ चूर्णी मे मिलता है।

(६१) श्री हरिभद्र सूरि, श्री सिद्धसेनाचार्य (गध हस्ति) एव श्री कोट्याचार्य ये तीनो लगभग समकालीन भी थे।

(६२) जिनभद्रगणी क्षमा श्रमण से हरिभद्रसूरि १०० वर्ष बाद हुए किन्तु १५वी १६वी शताब्दि मे बनी पट्टावलियो मे जिनभद्रगणी को हरिभद्र सूरी का पट्टधर शिष्य बता दिया यह एक भ्रमित परपरा चल पडी है।

(६३) नमि साधु ११२२ वि स मे हुए । वे आवश्यक वृत्तिकार हुए।

(६४) आवश्यक निर्युक्ति गाथा ११२० तथा १३४६ मे नदी सूत्र का कथन है।

(६५) मूर्तिपूजक मुनि श्री अमर विजय जी के शिष्य चतुरविजयजी ने निर्युक्तियो को द्वितीय भद्रबाहु की रचना मानी है। ''मत्राधिराज-चितामणी - जैन स्तोत्र सदोह'' प्रस्तावना पृष्ट १२-१३ प्रकाशक साराभाई मणीलाल नवाब, अहमदाबाद सन् १८३६.

(६६) पचकल्प भाष्य व चूर्णीकार ने ४ छेद सूत्र भद्रबाहु रचित माने है।

(६७) श्वेताबर साहित्य मे विशाखा गणि का नाम ही नही। बारहवी सदी के बाद किसी अर्थदग्ध पडित ने ये तीन गाथाए बना कर किसी लेखक को दे दी उसने निशीथ पुस्तक मे लिख डाली है। जो २०वे उद्देशे की

चूर्णी के बाद प्रशस्ति रूप मे जोड दी गई है। जो आज भी है।

(६८) चूर्णीकार लिखते है कि सूई आदि चारो औपग्रहिक उपकरण है। इनमे से एक एक उपकरण आचार्य (गुरू बडो) के पास रहना चाहिये। शेष साधु भी उन्ही से अपना कार्य कर सकते है। यदि शेष साधुओ का आवश्यक होवे तो बास या सिग के उपकरण रख सके, लोहे के नही।

(६९) पुरिम चरिमाण कप्पो, मगल वद्धमाण तित्थम्मि।
इह परिकहिया जिण गणहराण थेरावली चरित।

–दशा द. ८, नि गा ६२

चूर्णी –अवि बद्धमाण तित्थम्मि जिणं गणधरावलिया सव्वेर्सि च जिणाण समोसरणाणि परिकहिज्जति। समवायाग सूत्र का भलावण पाठ भी उपयोगी है देखने लायक है।

(७०) मुनि श्री पुण्य विजय जी ने वृहत्कल्प भाष्य भाग ६ प्रस्तावना मे लिखा है उसे भी ध्यान मे ले ले–

''अही प्रसग वशात् एक बात स्पष्ट करी लइए के चौदपूर्वी भगवान भद्रबाहुना जमाना ना निर्युक्ति ग्रन्थों ने आर्य रक्षित ना जमाना मा व्यवस्थित कराय अने ते फरी थी पछीना जमाना मा व्यवस्थित करवा मा आवे, एटलू ज नही पण ए निर्युक्ति ग्रन्थो मा उत्तरोत्तर गाडा भरी ने बधारा घटाडो करवा मा आवे आ जात नी कल्पना करवी जराय युक्ति सगत नही। कोई पण मौलिक ग्रन्थ मा आवा फेर फार कर्या पछी ए ग्रन्थ ने मूल पुरूष ना नाम थी प्रसिद्ध करवा मा खरेज एना प्रणेता मूल पुरूष नी तेमज पछीना स्थविरो नी प्रामाणिकता दूषित ज थाय छे। वस्तुत विचार करवा मा आवे तो कोई पण स्थविर महर्षि प्राचीन आचार्य ना ग्रन्थ मे अनिवार्य रीते व्यवस्थित करवानी आवश्यकता उभी थता, तेमा सम्बन्ध जोडवा पूरतो घटतो उमेरो के सहज फेर फार करे ऐ सह्य होई सके। पण तेने बदले ते मूल ग्रन्थ कार ना जमाना पछी बनेली घटनाओ ने, के तेवी बीजी अयुक्त बावतो ने, मूल ग्रन्थ कार ना जमाना पछी बनेली घटनाओ ने, के तेवी बीजी अयुक्त बावतो ने, मूल ग्रन्थ मा नवेसर पेसाडी दे, ऐथी ए ग्रन्थ नो मौलिक पणु, गौरव, के प्राणाणिकता उज्वलसे खरो ? आपणे निर्विवाद पणे कबूल करवू

जोइए, के मूल ग्रन्थ मा एवो नवो उमेरो क्यारेय पण वास्तविक व मान्य नही करी शकाय। कोई पण महर्षि एवो उमेरो करे पण नही, अने ते जमाने ना बीजा स्थविरो पण तेने स्वीकारे नही।''

टिप्पण :-इसलिये निर्युक्तियो मे अनुचित फेर फार करना न मान कर बाद मे हुए द्वितीय भद्रबाहु की ही सपूर्ण रचना मानना सुसगत होता है। वैसे ही कल्प सूत्र के विषय मे भी समझना और निर्णय करना चाहिये अर्थात् बाद मे रचा हुआ मान लेना चाहिये। किन्तु ऐसा नही कहना कि पूरा अक्षर अक्षर चौदह पूर्वी भद्रबाहु का बनाया हुआ है और फिर देवर्द्धिगणी ने जो मन भाया वही जोडा और बाद मे भी किसी के मन भाया जो जोडा। **यथा** – ९८०-९९३ का सवत मिति लगाना आदि और देवर्द्धि के लिये वदना की गाथा बनाना आदि।

(७१)''अही एक बात खास ध्यान मा राखवा जेवी छे के आजना जैन आगमो मा मौलिक अशो घणा घणा छे एमा शका नथी, परन्तु जेटलु अने जे काई छे बधु य मौलिक ज छे। एम मानवा के मानाववा नु प्रयत्न करवो ए सर्वज्ञ भगवतो ने दूषित करवा जेवी वस्तु छे।''

''आज ना जैन आगमो मा एवा घणा घणा अशो छे, जे जैन आगमो ने पुस्तकारूढ करवामा आव्या त्यारे के ते आस पास उमेराएला के पूर्ति कराएला छे। केटलाक अशो एवा पण छे जे जैनेतर शास्त्रो ने आधारे उमेराएला होई जैन दृष्टि थी दूर पण जाय छे। इत्यादि अनेक बाबतो जैन आगम ना अभ्यासी गीतार्थ गभीर जैन मुनि गणे विवेक थी ध्यान मा राखवा जेवी छे।'' – **बृह भाष्य भाग. ६ - प्रस्तावना पृ ६५ से**

टिप्पण ·- शास्त्रोद्धारक मूर्तिपूजक पूज्य श्री पुण्यविजयजी म सा ने मौलिक आगमो मे भी गीतार्थ मुनियो को विवेक बुद्धि रखने का निर्देश किया है तो अन्य आगमेत्तर ग्रन्थो व्याख्याओ मे अध बुद्धि का आग्रह करना और विवेक बुद्धि का निषेध करना कदापि किसी के लिये भी उचित नही समझना चाहिए।

इसी अनुभव के आधार से मैने इस दोनो परिशिष्ट विभाग मे भी लिपि दोष, दृष्टि दोष और परपरा भेद आदि मुख्य कारणो से **''विवेक बुद्धि रखने का''** आशय स्पष्ट किया है। जो अन्य आगम मनीपियो से सम्मत

होने से एक निराबाध सत्य है।

सार– निर्युक्तियां तो द्वितीय भद्रबाहु स्वामी की बनाई हुई है और भ्रम से प्रथम (प्राचीन) भद्रबाहु स्वामी की मानी जा रही है जिससे अनेक असंगत बाते खडी होती है। फिर असत्कल्पनाए की जाती है। अत भ्रमित मान्यता का ही परित्याग कर देना चाहिये।

आगम तो मौलिक रूप से गणधर कृत ही है। उसमे हुए लिपि दोष या सुधार वधार अथवा प्रक्षेपो को यथावत समझ कर विवेक बुद्धि से तत्व निर्णय करना चाहिये अर्थात् निर्युक्तियो के वास्तविक कर्ता को और आगमो मे हुई विकृतियो को सरलता पूर्वक स्वीकार करना चाहिए।

(७२) क्या उत्तराध्ययन भगवान महावीर की अन्तिम वाणी है?-

समवायाग मे छत्तीस अपृष्ट-व्याकरणो का कोई भी उल्लेख नही है। वहा इतना ही सूचन है कि भगवान महावीर अतिम रात्रि के समय पचपन कल्याणफल-विपाक वाले अध्ययनो तथा पचपन पाप-फल विपाक वाले अध्ययनो का व्याकरण कर परिनिर्वृत्त हुए। छत्तीसवे समवाय मे भी जहा पर उत्तराध्ययन के छत्तीस अध्ययनो का नाम निर्देश किया है वहा पर भी इस सबध मे कोई चर्चा नही है कि ये अध्ययन भगवान ने अतिम देशना मे फरमाये।

उत्तराध्ययन शब्दत भगवान महावीर की अतिम देशना ही है यह साधिकार तो नही कहा जा सकता, क्योकि कल्पसूत्र मे उत्तराध्ययन के अध्ययनो को अपृष्ट-व्याकरण अर्थात बिना किसी के पूछे स्वत कथन किया हुआ शास्त्र बताया है। किन्तु वर्तमान के उत्तराध्ययन मे आये हुए केशीगौतमीय, सम्यक्त्व-पराक्रम अध्ययन जो प्रश्नोत्तर शैली मे है वे चिन्तको को चिन्तन के लिये अवश्य ही प्रेरित करते है। केशीगौतमीय तेवीसवे अध्ययन में भगवान महावीर का जिस भक्ति और श्रद्धा के साथ गौरवपूर्ण उल्लेख है वह भगवान स्वय अपने लिए किस प्रकार कह सकते है? अर्थात् नही कह सकते। अत, ऐसा प्रतीत होताहै कि उत्तराध्ययन मे कुछ अश स्थविरो ने अपनी ओर से सकलित किया हो। और उन प्राचीन और अर्वाचीन अध्ययनो को वीर निर्वाण की एक

सहस्त्राब्दी के पश्चात् देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने सकलन कर उसे यह रूप दिया हो।– उपा. देवेन्द्रमुनि कृत - **जैनागम साहित्य मनन और मीमांसा.**

टिप्पण –आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी का यह अनुमान भी उत्तराध्ययन सूत्र का रचना समय वीरनिर्वाण दसवी सदी का बता रहा है जो कि प्रश्न व्याकरण सूत्र के ''महावीर भासियाइ'' ''आयरिय भासियाइ'' आदि अध्ययनो से सकलित कर बनाये जाने के कथन का समर्थक ही है। जिससे यही सिद्ध होता कि प्रश्न व्याकरण सूत्र के अध्ययनो का सकलन होने से ये अध्ययन गणधर सुधर्मा रचित है। इसीलिए यह सूत्र कालिक श्रुत मे गिनाया गया है। और प्रमुखता की अपेक्षा भगवान महावीर स्वामी की अतिम देशना के नाम से प्राचारित हो गया है या कर दिया गया है।



-:ऐतिहासिक प्रश्नों की नोंध :-

(मंदिर मार्गी समभावी विद्वानों से)

(१) ''पज्जोसवणा कल्प सूत्र'' नामक इस सूत्र का अलग अस्तित्व कब हुआ ?

(२) किस आगम मे या निर्युक्ति मे, भाष्य मे, चूर्णी मे, टीका मै इसका स्वतत्र रूप मे अस्तित्व होने का निर्देश मिलता है ?

(३) नदी सूत्र रचनाकार ने श्रुतज्ञान मे इस स्वतत्र सूत्र को किसी नाम से कहा है ?

(४) निर्युक्तियो मे नदिसूत्र का निर्देश मिलता है तो क्या नदी सूत्र की रचना के बाद निर्युक्तिया बनी ?

(५) उपलब्ध स्वतत्र अस्तित्व के पर्यूषणाकल्पसूत्र के आदि पाठ नमस्कार मत्र का अस्तित्व स्वीकार मे भी मतभेद है ? व्याख्याकारो ने इस विषय मे विभिन्नताए दिखाई है, अत प्रक्षिप्त होना स्पप्ट है या नही ?

(६) दशाश्रुतस्कध के आठवे अध्ययन के नाम से उपलब्ध स्वतत्र पर्यूषणा कल्प सूत्र मे उस सूत्र व उस अध्ययन के नाम का मुख्य विषय सबसे अत मे है, प्रारभ मे करीब १००० श्लोक प्रमाण वर्णन अन्य है। जबकि निर्युक्ति मे प्रारभ से ही मुख्य विषय की व्याख्या है और १००० श्लोक जितने मूल पाठ के लिये केवल एक ६२ वी गाथा मे शकेत मात्र है। ऐसा क्यो? इसमे भी कुछ रहस्य हो सकता है?

(७) भगवान ने सभा मे कथन किया, १४ पूर्वी भद्रबाहू स्वामी ने गुथन - निर्यूहण किया, उतना ही आठवा अध्ययन रूप यह स्वतत्र कल्प सूत्र है? या कुछ प्रक्षिप्त होकर बढा हुआ रूप है?

(८) दशाश्रुतस्कध के रचियता भद्रबाहू स्वामी वीर निर्वाण दूसरी शताब्दि मे हुए है। उस सूत्र का आठवा अध्ययन कहे जाने वाले स्वतत्र अस्तित्व धारी सूत्र मे वीर निर्वाण ९८० व ९९३ का विवाद किसने और कब प्रक्षेप किया और क्यो आवश्यक हुआ। प्रामाणिक पुरूषकृत सूत्र को विकृत बनाने का? उसे आज तक भद्रबाहू के सूत्र और उनके शब्दो के नाम से स्वीकार करना क्या मूर्खता या गडरिया प्रवाह नही है?

(९) भद्रबाहू के बाद के आचार्यो आदि की स्तुति और वदन नमस्कार भी भद्रबाहू कृत कहे जाने वाले सूत्र मे मानने मे क्या असत्य का पाप नही लगेगा? उसे १२०० श्लोक से अलग क्यो नही रखा जाता है? प्रक्षेपो को जानते मानते हुए भी १२०० श्लोक प्रमाण भद्रबाहु का बनाया कहना उचित है? और इसे भगवान ने सभा मे कहा, यह पाठ भी साथ मे जोडे रखना उचित है?

(१०) क्या भगवान ने ऐसा यह १२०० श्लोक का उपलब्ध आठवा अध्ययन परिषद् मे फरमाया, यह गले उतर सकता है? भगवान ने बारबार परिषद् मे यह फरमाया था तो क्या एक ही दिन मे या अनेक दिनो मे?

(११) दशाश्रुत स्कध के आठवे अध्ययन का गृहस्थ के सामने वाचन करना भी निशीथ सूत्र एव उसकी निर्युक्ति, चूर्णी आदि से गुरू चौमासी

प्रायश्चित का कार्य है ऐसा सिद्ध होता है। यदि उस आठवे अध्ययन मे तीर्थकरो का वर्णन हो तो उसे गृहस्थ को सुनाने मे सूत्रकार व व्याख्याकार प्रायश्चित कथन और विवेचन करे यह वैसे सभव हो सकता है?

(१२) जिस सूत्र व अध्ययन के लिये आगमकार व्याख्याकार गृहस्थो को सुनाने का प्रायश्चित कहे, और जिसे कालिक सूत्र कहे, उसी अध्ययन को स्वतत्र सूत्र का अस्तित्व देकर कोई उत्कालिक कर दे, फिर भी भद्रबाहु का कहते रहे और तीसरे प्रहर मे वाचन करे, वह भी गृहस्थ परिषद् मे, ऐसा दुस्साहस भी अपने पूर्वाचार्यो से कराना। यह सब कैसे स्वीकार किया जा सकता है? यह सब करना मानो जीवित मक्खी जानकर निगल जाना नही है?

(१३) चौदह पूर्वी भद्रबाहू स्वामी निशीथ सूत्र के १०वे उद्देशे मे अपर्यूषणा मे पर्यूषणा करने का तथा पर्यूषणा के दिन पर्यूषण न करने का गुरू चौमासी प्रायश्चित कहे वे इस आठवी दशा मे ऐसा क्यो कहे कि पहले पर्यूषणा करने मे कोई दोष नही है?

(१४) क्या भद्रवाहू स्वामी की रचना मे और भगवान के मुख से कहलाये जाने वाले इस अध्ययन मे ऐसा कथन उपयुक्त है कि ''श्रमण भगवान महावीर ने पर्यूषणा किया वैसे ही (एक महिना बीस दिन बाद) गणधर करते, वैसे ही गणधर शिष्य करते, वैसे ही स्थविर करते, वैसे ही आज के साधु करते, वैसे ही हमारे आचार्य उपाध्याय करते, वैसे हम भी करते'' इत्यादि भाव पर्युषणा कल्प सूत्र के समाचारी वर्णन के आदि सूत्र मे है। निर्युक्तिकार ने ऐसी परपरा युक्त मूल पाठ की व्याख्या नही की है। तो भी इस पाठ को भगवान व भद्रबाहु के नाम से माना जाना कैसे उचित कहा जा सकता है? हमारे आचार्य उपाध्याय करते वैसे हम करते'' यह ''हम'' कहने वाले कौन है। स्वय तीर्थकर के कथन मे भी आगम मे ''अह पुण गोयमा' तयाण अह गोयमा'' ऐसे प्रयोग है तो इस पाठ मे ''वय'' कहने वाले कौन है? ऐसी कल्पित श्रखला युक्त रचना भद्रबाहू की हो सकती है या प्रक्षिप्त है?

(१५) नदी सूत्र मे ७२ आगमो के नाम है तो ४५ मानने का क्या कारण है। करीब २० प्रकीर्णक आज भी उपलब्ध है तो १० ही को आगम क्यो माना जाता है १० को क्यो नही? नदी सूत्र मे नाम होते हुए भी उन प्रकीर्णक को आगम नही माना जाता इसका कारण क्या है?

(१६) हरिभद्रसूरि, मलयगिरी, आचार्य हेमचन्द्र आदि युगप्रधान धुरधर विद्वानो की उपलब्ध रचनाओ को आगम मे क्यो नही गिना जाता है? पचागी के अतिरिक्त भी अनेक ग्रन्थ है।

(१७) सूर्य प्रज्ञप्ति मे मास भोजन विषयक पाठ के प्रक्षिप्त होते हुए भी उसको क्यो मानते?

(१८) आचाराग सूत्र का आठवा अध्ययन कम होते हुए भी अर्थात् इस सूत्र के खडित होने पर भी इसे आगम मे क्यो मानते?

(१९) प्रश्न व्याकरण मे नदी व समवायाग कथित विषय न होते हुए भी आगम मे क्यो माना जा रहा है?

(२०) ४५ आगम मे कितने ही आगम के रचनाकार का, उसके रचना समय का इतिहास अनुपलब्ध होते हुए भी आगम मे क्यो और किस आधार से गिना जाता?

(२१) वृहत्सग्रहणी गाथा १५४ मे ''सूत्र'' की परिभाषा दी है उसके अनुसार आगम का निर्णय किया जाता है क्या? यदि किया जाय तो ५-१० आगम ही मानने पडेगे? तब ४५ कैसे होगे। अथवा वृहत्सग्रही की परिभाषा को खोटी मानेगे?

(२२) गणधर या १४ पूर्वी आदि के रचित आगम का पूर्ण विषय बदल कर नाम वही रह जाय तो वह आगम मे गिना जा सकता?

(२३) गणधर या १४ पूर्वी रचित आगम का कुछ अश घट जाय विच्छेद हो जाय तो वह आगम गिना जा सकता?

(२४) गणधर या १४ पूर्वी के सूत्र के मूल पाठ मे जिसके जो मन भाया बढा दिया, सवत् लगा दिये जाय, अनेक गाथाए एव गद्य पाठ रूप स्तुति वदन आदि बढा दिये जाय, अपने स्वार्थ सिद्धि के लिये चौथ

(३३) ध्यान शतक को आगम क्यो नही मानते है? जो हरिभद्रसूरि के भी पूर्व आचार्य जिनभद्र गणी क्षमाश्रमण द्वारा रचित है।

(३४) **सुत्त गणहर रइय, तह पत्तेय बुद्ध रइय च।**

सुयकेवलिणा रइयं, अभिन्न दस पुव्विणा रइयं।१५६।

अर्थ - गणधर, प्रत्येक बुद्ध, १४ पूर्वी से १० पूर्वी तक के ज्ञानी गीतार्थ श्रमणो द्वारा की गई रचना को सूत्र या आगम कहा जा सकता।

यह वृहत्सग्रहणी की गाथा है इसके अनुसार आपकी आगम मानने की मान्यता है या नही? यदि यह गाथा और ग्रन्थ मान्य है तो ४५ आगम की सिद्धि कैसे कर सकते? और यह गाथा और ग्रन्थ मान्य नही तो किसी आचार्य की रचना को आगम मानो और किसी प्रामाणिक पुरूष के एक भी ग्रथ को आगम नही मानो इसका कारण क्या है? इसमे क्या रहस्य है?

(३५) क्या मदिर बनाने का उपदेश साधु दे सकता है या सचित फूल पानी और अग्नि के पाप से पूजा करना कह सकता है? क्या वर्तमान के मदिरमार्गी साधु इन क्रियाओ की प्रेरणा करते है या उनके पूर्वाचार्यो ने ऐसी प्रेरणा की थी? और ऐसी प्रेरणा करने वालो का पहला महाव्रत दूषित होना माना जा सकता है?

(३६) क्या देवलोक की शास्वत प्रतिमा मे इस अवसर्पिणी के प्रथम और अतिम तीर्थकर का नाम आना उचित है? या यह मदिर मार्गियो की सूत्र मे पाठ प्रक्षिप्त करने की आदत का प्रभाव है?

(३७) मुहपोत्तिय, मुख वस्त्रिका या मुहपति नाम कहते हुए भी उसे रुमाल के समान हाथ मे या कमर से रखना क्या उचित है?

(३८) बोलते समय मुखवस्त्रिका को हाथ मे ही नही ले और मुह के सामने हाथ ले जाने का प्रयत्न भी नही करे तो भी ऐसे साधु अपने आप को जिनाज्ञा मे होना या साधु होना कह सकते ?

(३९) क्या कोई मदिर मार्गी जैन साधु होकर के भी स्वछदमति से एक पुस्तक बनावे, उसे स्थानकवासियो के नाम से छपावे, प्रेस का नाम

नही दे, लेखक का अर्थात् खुद का नाम नही दे, जब कि उन पुस्तको की सप्लाई वह स्वय करे, करावे, प्रेषक मे खुद का गाव का पता न देकर दूसरो की किसी की स्टाप छाप लगावे और स्टाप छाप अपने पास रखे, पोस्ट आफिस की छाप से चोरी पकडा जावे तो झूठ बोल कर सफाई पेश करे, इत्यादि कृत्य करने वालो को सच्चा निडर जैन साधु या लेखक कहा जा सकता है? या यह समझना कि वह स्वय ही अपने को चोर, धूर्त-शिरोमणी, डरपोक और महाकपटी, प्रपची, दुर्मति वाला कहा जाने के कर्तव्य कर रहा है? प्रश्न प्रमाण के लिये देखें –"**शकाए सही समाधान नही**" प्रथमावृति।

(इस उक्त प्रश्न न ३९ का जबाब मदिर मार्गी विख्यात रामचन्द्रसूरि की सप्रदाय के आचार्य भूवन भानु सूरि, गुणरत्न सूरि और जितेन्द्र सूरि के शिष्यो को देना चाहिए क्योंकि ये ही अपने भक्तो द्वारा उत्कृष्टाचारी और सडे दिमाग वाले कहे जाते है अथवा तो हिडौन सीटी के कर्पूर एण्ड कपनी के मिलिभगत के लोग भी इसका जबाब देने की हिम्मत करेगे।

(४०) वराहिसहिता बनाने वाले वराहमिहिर निर्युक्ति कर्ता भद्रबाहु स्वामी के छोटे सगे भाई थे?

(४१) वराहि सहिता और पचसिद्धातिका ग्रन्थ की रचना का काल उसके अत मे लिखा है? या नही? लिखा है तो क्या लिखा है बतावे?

(४२) किस बारहव्रतधारी श्रावक ने मूर्ति पूजा की थी शास्त्र मे ४५ आगम या ७२ आगम मे बतावे।

नोट - इन प्रश्नो का सरलता युक्त जबाब पत्र द्वारा सपर्क सूत्र के स्थान पर लिखित दिया जा सकता है। यदि किसी को पुन प्रश्न पूछना भी हो तो पहले इनका लिखित जबाब देना आवश्यक होगा, तभी वह प्रति प्रश्न पूछने के योग्य अधिकारी गिना जायेगा। अन्यथा वितडावादी एव निदक विद्वेषी ही गिना जायेगा और प्रश्न पूछने का अनधिकारी गिना जायेगा।

की सवत्सरी हेतु पर्यूपण के पाठ को वढा दिया जाय, ऐसे विकृत वने शास्त्र (कल्पसूत्र) को १४ पूर्वी के नाम से अक्षर अक्षर पूरा १२०० श्लोक प्रमाण आगम माना जाय, उसे मूर्खता समझना या विद्वता? और ऐसी परूपणा करने को पाप समझना अथवा धर्म समझना? ऐसी पुरूपणा करने वालो को श्रमण कहना या श्रमण भगवान की आज्ञा के चोर कहना?

(२५) महानिशीथ और कल्प सूत्र मे अनेक शव्द अनेक वाक्य अनेक अश मौलिक सूत्र कर्ता के नही होते हुए भी सूत्र के मूल पाठ मे रखे जाकर विकृतियों से भरे पडे ऐसे सूत्रों को आगम रूप मे स्वीकार किया जाता है तो फिर हरिभद्रसूरि आदि की शुद्ध अनेक रचनाओं को ४५ से वाहर क्यो रखा गया है? अनेक प्रकीर्णको को नंदी सूची मे नाम होते हुए भी ४५ से वाहर क्यो रखा जाता है?

(२६) लिपि काल की हुई भूलो को जानवूझ कर भी प्रमाणिक पुरूपो के आगम रूप की मान कर उनकी प्रामाणिकता को कलकित करना योग्य है? सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र, पर्यूपणा कल्पसूत्र और महानिशीथ सूत्रो के अनेक पाठ स्पप्ट रूप से मौलिक रचना को और मौलिक रचनाकार को दूपित करने वाले उपलव्ध है, उन्हे उन प्रमाणिक पुरूप के रचित आगम के मूल पाठ के वाक्य रूप मे सम्मिलित ही स्वीकारा जाता है, साथ ही ऐसे उन वाक्यो को ''मौलिक नही है विकृति से प्रविप्ट हो गये है, यह भी माना जाता है। ऐसे लकीर के फकीर रहने की क्या आवश्यकता है? अर्थात् विकृति से प्रविप्ट भी मानना और फिर मौलिक पाठ मे सम्मिलित रखे रहना कदापि उचित कर्तव्य नही माना जा सकता। तो फिर सपादन, प्रकाशन या नकल मे, अकल से न्याय क्यो नही किया जाता है। पाठ क्यो नही सुधारा जाता।

(२७) भगवती के अतिम मगल प्रशस्ति को अभयदेवसूरि स्वय लिपिकर्ता की वताकर व्याख्या भी नही करते है। फिर भी आज के सपादक उसे गणधर रचित मूल पाठ मे क्यो स्वीकार करते? यह लाचारी आगम सेवा मे उचित है कि जान वूझ कर लहियो के वाक्य मूल पाठ में रखे जाय? क्या ऐसे व्यक्तियों को आगम प्रकाशन संपादन का अधिकार

उचित है ?

(२८) ठाणाग मे अनेक जगह देवो के चैत्य वृक्ष कहे है – **ठाणाग सूत्र ठाणा ४ उद्दे ३ सूत्र ४४८**, २४ तीर्थंकरो के अशोक वृक्ष के सिवाय चैत्य वृक्ष भी कहे हैं।

तो देवो के और देवाधिदेवो के चैत्यवृक्ष के वृक्ष मे चैत्य क्यो लगा है उसका शब्दार्थ और तात्पर्यार्थ उद्धरण प्रमाण टीका ग्रन्थ आदि सहित स्पष्ट करावे।

(२९) नदी सूत्र ओर ठाणाग सूत्र मे द्वीप सागर प्रज्ञप्ति सूत्र का नाम मिलता है और वह सूत्र प्रकाशित उपलब्ध भी है तो उसे आगम मे क्यो नही माना है।

(३०) स्थानकवासी तेरापथी आदि विभिन्न समुदायो मे जिसतरह ३२ सूत्र की मान्यता के सूत्रो के उन नामो मे कोई मत भेद या विकल्प नही है, किन्तु वे ही ३२ नाम सर्व मान्य है। वैसे ही मूर्ति पूजको मे एकरूपता क्यो नही है। और ४५ मानने मे भी यत्र तत्र विभिन्न विकल्प क्यो दिये जाते है अर्थात् पचकल्प, जीतकल्प, पाक्षिक सूत्र, ओध निर्युक्ति, पिड निर्युक्ति के लिए गणना भेद है अर्थात् कही ४६ नाम लिखते है कही ४७ नाम भी और सख्या ४५ ही कहते है तब कही किसी को छोडते, कही किसी को गिन लेते है। ऐसा क्यो ?

(३१) १ दस प्रकीर्णक के सिवाय नही मानने मे क्या कारण है ?

२ और दस को मानने मे क्या हेतु है नदी सूत्र मे जो नही है उन्हे १० मे क्यो मान रखा है ?

३ प्रकीर्णको के रचियता का नाम ही ज्ञात नही है तो उन्हे आगम मे मानने का क्या आधार है ? उनका काल भी ज्ञात है क्या ?

(३२) हरिभद्र सूरि तो बहुत बडे प्रकाड विद्वान ज्ञानी प्रभावक सत शिरोमणि युग प्रधान आचार्य हुए है, उनके बनाये ग्रन्थ साहित्य अनेक है उन को आगम नही मानने मे क्या हेतु है ?

(३३) ध्यान शतक को आगम क्यो नही मानते है? जो हरिभद्रसूरि के भी पूर्व आचार्य जिनभद्र गणी क्षमाश्रमण द्वारा रचित है।

(३४) **सुत्त गणहर रइयं, तह पत्तेय बुद्ध रइय च।**

सुयकेवलिणा रइयं, अभिन्न दस पुव्विणा रइय।१५६।

अर्थ - गणधर, प्रत्येक बुद्ध, १४ पूर्वी से १० पूर्वी तक के ज्ञानी गीतार्थ श्रमणो द्वारा की गई रचना को सूत्र या आगम कहा जा सकता।

यह वृहत्सग्रहणी की गाथा है इसके अनुसार आपकी आगम मानने की मान्यता है या नही? यदि यह गाथा और ग्रन्थ मान्य है तो ४५ आगम की सिद्धि कैसे कर सकते? और यह गाथा और ग्रन्थ मान्य नही तो किसी आचार्य की रचना को आगम मानो और किसी प्रामाणिक पुरूष के एक भी ग्रथ को आगम नही मानो इसका कारण क्या है? इसमे क्या रहस्य है?

(३५) क्या मदिर बनाने का उपदेश साधु दे सकता है या सचित फूल पानी और अग्नि के पाप से पूजा करना कह सकता है? क्या वर्तमान के मदिरमार्गी साधु इन क्रियाओ की प्रेरणा करते है या उनके पूर्वाचार्यो ने ऐसी प्रेरणा की थी? और ऐसी प्रेरणा करने वालो का पहला महाव्रत दूषित होना माना जा सकता है?

(३६) क्या देवलोक की शास्वत प्रतिमा मे इस अवसर्पिणी के प्रथम और अतिम तीर्थकर का नाम आना उचित है? या यह मदिर मार्गियो की सूत्र मे पाठ प्रक्षिप्त करने की आदत का प्रभाव है?

(३७) मुहपोत्तिय, मुख वस्त्रिका या मुहपति नाम कहते हुए भी उसे रुमाल के समान हाथ मे या कमर से रखना क्या उचित है?

(३८) बोलते समय मुखवस्त्रिका को हाथ मे ही नही ले और मुह के सामने हाथ ले जाने का प्रयत्न भी नही करे तो भी ऐसे साधु अपने आप को जिनाज्ञा मे होना या साधु होना कह सकते ?

(३९) क्या कोई मदिर मार्गी जैन साधु होकर के भी स्वछदमति से एक पुस्तक बनावे, उसे स्थानकवासियो के नाम से छपावे, प्रेस का नाम

नही दे, लेखक का अर्थात् खुद का नाम नही दे, जब कि उन पुस्तको की सप्लाई वह स्वय करे, करावे, प्रेषक मे खुद का गाव का पता न देकर दूसरो की किसीं की स्टाप छाप लगावे और स्टाप छाप अपने पास रखे, पोस्ट आफिस की छाप से चोरी पकडा जावे तो झूठ बोल कर सफाई पेश करे, इत्यादि कृत्य करने वालो को सच्चा निडर जैन साधु या लेखक कहा जा सकता है? या यह समझना कि वह स्वय ही अपने को चोर, धूर्त-शिरोमणी, डरपोक और महाकपटी, प्रपची, दुर्मति वाला कहा जाने के कर्तव्य कर रहा है? प्रश्न प्रमाण के लिये देखें –**''शकाए सही समाधान नही''** प्रथमावृति।

(इस उक्त प्रश्न न ३९ का जबाब मदिर मार्गी विख्यात रामचन्द्रसूरि की सप्रदाय के आचार्य भूवन भानु सूरि, गुणरत्न सूरि और जितेन्द्र सूरि के शिष्यो को देना चाहिए क्योंकि ये ही अपने भक्तो द्वारा उत्कृष्टाचारी और सडे दिमाग वाले कहे जाते है अथवा तो हिडौन सीटी के कर्पूर एण्ड कपनी के मिलिभगत के लोग भी इसका जबाब देने की हिम्मत करेगे।

(४०) वराहिसहिता बनाने वाले वराहमिहिर निर्युक्ति कर्ता भद्रबाहु स्वामी के छोटे सगे भाई थे?

(४१) वराहि सहिता और पचसिद्धातिका ग्रन्थ की रचना का काल उसके अत मे लिखा है? या नही? लिखा है तो क्या लिखा है बतावे?

(४२) किस बारहव्रतधारी श्रावक ने मूर्ति पूजा की थी शास्त्र मे ४५ आगम या ७२ आगम मे बतावे।

नोट - इन प्रश्नो का सरलता युक्त जबाब पत्र द्वारा सपर्क सूत्र के स्थान पर लिखित दिया जा सकता है। यदि किसी को पुन प्रश्न पूछना भी हो तो पहले इनका लिखित जबाब देना आवश्यक होगा, तभी वह प्रति प्रश्न पूछने के योग्य अधिकारी गिना जायेगा। अन्यथा वितडावादी एव निदक विद्वेषी ही गिना जायेगा और प्रश्न पूछने का अनधिकारी गिना जायेगा।

सामान्य पाठको को ज्ञात रहे कि इन उक्त प्रश्नो का समाधान अपनी अपेक्षा से पुष्प २१ एव २२ मे यत्र तत्र कर दिया गया है। किन्तु मूर्तिपूजक जेन अपनी क्या अपेक्षा रखते है और किस तरह समाधान करते है इस आशय से ये प्रश्न दिये गये है।

ज्ञात्वय – उपरोक्त अनेक प्रश्न मूर्तिपूजक विद्वान सतो से लिखित मौखिक पूछे गये है उत्तर न आने से अथवा सतोप पूर्ण उत्तर न आने से ये प्रश्न यहा सकलित किये गये है। यथा – १ स्व आचार्य रामचन्द्रसूरि के विद्वान सतो से अहमदाबाद मे २ आचार्य भद्रकरसूरिजी विद्या शाला वाले अहमदाबाद ३ पन्यास चन्द्रशेखर विजय जी धारागिरी ४ आचार्य भुवनभानु सूरीश्वर जी म सा एव उनके शिष्य मडली से - हुबली ५ आचार्य जितेन्द्रसूरी के शिष्य - घाणेराव ६ धुरधरविजय जी म सा - आवू पर्वत ७ आचार्य जिनप्रभविजय डीसा वाले - अहमदावाद इत्यादि ८ त्यागमूर्ति श्रावक शिरोमणी श्री जौहरीमल जी सा पारख - रावटी (जोधपुर)

ऐतिहासिक निबंध परिशिष्ट समाप्त ।।

परिशिष्ट - १

आवश्यक सूत्र से अतिरिक्त आगमों से संकलित पाठ

प्राक्कथन :-

आवश्यक सूत्र के ६ आवश्यक मे आये पाठो के अतिरिक्त भी कई सूत्रो मे आये पाठ भी प्रतिक्रमण की परंपरा में सम्मिलित है। ये कब कैसे सम्मिलित हुए इस विषयक कोई इतिहास परंपरा प्राप्त नही होती है।

आवश्यक सूत्र के मूल पाठ मे तो केवल श्रमणो के प्रतिक्रमण योग्य पाठ ही है श्रावक के योग्य पाठ नहीं है। श्रावको के भी प्रतिक्रमण करने का उल्लेख अनुयोग द्वार सूत्र मे है। अत: इस आवश्यक सूत्र की चूलिका के रूप मे या अन्य किसी भी रूप मे वे पाठ रहे होगे ऐसी सम्भावना होती है।

आज वह अलग रूप मे नहीं होने से एवं अन्य आगमो मे वैसे आवश्यक अनेक पाठ उपलब्ध होने से यह स्वीकार करना पड रहा है कि अतिरिक्त पाठ अन्य आगमो से सकलित होकर परंपरा मे चल रहे हैं। इन संकलित पाठो में कई आवश्यक एवं उपयोगी पाठ है।

यहां पहले श्रमण प्रतिक्रमण मे उपयोगी पाठो को देकर फिर श्रावक के अणुव्रत दिये हैं।

करेमि भंते का पाठ, इच्छामि ठामि का पाठ श्रमण श्रमणोपासक के एक ही है कुछ शब्दों का परिवर्तन है। ये दोनो पाठ श्रमण योग्य तो मूल आवश्यक सूत्र मे ही उपलब्ध है। श्रमणोपासक योग्य इस प्रकरण मे दिये हैं।

यह संकलन आगम निर्युक्ति भाष्य एवं अन्य साहित्य से भी किया गया है।

फोटो टाईपसेटिंग व मुद्रण **माणक ऑफसेट प्रिण्टर्स**, म. गां. अस्पताल रोड़ जोधपुर फोन-37838&37839

आवश्यक सूत्र से अतिरिक्त पाठ

अन्य आगमों से संकलित

(उभय काल प्रतिक्रमण करने की विधि मे आवश्यक एवं प्रचलित अनेक पाठ आवश्यक सूत्र मे नहीं है किन्तु अन्य आगमो मे है अतः उन्हे यहां संकलित एवं संपादित किया है)

वंदन पाठ -

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेमि वंदामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि मत्थएण वंदामि।

- रायप्पसेणीय सूत्र ८

अठारह पाप स्थान का पाठ -

१. पाणाइवाए २. मुसावाए ३. अदिण्णादाणे ४. मेहुणे ५. परिग्गहे ६. कोहे ७. माणे ८. माया ९. लोहे १०. पेज्जे ११. दोसे १२. कलहे १३. अब्भक्खाणे १४. पेसुण्णे १५. परपरिवाए १६. रइअरइ १७. मायामोसे १८. मिच्छादंसण सल्ले।

— भगवती श. १२ उद्दे. ५

— ठाणांग सूत्र ठा. १ के आधार से

करेमि भंते का पाठ (श्रावकोपयोगी)

करेमि भंते! समाइयं, सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जावनियमं पज्जुवासामि, दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।।

— हरिभद्रीयावश्यक पृ. ४५४

इच्छामि ठामि का पाठ (श्रावकोपयोगी)

इच्छामि ठामि काउस्सग्गं जो मे देवसिओ अइयारो कओ, काइओ, वाइओ, माणसिओ उस्सुत्तो उम्मग्गो, अकप्पो, अकरणिज्जो, दुज्झाओ, दुव्विचिंतिओ, अणायारो, अणिच्छिअव्वो, असावगपाउग्गो नाणे तह दंसणे चरित्ताचरित्ते, सुए,

सामाइए, तिण्हं गुत्तीणं, चउण्हं कसायाणं, पंचण्हमणुव्वयाणं, तिण्हं गुणव्वयाणं, चउण्हं सिक्खावयाणं, बारसविहस्स सावगधम्मस्स, जं खंडियं, जं विराहियं तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ -

काउस्सग्गे मण चलिए वय चलिये काय चलिये अट्टज्झाणे झाइए रुद्दज्झाणे झाइए तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

श्रमणक्षमापना पाठ –

आयरिय उवज्झाए, सीसे साहम्मिए कुल गणे य।
जे मे केई कसाया, सव्वे तिविहेण खामेमि (१)
सव्वस्स समणसंघस्स, भगवओ अंजलिं करिअ सीसे।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहमंपि (२)
सव्वस्स जीवरासिस्स, भावओ धम्म निहिय नियचित्तो।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहमंपि (३)

मरण समाधि प्रकीर्णक गा. ३३५:३३६
- संस्तारक प्रकीर्णक गा. १०४, १०५

ज्ञानातिचार पाठ –

सुय णाणस्स इमे चउद्दस अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं—वाइद्धं, वच्चामेलियं, हीणक्खरं, अच्चक्खरं, पयहीणं, विणयहीणं, जोगहीणं, घोसहीणं, सुट्ठुदिण्णं, दुट्ठुपडिच्छियं, अकाले कओ सज्झाओ, काले न कओ सज्झाओ, असज्झाए सज्झाइयं, सज्झाए न सज्झाइयं, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

— आव. ४ के अंतरगत

दर्शन सम्यक्त्व का एवं अतिचार का पाठ :-

अरिहंतो महदेवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो।
जिणपण्णत्तं तत्तं, इअ सम्मत्तं मए गहियं (१)
परमत्थसंथवो वा, सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वा वि।
वावण्णकुदंसणवज्जणा, इय सम्मत्तसद्दहणा (२)
पंचिंदिय-संवरणो तह णवविह-बंभचेर गुत्तिधरो।
चउविह-कसाय-मुक्को इअ अट्ठारसगुणेहिं संजुत्तो (१)
पंच महव्वय जुत्तो, पंचविहायार-पालण समत्थो।

पंचसमिओ तिगुत्तो, छत्तीस गुणो गुरुमज्झ (२)

- आव. नि. अ. ४

एयस्स समत्तस्स पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोऊं-संका कंखा वितिगिच्छा परपासंड पसंसा परपासंड संथवो, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

- आव. नि. अ. ६ परि.

- उपासक दशा सूत्र

संलेखना के अतिचार का पाठ -

अपच्छिमा मारणंतिया संलेहणा झूसणा आराहणया, इमीए संलेहणाए पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोऊं— इहलोगासंसप्पओगे परलोगासंसप्पओगे जीवियासंसप्पओगे मरणासंसप्पओगे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

— उपासकदशा सूत्र - १

— आव. नि. ४

प्रतिक्रमण आज्ञा एवं प्रतिज्ञा पाठ -

इच्छामि णं भंते तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे देवसियं पडिक्कमण ठाएमि देवसियं णाण-दंसण-चरित्ताचरित्त तव अइयार चिंतणत्थं करेमि काउस्सग्गं।

— आव. नि. ४

कायोत्सर्ग आज्ञा पाठ -

इच्छामि ण भंते तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे देवसियं पायच्छित्तं विसोहणत्थं करेमि काउस्सग्गं।

प्रतिक्रमण उपसंहार पाठ -

सामाइयं चउवीसत्थवं वंदण पडिक्कमणं काउस्सग्गं पच्चक्खाणं एयं सडावस्सयं तम्मणे तच्चित्ते तल्लेसे, तदज्झवसिए, तत्तिव्वज्झवसाणे, तदट्ठोवउत्ते, तदप्पियकरणे, तब्भावणाभाविए, अणत्थ कत्थइ मण अकरेमाणे एगग्गचिनेण न कयं, आलस्सएणं पमाएणं विक्खित चित्तेणं कय, तस्स मिच्छामि दुक्कड।

- अनु. सू. २१

प्रथम अणुव्रत

पढमं अणुव्वयं थुलाओ पाणाइवायाओ वेरमणं तसजीवे बेइंदिय तेइंदिय

चउरिंदिय पंचिंदिय संकप्पओ हणण हणावण पच्चक्खाणं ससरीरं सविसेसं पीड़ाकारिणो, ससम्बन्धी सविसेसं पीड़ाकारिणो वा वज्जिऊण जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा, एअस्स थूलग पाणाइवाय वेरमणस्स समणोवासएण पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा – १ बंधे २ वहे ३ छविच्छेए ४. अइ भारे ५. भत्तपाणविच्छेए। जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

दूसरा अणुव्रत -

बीअं अणुव्वयं थूलाओ मुसावायाओ वेरमणं से य मुसावए पंच विहे पन्नत्ते तंजहा- १ कन्नालीए २ गवालीए ३ भोमालीए ४ नासावहारे ५ कूड सक्खिज्जे इच्चेवमाइस्स थूल-मुसावायस्स पच्चक्खाणं जावज्जीवाए दुविहं तिविहेण न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा एअस्स थूलग-मुसावाय-वेरमणस्स समणोवाएण पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तजहा - १ सहसब्भक्खाणे २ रहस्सब्भक्खाणे ३ सदारमतभेए ४ मोसोवएसे ५ कूडलेहकरणे। जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड।

तीसरा अणुव्रत -

तइयं अणुव्वय थूलाओ अदिण्णादाणाओ वेरमण से य अदिण्णादाणे पंचविहे पन्नत्ते तंजहा- १ खत्तखणण २ गंठिभेअणं ३ जंतुग्घाडणं ४ पडिवयवत्थुहरण ५ ससामिअ वत्थुहरणं इच्चेवमाइस्स थूल अदिण्णादाणस्स पच्चक्खाणं जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न करावेमि मणसा वयसा कायसा। एअस्स तइयस्स थूलग अदिण्णादाण-वेरमणस्स समणोवासएण पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा - १ तेनाहडे २ तक्करप्पओगे ३ विरुद्धरज्जाइक्कमे ४ कूडतुल्लकूडमाणे ५ तप्पडिरुवगववहारे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

चौथा अणुव्रत -

चउत्थ अणुव्वयं सदार संतोसिए परदार विवज्जण रुव थूलाओ मेहुणाओ वेरमणं जावज्जीवाए, तं दिव्व दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा। माणुस्सं तिरिक्खजोणियं अवसेसं एगविह एगविहेणं न करेमि कायसा, एअस्स थूलग- मेहुणवेरमणस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तजहा - १ इत्तरिय परिग्गहिया गमणे २ अपरिग्गहिया गमणे ३ अणंगकिड्डा ४ पर विवाह करणे ५ कामभोग तिव्वाभिलासे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड।

पांचवां अणुव्रत -

पंचमं अणुव्वयं थूलाओ परिग्गहाओ वेरमणं खेत्तवत्थुणं जहापरिमाणं २ हिरण्ण सुवण्णाणं जहा परिमाणं ३ धणधन्नाणं जहापरिमाणं ४ दुप्पयचउप्पयाणं जहापरिमाणं ५ कुवियस्स जहापरिमाणं एवं मए जहापरिमाणं कयं तओ अइरित्तस्स परिग्गहस्स पच्चक्खाणं जावज्जीवाए, एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा वयसा कायसा। एअस्स थूलग परिग्गह परिमाण वयस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरिव्वा तंजहा - १ खेत्तवत्थुप्पमाणाइक्कमे २ हिरण्ण-सुवण्ण पमाणाइक्कमे ३ धणधन्न पमाणाइक्कमे ४ दुप्पयचउप्पया पमाणाइक्कमे ५ कुविय पमाणाइक्कमे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

छट्ठा अणुव्रत -

छट्ठं दिसिव्वयं उड्ढदिसाए जहापरिमाणं, अहोदिसाए जहापरिमाणं, तिरियदिसाए जहापरिमाणं एवं मए जहापरिमाणं कयं तओ सेच्छाए काएणं गंतूण पंचासवासेवणस्स पच्चक्खाणं जावज्जीवाए एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा वयसा कायसा। एअस्स दिसिव्वयस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा - उड्ढदिसि पमाणाइक्कमे २ अहोदिसि पमाणाइक्कमे ३ तिरियदिसि पमाणाइक्कमे ४ खेत्तवुड्ढि ५ सइअंतरद्धा, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

सातवां अणुव्रत -

सत्तमे वए उवभोग परिभोग विहिं पच्चक्खायमाणे- १. उल्लणियाविहि २. दंतणविहि ३. फलविहि ४. अब्भंगणविहि ५. उव्वट्टणविहि ६. मज्जणविहि ७. वत्थविहि ८. विलेवण विहि ९. पुप्फविहि १०. आभरणविहि ११. धूवणविहि १२. पेज्जविहि १३. भक्खणविहि १४. ओदणविहि १५. सूपविहि १६. विगयविहि १७. सागविहि १८. महुरविहि १९. जेमणविहि २०. पाणीयविहिं २१. मुखवासविहि २२. वाहणविहि २३. उवाहणविहि २४. सयणविहिं २५. सचित्तविहि २६. दव्वविहि इच्चाइण जहापरिमाणं कयं तओ अइरित्तस्स उवभोगपरिभोगस्स पच्चक्खाणं जावज्जीवाए एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा वयसा कायसा। सत्तमे उवभोगपरिभोगव्वए दुविहे पन्नत्ते तंजहा - भोयणओ कम्मओ य - तत्थणं भोयणओ समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरिव्वा तंजहा- १. सचित्ताहारे २. सचित्तपडिबद्धाहारे ३. अपक्कोसहिभक्खणया ४. दुपक्कोसहिभक्खणया ५. तुच्छोसहिभक्खणया एवं कम्मओणं समणओवासएणं पण्णरसकम्मादाणाइं जाणियव्वाइं न समायरियव्वाइं

तंजहा - १. इंगालकम्मे २. वणकम्मे ३. साड़ीकम्मे ४. भाड़ीकम्मे ५. फोडीकम्मे ६. दंतवाणिज्जे ७. लक्खवाणिज्जे ८. रसवाणिज्जे ९. केसवाणिज्जे १०. विषवाणिज्जे ११. जंतपीलणकम्मे १२. निल्लंछणकम्मे १३. दवग्गि दावणया १४. सरदह तलाय परिसोसणया १५. असइजण पोसणया जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

आठवां अणुव्रत -

अट्ठमं अणट्ठदंड वेरमणव्वयं से य अणट्ठदंडे चउव्विहे पन्नते तंजहा -

१. अवज्झाणाचरिए २. पमायाचरिए ३. हिंसप्पयाणे ४. पावकम्मोवएसे इच्चेवमाइस्स अणट्ठादंडासेवणस्स पच्चक्खाणं जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा। एअस्स अट्ठमस्स अणट्ठदंड वेरमणस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा - १. कंदप्पे २. कुक्कुइए ३. मोहरिए ४. संयुत्ताहिकरणे ५. उवभोग-परिभोगाइरित्ते जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

नववां अणुव्रत -

नवमं सामाइयव्वयं सावज्ज जोग वेरमण रुवं जावनियमं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा। एअस्स नवमस्स सामाइयव्वयस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न सामायरियव्वा तंजहा - १. मणदुप्पणिहाणे २. वय दुप्पणिहाणे ३. कायदुप्पणिहाणे ४. सामाइयस्स सइ अकरणया ५. सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

दसवां अणुव्रत -

दसमं देसावगासियव्वयं दिणमज्झे पच्चूसकालाओ आरब्भ पुव्वादिसु छसु दिसासु जावइयं परिमाणं कयं तओ अइरित्तं सेच्छाए काएणं गंतूणं अन्नेवा पेहिऊण पंचासवासेवणस्स पच्चक्खाणं जाव अहोरत्तं दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा, अह य छसु दिसासु जावइयं परिमाणं कयं तम्मज्झेवि जावइयाणं दव्वाइणं परिमाणं कयं तओ अइरित्तस्स उवभोग परिभोगस्स पच्चक्खाणं जाव अहोरत्तं एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा वयसा कायसा। एअस्स दसमस्स देसावगासिय वयस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा:- १. आणवणप्पओगे २. पेसवणप्पओगे ३. सद्दाणुवाए ४. रुवाणुवाए ५. बहियापुग्गलपक्खेवे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

ग्यारहवां अणुव्रत -

एकारसमं पोसह वयं असणपाण खाइम साइम पच्चक्खाणं, अबंभपच्चक्खाणं उम्मुक मणि सुवण्णाइ पच्चक्खाणं, मालावण्णग विलेवणाइ पच्चक्खाणं, सत्यमूसलाइ सावज्जजोग पच्चक्खाणं जाव अहोरत्तं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा। एअस्सएकारसमस्स पोसहवयस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा - १. अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय सिज्जासंथारए २. अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय सिज्जा संथारए ३. अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय उच्चारपासवणभूमी ४. अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय उच्चारपासवण भूमि, ५. पोसहस्स सम्मं अणणुपालणया, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

बारहवां अणुव्रत -

बारसमं अतिहि-संविभागवयं असण पाण खाइम साइम वत्थ पडिग्गह कंबल पायपुंछणेणं, पडिहारिय पीढ फलग सेज्जा सथारएणं, ओसह भेसज्जेणं पडिलाभेमाणे विहरामि। एयस्स अतिहिसंविभागवयस्स पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा - सचित्त निक्खेवणया, सचित्तपिहणया कालाइक्कमे, परववएसे, मच्छरियाए जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

— उपासक दशा. अ. १,
— आव. नि. ४,

साधु का कषाय पानी में खेंची गई लकीर के समान तुरंत मिट जाना चाहिये इसे संज्वलन कषाय कहते हैं। एक दिन से अधिक कषाय रंज भाव रहने पर साधुत्व नहीं रहता है गुणस्थान छूट जाता है।

परिशिष्ट - २

- अन्य प्रचलित पाठ -

प्राक्कथन-

प्रचलित प्रतिक्रमण की विधि मे कई नये हिन्दी गुजराती के पाठ भी सम्मिलित हो गये हैं एवं कई मिश्रित पाठ भी (कुछ अर्धमागधी कुछ हिन्दी, गुजराती) प्रचलित है। उनका संकलन अल्पाश रूप मे दिया जा रहा है।

क्यो कि श्वे मूर्तिपूजक समाज मे तो बीसो पच्चासो ऐसे पाठ मिल चुके हैं जिसमे प्राकृत पाठ भी है, गद्य पद्य भी है, दोहे सवैया स्तुतिये उपदेशी भजन आदि कई प्रकरण प्रतिक्रमण के मौलिक निश्चित अग बन गये हैं। इसी प्रकार अन्य समुदायो मे भी ऐसे मिश्रित विभिन्न प्रचलन है जिनका संकलन यहां देना संभव भी कम है एव उपयोगी भी नही लगता है इसलिये अल्पांश संकलन दिया जा रहा है यथा- बड़ी संलेखना, पांच पद की भाव वदना, चौरासी लाख जीव योनि का पाठ, श्रावक क्षमापना पाठ आदि।

****

******

*****

***

*

पांच पद की भाव वंदना

पहिले पद श्री अरिहंत भगवान् जघन्य बीस तीर्थंकरजी उत्कृष्ट एक सौ साठ तथा एक सौ सित्तर देवाधिदेवजी, उनमे वर्तमान काल मे बीस विहरमानजी महाविदेह क्षेत्र मे विचरते है। एक हजार आठ लक्षण के धरणहार, चौतीस अतिशय, पैंतीस वाणी करके विराजमान चौंसठ इन्द्रो के वन्दनीय, पूजनीय, अठारह दोष रहित, बारह गुण सहित, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अनन्त बलवीर्य, दिव्यध्वनि, भामण्डल, स्फटिक सिंहासन, अशोकवृक्ष, कुसुमवृष्टि, देवदुन्दुभि, छत्र धरावे, चंवर बिजावे, पुरुषकार-पराक्रम के धरणहार, अढ़ाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र मे विचरते हैं, केवलज्ञान, केवल दर्शन के धरणहार, सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के जाननहार।

सवैया–

नमूं श्री अरिहन्त, कर्मों का किया अन्त,
हुआ सो केवलवन्त, करूणा-भण्डारी है।
अतिशय चौतीस धार, पैंतीस वाणी उच्चार,
समझावे नर नार, पर उपकारी है।।
शरीर सुन्दराकार, सूरज सो झलकार,
गुण है अनन्तसार, दोष परिहारी है।
कहत है तिलोकरिख, मन वच काया करी,
लुली लुली बारम्बार, वन्दना हमारी है।।

ऐसे श्री अरिहन्त भगवन्त दीनदयाल महाराज आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो हे अरिहन्त भगवन्! मेरा अपराध बारम्बार क्षमा करिये। हाथ जोड़ मान मोड़, शीश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से १००८ बार वन्दना नमस्कार करता हूँ।

"तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेमि वन्दामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि मत्थएण वन्दामि।"

आप मांगलिक हो, उत्तम हो। हे स्वामिन्! हे नाथ! आपका इस भव, परभव, भव-भव मे सदाकाल शरण हो।

****

दूजे पद श्री सिद्ध भगवान् महाराज पन्द्रह भेदे सिद्ध हुए हैं। आठ कर्म खपा कर मोक्ष पहुंचे हैं। १. तीर्थसिद्धा, २. अतीर्थसिद्धा, ३. तीर्थंकरसिद्धा, ४.

अतीर्थंकर सिद्धा, ५. स्वयंबुद्धसिद्धा, ६. प्रत्येकबुद्धसिद्धा, ७. बुद्धबोधितसिद्धा, ८. स्त्रीलिंगसिद्धा, ९. पुरुषलिंग सिद्धा, १०. नपुंसकलिंगसिद्धा, ११. स्वलिंगसिद्धा, १२. अन्यलिंग सिद्धा, १३. गृहस्थलिंगसिद्धा, १४. एकसिद्धा, १५. अनेकसिद्धा। जहां जन्म नही, जरा नहीं, मरण नहीं, भय नहीं, रोग नही, शोक नही, दुःख नही, दारिद्र्य नही, कर्म नहीं, काया नहीं, मोह नही, माया नही, चाकर नही, ठाकर नही, भूख नहीं, तृषा नही ज्योत मे ज्योत के समान विराजमान, सकल कार्य सिद्ध कर के, चौदह प्रकारे, पन्द्रह भेदे अनन्त सिद्ध भगवन्त हुए हैं। १. अनन्त ज्ञान, २. अनन्त दर्शन, ३. अनन्त सुख, ४. क्षायिक समकित, ५. अटल अवगाहना,. ६. अमूर्तिक, ७. अगुरूलघु, ८. अनन्त आत्मसामर्थ्य- ये आठ गुण कर के सहित है।

सवैया-

सकल करम टाल, वश कर लियो काल,
मुगति मे रह्या माल, आत्मा को तारी है।
देखत सकल भाव, हुआ है जगत राव,
सदा ही क्षायिक भाव, भये अविकारी है।
अचल अटल रूप, आवे नही भव-कूप,
अनूप स्वरुप ऊप, ऐसे सिद्ध धारी है।
कहत है तिलोकरिख, बताओ ए वास प्रभु,
सदा ही उगंते सूर्य, वन्दना हमारी है।

ऐसे श्री सिद्ध भगवन्तजी महाराज आपकी अविनय आशातना की हो, तो बारम्बार हे सिद्ध भगवन्! मेरा अपराध क्षमा करिये। हाथ जोड़, मान मोड, शीश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से १००८ बार वन्दना नमस्कार करता हूँ यावत् सदाकाल शरण हो।

****

तीजे पद श्री आचार्यजी महाराज छत्तीस गुण कर के विराजमान, पांच महाव्रत पाले, पांच आचार पाले, पाच इन्द्रिय जीते, चार कषाय टाले, नव वाड़ सहित शुद्ध ब्रह्मचर्य पाले, पांच समिति तीन गुप्ति शुद्ध आराधे, ये छत्तीस गुण। आठ सम्पदा— १. आचार सम्पदा, २. श्रुत सम्पदा, ३. शरीर सम्पदा, ४. वचन सम्पदा, ५. वाचना सम्पदा, ६. मति सम्पदा, ७. प्रयोग मति सम्पदा और ८. संग्रह परिज्ञा सम्पदा सहित है।

सवैया-

गुण है छत्तीस पूर, धरत धरम उर,
मारत करम क्रूर, सुमति विचारी है।
शुद्ध सो आचारवन्त, सुन्दर है रूप कन्त,
भणिया सब ही सिद्धान्त, वाचणी सुप्यारी है।।
अधिक मधुर वेण, कोई नही लोपे केण,
सकल जीवो के सेण, किरत अपारी है।
कहत है तिलोकरिख, हितकारी देते सीख,
ऐसे आचारजजी को वन्दना हमारी है।।

ऐसे श्री आचार्यजी महाराज न्याय पक्ष वाले, भद्रिक परिणामी, परम पूज्य, कल्पनीय-अचित्त वस्तु के ग्रहणहार, सचित्त के त्यागी, वैरागी, महागुणी, गुणो के अनुरागी, सौभागी है। ऐसे श्री आचार्यजी महाराज आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो, तो बारम्बार हे आचार्यजी महाराज! मेरा अपराध क्षमा करिये। हाथ जोड़, मान मोड़, शीश नमाकर, तिक्खुत्तो के पाठ से १००८ बार वन्दना नमस्कार करता हूँ। यावत् सदाकल शरण हो।

****

चौथे पद श्री उपाध्यायजी महाराज ग्यारह अंग, बारह उपांग, चरणसत्तरी, करणसत्तरी, इन पच्चीस गुण कर के सहित, ग्यारह अंग का पाठ अर्थ सहित सम्पूर्ण जाने, १४ पूर्व के पाठक और निम्नोक्त बत्तीस सूत्रो के जानकार है—

ग्यारह अंग- आचारांग, सूयगडांग, ठाणाग, समवायांग, भगवती, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा अंतगडदशा, अणुत्तरोववाई, प्रश्नव्याकरण, विपाक सूत्र।

बारह उपांग- उववाई, रायप्पसेणीय, जीवाभिगम, पन्नवणा, जम्बूदीवपन्नत्ती, चदपन्नत्ती, सूरपन्नत्ती, निरयावलिया, कप्पवडसिया, पुप्फिया, पुप्फचूलिया, वण्हिदशा।

चार मूल सूत्र- उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नन्दी सूत्र और अनुयोगद्वार सूत्र।

चार छेद-दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प, व्यवहार सूत्र, निशीथ सूत्र और बत्तीसवां आवश्यक सूत्र तथा अनेक ग्रन्थो के जानकार, सात नय, निश्चय-व्यवहार, चार प्रमाण आदि स्वमत तथा अन्यमत के जानकार, मनुष्य या देवता कोई भी विवाद मे जिनको छलने मे समर्थ नही, जिन नही पण

जिन सरीखे, केवली नहीं पण केवली सरीखे हैं।

सवैया-

पढ़त ग्यारह अंग, करमो सुं करे जंग,
पाखण्डी को मान भंग, करण हुशियारी है।
चवदे पूरब धार, जानत आगम सार,
भवियन के सुखकार, भ्रमता निवारी है।।
पढावे भविक जन, स्थिर कर देते मन,
तपकर तावे तन, ममता को मारी है।
कहत है तिलोकरिख, ज्ञान-भानु परतिख,
ऐसे उपाध्यायजी को वन्दना हमारी है।।

ऐसे श्री उपाध्यायजी महाराज मिथ्यात्वरूप अन्धकार के मेटनहार, समकित रूप उद्योत के करणहार, धर्म से डिगते प्राणी को स्थिर करे, सारए वारए धारए इत्यादि अनेक गुण करके सहित है। ऐसे श्री उपाध्यायजी महाराज आपकी अविनय आशातना की हो, तो बारम्बार हे उपाध्यायजी महाराज! मेरा अपराध क्षमा करे। हाथ जोड़, मान मोड़, शीश नमाकर तिक्खुतो के पाठ से १००८ बार वन्दना नमस्कार करता हूँ। यावत् सदाकाल शरण हो।

****

पाचवे पद "णमो लोए सव्वसाहूण"— अढ़ाईद्वीप पन्द्रह क्षेत्र रूप लोक के विषय सर्व साधुजी महाराज जघन्य दो हजार करोड, उत्कृष्ट नव हजार करोड़ जयवन्ता विचरे जिनमे जघन्य दो करोड़ उत्कृष्ट नौ करोड़ केवली भगवंत विचरण करे। पांच महाव्रत पाले, पाच इन्द्रिय जीते, चार कषाय टाले, भावसच्चे, करणसच्चे, जोगसच्चे, क्षमावन्त, वैराग्यवन्त, मनसमाधारणया, वयसमाधारणया, कायसमाधारणया, नाणसम्पन्ना, दंसणसम्पना, चारित्तसम्पन्ना, वेदनीयसमाअहियासनीया, मरणातिय समाअहियासनीया—ऐसे सत्ताईस गुण कर के सहित है। पाच आचार पाले, छह काय की रक्षा करे, सात कुव्यसन छोड़े, आठ मद छोड़े, नववाड सहित ब्रह्मचर्य पाले, दस प्रकार यति धर्म धारे, बारह भेदे तपस्या करे, सत्रह भेदे संयम पाले, अठारह पापो को त्यागे, बाईस परीषह जीते, तीस महामोहनीय कर्म निवारे, तेतीस आशातना टाले, बयालीस दोष टाल आहार पानी लेवे, सैतालीस दोष टाल के भोगे, बावन अनाचार टाले, बुलाये आवे नही, नेतिया जीमे नही, सचित्त के त्यागी, अचित्त के भोगी, लोच करे, नंगे पैर चाले इत्यादि काय-क्लेश करे और मोह ममता

रहित है।

सवैया-

आदरी संयम भार, करणी करे अपार,
समिति गुपति धार, विकथा निवारी है।
जयणा करे छह काय, सावद्य न बोले वाय,
बुझाई कषाय लाय, किरिया भण्डारी है।.
ज्ञान भणे आठो याम, लेवे भगवन्त नाम,
धरम को करे काम, ममता को मारी है।
कहत है तिलोकरिख करमो का टाले विख,
ऐसे मुनिराज जी को वन्दना हमारी है।।

ऐसे श्री मुनिराज महाराज आपकी दिवस सम्बन्धी कोई अविनय आशातना की हो, तो बारम्बार हे मुनिराज! मेरा अपराध क्षमा करे। हाथ जोड़, मान मोड़, शीश नमाकर, तिक्खुतो के पाठ से १००८ बार वन्दना नमस्कार करता हूँ यावत् सदाकाल शरण हो।

दोहे-

अनन्त चौबीसी जिन नमूं, सिद्ध अनन्ता करोड़।
केवलज्ञानी गणधरा, वन्दूं बे कर जोड़ (१)
दोय करोड़ केवलधरा, विहरमान जिन बीस।
सहस्र युगल कोड़ी नमूं, साधु नमूं निश दीस (२)
धन साधु धन साध्वी, धन धन है जिन धर्म।
ये समरयां पातक झरे, टूटे आठो कर्म (३)
अरिहत सिद्ध समरूं सदा, आचारज उवज्झाय।
साधु सकल के चरण को,.वन्दू शीश नमाय (४)
अंगूठे अमृत वसे, लब्धि तणा भण्डार।
श्री गुरु गौतम समरिये, वांछित फल दातार (५)

- श्रावक क्षमापना पाठ -

अढाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र मे तथा बाहर श्रावक-श्राविका दान देवे, शील पाले, तपस्या करे, शुद्ध भावना भावे, संवर करे, सामायिक करे, पौषध करे, प्रतिक्रमण करे, तीन मनोरथ चिन्तवे, चौदह नियम चितारे, जीवादिक नव पदार्थ जाने, श्रावक के इक्कीस गुण कर के युक्त, एक व्रतधारी, जाव बारह

व्रतधारी, भगवन्त की आज्ञा मे विचरे, ऐसे बड़ों से हाथ जोड़, पांव पड़ के क्षमा मांगता हूँ आप क्षमा करे। आप क्षमा करने योग्य हैं और शेष सभी से क्षमा मांगता हूँ।

– चौरासी लाख जीवयोनि का पाठ

सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अप्काय, सात लाख तेउकाय, सात लाख वायुकाय, दस लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय, चौदह लाख साधारण वनस्पतिकाय, दो लाख बेइन्द्रिय, दो लाख तेइन्द्रिय, दो लाख चउरिन्द्रिय, चार लाख देवता, चार लाख नारकी, चार लाख तिर्यंच पंचेन्द्रिय, चौदह लाख मनुष्य—ऐसे चार गति मे चौरासी लाख जीव-योनि के सूक्ष्मबादर, पर्याप्त-अपर्याप्त जीवो मे से किसी जीव का हिलते, चलते, उठते, बैठते, सोते, जागते, हनन किया हो, कराया हो, हनता प्रति अनुमोदन किया हो, छेदा हो, भेदा हो, किलामणा उपजाई हो, तो मन वचन काया कर के अठारह लाख चौबीस हजार एक सौ बीस (१८२४१२०) प्रकारे, जो मे देवसिंओं अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

– प्रतिक्रमण का समुच्चय पाठ –

पहला सामायिक, दूसरा चौवीसत्थव, तीसरा वन्दना, चौथा प्रतिक्रमण, पांचवां कायोत्सर्ग, छठा प्रत्याख्यान, इन छह आवश्यको मे जानते, अजानते जो कोई अतिचार दोष लगा हो और पाठ उच्चारण करते काना, मात्रा, अनुस्वार, पद, अक्षर न्यूनाधिक आगे पीछे कहा हो, तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण, अव्रत का प्रतिक्रमणं, प्रमाद का प्रतिक्रमण, कषाय का प्रतिक्रमण, अशुभयोग का प्रतिक्रमण, इन पांच प्रतिक्रमण मे से कोई प्रतिक्रमण न किया हो, तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

शम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्था, ये व्यवहार,- समकित के पांच लक्षण हैं। इनको मैं धारण करता हूँ।

गये काल का प्रतिक्रमण, वर्तमान काल का संवर और भविष्य (आगामी) काल का पच्चक्खाण, इसमे जो कोई दोष लगा हो, तो तस्स मिच्छामि दुक्कड।

देव अरिहन्त, गुरू निर्ग्रन्थ, केवली भाषित दयामय धर्म, ये तीन तत्व सार, संसार असार, भगवन्त महाराज आपका मार्ग सच्चं सच्चं सच्चं। थव थुई

मंगलं।

१४ समुर्च्छिम मनुष्य का पाठ

१. उच्चारेसु वा २. पासवणेसु वा ३. खेलेसु वा ४. सिंघाणेसु वा ५. वंतेसु वा ६. पित्तेसु वा ७. सोणिएसु वा ८. पुइएसु वा ९. सुक्केसु वा १०. सुक्कपुग्गलपरिसाडिएसु वा ११. विगयजीवकलेवरेसु वा १२. इत्थीपुरिस संजोगेसु वा १३. नगरनिधमणेसु वा १४. सव्वेसु चेव असुइ-ठाणेसु वा। इन चौदह स्थानो मे उत्पन्न होने वाले सम्मुर्च्छिम मनुष्यो की विराधना की हो, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड।

पच्चीस मिथ्यात्व का पाठ -

१- जीव को अजीव श्रद्धे तो मिथ्यात्व, २- अजीव को जीव श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ३- धर्म को अधर्म श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ४- अधर्म को धर्म श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ५- साधु को असाधु श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ६- असाधु को साधु श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ७- मोक्ष के मार्ग को संसार का मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ८- ससार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ९- मुक्त को अमुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व, १०- अमुक्त को मुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ११- आभिग्रहिक मिथ्यात्व, १२- अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व, १३- अभिनिवेशिक मिथ्यात्व, १४- सांशयिक मिथ्यात्व, १५- अनाभोग मिथ्यात्व, १६- लौकिक मिथ्यात्व, १७- लोकोत्तर मिथ्यात्व, १८- कुप्रावचनिक मिथ्यात्व, १९- जिन धर्म से न्यून श्रद्धे तो मिथ्यात्व, २०- जिन धर्म से अधिक श्रद्धे तो मिथ्यात्व, २१- जिन धर्म से विपरीत श्रद्धे तो मिथ्यात्व, २२- अक्रिया मिथ्यात्व, २३- अज्ञान मिथ्यात्व, २४- अविनय मिथ्यात्व, २५- आशातना मिथ्यात्व। ऐसे पच्चीस प्रकार के मिथ्यात्व मे से किसी मिथ्यात्व का सेवन किया हो, कराया हो, करते हुए का अनुमोदन किया हो, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड।

समुच्चय पच्चक्खाण का पाठ

गंठिसहियं, मुट्ठिसहियं, नमुक्कारसहियं, पोरिसिय, साड्ढ पोरिसियं तिविहंपि चउविहपि आहार— असण, पाण, खाइमं, साइमं, अपनी-अपनी धारणा प्रमाणे पच्चक्खाण, अनन्त्थणाभोगेण, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेण वोसिरामि।

अतिचार चिंतन विधि

(प्रथमावश्यक में)

अतिचार चिंतन की दो प्रकार की विधि है। यथा- १ दिनचर्या चिंतन विधि

२. छकाया, महाव्रत, समिति, गुप्ति के स्वरुप के आधार से अतिचार चिंतन विधि।

१. सुबह सूर्योदय बाद मुहपति प्रतिलेखन से लेकर जो भी दैनिक कार्य, वचन प्रयोग आदि किये हो उनको क्रमिक स्मरण करते हुए सोचना कि उसमे कही कोई भी संयम कल्प विधि मे अतिचार दोष तो नही लगा, कोई अविधि तो नहीं हुई? यो क्रमश: शाम के प्रतिक्रमण प्रारम्भ करने के पूर्व तक के सभी कार्यक्रमो मे उपयोग लगाते हुए अनुप्रेक्षण करना, यह दिनचर्या चिंतन विधि है।

२. छ काया, पांच महाव्रत स्वरूप पांच समिति तीन गुप्ति यो ज्ञान दर्शन चारित्र तप के स्वरुप के आधार से अनुप्रेक्षण करना कि इन संयम के मुख्य नियम उपनियमो मे कोई स्खलना तो नही हुई।

नोट:- इन दोनो चिंतन विधि का निर्देश आवश्यक निर्युक्ति भाष्य टीका मे उपलब्ध है।

ये चिंतन प्रवृतियां भावात्मक रूप से परपरा मे चलती रहती है इसलिये इनका स्वतत्र कोई मूल पाठ आवश्यक सूत्र मे नही है किन्तु उसका विधि सकेत उत्तराध्ययन सूत्र आदि मे है।

आज कल चिंतन विधि प्राय· लुप्त सी हो रही है केवल परंपरा से प्राप्त पाठ का पुनरावर्तन मात्र कायोत्सर्ग मे कर लिया जाता है। और आत्म निरीक्षण, अवलोकन एवं भावात्मक चिंतन का लक्ष्य गौण हो गया है। आत्मार्थी साधको को इस विषय मे अवश्य सुधार करना चाहिये। दूसरी चिंतन विधि के लिये पाठ इस प्रकार है-

छ काया पाठ

पृथ्वीकाय- रास्ते मे बिखरी सचित मिट्टी, मुरड, रेत, बजरी, गिट्टी, पत्थर के टुकड़े या चूरा, पत्थर के कोयले या चूरा, नमक आदि पृथ्वीकाय के जीवो की विराधना हुई हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

अपकाय- घरो मे बिखरा हुआ पानी, धोया हुआ पानी, रास्तो मे फेका हुआ पानी, नल प्याउ आदि के पास उछाला हुआ पानी, वर्षा का, ओस, धुवर और सूक्ष्म वृष्टि काय का पानी, नदी नाला कुआ बावडी तालाब आदि का पानी इत्यादि सचित या मिश्र पानी का सघट्टा विराधना हुई हो। और धोवण की गवेषणा आदि मे अपकाय जीवो की विराधना हुई हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कड।

तेउकाय- गोचरी के प्रसंग मे कोई भी प्रकार की अग्नि की विराधना हुई

हो, रास्ते चलता बीडी आदि, स्कूटर, टेक्सी आदि का संघट्टा हुआ हो इत्यादि रूप से तेउकाय की विराधना हुई हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

वायुकाय- शरीर के अंगोपांग हाथ पांव मस्तक आदि को उपदेश, बातचीत आदि कार्य मे, प्रतिलेखन प्रमार्जन में तीव्र गति से, झटके से उतावल से चलाया हो। इसी तरह किसी भी उपकरण रजोहरण पात्र वस्त्र पूंजणी आदि को तीव्र गति से झटके से उतावल से चलाया हो। पटकना फेकना हुआ हो अर्थात् उपकरण शरीर आदि को शांति से यतना पूर्वक चलाने, रखने का ध्यान नही रखा हो। मुंहपति बिना बोलना हुआ हो, उतरना, चढ़ना, चलना तीव्र गति से या कूदते हुए किया हो जिससे वायु काय की विराधना हुई हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

वनस्पति काय- हरा घास, अंकुरे, हरे पत्ते, फूल, बीज, साग आदि के छिलके या टुकडे, मिरची के बीज भुरूंट, अनाज, गुटलियां आदि की रास्ते मे घरो मे विराधना हुई हो। फूलण का संघट्टा हुआ हो या उलंघन करना पड़ा हो इत्यादि वनस्पति काय की विराधना हुई हो तो मिच्छामि दुक्कडं।

बेइन्द्रिय- छोटी बड़ी लटे कृमियां आदि बेइन्द्रिय जीवो की विराधना हुई हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

तेइन्द्रिय- लाल कीडियां, काली कीडियां, मकोड़े, पुस्तकों के छोटे बड़े जीव, जमीन के रंग के कुंथए, इल्लियां, उदाई, कच्चे मकान मे और वृक्ष के नीचे अनेक प्रकार के जीव, चांचड, माकड, जूं, लीख आदि तेइन्द्रिय जीवो की विराधना हुई हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

चउरिंद्रिय- मक्खी, मच्छर, डांस, छोटी बड़ी मकड़िया, अनेक तरह की कंसारियां, बिजली के मच्छर व छोटे बड़े अनेक जीवो की विराधना हुई हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

पंचेन्द्रिय- कुत्ता, चिड़ी, कबूतर, चूहा, बिल्ली आदि जीवो की विराधना हुई हो तथा मार्ग मे लघुनीत कफ आदि अशुचि पर पांव आया हो, नालीयां उलंघन करना पड़ा हो या गटर के पानी आदि की विराधना का कारण बना हो तथा परठने सम्बन्धी अविधि से कोई विराधना का कारण बना हो इत्यादि सन्नी असन्नि जीवो की विराधना हुई हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका एवं अन्य स्त्री पुरुष पशु पक्षियो की मन, वचन, काया से किसी प्रकार की आशातना विराधना की हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

महाव्रत का पाठ

प्रथम महाव्रत सम्पूर्ण हिंसा का त्यागः- छ काया के जीवो की सूक्ष्म या स्थूल रूप से हिंसा करना नहीं, कराना नहीं एवं अनुमोदन करना नहीं मन से, वचन से, काया से जीवन पर्यन्त। ऐसे पहले महाव्रत की पाच भावना है— १. देखकर यतना पूर्वक चलना २. सदा मन को प्रशस्त ही रखना। ३. सदा शुभ वचनो का ही प्रयोग करना ४. गवेषणा के नियमो का पूर्ण रूप से आत्म साक्षी से पालन करना ५. वस्तु को रखना उठाना या परठना पूर्ण विवेक एवं यतना के साथ करना। ऐसे पहले महाव्रत एवं उसकी पांच भावना के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो तो मेरा पाप निष्फल हो [तस्स मिच्छामि दुक्कडं।]

दूसरा महाव्रत सम्पूर्ण झूठ का त्यागः- बिना विचारे उतावल मे एवं क्रोध, मान, माया लोभ के वशीभूत होकर सूक्ष्म या स्थूल कोई भी झूठ बोलना नहीं, बोलाना नही, बोलने वाले को अच्छा समझना नही मन से, वचन से, काया से जीवन पर्यन्त। ऐसे दूसरे महाव्रत की पांच भावना है- १. सोच विचार कर शाति पूर्वक बोलना २-३ क्रोध, लोभ आदि कषायो के उदय के समय क्षमा, सतोष आदि भावो को उपस्थित रखना मौन एवं विवेक धारण करना ४. हसी मजाक कुतुहल के प्रसंग या भाव उपस्थित होने पर भी मौन एवं गंभीरता धारण करना ५. भय संज्ञा के उत्पन्न होने पर निडरता एवं धैर्य धारण करना, ऐसे दूसरे महाव्रत और उसकी पाच भावना के विषय मे कोई अतिचार लगा हो तो मेरा पाप निष्फल हो। (मिच्छामि दुक्कडं।)

तीसरा महाव्रत सम्पूर्ण अदत्त का त्यागः- कही भी कैसी भी छोटी बड़ी वस्तु बिना आज्ञा बिना दिये ग्रहण नहीं करना, ग्रहण नही कराना, अदत्त ग्रहण करने वाले को भला भी न जानंना मन से, वचन से, काया से जीवन पर्यन्त। ऐसे तीसरे महाव्रत की पांच भावना है- १. निर्दोष स्थान शय्या संथारा की याचना करना २. तृण काष्ट, कंकर, पत्थर आदि भी याचना करके लेना ३ स्थानक आदि का परिकर्म करना नही ४. साथी श्रमणो का आहार उपकरण आदि अदत्त लेना नहीं ५ विनय तप संयम धर्म के कर्तव्यो का ईमानदारी से पालन करना अर्थात् तप का चोर, रूप का चोर, व्रत का चोर, आचार का चोर एव भगवदाज्ञा का चोर नही होना।

ऐसे तीसरे महाव्रत एवं उसकी पांच भावना के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो तो मेरा पाप निष्फल हो। (मिच्छामि दुक्कडं।)

चौथा महाव्रत सम्पूर्ण कुशील का त्यागः- मनुष्य, पशु, देव सम्बन्धी काम भोगो का सेवन या संकल्प चाहना नही करना. दृष्टि विकार या काम

कुचेष्टा नही करना। इस प्रकार के कुशील अब्रह्मचर्य का सेवन स्वयं नहीं करना, नही कराना, कुशील सेवन को अच्छा भी नही समझना मन से, वचन से, काया से जीवन पर्यन्त। ऐसे चौथे महाव्रत की पांच भावना है- १. स्त्री, पशु आदि से रहित मकान मे ठहरना २. स्त्री संपर्क परिचय वार्ता का विवेक रखना ३. स्त्री के अंगोपागो को राग आशक्ति भाव से देखना, झांकना या निरखना नही ४. पूर्व अनुभूत भोगो को स्मरण करना नही एवं नये का कुतुहल आकाक्षा करना नही ५. सदा सरस स्वादिष्ट अतिमात्रा मे आहार करना नही अर्थात् ऊणोदरी तप एव रसनेन्द्रिय विजय करना।

ऐसे चौथे महाव्रत एवं उसकी पांच भावनाओ के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो तो मेरा पाप निष्फल हो (मिच्छामि दुक्कडं।)

पांचवा महाव्रत सम्पूर्ण परिग्रह त्यागः- सोना, चांदी, धन, सम्पत्ति, जमीन, जायदाद रखने का सम्पूर्ण त्याग, संयम शरीर के आवश्यक उपकरणो के अतिरिक्त सम्पूर्ण छोटे बड़े पदार्थो का त्याग, ग्रहित अग्रहित सभी पदार्थों पर ममत्व मूर्छा आशक्ति भाव का पूर्ण रूप से त्याग। इस प्रकार द्रव्य एव भाव परिग्रह करना नही, कराना नही, करने वाले का अनुमोदन करना नही, मन से, वचन से, काया से जीवन पर्यन्त। ऐसे पांचवे महाव्रत की पांच भावना है- १-५ शब्द, रूप, गंध रस एव स्पर्श के शुभ सयोग मे राग भाव, आशक्ति भाव नही करना एवं अशुभ संयोग मे द्वेष, हीलना, अप्रसन्न भाव करना नही, पुद्गल स्वभाव चिंतन पूर्वक सम भाव, तटस्थ भाव के परिणामो मे रहना। राग द्वेष से रहित बनने का एवं कर्म बंध नही करने का प्रयत्न रखना।

ऐसे पांचवे महाव्रत एव उसकी पांच भावनाओ के विषय मे कोई अतिचार लगा हो तो मेरा पाप निष्फल हो। (मिच्छामि दुक्कडं।)

पांच समिति तीन गुप्ति का पाठ

ईर्या समिति- शाति से चलना, नीचे देख कर चलना, एकाग्रचित से चलना, छ काया जीवो की रक्षा के विवेक से चलना, चलते हुए किसी से बातें नही करना, रात्रि मे पूंज कर (प्रमार्जन कर) के चलना। जीव अधिक दिखे तो दिन मे भी पूंज कर चलना, कही अंधेरा हो तो दिन मे भी पूज कर चलना। चलते समय शब्द रूप आदि भावो मे आशक्त न होना एवं स्वाध्याय अनुप्रेक्षादि भी नही करना। ऐसी ईर्या समिति के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो तो मेरा पाप निष्फल हो। (मिच्छामि दुक्कडं।)

भाषा समिति- कठोर, कर्कश, छेदकारी, भेदकारी, मर्मवचन, सावद्य वचन, निश्चयकारी वचन, अतिशयोक्ति युक्त वचन नही बोलना, गप्पे नही लगाना,

परस्पर निरर्थक निष्प्रयोजन अनावश्यक वार्ता नही करना अर्थात् समय व्यतीत करने के लिये आपस मे विकथा नही करना। किसी की निंदा हंसी तिरस्कार की वार्ता नही करना। अति वाचालता नही करना एवं उटपटांग या विकृत भाषाएं नहीं बोलना।

ऐसी भाषा समिति के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो तो मेरा वह पाप निष्फल हो (मिच्छामि दुक्कडं।)

एषणा समिति:- गवेषणा एवं परिभोगेषणा के विधि नियमो का पूर्ण पालन करना, विवेक विरक्ति एव सत्य निष्ठा के साथ आहार वस्त्र पात्र आदि ग्रहण करना एव उपयोग करना अर्थात् एषणा के ४२ दोषो का और मांडला के पांच दोषो का सेवन नही करना। प्रथम प्रहर मे ग्रहण किया आहार पानी चौथे प्रहर मे नही रखना। अपने स्थान से चौतरफ दो कोश उपरात आहार पानी नहीं ले जाना। ऐसी एषणा समिति के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो तो मेरा वह पाप निष्फल हो (मिच्छामि दुक्कड।)

आदान निक्षेप समिति:- भंडोपकरण अर्थात् वस्त्र पात्र ओघा डंडा सूई कागज पुस्तक आदि कोई भी उपकरण ऊपर से फेकना डालना नही, विवेक पूर्वक नीचे झुककर भूमि आदि पर देखकर रखना। इन पदार्थो को उठाना हो तो भी शांति और विवेक के साथ यतना पूर्वक उठाना। अपने पास रखे जाने वाले उपकरणो की सुबह शाम विधि पूर्वक प्रतिलेखन करना और उन उपकरणो पर ममत्व मूर्छा भाव न रखते हुए उनका पूर्ण उपयोग लेना। अनावश्यक उपकरणो का संग्रह नही करना। अति आवश्यक उपकरण ही ग्रहण करना। ऐसी चौथी आदान निक्षेप समिति के विषय मे कोई अतिचार लगा हो तो मेरा यह पाप निष्फल हो। (मिच्छामि दुक्कड)

परिष्ठापनिका समिति:- शरीर के अशुचि पदार्थों को, जीर्ण उपधि को, परिशेष जल या आहारादि को, परठने योग्य अन्य सभी पदार्थों को, उन उन के योग्य विवेक के साथ योग्य स्थान मे परठना। बडी नीत परठने योग्य भूमि १० बोल (गुण) युक्त होना अर्थात् वैसे स्थान पर ही शौच निवृत्ति के लिये बैठना। शौच निवृति के अन्य भी आगमोक्त विधियो का पूर्ण पालन करना। कफ खेल आदि परठने मे भी पूर्ण विवेक एवं यतना भाव रखना। किसी भी पदार्थ को परठने के बाद उसको वोसिराना अर्थात् वोसिरे वोसिरे कहना। बड़ी नीत जाकर आने के बाद ईर्यावहि का कायोत्सर्ग करना। परठने मे त्रस स्थावर जीवो की विराधना न हो उसका पूर्ण विवेक रखना। ऐसी परिष्ठापनिका समिति के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो तो मेरा वह पाप निष्फल हो।

(मिच्छामि दुक्कडं।)

मन गुप्तिः- मन मे संकल्प विकल्प घाट घड विशेष करना नहीं, शांत प्रसन्न मन रहना। ऐसी मन गुप्ति के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो तो मेरा पाप निष्फल हो। मिच्छामि दुक्कडं।

वचन गुप्तिः- विकथा आदि नहीं करते हुए अधिकतम मौन वृत्ति से रहना। ऐसी वचन गुप्ति के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो तो मेरा वह पाप निष्फल हो। मिच्छामि दुक्कडं।

काया गुप्तिः- हाथ पांव शिर एवं समस्त शरीर को निष्प्रयोजन हिलाना नही, अविवेक से प्रवर्तन करना नही, हाथ पांव आदि को पूर्ण संयमित रखते हुए प्रत्येक प्रवृत्ति करना। जीव जंतु को देख पूंज कर फिर खाज खुजलाना, भीत आदि का सहारा लेना, हाथ पांव का संकोच विस्तार करना, सोना करवट पलटना आदि भी विवेक पूर्वक करना। इत्यादि काया गुप्ति के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो तो मेरा पाप निष्फल हो। (मिच्छामि दुक्कडं।)

समुच्चय पाठः- मूल गुण समिति गुप्ति युक्त पांच महाव्रत और उत्तर गुण मे अन्य नियम प्रत्याख्यान तप स्वाध्याय ध्यान योग आदि है इनके विषय मे कोई अविवेक से प्रवर्तन प्ररूपण हुआ हो तो मेरा वह पाप निष्फल हो मिच्छामि दुक्कडं।

नोट :- पाचवे आवश्यक मे तप चिंतन एवं क्षमापना चिंतन किया जाता है जिसके पाठ प्रथम प्रकरण मे तथा आगे सविधि प्रतिक्रमण मे दिये गये हैं।

****

श्रावक का कषाय रेत में बैलगाड़ी के पहियों की लकीर जैसा होता है जो २-४ दिन में या १०-१५ दिन में समाप्त हो जाता है। अतः श्रावक का किसी के प्रति रंज भाव नाराजी भाव पक्खी के बाद नहीं रहना चाहिये। अन्यथा श्रावक का गुणस्थान नहीं रहता है।

परिशिष्ट- ३

आवश्यक सूत्र पाठ विकल्प

प्राक्कथन-

जैन समाज मे एक वातावरण सा बन गया है कि आवश्यक सूत्र मे बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है, हो रहा है और होता ही जाता है। तो सूत्र मे ऐसा परिवर्तन क्यो होता है क्यो किया जता है?

समाधान यह है कि यह एक भ्रमित प्रवाह मात्र है। वास्तव मे आवश्यक सूत्र मे इतना परिवर्तन परिवर्धन मूल मे नही हुआ है। इसी के अनुभव के लिये दो तीन संस्करणो के पाठो की सूचि दी जाती है। यथा- १. पुप्फ भिक्खू द्वारा संपादित सुत्तागमे, २. उपाध्याय कवि अमर मुनि जी द्वारा संपादित श्रमण सूत्र ३. मूर्तिपूजक मुनि श्री पुण्य विजय जी जम्बू विजय जी द्वारा संपादित मूल आवश्यक सूत्र।

इन तीन संस्करणों को देखने से ज्ञात होता है कि कुछ विधि के अंतर से पाठ इधर उधर लिये हैं या दुबारा तिबारा लिये हैं एवं किंचित परिवर्तन भी है। जो इतने सर्वाधिक प्रचलित सूत्र मे हो जाना नगण्य सा ही समझा जा सकता है और खोज पूर्वक संस्करणो को देखकर मौलिक पाठो का निर्णय भी हो सकता है जैसा कि प्रस्तुत पुष्प मे सूत्र विभाग मे सारांश के अनंतर उन मौलिक पाठो का संकलन दिया गया है।

अत: हमें यह समझना चाहिये कि मूल सूत्र में परिवर्तन नहीं के समान है। विधियो मे ही विशेष परिवर्तन है। जो प्रतिक्रमण की पुस्तकों मे देखा जाता है। किंतु आवश्यक सूत्र मूल तो छः अध्यायो मे स्वतंत्र अलग ही सुरक्षित है। जो मूल पाठों के प्रकाशित आगम संस्करणों मे देखे जा सकते हैं।

****

आवश्यक सूत्र पाठ विकल्प

१. सुत्तागमे- (पुप्फ भिक्खू द्वारा संपादित)

१- अह पढमं सामाइयावस्सयं-

१. इच्छामि णं भंते की पाटी

२. नवकार मंत्र (५ पद मात्र)

३. करेमि भंते

४. इच्छामि ठामि

५. तस्स उत्तरी का पाठ (फिर कायोत्सर्ग)

इइ पढमं सामाइयावस्सय समत्तं।

२- अह बीयं चउवीसत्थवावस्सयं-

१. लोगस्स का पाठ

इइ बीयं उक्कित्तणावस्सयं समत्तं।

३- अह तइयं वंदणावस्सयं-

१. खमासमणा का पाठ- २ बार

इइ तइयं वंदणावस्सय समत्तं।

४- अह चउत्थं पडिक्कमणावस्सयं-

१. चत्तारि मंगलं का पाठ

२. इच्छाकारेण का पाठ

३ से ७. पाच पाठ श्रमण सूत्र

८ खामेमि सव्वे जीवा *(प्रत्यंतरे - आयरिय...)*

९. खमासमणा- २ बार

५- अह पंचमं काउस्सग्गावस्सयं-

१ से ५. प्रथम आवश्यक के समान।

नोट - यहां भी प्रथम पाटी- आवस्सहि इच्छाकारेणं संदिसह भगवं पाठ कहा है संक्षिप्त मे। नीचे टिप्पण मे लिखा है "अंस्सट्ठाणे केई" "इच्छामि णं भते तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे देवसियं पायच्छित्तं विसोहणत्थं करेमि काउस्सग्गं" त्ति उच्चारंति।

२. काउस्सग मे क्या चिंतन करना उसका भी निर्देश मूल मे नही टिप्पण मे है।

६- अह छट्ठं पच्चक्खाणावस्सयं-

१ से १०. पच्चक्खाणो के अलग २ पाठ।

११. प्रत्याख्यान पारणे का पाठ कोष्टक () मे।

१२. णमोत्थुण का पाठ

नोटः- १टिप्पण मे प्रतिक्रमण प्रारम्भ की विधि दी है- पूरा तिक्खुत्तो का पाठ देकर कहा कि इस पाठ से गुरू वंदन करना। फिर नवकार, तिक्खुत्तो, इच्छाकारेणं, तस्सउतरी, ध्यान इच्छाकरेणं का पाठ, फिर लोगस्स, णमोत्थुणं। फिर सामायिक आवश्यक प्रारंभ करना। प्रत्येक आवश्यक के अंत मे तिक्खुत्तो के पाठ से गुरू वंदन करना। अन्य आवश्यक की आज्ञा ग्रहण करना।

२. और कोई तिक्खुत्तो पढ कर, नवकार पढ कर फिर करेमि भते के पाठ से प्रथम आवश्यक को प्रारम्भ करते हैं। यह प्रथमावश्यक के टिप्पण मे है।

३. चौथे आवश्यक के टिप्पण मे बताया - तिक्खुत्तो के पाठ से वंदन फिर नवकार फिर करेमि भंते फिर चतारि मंगलं का पाठ फिर इच्छामि ठामि पाठ का निर्देश है। पर मूल में कोई निर्देश नही है।

परिशिष्ट में श्रावकावश्यक में सामायिक सूत्रः-

१. नमस्कार मंत्र
२. तिक्खुत्तो
३. अरिहंतो मह देवो
४. इच्छाकारेणं
५ तस्स उत्तरी
६ लोगस्स
७. करेमि भंते
८. णमोत्थुणं
९. एयस्स नवमस्स
१०. सामायिक लेने की विधि
११. सामायिक पारणे की विधि
१२. सामायिक के ३२ दोष
१३ वंदना के ३२ दोष

१४. काउस्सग्ग के १९ दोष

सावयावस्सय सुत्तं (पडिक्कमण सुत्तं-

१. इच्छामि णं भंते

- अह पढमं सामाइयावस्सयं-

२. नमस्कार मंत्र

३. करेमि भंते

४. इच्छामि ठामि

५. तस्स उत्तरी

(टिप्पण मे काउस्सग के पाठ) ९९ अतिचार

दूसरा तीसरा आवश्यक पूर्ववत् समझना।

- अह चउत्थं पडिक्कमणावस्सयं-

६. आगमे तिविहे (संक्षिप्त)

७. अरिहंतो महदेवो

८. १२ व्रत

९. बड़ी संलेखना

१०. अठारह पाप

११. तस्स धम्मस्स

१२. आयरिय. खामेमि.

- अह पंचमं काउस्सग्गावस्सयं-

१. देवसिय पायाच्छित का पाठ

२. नमस्कार मंत्र

३. करेमि भंते

४. इच्छामि ठामि

५. तस्स उत्तरी

- अह छट्ठं पच्चक्खाणावस्सयं

१. गंठि सहियं का पाठ।

नोट - प्रतिक्रमण उपसंहार का समुच्चय.पाठ मूल मे व टिप्पण मे भी नहीं है।

"पांच पद की भाव वंदना" भी मूल व टिप्पण मे नही है। क्षेत्र शुद्धि रूप प्रतिक्रमण प्रारम्भ मे ४ लोगस्स का ध्यान का निर्देश भी मूल व टिप्पण मे नहीं है।

****

२. उपाध्याय कवि श्री अमर मुनि जी द्वारा संपादित श्रमण सूत्र

१. नमस्कार सूत्र
२. सामायिक सूत्र
३. चतारि मंगलं
४. इच्छामि ठामि (संक्षिप्त प्रतिक्रमण सूत्र)
५. इच्छाकारेणं का पाठ (इच्छं तक पाठ नहीं)

सुत्तागमे मे भी इच्छं तक पाठ नहीं है।

६ से १०. श्रमण सूत्र के पांच पाठ।
११. आयरिय. खामेमि.

परिशिष्ट में -

१. इच्छामि खमासमणो
२. दस पच्चक्खाण पाठ
३. दस पच्चक्खाण पारने का पाठ
४. संस्तार पोरिसि सूत्र
५. सम्यक्त्व सूत्र-गुरू गुण स्मरण सूत्र
६. तिक्खुत्तो
७. इच्छाकारेणं (पूरा पाठ है)
८. तस्स उत्तरी
९. लोगस्स
१०. णमोत्थुणं

सामायिक सूत्रः-

१. नमस्कार सूत्र (पूर्ण)
२. देव गुरू सूत्र
३. तिक्खुत्तो
४. इच्छाकारेणं
५. तस्स उत्तरी
६. लोगस्स
७. करेमि भंते
८. णमोत्थुणं
९. एयस्स नवमस्स (हिन्दी के पाठ नहीं है)

१०. परिशिष्ट मे लेने पारने की विधी

११. ३२ दोष पूर्ण विवेचन युक्त।

३. ''पुण्यविजय जी म. सा. द्वारा संपादित आवश्यक सूत्र (बम्बई) (जम्बू विजय)

प्रथम अध्ययन- १पंच नमस्कार मंगल सूत्र (पांच पद)

२. सामायिक सूत्र (करेमि भंते)

द्वितीय अध्ययन- ३. २४ तीर्थंकर स्तुति (लोगस्स)

तीसरा अध्ययन- ४ गुरू वंदन सूत्र (खमासमणा)

चौथा अध्ययन- ५. सामायिक सूत्र (करेमि भंते)

६. चत्तारि मंगल

७. ओघतिचार प्रतिक्रमण सूत्र (इच्छामि ठामि)

८ से १३. विभागेन अतिचाराणं प्रतिक्रमण सूत्र

८. गमनागमन अतिचार प्रतिक्रमण सूत्र

९ शयन स्थान अतिचार प्रतिक्रमण सूत्र

१०. गोयर चरिया अतिचार प्रतिक्रमण सूत्र

११. स्वाध्याय प्रतिलेखन प्रमार्जन अतिचार प्रतिक्रमण सूत्र

१२. एक प्रकार से ३३ प्रकार के बोलो से संबंधित प्रतिक्रमण सूत्र

१३ प्रतिज्ञा सूत्र मे - १. २४ तीर्थंकर नमस्कार

२. निर्ग्रन्थ प्रवचन गुण वर्णन

३. निर्ग्रन्थ प्रवचन श्रद्धानादि प्ररुपणा

४. सम्पूर्ण दोषातिचार प्रतिक्रमण सूत्र

५. निर्ग्रन्थ वंदन सूत्र

१४. सम्पूर्ण जीव क्षमापना मैत्री प्ररुपणा (खामेमि सव्वे.)

१५. अंतिम मंगल गाथा सूत्र (ग्त्रमहं...)

पांचवां अध्ययन- १६. सामायिक सूत्र

१७. इच्छामि ठामि

१८. तस्स उत्तरी

१९. लोगस्स

छट्ठा अध्ययन- २०. पच्चक्खाण १० के अलग अलग पाठ है।

परिशिष्ट- ४

प्रतिक्रमण - विधि

प्राक्कथन:-

आवश्यक सूत्र मे प्रतिक्रमण करने की विधि सम्बन्धी कोई संकेत या पाठ नही है। उसकी व्याख्या निर्युक्ति भाष्य आदि मे स्पष्ट रूप से सुंदर विधि बताई गई है।

उत्तराध्ययन सूत्र के २६ वे अध्ययन मे भी दैवसिक रात्रिक दोनो प्रतिक्रमण की विधि श्रमण के लिये संक्षिप्त मे बताई गई है।

उत्तराध्ययन अध्ययन २९ मे भी पृच्छा रूप मे वर्णन है उससे भी प्रतिक्रमण सम्बन्धी कुछ विधि उपलक्षित होती है।

निर्युक्ति भाष्य मे सूचित विधि भी इन्ही उक्त सूत्रोक्त विधि का अनुसरण करने वाली ही है।

श्रमण प्रतिक्रमण की विधि के अनुरूप ही श्रावक प्रतिक्रमण की विधि भी समझी जा सकती है।

यहां इस प्रकरण मे श्रमण श्रमणोपासक दोनो के प्रतिक्रमण की विधि बताई गई है जो आगम के उपलब्ध पाठो के आधार से जानी गई है।

नोट:- प्रचलित परंपरा मे श्रमण एवं श्रमणोपासक के प्रतिक्रमण मे कायोत्सर्ग मे एवं प्रगट मे हिन्दी भाषा मे रचित अर्वाचीन पाठ बोले जाते है एव कायोत्सर्ग के बाद भी पुन: उन्हे ही बोला जाता है। उसके बाद मे उक्त विधि मे कहे गये आगमोक्त पाठ बोले जाते हैं। उनके बाद मे सामान्य जन की भाषा (हिन्दी-गुजराती-मारवाडी) मे रचित पाच पदो की भाव वंदना बोली जाती है। यही प्रमुख अतर है- परपरा प्रतिक्रमण विधि मे एवं आगम कालीन प्रतिक्रमण विधि मे।

इन अर्वाचीन बने पाठो के बनने के पूर्व भी प्रतिक्रमण एवं उसकी विधि आगमानुसार चलती ही थी। वे ही आवश्यक सूत्र के पाठ आज भी उपलब्ध है। अत: उन्ही के आधार से यहां विधि बताई है।

केवल मूल पाठों से संक्षिप्त श्रमण प्रतिक्रमण

आवश्यक सूत्र एवं उस मे अन्य सूत्रो से आये पाठों के आधार से यह विधि कही गई है इसमे हिन्दी गुजराती आदि भाषा के या मिश्रित भाषा के पाठ नही रखे गये हैं केवल मूल रूप मे प्राप्त पाठ लिये हैं।

१. वंदन पाठ से तीन बार वंदना
२. प्रतिक्रमण आज्ञा एवं प्रतिज्ञा पाठ (इच्छामि णं भंते)
३. नमस्कार मंत्र एवं मंगल पाठ (चत्तारि मंगलं)
४. करेमि भंते
५. कायोत्सर्ग प्रतिज्ञा पाठ (तस्स उत्तरी)

कायोत्सर्ग में–

६. समुच्चयअतिचार का पाठ (इच्छामि ठामि)
७. गमनागमन अतिचार का पाठ (इच्छाकारेणं)
८. निद्रा प्रतिक्रमण पाठ (श्रमण सूत्र का पहला पाठ)
९. गोचरी प्रतिक्रमण पाठ (श्रमण सूत्र का दूसरा पाठ)
१०. स्वाध्याय प्रतिलेखन प्रतिक्रमण पाठ (श्रमण सूत्र का तीसरा पाठ)
११. तेतीस बोल प्रतिक्रमण पाठ
१२. निर्ग्रंथ प्रवचन श्रद्धान नमन प्रतिक्रमण पाठ (णमो चौबीसाए)
१३. संलेखना के अतिचार का पाठ
१४. अठारह पाप स्थान प्रतिक्रमण पाठ
१५. णमो अरिहंताणं बोल कर कायोत्सर्ग खोलना कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ
१६. चौवीस जिन स्तुति पाठ (लोगस्स)
१७. उत्कृष्ट गुरू वंदन पाठ (खमासणा दो बार)
१८. कायोत्सर्ग मे कहे पाठ (६ से १४)
१९. उत्कृष्ट गुरुवंदन पाठ (खमासणा)
२०. कायोत्सर्ग आज्ञा पाठ
२१. नमस्कार मंत्र
२२. करेमि भंते
२३. कायोत्सर्ग प्रतिज्ञा पाठ (तस्स उत्तरी)

२४. कायोत्सर्ग मे - क्षमापना पाठ, श्रमण क्षमापना पाठ एव उसका आत्म चिंतन णमो अरिहंताणं बोलकर कायोत्सर्ग खोलना।

२५. कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ

२६. चौबीस जिन स्तुति पाठ (लोगस्स)

२७. उत्कृष्ट गुरुवंदन पाठ (खमासणा)

२८. णमुक्कार सहियं पच्चक्खाण पाठ

२९. उपसंहार पाठ

३०. सिद्ध स्तुति का पाठ - एक बार (णमोत्थुणं)

३१. गुरु वंदन एवं प्रयाश्चित ग्रहण (तिक्खुत्तो)

३२. अन्य उपस्थित श्रमण वंदन

३३. आवश्यक का स्तवन (एक चौबीसी स्तुति)

****

****

सम्यग् दृष्टि का कषाय रंज भाव पानी समाप्त होने पर तालाब की मिट्टी में पड़ी तराडों के समान होता है जो अगले वर्ष में वर्षा पडने पर समाप्त हो जाती है। उसी प्रकार धर्मी पुरूष या सम्यगदृष्टि पुरूष का कषाय संवत्सरी बाद समाप्त हो जाना आवश्यक है।

जो व्यक्ति संवत्सरी पर्व बाद भी किसी व्यक्ति से नाराजी रंज कषाय भाव रखता है उसकी समकित नहीं रहती है। वह भाव से मिथ्यादृष्टि होता है। चाहे वह साधु या श्रावक कहा जाता हो।

श्रावक प्रतिक्रमण विधि

श्रमण प्रतिक्रमण की विधि के समान ही श्रावक प्रतिक्रमण की संपूर्ण विधि है। अतिचार के पाठो का अंतर (फर्क) है वह इस प्रकार है:-

१. ज्ञानातिचार का पाठ

२. दर्शनातिचार का पाठ

३. १२ अणुव्रत

४ संलेखना अतिचार का पाठ

५. १८ पाप स्थान का पाठ

कायोत्सर्ग के बाद प्रकट उच्चारण मे भी ये ही पाठ बोलने होते है। शेष समाप्ति पर्यन्त श्रमण प्रतिक्रमण के समान विधि है।

****

इस प्रकार आवश्यक सूत्र में अथवा अन्य आगमों में उपलब्ध पाठों के आधार से एवं उन्ही आगमोक्त पाठों के संयोग-उपयोग से यह विधि उपलक्षित होती है।

प्रचलित परंपरा विधि का अनुसरण यहां नहीं किया है। परम्परानुसारी विधि का अनुकरण अगले हिंदी प्रतिक्रमण के प्रंकरण में किया गया है।



परिशिष्ट- ५

हिन्दी भाषांतर प्रतिक्रमण

प्राक्कथन-

जगत मे विभिन्न रूचि एवं क्षयोपशम के लोग होते रहते हैं। कई लोग अर्द्ध मागधी भाषा की अपेक्षा प्रचलित हिन्दी भाषा मे नित्य किये जाने वाले प्रतिक्रमण की आवश्यकता अनुभव करते हैं।

अपेक्षा से मूलपाठ के धड़ाधड़ उच्चारण मे कई प्रतिक्रमण करने वालो के कुछ भी पल्ले नहीं पड़ता है। सरल भाषा मे उच्चारण हो तो सामुहिक रिवाज मे उसका कुछ विशेष लाभ हो सकता है। इसी प्रावधान के लिये आगमो का हिन्दी सारांश संपादित किया गया है। अतः इस रूचि वालो की अपेक्षा हिन्दी भाषा मे भी प्रतिक्रमण इस प्रकरण मे दिया है। इसमे सक्षिप्त विस्तृत दो विभाग नही करके एक ही मध्यम विभाग किया गया है।

श्रमण और श्रमणोपासक दोनो की अपेक्षा दो विभागो (परिशिष्टों) मे अलग अलग हिन्दी प्रतिक्रमण विधि सहित दिया गया है।

इस प्रकरण मे निर्दिष्ट प्रतिक्रमण की विधि मे चली आ रही प्रतिक्रमण विधि परपरा का अधिकतम अनुसरण किया गया है। शुद्ध आगम परंपरा के जिज्ञाशु साधको को पूर्व प्रकरण मे दी गई विधि और उससे भी पूर्व प्रकरणो मे दिये गये आगमिक मौलिक पाठो से अपनी आत्मभाव तृप्ती कर लेनी चाहिये। किंतु इस प्रकरण की चर्चा मे नहीं उलझना चाहिये। क्योंकि यह प्रकरण सामान्य बुद्धि जीवी सामान्य क्षयोपशमी साधको की दृष्टि से संकलित किया गया है।

आशा है बुद्धिमान साधक हमारे सही आशय को समझ कर ही सही मनन करेंगे।

विमल कुमार नवलखा,
सुरत

नोटः- कई प्रचलित पाठ एवं विधि आगम आशय के निकट नहीं होने से उनका सशोधन भी इस प्रकरण में किया गया हैं।

फोटो टाईपसेटिंग व मुद्रण· माणक ऑफसेट प्रिण्टर्स, म. गां. अस्पताल रोड
जोधपुर फोन-37838&37839

सविधि श्रावक प्रतिक्रमण

हिन्दी भाषा में

[**विशेष-**] प्रचलित प्रसिद्ध नमस्कार मंत्र, वदन पाठ, मगल पाठ एव करेमि भते का पाठ मूल के साथ सरल हिन्दी भाषा मे रखा है। शेष सभी पाठो को सरल हिन्दी भाषा में सारांश या भावार्थ रूप मे दिया गया है।)

[प्रारम्भ में – तीन बार वंदना करना –]

वंदन पाठ मूल – तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेमि वंदामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि मत्थएण वंदामि।

हिन्दी:- हे प्रभु! मैं आपकी दक्षिण तरफ से तीन बार प्रदक्षिणा (आवर्तन) करता हूँ आपको वंदन करता हूँ नमस्कार करता हूँ आपका सत्कार करता हूँ सन्मान करता हूँ। आप कल्याण रूप है, मंगल रूप है, धर्म देव है, ज्ञानवंत है, मैं आपकी पर्यूपासना करता हूँ आपको सभक्ति मस्तक झुका कर वंदन करता हूँ।

प्रतिक्रमण आज्ञा एवं प्रतिज्ञा पाठ:-

हे प्रभु आपकी आज्ञा लेकर मैं दिवस सम्बन्धी प्रतिक्रमण प्रारम्भ करता हूं उसमें देवसिक ज्ञान दर्शन चारित्र तप सम्बन्धी अतिचारो का चिंतन करने के लिए कायोत्सर्ग करता हूँ।

नमस्कार मंत्र मूलः-

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।
एसो पंच णमुक्कारो, सव्व-पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मगलं।।

अर्थ:- हो वंदना मेरी प्रथम भगवान श्री अरिहत को।
फिर दूसरी हो वंदना श्री सिद्ध देव महंत को।
आचार्य जी को तीसरी हो वंदना नित भाव से।

उपाध्याय एवं साधुओ को वंदना हो चाव से।
पांच पदो का नमस्कार यह, पापो का नाशन हारा।
मंगलो मे उत्तम मंगल यह, अविचल सुख देने वाला।।

सामायिक प्रतिज्ञा पाठ मूलः- करेमि भंते! सामाइयं, सावज्जं जोगं पच्चक्खामि। जावणियम पज्जुवासामि, दुविहं तिविहेणं ण करेमि, ण कारवेमि, मणसा वयसा कायसा। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।

अर्थः- हे भन्ते! मै १८ पाप का एक मुहूर्त के लिए त्याग करने रूप सामायिक ग्रहण करके पर्युपासना = आपकी उपासना करता हूँ। इतने समय तक पापो का मन वचन और काया से सेवन नही करूंगा एवं नहीं कराऊंगा। पूर्व मे किए पापो से निवृत्त होता हूँ निंदा करता हूं गर्हा करता हूँ एवं उन पापो से आत्मा को दूर हटाता हूँ।

संक्षिप्त अतिचार प्रतिक्रमण पाठ

जो मैने दिवस सम्बन्धी अतिचार किये हो उन का समुच्चय रूप से प्रतिक्रमण करना चाहता हूँ। यथा– शरीर सम्बन्धी, वचन सम्बन्धी, मन सम्बन्धी अतिचार किया हो, सर्वज्ञ प्रणीत सिद्धान्तो के प्रतिकूल प्ररूपण किया हो, मोक्ष मार्ग के प्रतिकूल आचरण किया हो, अकल्पनीय एवं अकरणीय कार्य किये हो, आर्तरौद्र ध्यान किया हो, चित्त से अशुभ विचार किये हो, श्रावक के लिये अनाचरणीय और अनिच्छनीय कार्य किये हो, ज्ञान दर्शन चारित्र, सूत्र सिद्धांत और सामायिक संबंधी अतिचार सेवन किया हो। मन वचन काया (शरीर) को वश मे न किया हो, चार कषायों का उपशमन नहीं किया हो, पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षा व्रत आदि बारह व्रत रूप श्रावक धर्म को खंडित किया हो या उसकी विराधना की हो तो उसका मेरा पाप निष्फल हो। मिच्छामि दुक्कडं।

कायोत्सर्ग प्रतिज्ञा पाठः-

आत्मा को श्रेष्ठ, निर्मल और शल्य रहित बनाने के लिए, प्रायश्चित्त करने के लिए, पाप कर्मों का सर्वथा नाश करने के लिए मैं कायोत्सर्ग करता हूँ।

उसमे, श्वासोश्वास, खांसी, छीक, उबासी, डकार, वायुनिसर्ग, चक्कर आना, मूर्छा आना, सूक्ष्म रूप से अंगोपांग, कफ या दृष्टि का चलना इत्यादि काया की प्रवृत्तियो का आगार रखता हूँ अर्थात् इन प्रवृत्तियो से मेरा कायोत्सर्ग खंडित विराधित नही होगा।

जब तक मैं "णमो अरिहंताणं" ऐसा उच्चारण करके कायोत्सर्ग नहीं

खोलूंगा तब तक के लिए मैं स्थिर आसन से, मौन से और एकाग्र ध्यान से रहूंगा, इसके लिए अब मैं शरीर को वोसिराता हूँ।

(इसके बाद कायोत्सर्ग मुद्रा (आसन) से बैठकर या खड़े रह कर कायोत्सर्ग करना)

कायोत्सर्ग में ये निम्न पाठ

ज्ञान के अतिचार-

ज्ञान के अतिचारो का चिंतन करता हूँ। -

१- सूत्र के अक्षर या पद आगे-पीछे बोले हो २- एक सूत्र पाठ को दूसरे सूत्र मे बोला हो ३- अक्षर कम बोले हो ४- अक्षर अधिक बोले हो ५- शब्द कम बोले हो ६- विनय रहित पढा हो ७- सयुक्त अक्षर शुद्ध न पढे हो ८. उच्चारण स्पष्ट न किया हो ९- अयोग्य को पढाया हो १०- अयोग्य रीति से ज्ञान ग्रहण किया हो ११- शास्त्र असमय मे पढा हो १२- समय पर शास्त्र न पढा हो १३- चौतीस अस्वाध्याय मे शास्त्र पढा हो १४- अस्वाध्याय न हो तो भी शास्त्र न पढा हो।

समकित के अतिचारः-

समकित के अतिचारो का चिंतन करता हूँ-

१— भगवान के वचनो मे (सूक्ष्म तत्वो मे) सदेह किया हो २- परमत की प्रभावना चमत्कार देखकर मन आकर्षित हुआ हो ३- धर्म करणी के फल मे संदेह हुआ हो ४- परमत की प्रशंसा की हो ५- परमत के सन्यासी का व उनके शास्त्र का परिचय संपर्क किया हो।

बारह व्रतों के अतिचारः-

पहले व्रत के अतिचारों का चिंतन करता हूँ-

१- गुस्से मे आकर किसी को कठोर बंधन से बाधा हो २- मारपीट की हो ३- शरीर के किसी अंग-उपांग का छेदन किया हो ४- पशु आदि पर अधिक भार भरा हो ५- आहार पानी मे रूकावट की हो।

दूसरे व्रत के अतिचारों का चिंतन करता हूँ-

१- बिना विचारे किसी पर आक्षेप लगाया हो २- एकांत मे बातचीत करने वाले पर झूठा आरोप लगाया हो ३- अपनी स्त्री की गुप्त बात प्रकट की हो ४- असत्य (खोटी) सलाह दी हो ५- असत्य लेखन किया हो।

तीसरे व्रत के अतिचारों का चिंतन करता हूँ-

१- चोर की चुराई वस्तु जानकर ली हो २- चोर को सहायता दी हो ३-

राज्य विरुद्ध कार्य किया हो ४- तोलना मापना गलत किया हो ५- एक वस्तु दिखाकर दूसरी वस्तु दी हो। या भाव बताकर उससे अधिक मूल्य लिया हो।

चौथे व्रत के अतिचारों का चिंतन करता हूँ-

१- छोटी उम्र वाली या ईत्वर काल की अपनी स्त्री के साथ गमन किया हो २- केवल सगाई की हुई अपनी स्त्री के साथ गमन किया हो ३- अन्य अग से काम क्रीडा की हो। ४- दूसरो का विवाह कराया हो ५- काम भोग की तीव्र अभिलाषा की हो।

पांचवें व्रत के अतिचारों का चिंतन करता हूँ-

१- जमीन व मकान का परिमाण उल्लघन किया हो २- सोने चादी का परिमाण उल्लघन किया हो ३- धन धान्य का परिमाण उल्लघन किया हो ४- नौकर जानवर का परिमाण उल्लंघन किया हो ५- घर के अन्य सामान का परिमाण उल्लघन किया हो।

छट्ठे व्रत के अतिचारों का चिंतन करता हूँ-

१ से ३- चारो दिशाओ का तथा उपर-नीचे का परिमाण उल्लंघन किया हो ४- एक दिशा की सीमा घटा कर दूसरी दिशा मे बढ़ाई हो ५- मर्यादा के भूल जाने से आगे गया हो।

सातवें व्रत के भोजन संबंधी अतिचारों का चिंतन करता हूँ-

१- सचित्त वस्तुएं खाई हो, २- सचित से लगे हुए गिर आदि को खाया हो ३- अपक्व को पक्व समझ कर खाया हो ४- अध पके को पका समझ कर खाया हो ५- तुच्छ वस्तुओ (अभक्ष्य व अनतकाय कद मूल आदि) का भक्षण किया हो। तथा खाने के पदार्थ एव तेल इत्र, फूल, वस्त्र आभूषण, वाहन, स्नान, जूते-चप्पल आदि की मर्यादा का उल्लंघन हुआ हो।

सातवें व्रत के व्यापार संबंधी अतिचारों का चिंतन करता हूँ-

१- अग्नि की हिंसा जनक कर्म २- वनस्पति की हिंसा जनक कर्म ३- वाहन उत्पादन कर्म ४- वाहन भाड़े चलाने का कर्म ५- पृथ्वीकाय की हिंसा का कर्म ६- दात, नख, सिंग, चर्म, केस आदि त्रस जीव के अवयवो का व्यापार ७- लाख चिपडी नमक साबुन आदि का व्यापार ८- मधु, मद्य, तेल, घी आदि रस पदार्थों का व्यापार ९- त्रस जीव, दास, पशु, पक्षी का व्यापार १०- हिंसक शस्त्र, विषेले पदार्थों का व्यापार ११- प्रेस, चक्की, घाणी, मिल आदि कर्म १२- बिधना खसी करना आदि कर्म १३- खेत जगल आदि मे आग लगाना १४- तालाब आदि को खाली करना १५- हिंसक पशु आदि रखना तथा अन्य भी व्यापार मर्यादा का उल्लघन हुआ हो।

आठवें व्रत के अतिचारों का चिंतन करता हूँ-

१- विकार जनक कथा की हो २- शरीर से कुचेष्टाएं की हो ३- बैतुकी बाते की हो या निरर्थक बोला हो ४- हिंसाकारी उपकरणो को अयोग्य रीति से रखा हो ५- खाने के पदार्थ व अन्य सामान का अधिक संग्रह किया हो।

नवमें व्रत के अतिचारों का चिंतन करता हूँ-

१- सामायिक मे मम से अशुभ चिंतन किया हो २- अयोग्य वचन बोले हो ३- अयोग्य कार्य किये हो ४- सामायिक लेने आदि का समय याद न रखा हो ५- सामायिक का दोष रहित व विधि पूर्वक पालन न किया हो।

दसवें व्रत के अतिचारों का चिंतन करता हूँ-

१- नियमित सीमा के बाहर से वस्तु मंगवाई हो २- भिजवाई हो ३- शब्द से संकेत किया हो ४- रूप से शंकेत किया हो ५- कंकर आदि फेक कर शंकेत किया हो तथा १४ नियम आदि दैनिक मर्यादा का उल्लंघन हुआ हो तथा तीन मनोरथ का चिंतन न किया हो।

ग्यारहवें व्रत के अतिचारों का चिंतन करता हूँ-

१- पौषध मे मकान पाट आदि का दोनो समय विधि पूर्वक प्रतिलेखन न किया हो २- विधि पूर्वक प्रमार्जन न किया हो ३- परठने की भूमि का प्रतिलेखन विधि पूर्वक न किया हो। ४- विधि पूर्वक प्रमार्जन न किया हो ५- पौषध का दोष रहित व विधि पूर्वक पालन न किया हो।

बारहवें व्रत के अतिचारों का चिंतन करता हूँ-

१- अविवेक से अचित्त पदार्थ सचित्त वस्तु पर रखा हो २- सचित पदार्थ अचित्त वस्तु पर रखा हो ३- भिक्षा के समय घर का द्वार खुला रख भावना न भाई हो या भिक्षा के असमय मे भावना भाई हो ४- विवेक न रखते हुए दूसरों को दान देने के लिये कह दिया हो अपने हाथ से दान न दिया हो ५- कषाय युक्त परिणामो से दान दिया हो या आदर भाव पूर्वक दान न दिया हो।

तप के अतिचार:-

तप के अतिचारों का चिंतन करता हूँ-

१- तपस्या करके इस भव के सुख की चाहना की हो २- पर भव के सुख की चाहना की हो ३- अधिक जीने की या यश की चाहना की हो ४- मरने की चाहना की हो ५- विषय भोगो की चाहना की हो तथा शक्ति होते हुए भी प्रति दिन कुछ तप नहीं किया हो एवं अष्टमी चतुर्दशी आदि पर्व दिनों मे

भी कोई तप न किया हो।

अतिचार संग्रह पाठ-

ज्ञान के १४, समकित के ५, बारह व्रत के ५-५ व कर्मादान १५, तप के ५, इस प्रकार मुख्य ९९ और सामान्य अन्य अनेक अतिचारो मे से मुझे दिवस सम्बन्धी कोई जानते अनजानते अतिचार लगा हो तो उसका मै चिंतन अवलोकन करता हूँ।

अठारह पापस्थान का पाठ-

१. हिंसा, २. झूठ, ३. चोरी, ४. कुशील, ५. परिग्रह, ६. क्रोध, ७. मान, ८. माया, ९. लोभ, १०. राग-मोह, ११. द्वेष, १२ कलह, १३. कलंक लगाना १४. चुगली करना, १५. दूसरो की निंदा अवगुण-अपवाद करना, १६. सुख दुःख मे हर्ष-शोक करना १७. कपट युक्त झूठ बोलना-छल प्रपंच करना १८. जिन वाणी से विपरीत मान्यता रखना-हिंसा आदि पाप मे धर्म मानना।

इन अठारह पाप स्थानो का आवश्यक होने पर या आदत से अथवा अज्ञान (प्रमाद) से सेवन किया हो तो उसका मैं पश्चाताप करता हूँ और यह भावना करता हूं कि इन अठारह पापस्थानो का पूर्णतया जीवन भर के लिये त्याग कर दूँ। हे भगवन् वह शुभ दिन मुझे शीघ्र प्राप्त होवे।

[इसके बाद 'णमो अरिहंताणं' इस उच्चारण के साथ कायोत्सर्ग खोलना। फिर कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ बोलना।]

कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ-

कायोत्सर्ग में आर्तध्यान रौद्र ध्यान के संकल्प विकल्प किये हो और मन वचन काया के योग चलित हुए हो तो मिच्छामि दुक्कडं।

चौबीस जिन स्तुति - (लोगस्स)-

सम्पूर्ण लोक मे धर्म का प्रकाश फैलाकर धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले राग द्वेष के विजेता काम क्रोधादि आत्म शत्रुओ को नष्ट करने वाले, केवल ज्ञानी चौबीस तीर्थंकर भगवन्तो का मैं नाम लेने के साथ गुणग्राम करता हूँ।

चौबीस तीर्थंकरो के नाम– १- श्री ऋषभदेव स्वामी २- श्री अजितनाथ स्वामी ३- श्री संभवनाथ स्वामी ४- श्री अभिनन्दन स्वामी ५- श्री सुमतिनाथ स्वामी ६- श्री पद्मप्रभ स्वामी ७- श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी ८- श्री चन्द्रप्रभ स्वामी ९- श्री सुविधिनाथ स्वामी १०- श्री शीतलनाथ स्वामी ११- श्री

श्रेयांसनाथ स्वामी १२- श्री वासुपूज्य स्वामी १३- श्री विमलनाथ स्वामी १४- श्री अनन्तनाथ स्वामी १५- श्री धर्मनाथ स्वामी १६- श्री शान्तिनाथ स्वामी १७- श्री कुन्थुनाथ स्वामी १८- श्री अरनाथ स्वामी १९- श्री मल्लीनाथ स्वामी २०- श्री मुनिसुव्रत स्वामी २१- श्री नमिनाथ स्वामी २२- श्री अरिष्टनेमि स्वामी २३- श्री पार्श्वनाथ स्वामी २४- श्री वर्धमान (महावीर) स्वामी

ये तीर्थंकर वर्तमान मे सम्पूर्ण कर्म रूपी मैल से रहित है जरा मरण से मुक्त है। ये लोक में सर्वोत्तम सिद्ध परमात्म अवस्था मे है। चन्द्रमाओ से विशेष निर्मल है एवं सूर्यो से भी अधिक प्रकाश करने वाले हैं, महा समुद्र से भी अधिक गभीर है। ऐसे तीर्थंकर प्रभु वर्तमान मे सिद्ध अवस्था मे रहे हुए है उनका मै इस प्रकार गुण कीर्तन करके सभक्ति वंदन नमस्कार करता हूँ। हे चौवीसो जिनेश्वर भगवन्! मैं आपका कृपापात्र बनू। आप मुझे शुद्ध-बोधि और श्रेष्ठ समाधि देवे। हे तीर्थंकर सिद्ध भगवन्! मुझे आप सिद्धि प्रदान करे अर्थात् आपकी श्रद्धा भक्ति स्तुति वंदन से मुझ मे उक्त लाभ प्राप्त करने की शक्ति प्रकट होवे।

सविधि उत्कृष्ट वंदन पाठः- (खमासमणा)

हे क्षमाश्रमण! मै संयत शरीर के द्वारा आपको वदना करना चाहता हूँ इसलिये आप मुझे अपने परिमित अवग्रह (क्षेत्र) मे प्रवेश करने की आज्ञा दें। (यहां उकडू आसन से बैठना) मै आपके चरण का मस्तक से स्पर्श करता हूँ।[१] इस स्पर्श करने मे आपको कोई कष्ट पहुंचा हो तो आप मुझे क्षमा करे।

कष्टानुभूति से रहित आप का यह दिन निर्विघ्नरूप मे शुभ कल्याणकारी प्रवृति मे बीता?

आपकी यात्रा- "तप, नियम, स्वाध्याय, ध्यान की प्रवृत्ति" प्रशस्त रही? आपका यमनीय- "इन्द्रिय और मनो संयम प्रशस्त रहा?[२]

हे क्षमाश्रमण! आपके प्रति होने वाले दिवस-सम्बन्धी व्यतिक्रम के लिए आप मुझे क्षमा करे।

आपके लिये अवश्य करणीय कार्य मे मेरा कोई प्रमाद हुआ हो तो मै उसका प्रतिक्रमण करता हूँ। (यहा खडे हो जाना)

हे क्षमाश्रमण! आपकी तेतीस मे से कोई एक भी आशातना की हो, आपके प्रति यत् किंचित् मिथ्याभाव आया हो या मिथ्या व्यवहार किया हो, आपके

टिप्पणः- १ यहा पर तीन आवर्तन करें "अहो काय . काय" इस उच्चारण के साथ
२. यहां पर तीन आवर्तन करें "जत्ता भे. जविणिज्ज च भे" इस उच्चारण के साथ
विशेष- आवर्तन के अत मे भूमि तक मस्तक झुकाना चाहिये।

प्रति मन मे कोई बुरा विचार आया हो, खराब वचन बोले हो, काया की दुष्प्रवृत्ति की हो, आपके प्रति यदि क्रोध, मान, माया और लोभ के आवेश मे कोई अवाछनीय व्यवहार किया हो, सर्वकाल मे अर्थात् किसी भी क्षण मे होने वाली, सर्वमिथ्याचरणो से होने वाली, सब प्रकार के धर्म का अतिक्रमण करने वाली कोई भी आशातना की हो इत्यादि जो मैने दिवस सम्बन्धी अतिचार किया हो तो उसका हे क्षमाश्रमण! मै उसका प्रतिक्रमण करता हूँ, निंदा करता हूँ, गर्हा करता हूँ, आशातना मे प्रवृत्त अपनी आत्मा का व्युत्सर्जन करता हूँ।[3]

[इसके बाद खडे होकर निम्न पाठ बोलना-

१ नमस्कार मत्र २ सामायिक प्रतिज्ञा पाठ)

मंगल पाठ मूल:- चत्तारि मंगलं, अरिहता मंगलं, सिद्धा मगलं साहू मगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मगल। चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहन्ता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरण पवज्जामि, अरिहते सरण पवज्जामि, सिद्धे सरण पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि, केवलिपण्णत्त धम्म सरण पवज्जामि।

(अरिहन्तो का शरणा, सिद्धो का शरणा, साधुओ का शरणा, केवली प्ररूपित धर्म का शरणा)

चार शरणा दु ख हरणा, और न शरणा कोय।
जो भवीप्राणी आदरे, तो अक्षय अमर पद होय।।

अर्थ - अरिहत मगल, सिद्ध प्रभु मगल
साधु जन मगल, जिन धर्म मगल
अरिहत उत्तम, सिद्ध प्रभु उत्तम
साधु जन उत्तम, जिनधर्म उत्तम
-अरिहत शरण, सिद्ध प्रभु शरण
साधु जन शरण, जिन धर्म शरण
ये चार मगल, चार उत्तम, चार शरणा जीव ने।
जो भवि प्राणी, करे आराधन, शीघ्र पहुचे मोक्ष मे।।

[सक्षिप्त अतिचार प्रतिक्रमण का पाठ (इच्छामि ठामि) बोलना]

गमनागमन अतिचार प्रतिक्रमण का पाठ

हे भगवन्! मै ईर्यापथिकी विराधना का प्रतिक्रमण करना चाहता हूँ। मार्ग मे गमनागमन करते हुए किसी प्राणी को दबाया हो। किसी बीज को दबाया हो। किसी हरी वनस्पति को दबाया हो। ओस, कीडी नगरा, फूलण, पानी, मिट्टी

टिप्पण.- ३ इसी प्रकार दूसरी बार विधि सहित बोलना किंतु बीच मे खडे नहीं होना।

(सचित्त) और मकडी के जालो को कुचला हो और जो मैने एकिन्द्रिय बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पंचेन्द्रिय प्राणियो की विराधना की हो यथा- १. सन्मुख आते हुओ का हनन किया हो २. धूल आदि से ढंका हो ३. मसला हो ४. इकट्ठा किया हो ५. छूआ हो ६. परिताप (कष्ट) पहुंचाया हो ७. किलामना (ज्यादा कष्ट) पहुंचाई हो। ८. भयभीत किया हो ९. एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखा हो १० जीवन से रहित किया हो तो उसका पाप मेरे लिये निष्फल हो।

ज्ञान व उसके अतिचार:-

बारह अंग सूत्र और अन्य अनेक सूत्र रूप श्रुतज्ञान होता है जिसमे वर्तमान मे ३२ आगम उपलब्ध माने गये हैं। उनके अर्थ रूप मे अनेक सूत्रो की व्याख्याएं- निर्युक्तियां भाष्य चूर्णी टीका अनुवाद उपलब्ध है। ३२ आगम के नाम इस प्रकार है:-

११ अंग सूत्र- १- आचारांग सूत्र २- सूत्रकृतांग सूत्र ३- ठाणांग सूत्र ४- समवायांग सूत्र ५- भगवती सूत्र ६- ज्ञाता धर्म कथा सूत्र ७- उपासक दशा सूत्र ८- अंतकृत दशा सूत्र ९- अणुत्तरोपपातिक सूत्र १०- प्रश्न व्याकरण सूत्र ११- विपाक सूत्र।

१२ उपांग सूत्र- १- औपपातिक सूत्र २- राजप्रश्नीय सूत्र ३- जीवाभिगम सूत्र ४- प्रज्ञापना सूत्र ५- जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र ६- सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र ७- चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र ८-१२. निरियावलिका सूत्र (कप्पिया, कप्पवडंसिया पुप्फिया, पुप्फ चूलिया वण्हिदसा।)

४ छेद सूत्र- १- दशाश्रुत स्कंध सूत्र २- वृहत्कल्प सूत्र ३- व्यवहार सूत्र ४- निशीथ सूत्र

४- मूल सूत्र- १- उत्तराध्ययन सूत्र २- दशवैकालिक सूत्र ३- नंदी सूत्र ४- अनुयोग द्वार सूत्र, बत्तीसवां आवश्यक सूत्र। इनके विषय में मुख्य १४ अतिचार जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नही है। वे इस प्रकार है:- १. सूत्र के अक्षर या पद आगे - पीछे बोले हो २. एक सूत्र पाठ को दूसरे सूत्र में बोला हो ३- अक्षर कम बोले हो ४. अक्षर अधिक बोले हो ५. शव्द कम बोले हो ६. विनय रहित पढा हो ७. संयुक्त अक्षर शुद्ध न पढे हो ८. उच्चारण स्पष्ट न किया हो ९. अयोग्य को पढाया हो १०. अयोग्य रीति से ज्ञान ग्रहण किया हो ११. शास्त्र असमय में पढा हो १२. समय पर शास्त्र न पढा हो १३. चौतीस अस्वाध्याय मे शास्त्र पढा हो १४. अस्वाध्याय न हो तो भी प्रमाद वश शास्त्र न पढा हो। इन अतिचारो में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो उसका पाप मेरे लिये निष्फल हो। मिच्छामि दुक्कडं।

दर्शन सम्यक्त्व एवं अतिचार

केवल ज्ञान केवल दर्शन से युक्त राग द्वेष रहित वीतराग अरिहंत तीर्थंकर प्रभू मेरे आराध्य देव है।

पांच महाव्रत, पांच आचार, पांच समिति, तीन गुप्ति, नव वाड सहित ब्रह्मचर्य, पांच इन्द्रिय विजय, चार कषाय मुक्ति इन गुणो को धारण करने वाले सभी श्रमण श्रमणी मेरे आराध्य गुरू है।

संवर निर्जरा रूप धर्म अर्थात् सामायिक पौषध एवं त्याग तप नियम श्रावक व्रत संयम आदि मय धर्म ही मेरा आराध्य धर्म है।

जिनेश्वर भाषित एवं गणधर या पूर्वधर श्रमणो द्वारा रचित आगम ही मेरे श्रद्धा केन्द्र शास्त्र है। ऐसी सम्यक्त्व की प्रतिज्ञा को मैं जीवन भर के लिए धारण करता हूँ।

मैं जिन भाषित जीवादि तत्वो का ज्ञान बढाऊंगा, ऐसे ही ज्ञानी जनो की सगति करूंगा। मिथ्यामत धारी कुदर्शनियो की संगति नहीं करुंगा एवं उक्त सम्यक्त्व को धारण कर पुन· उसका वमन करके जो मिथ्यादृष्टि बन गये हैं, उनकी सगति भी नही करूंगा।

इस प्रकार की समकित के पांच प्रमुख अतिचार जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नही है। वे इस प्रकार है - १. भगवान के वचनो मे (सूक्ष्म तत्वो मे) सदेह किया हो २. परमत की प्रभावना चमत्कार देखकर मन आकर्षित हुआ हो ३. धर्म करणी के फल मे संदेह हुआ हो ४. परमत की प्रससा की हो ५. परमत के सन्यासी का व उनके शास्त्र का परिचय सम्पर्क किया हो। इन अतिचारो मे से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो उसका पाप मेरे लिये निष्फल हो। मिच्छामि दुक्कड।

बारह श्रावक व्रत एवं अतिचार:-

१- प्रथम अणुव्रत- स्थूल हिंसा का त्याग अर्थात् बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौरिंद्रिय पचेन्द्रिय इन त्रस जीवो को संकल्प पूर्वक मारने की भावना से मारने का त्याग अर्थात् निरपराधी त्रस जीव की हिंसा करने, कराने का मन से वचन से एवं काया से (दो करण तीन योग से) जीवन पर्यन्त त्याग जिसमें अपने या अपने आश्रित जीवो के शरीर मे पीडाकारी का एवं किसी भी प्रकार के अपराधी (दोषी) का आगार।

ऐसे प्रथम व्रत के मुख्य पांच अतिचार श्रावक श्राविका को जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नहीं है वे इस प्रकार है— १- गुस्से मे आकर किसी को कठोर बंधन से बांधा हो २- मारपीट की हो ३- किसी के अंग

उपाग का छेदन् भेदन किया हो ४- स्वार्थ वश पशु आदि पर अधिक भार भरा हो ५- किसी के खाने पीने मे रूकावट की हो, इन अतिचारो मे से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो उसका पाप मेरे लिये निष्फल हो। मिच्छामि दुक्कडं।

२- दूसरा अणुव्रत- स्थूल (बड़ा) झूठ बोलने का त्याग अर्थात् दूसरो के साथ धोखा हो दूसरो को नुकशान होवे ऐसा १- कन्या वर सम्बन्धी २ जानवर सम्बन्धी ३. भूमि-सम्पत्ति सम्बन्धी ४ धरोहर सम्बन्धी ५. साक्षी (गवाही) सम्बन्धी झूठ बोलने का त्याग अर्थात् इन पांच प्रकार का बड़ा झूठ बोलने का, बोलाने का मन से वचन से काया से (दो करण तीन योग से) जीवन पर्यन्त त्याग। जिसमे व्यापार सम्बन्धी, हास्य एवं आदत सम्बन्धी आगार तथा जीव रक्षा या संघ आज्ञा का आगार।

ऐसे दूसरे व्रत के मुख्य पांच अतिचार श्रावक श्राविका को जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नही है वे इस प्रकार है — १. बिना विचारे किसी के विषय मे असत्य कथन किया हो २. एकात मे बातचीत करने वाले पर झूठा आरोप लगाया हो ३ अपनी स्त्री, अपने पुरुष या मित्र की गुप्त बात प्रकट की हो ४. खोटी सलाह दी हो ५ झूठा लेख लिखा हो, झूठी साक्षी लिखी हो। इन अतिचारो मे से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो उसका पाप मेरे लिये निष्फल हो। मिच्छामि दुक्कडं।

३- तीसरा अणुव्रत- स्थूल (बड़ी) चोरी का त्याग अर्थात् १- दर्वाजा या भीत मे छिद्र करके २- माल-समान की गांठ या पेटी खोलकर ३- ताला तोड कर या खोलकर ४- जेब काट कर या लूट खसोट कर ५- कही पर भी रखी हुई या पड़ी हुई कीमती वस्तु चोरी की भावना से लेने का लिवाने का मन से वचन से काया से (दो करण तीन योग से) जीवन पर्यन्त त्याग। जिसमे सगे, सम्बन्धी, मित्र, पड़ौसी आदि की बिना चोरी की भावना से कोई भी वस्तु लेने का आगार।

ऐसे तीसरे व्रत के मुख्य पांच अतिचार श्रावक श्राविका को जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नही है वे इस प्रकार है - १ चोर की चुराई वस्तु जान-बूझ कर खरीदी हो २- चोर को सहायता दी हो ३- विरोधी राजा के राज्य सीमा मे व्यापारादि के लिए प्रवेश किया हो या राज्य मर्यादाओ का भंग किया हो ४- तोलना मापना गलत किया हो ५- एक वस्तु दिखाकर धोखे से दूसरी वस्तु दी हो या भाव बताकर उससे अधिक मूल्य लिया हो, इन अतिचारो मे से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो उमका पाप मेरे लिये निष्फल

हो मिच्छामि दुक्कड।

४- चौथा अणुव्रत- अपनी विवाहित स्त्री के अतिरिक्त परस्त्री के साथ कुशील सेवन का सम्पूर्ण त्याग। (अपने विवाहित पुरुष के अतिरिक्त पर पुरुष के साथ कुशील सेवन का संपूर्ण त्याग)। अपनी स्त्री के साथ (अपने पति के साथ) भी मर्यादित दिनो के सिवाय काया से कुशील सेवन करने का जीवन पर्यन्त त्याग। जिसमे मनुष्य तिर्यंच संबंधी एककरण एक योग से एवं देव देवी सबंधी दो करण तीन योग से कुशील सेवन का त्याग।

ऐसे चौथे व्रत के मुख्य पांच अतिचार श्रावक श्राविका को जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नही है वे इस प्रकार है - १. थोड़े समय के लिए रखी हुई स्त्री के साथ गमन किया हो। २. अविवाहित (सगाई की हुई) स्त्री के साथ गमन किया हो (अविवाहित पुरुष के साथ गमन किया हो) ३. प्रकृति के विरुद्ध काम कुचेष्टा की हो ४. अपनी संतान के सिवाय पराये का विवाह कराया हो ५ तीव्र अभिलाषा, आसक्ति से काम भोग का सेवन किया हो इन अतिचारो मे से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो उसका पाप मेरे लिये निष्फल हो। मिच्छामि दुक्कडं।

५- पाचवा अणुव्रत - परिग्रह की मर्यादा करना अर्थात् १ खेत,, मकान, प्लाट की मर्यादा करना २ सोने चांदी की मर्यादा करना ३. सम्पत्ति व धान्य सग्रह की मर्यादा करना ४ पशु पक्षी एवं नौकर आदि की मर्यादा करना ५. अन्य घर सामग्री (बर्तन वस्त्र फर्निचर उपकरण आदि) की मर्यादा करना, इस प्रकार मर्यादित परिग्रह से अधिक परिग्रह रखने का मन से वचन से एव काया से (एक करण तीन योग से) जीवन पर्यन्त त्याग।

ऐसे पाचवे व्रत के मुख्य पांच अतिचार श्रावक श्राविका के जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नही है, वे इस प्रकार है - १. अनजान से या सहसा खेत मकान आदि की मर्यादा का उल्लघन हुआ हो २ सोने चांदी आदि की मर्यादा का उल्लघन हुआ हो ३. संपत्ति धान्यादि की मर्यादा का उल्लघन हुआ हो ४ पशु नौकर आदि की मर्यादा की उल्लघन हुआ हो ५ घर के शेष सामान बर्तन, वस्त्र, फर्निचर आदि की मर्यादा का उल्लंघन हुआ हो, इन अतिचारो मे से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो उसका पाप मेरे लिये निष्फल हो। मिच्छामि दुक्कड।

६- छट्ठा व्रत- दिशा की मर्यादा करना अर्थात् उपर, नीचे एव चारो दिशा मे जाने की मर्यादा करना। उस मर्यादित क्षेत्र से आगे स्वय जाने का, मन से वचन से एवं काया से (एक करण तीन योग से) जीवन पर्यन्त त्याग।

ऐसे छट्ठे व्रत के मुख्य पांच अतिचार श्रावक श्राविका के जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नही है। वे इस प्रकार है - (१-३) भूल से या किसी परिस्थिति से ऊंची दिशा की, नीची दिशा की और चारो दिशाओ की मर्यादा का उल्लंघन किया हो, ४. पहले लिए हुए व्रत मे एक दिशा की मर्यादा को घटा कर दूसरी दिशा की मर्यादा को बढ़ा कर उसमे चला हो ५. मर्यादा का संशय होने पर भी आगे चला हो इन अतिचारो में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो उसका पाप मेरे लिये निष्फल हो। मिच्छामि दुक्कडं।

७- सातवां व्रत- उपभोग परिभोग की मर्यादा करना। इसमे १- दांतौन, २. साबुन ३. तेलादि विलेपन ४. स्नान ५. वस्त्र ६. फूल- इंत्र ७. आभूषण ८. धूप ९. खाने पीने के द्रव्य १०. हरी साग ११. फल-मेवे १२. मुखवास १३. वाहन १४. जूते आदि १५. सचित पदार्थों की यो उत्कृष्ट २६ बोलो की मर्यादा करना एवं व्यापार आदि की मर्यादा करना। इस प्रकार की मर्यादा से अधिक पदार्थों को उपयोग करने का एवं व्यापार करने का मन से वचन से और काया से (एक करण तीन योग से) जीवन पर्यन्त त्याग।

ऐसे सातवे व्रत के खाद्य पदार्थ सम्बन्धी मुख्य पांच अतिचार श्रावक श्राविका के जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नही है। वे इस प्रकार है-

१. सचित्त वस्तुएं खाई हो २. सचित से लगे हुए गिर आदि को मुंह मे डाल कर खाया हो ३. अग्नि से नही पके पदार्थ को पका हुआ समझ कर खाया हो ४. अधूरे सिके हुए भुट्टे आदि को पूर्ण पके समझ कर खाया हो ५. तुच्छ वस्तुएं अर्थात् मांस मद्य आदि अखाद्य पदार्थ एवं कंद मूल आदि अनंत जीवो के पाप जनक पदार्थों को खाया हो तथा इस व्रत मे की गई मर्यादाओ का भूल से या परिस्थिति से उल्लंघन किया हो इन अतिचारो मे से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो उसका पाप मेरे लिये निष्फल हो। मिच्छामि दुक्कड।

व्यापार सम्बन्धी अतिचार मे पन्द्रह कर्मादान अर्थात् विशेष कर्म बध कराने वाले व्यापार हैं जो श्रावक श्राविका के जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नही है वे इस प्रकार है— १. अग्निकाय की हिंसा वाले (कर्म) कार्य २. वनस्पति की हिंसा वाले कार्य ३. वाहन उत्पादन के कार्य ४. वाहन भाड़े से चलाने का कार्य ५. पृथ्वी खोदने आदि सम्बन्धी कार्य ६. दांत नख सिंग चर्म केस आदि त्रस जीवो के अवयवो का व्यापार ७. लाख चिपडी नमक साबुन आदि का व्यापार ८. मधु, मद्य, तेल, घी, गुड, शक्कर दूध दही

आदि का व्यापार ९. त्रस जीव, दास-दासी पशु, पक्षी आदि का व्यापार १०. हिंसक शस्त्र एव जहरीले पदार्थों का व्यापार ११. प्रेस चक्की घाणी आदि मिल कारखाने सम्बन्धी कार्य १२. बिंधना, डांभना, नपुंसक बनाना आदि कार्य १३. खेत जंगल आदि मे आग लगाना १४. तालाब आदि को खाली करना १५. हिंसक जानवरो का संग्रह एवं पोषण करना ये कुल १५ कर्मादान है। इनके अतिरिक्त भूल से अपने मर्यादित व्यापारों के अतिरिक्त कोई व्यापार करना। इन अतिचारो मे से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो उसका पाप मेरे लिये निष्फल हो। मिच्छामि दुक्कडं।

८- आठवां व्रत- अनर्थदड का त्याग अर्थात् बिना प्रयोजन अविवेक से कर्म बध के कार्य नहीं करना। जैसे कि - १ आर्तध्यान रौद्र ध्यान के निरर्थक सकल्प विकल्प करना २. आवश्यक प्रवृत्तियो को प्रमाद पूर्वक एवं अविवेक पूर्वक करना, घी, तेल आदि तरल पदार्थों के बर्तन खुले रखना ३. विवेक हीन को हिंसाकारी शस्त्र देना या शस्त्रो का वितरण करना ४. बिना जिम्मेवारी के हर किसी को पाप युक्त कार्यों की प्रेरणा करना। ऐसे चार प्रकार के अनर्थ दंड की प्रवृति करने या कराने का मन से वचन से एवं काया से (दो करण तीन योग से) जीवन पर्यन्त त्याग।

ऐसे आठवे व्रत के मुख्य पांच अतिचार श्रावको के जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नही है वे इस प्रकार है — १.काम विकार जगाने वाली बाते या हंसी मजाक की हो २. शरीर से कुचेष्टाएं की हो ३. बेतुकी बाते की हो या निरर्थक वचन बोले हो ४. शस्त्रो का अधिक संग्रह किया हो या उन्हे अयोग्य तरीके से रखे हो। ५. आवश्यकता से अत्यधिक उपभोग परिभोग के सामान का एवं खाद्य सामग्री का संग्रह किया हो तथा पाप से निष्पन्न चीजो की स्थानो की अति प्रशंसा-सराहना की हो, इन अतिचारो मे से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो उसका पाप मेरे लिये निष्फल हो। मिच्छामि दुक्कडं।

९- नवमा व्रत- सामायिक करना अर्थात् एक मुहूर्त (या मर्यादित) समय के लिए अठारह पापो का त्याग करना। जिसमे हिंसादि पाप प्रवृत्तिएं एवं खान पान स्वयं करने का और दूसरो से कराने का मन से वचन से एवं काया से (दो करण तीन योग से) त्याग होता है। उस समय में स्वाध्याय ध्यान एवं प्रभु स्मरण के द्वारा समभावों की साधना की जाती है।

ऐसे सामायिक व्रत के मुख्य पांच अतिचार श्रावक श्राविका के जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नहीं है वे इस प्रकार है— १. सामायिक मे मन

से अशुभ विचार किया हो २. अशुभ अयोग्य वचन बोले हो ३. शरीर से अनावश्यक या अशुभ प्रवृति की हो ४. सामायिक की स्मृति न रही हो या सामायिक के लेने एवं पारने के समय का ध्यान नही रखा हो, जिससे सामायिक पूर्ण हुए बिना पारली हो ५ सामायिक ठीक रीति से न की हो अर्थात् सामायिक व्रत का ३२ दोषो से रहित विधि पूर्वक पालन न किया हो, इन अतिचारो मे से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो उसका पाप मेरे लिये निष्फल हो। मिच्छामि दुक्कडं।

१०- दसवां व्रत- दिशाओ की एव द्रव्यादि की दैनिक मर्यादा करना अर्थात् नित्य १४ नियम धारण करना, तीन मनोरथ का चिंतन करना। इसमे मर्यादित पदार्थों के उपरात पदार्थो का एक करण तीन योग से अर्थात् मन वचन काया से उपयोग करने का त्याग होता है एव दिशाओ की विशेष सूक्ष्मतम मर्यादा भी एक दिन रात के लिए की जाती है।

ऐसे दसवे व्रत के मुख्य पांच अतिचार श्रावक श्राविकाओ के जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नही है वे इस प्रकार है - १. मर्यादित सीमा के बाहर से वस्तु मगवाई हो २. अंदर की वस्तु बाहर भिजवाई हो ३. हुकार आदि शब्द करके संकेत किया हो ४ रूप दिखाकर या ईशारा करके सकेत किया हो ५ ककर आदि फेक कर अपने भाव प्रकट किए हो तथा सचित्त, द्रव्यादि बोलो की दैनिक मर्यादा का उल्लघन हुआ हो। तीन मनोरथ का चिंतन न किया हो, इन अतिचारो मे से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो उसका पाप मेरे लिये निष्फल हो। मिच्छामि दुक्कड।

११- ग्यारहवां व्रत- प्रतिपूर्ण पौषध करना अर्थात् दिन रात के आठ प्रहर, सात प्रहर या जघन्य चार प्रहर आदि के लिए पाप प्रवृत्तियो का सपूर्ण त्याग करना। इसमे पाप त्याग के साथ सम्पूर्ण सांसारिक प्रवृतियो का, माला आदि से शरीर संस्कार का त्याग किया जाता है, कुशील सेवन का सम्पूर्ण त्याग किया जाता है, भोजन पानी का सम्पूर्ण त्याग या मर्यादा की जाती है, आभूषण का सम्पूर्ण त्याग या मर्यादा की जाती है। इसमे सभी त्याग दो करण तीन योग से होते है।

ऐसे उपवास युक्त या उपवास रहित (आहार युक्त) पौषध व्रत के मुख्य पाच अतिचार श्रावक श्राविका को जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नही है वे इस प्रकार है - १. पौषध मे मकान-पाट बिछोने आदि की दोनो समय विधि पूर्वक प्रतिलेखना न की हो या विधियुक्त न की हो २. उनका प्रमार्जन न किया हो या अविधि से प्रमार्जन किया हो ३ मल- मूत्र परठने की

भूमि को न देखी हो या अच्छी तरह से न देखी हो ४. मल मूत्र त्यागने की जगह का प्रमार्जन न किया हो या अच्छी तरह से न किया हो। पोषध मे मल-मूत्र परठने जाते समय तीन बार "आवस्सही" - आवस्सही" न कहा हो। परठने की भूमि के लिए शकेन्द्र महाराज की आज्ञा न ली हो, थोड़ी भूमि पूंज कर अधिक भूमि मे परठा हो, परठने के बाद तीन बार "वोसिरे-वोसिरे" न कहा हो, वापिस आते समय "निस्सही-निस्सही" न कहा हो, स्थान पर आकर कायोत्सर्ग न किया हो ५. पौषध व्रत का सम्यक् प्रकार से पालन न किया हो अर्थात् निद्रा, विकथा, प्रमाद आदि मे समय व्यतीत किया हो। इन अतिचारो मे से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो उसका पाप मेरे लिये निष्फल हो। मिच्छामि दुक्कडं।

१२- बारहवां व्रत- अतिथि सविभाग अर्थात् अपने लिए बने आहारादि मे से अनिश्चित तिथी वाले श्रमण निग्रन्थो को सविभाग देना। इसमे तीर्थंकर भगवान की आज्ञा मे विचरण करने वाले साधु साध्वियो को देश काल के विवेक सहित, श्रद्धा सत्कार युक्त, परम भक्ति से, निर्दोष कल्पनीय भोजन-पानी, औषध और वस्त्र, पात्र, रजोहरण आदि उपकरण तथा मकान पाट आदि का अपने कल्याण की भावना से दान देना। दिन मे कम से कम एक बार ऐसे सुपात्र दान देने की भावना करना।

ऐसे बारहवे व्रत के मुख्य पाच अतिचार श्रावक श्राविका के जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नही है, वे इस प्रकार है— १ अविवेक से घर मे सचित्त अचित्त पदार्थ सघट्टे से रखे हो या भोजन करते समय नमक, पानी, नीबू आदि अपने सघट्टे मे रखा हो २. अविवेक से अचित धोवण आदि एव खाद्य सामग्री पर सचित्त पानी या अन्य सचित्त पदार्थ रखे हो ३ भिक्षा के समय घर का द्वार खुला रख कर भावना न भाई हो या भिक्षा के असमय मे भावना भाई हो ४ उपयोग एव उमग के अभाव मे प्रसग आने पर स्वय अपने हाथ से सुपात्रदान न देकर दूसरो को निर्देश किया हो अर्थात् खुद बहराऊ ऐसा याद नही आया हो ५ आदर भाव युक्त परिणामो से विनय विवेक एव भक्ति से दान न देकर कषाय युक्त अशुद्ध परिणामो से दान दिया हो अर्थात् दान देने मे ईर्ष्या, बराबरी, दिखावा, घमण्ड, आग्रह, जिद्द, अविनय, अविवेक, अभक्ति से बहराया हो इन अतिचारो मे से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो उसका पाप मेरे लिये निष्फल हो। मिच्छामि दुक्कड।

तपस्वरूप एवं इसके अतिचार का पाठः-

१ नवकारसी, २ पौरुषी, ३ दो पौरुषी, ४. अभिग्रह, ५ एकासन ६

एकलठाणा, ७. निवी, ८. आयंबिल, ९. एक उपवास यावत् छ मासी तप १०. दिवस चरिम प्रत्याख्यान। अपने आत्म कर्मों की निर्जरा के लिए इसमें से यथा शक्ति तप करना। तथा मरण समय में आजीवन अनशन- १. भक्त प्रत्याख्यान (चारो आहार और १८ पाप का त्याग) २. इंगिनी संथारा (अन्य के द्वारा सेवा परिचर्या कराने का त्याग) ३. पादपोपगमन संथारा (शरीर की सम्पूर्ण सेवा परिचर्या का एवं ममत्व का त्याग) इन तीन प्रकार के संथारे में से कोई एक अनशन संथारा मरण समय मे धारण करना।

इन अल्पकालीन एवं आजीवन तपो के मुख्य पांच अतिचार जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नहीं है। वे इस प्रकार है – १. तपस्या करके इस भव के मान सम्मान सुख समृद्धि की चाहना की हो २. पर भव के मान सम्मान सुख समृद्धि की चाहना की हो ३. अधिक जीने की या यश की चाहना की हो ४. दु:ख से घबराखर जल्दी मरने की चाहना की हो ५. तपस्या के समय मे काम भोगो की या इन्द्रिय विषयो की चाहना की हो तथा शक्ति होते हुए भी प्रतिदिन कुछ तप नहीं किया हो एवं अष्टमी चतुदर्शी आदि पर्व दिनो मे भी कोई तप न किया हो।

इन अतिचारो मे से मुझे दिवस सम्बन्धी कोई अतिचार लगा हो तो उसका पाप मेरे लिये निष्फल हो। मिच्छामि दुक्कडं।

(अतिचार संग्रह पाठ बोलना)

(अठारह पाप स्थान का पाठ बोलना)

फिर सुखासन से बैठकर संलेखना पाठ बोलना–

संलेखना-संथारा:-

हे भंते! मै जीवन के अंतिम समय मे अपने धार्मिक जीवन की आराधना के लिये संलेखना करता हूँ एवं मृत्यु को बिल्कुल निकट आया जानकर संथारा ग्रहण करता हूँ।

धर्म स्थान-पौषध शाला का प्रतिलेखन प्रमार्जन करके और उसके आस-पास निकट मे मल-मूत्र परठने की भूमि का प्रतिलेखन करके घास आदि का संथारा बिछौना बिछाकर गमनागमन का प्रतिक्रमण (ईयावहि) करके घास के संथारे पर सुखाशन से बैठता हूँ।

दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक के पास अंजली करके पहले सिद्ध स्तुति से सिद्ध भगवान को एवं दूसरी बार सिद्ध स्तुति से महाविदेह क्षेत्र मे विराजमान अरिहंत भगवान तीर्थंकर को नमस्कार करता हूँ।

सभी साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका से क्षमायाचना एवं क्षमाभाव प्रदान करके फिर सभी छोटे बड़े जीवो से क्षमायाचना एवं क्षमाभाव प्रदान करता हूँ अर्थात् किसी भी प्राणी के प्रति बैर विरोधभाव अब मैं नही रखता हूँ।

पूर्व जीवन मे लिये हुए व्रत प्रत्याख्यानो मे कोई अतिचार दोष लगा हो तो उसका स्मृति पूर्वक आलोचना प्रतिक्रमण करके उसको त्याज्य समझ कर अब मैं पूर्ण निःशल्य होता हूँ।

पहले मैने अंशतः हिंसा आदि १८ पापो का त्याग किया था अब मैं आपकी साक्षी (शासन पति की साक्षी) से समपूर्ण १८ पापो का तीन करण तीन योग से जीवन पर्यन्त के लिये त्याग करता हूं।

अशन पान खादिम स्वादिम चारो प्रकार के आहारो का (अथवा तीनो आहारों का) भी जीवन पर्यन्त के लिये त्याग करता हूँ।

धन कुटुम्ब परिवार सगे सम्बन्धी मित्र साथी जिनको भी अपना समझा है जिनके लिये "ये मेरे है, ये मेरे है" ऐसा माना है उनका भी मै त्याग करता हूँ क्यो कि मैं तो अकेला हूँ और अकेला ही मृत्यु को प्राप्त करने वाला हूँ।

जो यह मेरा शरीर है जिसके प्रति मैने जीवन भर बहुत ही मोह ममत्व रखा है इसकी अत्यधिक सार संभाल की है इस शरीर की सुख सुविधा के लिये ही रात दिन प्रयत्न शील रहा हूं इस शरीर का भी अब मैं त्याग करता हूँ इसे वोसिराता हूँ क्यो कि यह औदारिक शरीर भी यही रह कर जलकर भस्म होने वाला है।

इस प्रकार मैं पूर्ण रूप से आजीवन अनशन भक्त प्रत्याख्यान सथारा ग्रहण करता हूँ। और पंच परमेष्ठी महामंत्र को ही शरण भूत मान कर उसी को स्मरण करता हूँ एव उसी के चिंतन मनन अर्थ परमार्थ अवगाहन मे अपनी आत्मा को लीन बनाता हूँ।

चौदह सम्मुर्च्छिम मनुष्य का पाठः-

मनुष्य सम्बन्धी ये १४ चौदह अशुचि स्थान है जिसमे उत्कृष्ट दो मिनट की उम्र वाले असंख्य सम्मुर्च्छिम मनुष्य जन्मते मरते रहते है यथा- १. मल मे २. मूत्र मे ३. कफ मे ४. श्लेष्म मे ५. वमन मे ६. पित्त मे ७ खून मे ८. पीक रस्सी मे ९. शुक्र-वीर्य मे १०. पुन· गीले हुए शुक्र मे ११ मृत शरीर मे १२. स्त्री पुरुष के संयोग मे अर्थात कुशील सेवन मे १३. गटरो में १४. अन्य भी उकरडी आदि अशुचि संकलन के दुर्गंध युक्त स्थानो मे।

इन जीवो की जाने अनजाने आदत प्रमाद वश विराधना हुई हो तो उसका मै पश्चात्ताप करता हूं और ऐसी प्रमाद प्रवृति से एक दिन निवृत होऊं ऐसी

मनोकामना करता हूँ।

२५ मिथ्यात्व का पाठ-

खोटी मान्यता अशुद्ध समझ अशुद्ध श्रद्धा के ये २५ प्रकार जानने योग्य एवं छोडने योग्य है यथा–

१- जिनेश्वर कथित जीव को अजीव मानना २. अजीव को जीव मानना ३- धर्म कृत्य को अधर्म मानना ४- अधर्म को धर्म मानना ५- पंचमहाव्रत पालन कर्ता श्रमण को साधु नही मानना ६- पच महाव्रत पालन नही करने वाले असाधु को साधु मानना ७- मोक्ष मार्ग को ससार मार्ग मानना ८- ससार मार्ग को मोक्ष मार्ग मानना ९- मुक्त हुए जीवो को अमुक्त (मोक्ष नही गये) मानना १०- मोक्ष गये जीवो को अमुक्त मानना ११- आग्रह युक्त खोटी समझ १२- सामान्य रूप खोटी समझ १३- जानबूझ कर खोटी को सही मानने मनवाने का आग्रह १४- सशय युक्त समझ १५- अनाभोग भोलापन अज्ञान दशा विकास रहित अवस्था १६- लोक प्रचलन की मिथ्या समझ प्रवृति १७- परलोक सम्बन्धी मिथ्या समझ प्रवृति १८- अन्य मत संबंधी मान्यता (१९ से २१) जिन प्रवचन सिद्धात से हीन अधिक या विपरीत मानना २२- क्रिया आचार प्रवृति की उपेक्षा वृत्ति विचार २३- ज्ञान अध्ययन के प्रति उपेक्षा वृत्ति विचार २४- विनय भाव की उपेक्षा वृत्ति विचार अर्थात् शुद्ध धर्म और धर्मात्माओ के प्रति अविनय भाव एवं अविनय वृत्ति २५- शुद्ध धर्म धर्मात्माओ के अनादर अवहेलना आशातना भाव एव वृत्ति।

इन २५ मिथ्यात्व का मै त्याग करता हूँ। अज्ञानता एवं अविवेक से या दु:संगत से इन २५ मिथ्यात्व मे से किसी मिथ्यात्व भावो या मिथ्यात्व प्रवृतियो का सेवन हुआ हो तो मै उसका पश्चात्ताप करता हूँ त्याग करता हूँ। उससे लगा मेरा वह पाप मिथ्या-निष्फल होवे। **(मिच्छामि दुक्कडं)**

आराधना अभ्युत्थान पाठ

सर्वज्ञ सर्वदर्शी जिनेश्वर भगवत द्वारा बताये गये इस श्रेष्ठ धर्म की शुद्ध आराधना के लिये मै उद्यत होता हूँ तत्पर होता हूँ जागरूक होता हूँ और इस धर्म की विराधना की वृत्तियो प्रवृत्तियो से निवृत्त होने (दूर रहने) का दृढ सकल्प करता हूँ।

(इसके बाद उत्कृष्ट वन्दन इच्छामि खमासमणो का पाठ दो बार)

(इसके वाद पाच पदो की भाव वन्दना)

पंच परमेष्ठी भाव युक्त वंदन-

पहले पद श्री अरिहत भगवान बीस विहरमान तीर्थंकर भगवान उत्तर दिशा

मे पांच महाविदेह क्षेत्र की ४-४ विजय मे यों कुल २० विजय मे विचरण कर रहे हैं। केवल ज्ञान केवल दर्शन के धरणहार, ५०० धनुष का शरीर, ३४ अतिशय व ३५ वाणी के गुण तथा आठ महा प्रातिहार्य से युक्त है। ऐसे हे अरिहत भगवान! आपकी दिवस सम्बन्धी अविनिय आशातना हुई हो तो मेरा अपराध क्षमा करिये। आपका मुझे भव भव मे शरण हो।

तिक्खुत्तो आयाहिणं - इत्यादि एक बार उच्चारण युक्त वंदन।

सवैया – नमु श्री अरिहंत, कर्मों का किया अंत।
हुआ सो केवल वत, करूणा भण्डारी है।
अतिशय चौंतीस धार, पेतीस वाणी उचार,
समझावे नर नार, पर उपकारी है।
शरीर सुदराकार, सूरज सो झलकार,
गुण है अनत सार, दोष परिहारी है।
कहत है तिलोक रिख, मन वच काया करी
भाव युत वारम्बार, वंदना हमारी है (१)

दूसरे पद श्री सिद्ध भगवान ऊर्ध्व लोक के अग्रभाग (अंत) मे विराजमान अनत सिद्ध भगवान १४ प्रकारे, पद्रह भेदे, केवल ज्ञान, केवल दर्शन सहित, आठ कर्म शरीर रहित, निरजन, निराकार, ३१ गुणों के धारण हार, ऐसे हे। सिद्ध भगवान आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना हुई तो मेरा अपराध क्षमा करिये। आपका मुझे भव भव मे शरण हो। — फिर एक बार वदन पूर्ववत्-

सवैया – सकल कर्म टाल, बस कर लियो काल
मुगति मे रहया माल, आत्मा को तारी है।
देखत सकल भाव, हुआ है जगत राव
सदा ही क्षायक भाव, भये अविकारी है।
अचल अटल रूप, आवे नही भव कूप
अनूप स्वरूप ऊप, ऐसे सिद्ध धारी है।
कहत है तिलोक रिख भक्ति और भाव युक्त
सदा ही उगते सूर्य, वदना हमारी है (२)

तीसरे पद - श्री आचार्य भगवत - सकल संघ के नायक शिरोमणि ज्ञानवत आचार वत, साधु के २७ गुणो से युक्त ओजस्वी तेजस्वी वर्चस्वी यशस्वी धीर वीर गंभीर तथा आठ सपदा १- आचार सपदा २- श्रुत सपदा ३- शरीर

संपदा ४- वचन संपदा ५- वाचना संपदा ६- मति संपदा ७- प्रयोग मति संपदा ८- संग्रह परिज्ञा संपदा करके सहित है बहुश्रुत आगमज्ञ तथा कम से कम आचारांग सूत्र निशीथ सूत्र, सूत्रकृतांग सूत्र दशाश्रुत स्कंध सूत्र, वृहत्कल्प सूत्र और व्यवहार सूत्र इन ६ सूत्रो को सूत्र रूप व अर्थ रूप से कंठस्थ धारण करने वाले हैं। ऐसे हे आचार्य भगवंत! आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना हुई हो तो मेरा अपराध क्षमा करिये। आप मांगलिक हो आप उत्तम हो हे स्वामी हे नाथ आपका इस भव, पर भव, भव-भव मे शरण होवे (एक बार वंदना)-

सवैया – गुण हैं छत्तीस पूर, धरत धरम उर,
मारत करम क्रूर, सुमति विचारी है।
शुद्ध सो आचारवन्त, सुन्दर है रूप कन्त,
भणिया सब ही सिद्धान्त, वाचणी सुप्यारी है।
अधिक मधुर वेण, कोई नही लोपे केण,
सकल जीवो के सेण, किरत अपारी है।
कहत है तिलोकरिख, हितकारी देते सीख,
ऐसे आचारजजी को, वन्दना हमारी है (३)

चौथे पद - श्री उपाध्याय भगवत - सकल संघ के द्वितीय पदवीधारी, परम उपकारी, शिष्यो को योग्यता अनुसार शास्त्रो का अध्ययन कराने वाले, आचार्य के सहायक, आचारवत, ज्ञानवत, साधु के २७ गुणो से युक्त, ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी, यशस्वी, पढाने की रूचि वाले तथा पढाने मे कुशल, बहुश्रुत आगमज्ञ, अनेक शास्त्रो के धारक, कम से कम आचारांग सूत्र और निशीथ सूत्र को सूत्र रूप व अर्थ रूप से कण्ठस्थ धारण करने वाले हैं। ऐसे हे उपाध्याय भगवंत! आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना हुई हो तो मेरा अपराध क्षमा करिये। आप मांगलिक हो, आप उत्तम हो, हे स्वामी। हे नाथ! आपका इस भव परभव, भव भव मे शरण होवे- (एक बार वंदना)—

सवैया – पढ़त ग्यारह अंग, करमो सुं करे जग,
पाखण्डी को मान भंग, करण हुशियारी है।
चवदे पूरब धार, जानत आगम सार,
भवियन के सुखकार, भ्रमता निवारी है।।
पढावे भविक जन, स्थिर कर देते मन,
तप कर तावे तन, ममता को मारी है,

कहत है तिलोकरिख, ज्ञान-भानु परतिख,
ऐसे उपाध्यायजी को वन्दना हमारी है।।

पांचवें पद - णमो लोए सव्व साहूणं - अढाई द्वीप मे ५ भरत ५ एरावत ५ महाविदेह इन १५ क्षेत्र मे अनेक हजार करोड साधु-साध्वी जी तीर्थंकर भगवंत की आज्ञा मे विचरण करने वाले हैं। पांच महाव्रत पाले, पांच इन्द्रियां जीते, चार कषाय टाले, भाव सच्चे, करण सच्चे, योग सच्चे, क्षमावंत, वैराग्यवंत, मन शुद्ध, वचन शुद्ध, ज्ञान सम्पन्न, दर्शन संपन्न, चारित्र संपन्न, वेदना मे शहनशील, मारणातिक कष्टो में सहन शील, ये २७ अणगार गुणो के धारण करने वाले अल्प श्रुतज्ञानी या बहुश्रुत, अवधिज्ञानी मन:पर्यवज्ञानी, केवलज्ञानी, रजोहरण गोच्छग पात्र मुख वस्त्रिका साधुलिंग के धारण करने वाले, १८ हजार शीलांग (सयम गुणों) के धारण करने वाले है। ऐसे हे अणगार भगवंत! आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना हुई हो तो मेरा अपराध क्षमा करिये। आप मांगलिक हो आप उत्तम हो हे स्वामी! हे नाथ! आपका इस भव, पर भव, भव भव मे शरणा होवे। (एक बार वंदना)-

सवैया – आदरी संयम भार, करणी करे अपार
समिति गुपति धार, विकथा निवारी है।
जयणा करे छह काय, सावद्य न बोले वाय,
बुझाई कषाय लाय, किरिया भण्डारी है।।
ज्ञान भणे आठो याम, लेवे भगवन्त नाम,
धरम को करे काम, ममता को मारी है।
कहत है तिलोकरिख, करमो का टाले विख,
ऐसे मुनिराजजी को वन्दना हमारी है।। (५)

अनंत चौवीसी - दोहे

अनन्त चौबीसी जिन नमूं, सिद्ध अनन्ता करोड़।
केवलज्ञानी गणधरा, बन्दूं बे कर जोड़ (१)
दोय करोड़ केवलधरा, विहरमान जिन बीस।
सहस्र युगल कोड़ी नमूं, साधु नमूं निश दीस (२)
धन साधु धन साध्वी, धन धन है जिन धर्म।
ये सुमर्यां पातक झरे, टूटे आठो कर्म (३)
अरिहत सिद्ध समरूं सदा, आचारज उवज्झाय।
साधु सकल के चरण को, वन्दू शीश नमाय (४)

अगूठे अमृत बसे, लब्धि तणा भण्डार।
श्री गुरु गौतम समरिये, वाछित फल दातार (५)

भावना - दोहे

राजा राणा छत्रपति, हाथी के असवार
मरना सब को एक दिन अपनी अपनी बार॥१॥
[धन शरीर यौवन परिवार सुख आदि सभी अनित्य है।]
दल बल देवी देवता मात पिता परिवार
मरती वेला जीव को कोई न राखनहार॥२॥
[घर परिवार रिद्धि कोई भी शरण भूत नही है।]
दाम बिना निर्धन दुखी तृष्णा वश धनवान
कहुं न सुख ससार मे सब जग देख्यो छान॥३॥
[संसार दु.खो से भरा हुआ है सुख मे भी दुःख रहे हुए है।]
आप अकेला अवतरे मरे अकेला होय,
यो जग मे इस जीव का साथी सगा न कोय॥४॥
[मेरा मेरा करना व्यर्थ है। जन्म मरण और दु.खो को जीव अकेला ही भोगता है।]
जहा देह अपनी नही तहाँ न अपनो कोय।
घर सपत्ति पर प्रगट है पर है परिजन लोग॥५॥
धन जन कचन राज सुख सभी सुलभ कर जान
दुर्लभ है ससार मे एक यथारथ ज्ञान॥६॥
जाचे सुरतरू देय सुख चिंतित चिंता रेन
बिन जांचे बिन चिंतिए धर्म सकल सुख देन॥७॥
धर्म करत संसार सुख धर्म करत निर्वाण।
धर्म पथ साधे बिना नर तिर्यंच समान॥८॥

श्रमण क्षमापना पाठ:-

आयरिय उवज्झाए, सीसे साहम्मिए कुल गणे य।
जे मे केई कसाया, सव्वे तिविहेण खामेमि ॥१॥
सव्वस्स समणसघस्स, भगवओ अंजलिं करिअ सीसे।
सव्व खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहमपि ॥२॥
सव्वस्स जीवरासिस्स, भावओ धम्म निहिय नियचित्तो।

सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहमंपि ॥३॥

श्रावक क्षमापना पाठ:-

अढाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र मे तथा बाहर श्रावक-श्राविका दान देवे, शील पाले, तपस्या करे, शुद्ध भावना भावे, सवर करे, सामायिक करे, पौषध करे, प्रतिक्रमण करे, तीन मनोरथ चिन्तवे, चौदह नियम चितारे, जीवादिक नव पदार्थ जाने, श्रावक के इक्कीस गुण कर के युक्त, एक व्रतधारी, जाव बारह व्रतधारी, भगवन्त की आज्ञा मे विचरे, ऐसे बड़ों से हाथ जोड़, पांव पड़ के क्षमा मागता हूँ। आप क्षमा करे। आप क्षमा करने योग्य हैं और शेष सभी से क्षमा मागता हूँ।

चौरासी लाख जीवनयोनि का पाठ:-

सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अप्काय, सात लाख तेउकाय, सात लाख वायुकाय, दस लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय, चौदह लाख साधारण वनस्पतिकाय, दो लाख बेइन्द्रिय, दो लाख तेइन्द्रिय, दो लाख चउरिन्द्रिय, चार लाख देवता, चार लाख नारकी, चार लाख तिर्यंच पंचेन्द्रिय, चौदह लाख मनुष्य - ऐसे चार गति मे चौरासी लाख जीव-योनि के सूक्ष्म-बादर, पर्याप्त-अपर्याप्त जीवो मे मे किसी जीव का हिलते, चलते, उठते, बैठते, सोते, जागते, हनन किया हो, कराया हो, हनता प्रति अनुमोदन किया हो, छेदा हो, भेदा हो, किलामणा उपजाई हो, तो मन वचन काया कर के अठारह लाख चौबीस हजार एक सौ बीस (१८२४१२०) प्रकारे तस्स मिच्छामि दुक्कड।

क्षमापना पाठ:-

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्व भूएसु, वेर मज्झ न केणइ॥

(जिन जीवों ने मेरे साथ गलत व्यवहार किया हो और उनसे मुझे नाराजी हुई हो तो अब मैं उन्हे क्षमा कर उनके प्रति नाराजी दूर कर मैत्री भाव स्थापित करता हूँ। जगत मे कोई जीव मेरा शत्रु नही है, अपने किये कर्म से ही सुख दु.ख होता है। अत. मेरा किसी के प्रति वैर भाव नाराजी भाव नही है। सभी जीवो से मैत्री भाव है।

मैने जानकर या अनजान से किसी जीव के प्रति गलत व्यवहार किया हो किसी को कष्ट पहुंचाया हो तो मैं अपने अपराध की उनसे भगवान की साक्षी से क्षमायाचना करता हू वे जीव मुझे क्षमा प्रदान करे।)

एवमह आलोइयं, निंदियं गरिहियं दुगंछियं सम्मं।
तिविहेण पडिक्कतो वंदामि जिण चउवीस॥

अर्थ- इस प्रकार मैं अपने व्रतो के अतिचार दोषो की और कषाय भावो की आलोचना निंदा गर्हा करके उनसे अलग होता हूँ एवं उन दोषो का पूर्ण रूपेण त्याग करते हुए चौबीसो जिनेश्वर तीर्थंकर प्रभू को वंदन करता हूँ।

इसके बाद खडे होकर 'कायोत्सर्ग आज्ञा पाठ' बोलना-

कायोत्सर्ग आज्ञा पाठः-

हे भगवन्! आपकी आज्ञा लेकर दिवस सम्बन्धी प्रायश्चित्त की विशुद्धि के लिये कायोत्सर्ग करता हूँ।

(फिर नमस्कार मंत्र, सामायिक लेने का पाठ, संक्षिप्त अतिचार प्रतिक्रमण का पाठ, कायोत्सर्ग प्रतिज्ञा पाठ (तस्सउत्तरी का पाठ)।)

(फिर कायोत्सर्ग मे — समभाव क्षमाभाव का चिंतन करना)

- सम भाव क्षमा भाव चिंतन -

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे,
मित्ती मे सव्व भूएसु, वेरं मज्झ न केणई ॥१॥
क्षमा वडन को चाहिए, छोटन को उत्पात।
कह्य कृष्ण को थई गयो, भृगु जी मारी लात ॥२॥
जैसी जापे वस्तु है, वैसी दे दिखलाय।
वांका बुरा न मानिए, वो लेन कहां पर जाय ॥३॥
बांध्या बिन भुगते नही, बिन भुगत्या न छुडाय।
आप ही करता भोगता, आप ही दूर कराय ॥४॥
बांध्या सो ही भोगवे, कर्म शुभाशुभ भाव।
फल निर्जरा होत है, यह समाधि चित चाव ॥५॥
जो जो पुद्गल फरसना, निश्चय फरसे सोय।
ममता समता भाव से, कर्म बंध क्षय होय ॥६॥
राई मात्र घट वध नही, देख्या केवल ज्ञान।
यह निश्चय कर जानिए, तजिए आर्तध्यान ॥७॥
सुख दुःख दोनो बसत है, ज्ञानी के घट माहि।
गिरि सर दीसे मुकुर में, भार भींजवो नाहिं ॥८॥
निज आतम को दमन कर, पर आतम मत चीन।
परमातम को भजन कर, सो ही मत परवीन ॥९॥
पर स्वभाव को मोड़ा चाहता, अपना ठसा जमाता है।
यह न हुई न होने की, तूं नाहक जान जलाता है ॥१०॥
गई वस्तु सोचे नहीं, आगम वांछा नांय।
वर्तमान वर्ते सदा, सो ज्ञानी जग मांय ॥११॥
अवगुण उर धरिए नहीं, जो हो वृक्ष बबूल।
गुण लीजे कालू कहे, नही छाया मे सूल ॥१२॥
ईष्ट मिले आशा मिले, मिले खान अरू पान।
एक प्रकृति ना मिले, इसकी खेंचातान ॥१३॥
गाली सह्या गुण घणा, देने से लगता दोष।

देने से मिलती दुर्गति, सहने से मिलता मोक्ष ।।१४।।
परालब्ध पहले बना, पीछे बना शरीर।
यह अचंभा हो रहा, मन नहीं धरता धीर ।।१५।।

[इसके बाद जिस जिस व्यक्ति,जीव, श्रावक, श्राविका, शिथिलाचारी, सहचारी साधु-साध्वी के साथ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे विषम भाव चिंतन मे चलतें हो उन्हें स्मृति में लेकर उनके प्रति समभाव जागृत करने चाहिए।]

- तप चिंतन विधि -

किं तवं पडिवज्जामि, एवं तत्थ विचिंतए। - उत्तरा. २६

छम्मासी तप करना?	- शक्ति नहीं/अभ्यास नहीं
पांच, चार, तीन, दो मासी तप करना?	- शक्ति नहीं/अभ्यास नहीं
मासखमण करना?	- शक्ति है किन्तु अवसर नहीं
१५, ८, ७, ६, ५, ४, ३, बेला करना?	- शक्ति है किन्तु अवसर नहीं
उपवास, आयंबिल निवी करना?	- शक्ति है किन्तु अवसर नहीं
एकाशन, पुरिमुड्ढ, पोरिषी करना?	- शक्ति है किन्तु अवसर नहीं
नवकारसी करना	- शक्ति है, अवसर है, भाव है

(**ज्ञातव्य**- जो तप जीवन मे कभी न किया हो उसके लिए कहना कि "शक्ति नही"। जो तप पहले किया है किन्तु आज नही करना, उसके लिए कहना कि **'शक्ति है पण अवसर नहीं'** और जो तप करना हो उसके उत्तर मे कहना कि **'शक्ति है, अवसर है, भाव' है।** उसके बाद ही कायोत्सर्ग पूर्ण करना अर्थात् फिर उसके आगे प्रश्न करने की और उत्तर चिंतन करने की आवश्यकता नहीं होती है।)

नोटः- यह पाठ रात्रि प्रतिक्रमण के पांचवें आवश्यक में कायोत्सर्ग में चिंतन करने के लिये है। क्षमा भाव चिंतन के साथ तप चिंतन इस पाठ से करना चाहिये।

[इसके बाद "**णमो अरिहंताणं**" के उच्चारण के साथ कायोत्सर्ग खोलना। फिर कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ, २४ जिन स्तुति पाठ, उत्कृष्ट गुरु वंदन पाठ।]

[फिर मुनिराज से प्रत्याख्यान करना। मुनिराज न हो तो बड़े श्रावक से अथवा स्वयं खड़े होकर विनय सहित नमुक्कार सहियं का प्रत्याख्यान करना। रात्रि भोजन का त्याग न हो तो उसका भी त्याग या मर्यादा करना]

प्रत्याख्यान पाठः-

उग्गए सूरे णमुक्कार सहियं पच्चक्खामि चउविहं पि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं अण्णत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं वोसिरामि।

अर्थः- हे भंते! मैं सूर्योदय से लेकर नमस्कार मंत्र उच्चारण न करूं तब तक चारों आहार का प्रत्याख्यान करता हूँ यथा- १- भोजन के पदार्थ २- पानी ३- फल मेवा ४- मुखवास। भूल से खाने में आ जाय या स्वतः सहसा मुंह में छींटा

आदि चला जाय उसका आगार।

प्रतिक्रमण शुद्धि का पाठः-

प्रतिक्रमण के पाठो का उच्चारण शुद्ध न किया हो, विधि मे कोई अविधि हुई हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कड।

एकाग्रचित्त होकर, अर्थ चितन पूर्वक, आत्म शुद्धि पूर्वक, अन्यत्र कही भी मन को चलाये बिना, एकाग्रचित्त होकर पूर्ण भाव युक्त, प्रतिक्रमण न किया हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कड।

सम संवेग निर्वेद अनुकंपा आस्था ये पांच व्यवहार समकित के लक्षण है। देव अरिहंत, गुरू सुसाधु, धर्म केवली भाषित, ये तीन तत्व सार, ससार असार, अरिहत भगवन्! आपका मार्ग सत्य है सत्य है सत्य है। स्तव स्तुति मगल करता हूं।

इसके वाद दो बार "सिद्ध स्तुति का पाठ" विधि पूर्वक बैठ कर बोलना।

सिद्ध-स्तुति का पाठ

अरिहंत भगवतो को नमस्कार हो। जो धर्म की आदि करने वाले है, चार तीर्थ की स्थापना करने वाले, स्वय बोध पाये हुए, पुरुषो मे श्रेष्ठ, पुरुषो मे सिंह के समान, पुरुषो मे श्रेष्ठ कमल के समान, पुरुषो मे श्रेष्ठ गंध हस्ती के समान है। लोक मे उत्तम, लोक के नाथ, लोक का हित करने वाले, लोक मे दीपक के समान, लोक मे उद्योत करने वाले है।

जीवो को अभय दान देने वाले, ज्ञान रूपी नेत्र के देने वाले, मोक्ष मार्ग के ज्ञाता, शरण देने वाले, सयम रूपी जीवन के देने वाले, सम्यक्त्व लाभ के देने वाले, धर्म के दाता, धर्म के उपदेशक, धर्म के नायक, धर्म के सारथी है।

चार गति का अंत करने वाले श्रेष्ठ धर्म चक्रवर्ती है। द्वीप के समान रक्षक रूप, शरण भूत, गतिरूप और आधार भूत हैं।

बाधा रहित श्रेष्ठ केवल ज्ञान केवल दर्शन के धारण करने वाले, छद्मस्थ अवस्था से रहित, स्वयं राग द्वेष को जीतने वाले अन्य को जीताने वाले, स्वयं संसार तिरे हुए दूसरो को तारने वाले, स्वयं बोध पाये हुए और दूसरो को बोध देने वाले, स्वयं कर्म बंधन से मुक्त और दूसरो को मुक्त कराने वाले, सर्वज्ञ सर्वदर्शी है।

जो कल्याण स्वरूप, स्थिर, रोग रहित, अंत रहित, क्षय रहित, बाधा रहित, पुनरागमन रहित, ऐसे सिद्ध गति नामक स्थान को प्राप्त हो गये हैं, भय को जीत चुके हैं। उन जिनेश्वर सिद्ध भगवान को मेरा नमस्कार हो।

तथा इन गुणो से युक्त जो अरिहंत भगवान सिद्ध गति के इच्छुक है उन्हे भी मेरा नमस्कार हो।

****

- इसके वाद खड़े होकर विधि युक्त गुरुवंदन करना (तिक्खुत्तो का पाठ)
- फिर बैठ कर प्रतिक्रमण कीर्तन चौवीसी गुणग्राम भजन बोलना

प्रतिक्रमण- कीर्तन

भवि भाव आवश्यक अति सुख दाई रे (टेर)
इसमें आतम जोड़ी, सचित करम तोडी, अनती को मूल मिटावो रे (१) भवि
जनम मरण जरा, खरा खोटा काम कर्या, अब तो ससार घटावो रे (२)
पुण्य को खजानो लायो, श्रावक को कुल पायो, कौडि में क्यों किमिया गवाओरे (३)
हीरा की कीमत भाई, कूजडो तो जाणे काई, जौहरी से परख कराओ रे (४)
अनतानुबंधी मोटी, चौकडी या लागे खोटी, पापणी सू पिंड छुडाओ रे (५)
कितना उधार लिया, भला भूडा काम किया, कर्मों का कर्ज चुकावो रे॥ (६)
द्रव्य आवश्यक बहु, किया गया व्यर्थ सहु, अनुयोग द्वार देख जावो रे (७)
शुद्ध भावे आवश्यक राई सम होवे अघ, मेरू जितो अव्रत उड़ावो रे (८)
ससार में उलझ रह्या अतस वैराग्य दया, सो ही भवी आगम पुरावो रे (९)
मोक्ष को सुख चावो, धर्म के सामा आवो, दोई काल आवश्यक ठावो रे (१०)
करत करत कबु, रसायन आवे प्रभू, तीर्थंकर पद थे पावो रे (११)
सामायिक चउवीसस्तव, वदना ने पडिकमणो, काउसग्ग पच्चखाण धारो रे (१२)
कहत मेवाडी मुनि, ज्ञानी गुरु पास सुणी, आवश्यक में रम जावो रे (१३) इति

चौवीसी

चौवीस जिन-राया, मन वच काया, प्रणमू पाया द्यो साता (टेर)
श्री आदि जिनदं, समरस कद, अजित जिनदं भज प्राणी।
सभव जगत्राता, शिव मग-दाता, द्यो सुख साता, हित आणी।
अभिनन्दन देवा, सुमति सुसेवा, करो नित मेवा, रिपु-घाता (१)
श्री पद्म सुपास, शशी गुण रास, सुविधी सुवास, हितकारी।
श्री शीतल स्वामी, अतरयामी, शिवगति गामी उपकारी।
श्रेयास दयाला, परम कृपाला, भविजन व्हाला, जग त्राता (चौ २)
वासुपूज्य सुकत, विमल अनत, धर्म श्री सत, सतकारी।
कुथु अरहनाथ, तज जग साथ, मल्लि सुवास, सगधारी।
मुनिसुव्रत सुनमि, आत्मा ने दमी, दुर्मति ने वमी, तप-राता (चौ. ३)
रिष्टनेमि बढाई, नार न व्याही, तोरण जाई, छिटकाई।
नाग नागण तांई, दिया बचाई, पारस साई, सुख दाई।
जय जय वर्धमान, गुण निधि-खान, त्रिजग भान शुद्ध आता (चौ ४)
ससार का फदा, दूर निकदा, धर्म का छदा, जिन लीना।
प्रभु केवल पाया, धर्म सुनाया, भवि समझाया, मुनि कीना।
कहे रिख तिलोक, सदा तस धोक, द्यो सुख थोक चित्त चाता (चौ ५)

* * * * * * * * * * *

आवश्यक (प्रतिक्रमण) आराधन

यदि आत्मोन्नति अभिलाषा हो तो आवश्यक आराधन हो (टेर)
तन की वस्त्रों की भूषण की, घर की आगन की शुद्धि से।
केवल बाहर की शुद्धि हो, पर भीतर चेतन शुद्ध न हो (१)
ये सब कचन के हो जायें, तो भी न सदा ये शुद्ध रे।

सच्चा सुख भी ये लेश न दें, फिर भी इनका क्यों शोषन हो (२)
यदि एक बार हो आत्म शुद्धि, तो अमर सदा वह रहती है।
सच्चा सुख भी पूरा देती, इसलिये उसी का शोषन हो (३)
इस लोक में आवश्यक ही है, जो आत्म शुद्धि कर सकता है।
इसलिये भावयुत उभयकाल ही, आवश्यक आराधन हो(४)
सामायिक से हो कर्म शुद्धि, सम्यक्त्व शुद्धि हो कीर्तन से।
वंदन विनय जगे फिर उससे, नीच गौत्र का शोषन हो (५)
हो प्रतिक्रमण से व्रत शुद्धि, और ध्यान से प्रायश्चित्त शुद्ध हो।
अंतिम प्रत्याख्यान धार कर, इच्छाओं का शोषन हो (६)
आवश्यक के गुण क्या कहने, है नाम भी आवश्यक इसका।
उत्कृष्ट भाव यदि आ जावे तो, तीर्थंकर पद बधर्न हो (७)
केवल कहते पारस सुन रे, सब में आवश्यक रस भर रे।
जिससे जन जीवन शुद्ध बने, और मुक्ति का सपादन हो (८) इति

श्री शालिभद्र की लावणी

मिलत- शालिभद्र महाराज आपकी, ऋद्धि को पार नहीं पाया।
श्रेणिक राजा, आप खुद, देखन काजे घर आया (टेर)

राग- चालू पूर्व जन्म ग्वाले के भव में, संगम नामा एक शरीर।
माता पासे, बहु हट करके, बनवाई खावण को खीर।।
थाल भरी जीमन को बेठा, मुनिवर एक महा शूर वीर।
मासखमण के, पारणे आया, काई जागी तकदीर।।
उलट भाव से दान दिया जब, बाध्या पुण्य अखूट समीर।
उसी शहर में, बसे गोभद्र, सेठ बड़ो धनधीर।।

शेर- राजग्रही नगरी विशे ऐसो नहीं कोई और जी।
महापुण्यवत भद्रिक भद्रा, जन्म लिया विण ठोर जी।।
स्वप्ने अन्दर शुभ देखियो, पाको शालि खेत जी।
जन्म हुओ नाम दियो, शालिभद्र सकेत जी।।

खड़ी- कचन वर्णी त्रिया, बत्तीसों परणी२ ।
मानो सुख देव, दोगुन्दक सी ऋद्धि वर्णी।।
माणक मोती और गहणा, रत्ना जडिया२।
सोनो रूपो कुण गिणे, गिणत यों ही पडिया।।

दौड़- सेठ कर गया काल, पहले स्वर्ग मझार।
हुवा देव अवतार, अति राग धरी२ ।।
वस्त्र भूषण श्रृगार, भरी मजूषा मझार।
तेतीस-तेतीस प्रकार, नित हाजर करी२ ।।

मिलत- भोगे पुण्य तणी या करणी, हार्थो आहारज वेरायो।।१।।

चालू- रत्न कम्बल लेइ आया व्यापारी, बेचन काजे फिरे बजार।
कोई नहीं लीनी, उदासी होय, गया पाछा तत्काल।।
शालिभद्र की आई दासिया, जल भरने पनघट पनिहार।
देख व्यापारी पूछियो, उदास तुम क्यों हो असवार।।

कहे व्यापारी नहीं बिकानी, सोलह कम्बल है मुझ लार।
माता भद्रा मोल ले, खोल दिया भरिया भण्डार।
शेर- सवा-सवा लाख सौनैया, एक एक कम्बल को मोलजी।
गिणती आई बीस लाख, मोल दिया तोल जी॥
आधो आध करी कम्बल, बत्तीस बहुआ काज जी।
साशु की मनवार जाणी, मोटा घरा की लाज जी॥
खड़ी- वह रत्न कम्बल ले, सब ही नार्या पहरी२
वाके अग में चुबवा लागी, कटक ज्यों बैरी॥
तब स्नान करी, अंग लुहीने, एकान्ते न्होखीर२,
ले गई महत्तर की नार, जतन कर राखी॥
दौड़- एक दिन के मझार, महत्तराणी ओढ़ी आय।
पूछे राणी जी बतलाय, कहा से ले आई२॥
कहे मातग की नार, सुणो राणी जी विचार।
शालिभद्र के दरबार, पाई जोगवाई२॥
मिलत- राणी हकीकत सुणी पाछली राजा से सब फरमावे॥२॥
चालू- अभयकुंवर और श्रेणिक राजा, सेठा के घर आवे है।
शालिभद्र को देखवा, मन में हर्ष उमावे हैं।
राय आंगन बीच गिरी मुद्रिका, सोध किया नहीं पावे है।
जब माता भद्रा, भरी एक, धोबो नजर करावे है॥
कहे माता सुनो पुत्र आज, मोत्या मेह बरसावे है।
तुम नीचे आवो, आज घर नाथ आप पधार्या है॥
शेर- वचन माता का सुनि पुत्र, हुवा घणा उदास जी।
स्वप्ने अन्दर नहीं सुणियों, यों वचन माता पास जी॥
महलां सु नीचे उतरिया, नारया तणा भरतार जी।
खमा खमा करता थका, हुवा बहुत झणकार जी॥
खड़ी- महला सूं उतरी, आया, भूप के पासे२।
देखिने नृपति, मन में एम विमासे॥
यह देवलोक को, जीव, पुण्य प्रकाशे२।
राजा घर अपने, हाथ लियो हुलासे॥
दौड़- आय बैठा खोला मांय, जीव रहयो घबराय।
कहे भद्रा मन लाय, हवे सीख दीजिये२।
सुकुमाल घणो अंग, तवी आयो नारी संग॥
हुओ रंग में बिरंग, आप देख लीजिये२॥
मिलत- हुकम लेय कर गये कुंवरजी, राजा राज भवन आया॥३॥
चालू- बैठ पलंग पर धरे ध्यान जब, दिल में विचारे ऐसी बात।
नहीं कीधी करणी, जिन्होंसे हुआ हमारे शिर पर नाथ॥
विचरत विचरत आये वीर जिन, चौदह सहस्र मुनिश्वर साथ।
वन्दन काजे, आए केई, नर नारी जातों की जात॥
सुन उपदेश हुआ वैरागी, शालिभद्र कहे जोड़ी हाथ।
माता पासे, पूछकर, लेसु संयम तज सब साथ॥

शेर- घर आ इम कहे, मुझ हुकम दो प्रकाशजी।
वीर पासे सयम लेसु, छोड़के घरवार जी॥
वचन पुत्र का साभली, माता गई मुर्च्छायजी।
चेत लेइ समझावे सुत को, मत काढो ऐसी वात जी॥

खड़ी- वत्तीसों ही नार्या, कहे, कुवर कर जोडी२।
पहले क्यों परण्या, थे हथलेवो जोड़ी॥
या तरुण अवस्था, जोग, कठिन है भारी२।
चलनो खाण्डा की धार, अर्ज ये म्हारी॥
एक एक नार, प्रतिदिन तजे निराधार।
लेणो सयम श्रेयकार, माता हुकम करो२॥
धन्नाजी घर नार आय, दियो है सवाल।
लिनो सयम सुखकार, दोनों हर्ष धरी२॥

मिलत- महोत्सव कीनो भद्रा जननी कहे, मेरे एकण जायो ।४।

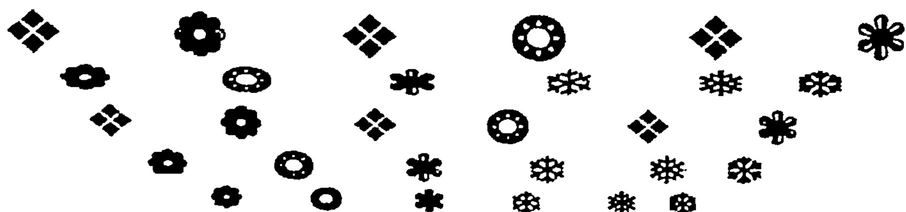
चालू- कहे भद्रा सुणो वीर जिनेश्वर, भूख प्यास खवरो लीजो।
मत जाजो भूली, आप खुद करी खवर समता दीजो॥
सुन मेरा जाया करणी करता, कोई प्रमाद मति कीजो।
मुझको छोड़ी, और जननी घर जन्म मती लीजो॥
मास मास खमण की तपस्या करता, सूख गई कोमल काया।
प्रभु विचरत विचरत फेर वही, राजगृही नगरी आया॥

शेर- पारणे को दिन जाणी, पूछे वो कृपा नाथ सूं।
वीर भाखे नहीं शका, होसी माता हाथ सू॥
भद्रा के घर गोचरी, पहुंच्या है मुनिराज जी।
द्वार पाले दिया है वर्जी, नहीं है अवसर आज जी॥

खड़ी- पाछा फिरता, मैय्या ग्वालिन, दूध वहरायो२,
ले आया जिनवर पास हाल समलायो।
प्रभु पूर्वभव को, वृतात, सभी बतलाओ२।
अनशन करवाने, शैल शिखर पर धायो॥

दौड़- आयो मास को सथारो, कर दिया खेवा पार,
सर्वार्थ सिद्ध अवतार,, धन्ना मुगत गया२॥
जवाहिर लाल जी गुरुदेव, करो जाकी नित सेव।
हीरालाल स्वमेव, गुणग्राम किया२॥

मिलत- शालिभद्रजी की गावो लावणी।
दिन दिन ऋद्धि संपदा पावों॥ श्रेणिक ॥५॥ इति॥



परिशिष्ट- ६

सविधि श्रमण प्रतिक्रमण

(हिन्दी भाषा में)

प्राक्कथन-

पूर्व प्रकरण मे "श्रावक प्रतिक्रमण" हिंदी भाषा मे विधि सहित दिया गया है। इस प्रकरण मे "श्रमण प्रतिक्रमण" हिन्दी भाषा मे विधि सहित दिया है। कई पाठ दोनो प्रकरण मे आये हैं फिर भी उनकी भाषा आदि मे अंतर रखा गया है। इसका कारण यह है कि इस प्रकरण के पाठो मे श्वे. तेरापंथ समाज द्वारा प्रकाशित भाषानुवाद प्रतिक्रमण का अवलंबन लिया गया है तथा कुछ पाठ उद्धरित भी किये हैं।

इस प्रकरण मे तेतीस बोल का पाठ संक्षिप्त मे दिया गया है। विस्तार से जानकारी के लिये उसके कुछ बोल अगले परिशिष्ट ७ में दिये हैं।

दोनो विभागो मे क्रमशः श्रमणोपासको एवं श्रमणो की योग्यता को भी केन्द्र भूत रख कर हिन्दी पाठो का संपादन संकलन किया गया है।

आशा है पाठक गण किसी भी प्रकार का एकागी दृष्टिकोण न रखते हुए गुण ग्राहकता की वृत्ति पूर्वक इस विभाग का लाभ उठावेगे।

फोटो टाईपसेटिंग व मुद्रण **माणक ऑफसेट प्रिण्टर्स**, म. गां. अस्पताल रोड़ जोधपुर फोन-37838&37839

सविधि श्रमण हिन्दी प्रतिक्रमण

वंदन पाठ - (तिक्खुत्तो)

हे प्रभू मै आपके दायी ओर से तीन बार प्रदक्षिणा-आवर्तन देते हुए वंदना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, सत्कार करता हूँ, सम्मान करता हूँ। आप कल्याणकारी हैं, मंगल हैं, धर्मदेव हैं, ज्ञानवान है (चित्त को प्रसन्न करने वाले है) मै आपकी पर्युपासना करता हूँ, मस्तक झुका कर वंदना करता हूँ।

प्रतिक्रमण आज्ञा एवं कायोत्सर्ग प्रतिज्ञा पाठ (इच्छामिणं भंते)

हे भंते! मैं दैनिक अतिचारो से निवृत होने के लिए आपकी आज्ञां लेकर प्रतिक्रमण करना चाहता हूँ। मैने दिन मे जो ज्ञान, दर्शन और महाव्रतो की एवं तप की आराधना की, उसमे कोई अतिचार दोष लगा हो तो उसके चिन्तन के लिये मैं कायोत्सर्ग करता हूँ।

नमस्कार मंत्र- (यहां पहले मूल पाठ भी बोलें फिर निम्न अर्थ बोलें-)

अरिहतो को मेरा नमस्कार हो, सिद्धो को मेरा नमस्कार हो, धर्माचार्यों को मेरा नमस्कार हो, उपाध्यायो को मेरा नमस्कार हो, लोक के सब साधुओ को मेरा नमस्कार हो।

यह पंच नमस्कार महामंत्र सब पापो का विनाशक है और सब मगलो मे उत्कृष्ट मंगल है।

मंगल पाठ - (मांगलिक)

लोक मे चार मंगल है - अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवलि-कथित धर्म।

लोक मे चार उत्तम है- अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवलिकथित धर्म।

इन चार की शरण में जाता हूँ- अरिहंतो की, सिद्धों की, साधुओ की और केवलिकथित धर्म की।

ये चार शरण दुख हरण जगत मे, और न शरणा कोय
जो भवी प्राणी करे आराधन, उसका अजर अमर पद होगा।

सामायिक प्रतिज्ञा पाठ - (करेमि भंते)

भगवन्! मैं सामायिक करता हूँ। मैं जीवन-पर्यन्त समस्त पापकारी प्रवृत्ति का, तीन करण— मन, वचन और काया से तथा तीन योग— करने, कराने और अनुमोदन करने का प्रत्याख्यान करता हूँ।

भगवन्! अतीत मे किए हुए पाप का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ, आत्मसाक्षी से उसकी निन्दा करता हूँ, आपकी साक्षी से उसकी गर्हा करता हूँ और अपने आपको सपाप प्रवृत्तियो से पृथक करता हूँ।

संक्षिप्त अतिचार प्रतिक्रमण पाठ - (इच्छामिठामि)

मैं अपने द्वारा किये हुए दैवसिक अतिचार के प्रतिक्रमण की इच्छा करता हूँ, भले वह अतिचार कायिक, वाचिक या मानसिक हो। मैंने उत्सूत्र की प्ररूपणा की हो, मोक्षमार्ग के प्रतिकूल मार्ग का प्रतिपादन किया हो, विधि के विरुद्ध आचरण किया हो अकरणीय कार्य किया हो, अशुभ ध्यान — आर्त्त-रौद्र ध्यान किया हो, असद चिंतन किया हो, अनाचरणीय और अवांछनीय का आचरण किया हो, श्रमण के लिए अयोग्य कार्य का आचरण किया हो, ज्ञान दर्शन चारित्र, श्रुत और सामायिक के विषय मे तथा तीन गुप्ति, चार कषाय, पांच महाव्रत, षड़ जीवनिकाय, सात पिण्डैषणा, आठ प्रवचनमाता, नौ ब्रह्मचर्य गुप्ति तथा दस प्रकार के श्रमण धर्म मे होने वाले श्रमण योगो की अखण्ड आराधना न की हो, विराधना की हो तो उससे सम्बन्धित मेरा दुष्कृत निष्फल हो। (मिच्छामि दुक्कड)

कायोत्सर्ग प्रतिज्ञा पाठ - (तस्सउत्तरी)

मैं अविधिकृत आचरण के परिष्कार, प्रायश्चित्त, विशोधन और शल्य-विमोचन द्वारा पाप कर्मों को नष्ट करने के लिए कायोत्सर्ग करता हूँ।

मैं निम्न आगारो को छोड़कर शरीर को स्थिर रखूंगा। यथा—

१ उच्छ्वास, २. नि:स्वास, ३. खांसी, ४. छीक, ५. जम्हाई, ६. डकार, ७. अधोवायु, ८. मस्तक आदि मे चक्कर, ९. पित्तविकार से मूर्च्छा, १०. अंग का सूक्ष्म संचालन ११. कफ-थूक आदि का संचार, १२. दृष्टि का संचालन।

इत्यादि स्वयंमेव होने वाली शारीरिक क्रिया के होने पर भी मेरा ध्यान भग नही होगा, विराधित नही होगा।

जब तक अरिहंत भगवान को "णमो अरहंताणं" शब्द से नमस्कार कर

कायोत्सर्ग को पूर्ण न करूं, तब तक शरीर को स्थिर रखकर, वचन से मौन रहकर तथा मन से शुभ ध्यान धरकर मै अपने शरीर का विसर्जन करता हूँ।

(कायोत्सर्ग मे निम्न पाठो के आधार से अतिचार दोषो का चिंतन करना)

[कायोत्सर्ग में ''मिच्छामि दुक्कडं'' मेरा पाप निष्फल हो, यह नहीं बोलना]

ज्ञान के अतिचार-

श्रुत ज्ञान के अतिचारो का चिंतन करता हूँ -

१. सूत्र के अक्षर या पद आगे-पीछे बोले हो २. एक सूत्र पाठ को दूसरे सूत्र मे बोला हो ३. अक्षर कम बोले हो ४. अक्षर अधिक बोले हो ५. शब्द कम बोले हो ६. विनय रहित पढा हो ७. संयुक्त अक्षर शुद्ध न पढे हो ८. उच्चारण स्पष्ट न किया हो ९. अयोग्य को पढाया हो १०. स्वयं अयोग्य रीति से अविनय से ज्ञान ग्रहण किया हो ११. शास्त्र असमय मे पढा हो १२. समय पर शास्त्र न पढा हो १३. चौतीस अस्वाध्याय मे शास्त्र पढा हो १४. अस्वाध्याय न हो तो भी शास्त्र न पढा हो। इन अतिचारो मे से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो उसका मैं चिंतन अवलोकन करता हूँ (मिच्छामि दुक्कडं)

समकित के अतिचार:-

समकित के अतिचारो का चिंतन करता हूँ-

१. भगवान के वचनो मे (सूक्ष्म तत्वो मे संदेह किया हो २. परमत की प्रभावना चमत्कार देखकर मन आकर्षित हुआ हो ३. धर्म करणी के फल मे संदेह हुआ हो ४. परमत की प्रसंसा की हो ५. परमत के सन्यासी का व उनके शास्त्र का परिचय संपर्क किया हो। इन अतिचारो मे से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो उसका मैं चिंतन अवलोकन करता हूँ (मिच्छामि दुक्कडं)

छः काया पाठ-

पृथ्वीकाय- रास्ते मे बिखरी सचित मिट्टी, मुरड, रेत, बजरी, गिट्टी, पत्थर के टुंकड़े या चूरा, पत्थर के कोयले या चूरा, नमक आदि पृथ्वीकाय के जीवों की विराधना हुई हो उसका मै चिंतन अवलोकन करता हूँ (तो मिच्छामि दुक्कडं)

अपकाय- घरो मे बिखरा हुआ पानी, धोया हुआ पानी, रास्तो मे फेका

हुआ पानी, नल प्याउ आदि के पास उछाला हुआ पानी, वर्षा का, ओस, धुवर और सूक्ष्म वृष्टि काय का पानी, नदी नाला कुआ बावडी तालाब आदि का पानी इत्यादि सचित या मिश्र पानी का संघट्टा विराधना हुई हो और धोवण की गवेषणा आदि मे अपकाय जीवो की विराधना हुई हो उसका मै चिंतन अवलोकन करता हूँ (तो मिच्छामि दुक्कडं)

तेउकाय- गोचरी के प्रसंग मे कोई भी प्रकार की अग्नि की विराधना हुई हो, रास्ते चलता बड़ी आदि, स्कूटर, टेक्सी आदि का संघट्टा हुआ हो इत्यादि रूप से तेउकाय की विराधना हुई हो उसका मै चिंतन अवलोकन करता हूँ (तो मिच्छामि दुक्कडं)

वायुकाय- शरीर के अंगोपांग हाथ पाव मस्तक आदि को उपदेश देने मे, बातचीत आदि अन्य कार्य मे, प्रतिलेखन प्रमार्जन मे, तीव्र गति से झटके से - उतावल से चलाया हो। इसी तरह किसी भी उपकरण रजोहरण पात्र वस्त्र पूजणी आदि को तीव्र गति से झटके से - उतावल से चलाया हो। पटकना फेकना हुआ हो अर्थात् उपकरण शरीर आदि को शाति से यतना पूर्वक चलाने,, रखने का ध्यान नही रखा हो। मुंहपति बिना बोलना हुआ हो। उतरना, चढ़ना, चलना तीव्र गति से या कूदते हुए किया हो, जिससे वायु काय की विराधना हुई हो उसका मैं चिंतन अवलोकन करता हूँ (तो मिच्छामि दुक्कडं)

वनस्पति काय- हरा घास, अंकुरे, हरे पत्ते, फूल, बीज, साग आदि के छिलके या टुकड़े, मिरची के बीज, भुरुंट, अनाज, गुठलियां आदि की रास्ते मे या घरो मे विराधना हुई हो। फूलण का सघट्टा हुआ हो या उलंघन करना पड़ा हो इत्यादि वनस्पति काय की विराधना हुई हो उसका मै चिंतन अवलोकन करता हूँ (तो मिच्छामि दुक्कडं)।

बेइन्द्रिय- छोटी बड़ी लटे, कृमियां आदि बेइन्द्रिय जीवो की विराधना हुई हो उसका मै चिंतन अवलोकन करता हूँ (तो मिच्छामि दुक्कडं)

तेइन्द्रिय- लाल कीडियां, काली कीडियां, मकोड़े, पुस्तको के छोटे बड़े जीव, अनेक जमीन के रंग के कुंथुए, इल्लियां, उदाई, कच्चे मकान के प्रसंग मे अनेक प्रकार के जीव, चांचड, माकड, जूं, लीख आदि तेइन्द्रिय जीवो की विराधना हुई हो उसका मैं चिंतन अवलोकन करता हूँ (तो मिच्छामि दुक्कडं)

चउरिंद्रिय- मक्खी, मच्छर, डांस, छोटी बड़ी मकडियां, कंसारी अनेक

तरह की, विजली के मच्छर व छोटे वड़े अनेक जीवो की विराधना हुई हो उसका मैं चितन अवलोकन करता हूँ (तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं)।

पंचेन्द्रिय- कुत्ता, चिडी, कवूतर, चूहा, बिल्ली आदि जीवों की विराधना हुई हो तथा गलियों में लघुनीत कफ आदि अशुचि पर पांव आया हो, नालियो का उलंघन करना पड़ा हो या गटर के पानी आदि की विराधना हुई हो तथा परठने सम्बन्धी अविधि से कोई विराधना हुई हो इत्यादि सन्नी असन्नि जीवों की विराधना हुई हो तो उसका मैं चिंतन अवलोकन करता हूँ (तो मिच्छामि दुक्कडं)।

साधु-साध्वी, श्रावक, श्राविका एवं अन्य स्त्री पुरुष पशु पक्षियों की मन, वचन, काया से किसी प्रकार की आशातना विराधना की हो तो उसका मैं चिंतन अवलोकन करता हूँ (तो तस्स मिच्छामि दुक्कड)।

पांच महाव्रत भावना सहित-

प्रथम महाव्रत सम्पूर्ण हिंसा का त्यागः- छ काया के जीवों की सूक्ष्म या स्थूल रूप से हिंसा करना नहीं, कराना नहीं, एवं अनुमोदन करना नहीं मन से, वचन से, काया से जीवन पर्यन्त। ऐसे पहले महाव्रत की पांच भावना-- १. देखकर यतना पूर्वक चलना २. सदा मन को प्रशस्त ही रखना। ३. सदा शुभ वचनों का ही प्रयोग करना ४. गवेषणा के नियमो का पूर्ण रूप से आत्म साक्षी से पालन करना ५. वस्तु को रखना उठाना या परठना पूर्ण विवेक एव यतना के साथ करना। ऐसे पहले महाव्रत एव उसकी पाच भावना के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो उसका मै चितन अवलोकन करता हूँ (तो मेरा पाप निष्फल हो मिच्छामि दुक्कडं)।

दूसरा महाव्रत सम्पूर्ण झूठ का त्यागः- बिना विचारे उतावल में एवं क्रोध, मान, माया, लोभ के वशीभूत होकर सूक्ष्म या स्थूल कोई भी झूठ बोलना नहीं, बोलाना नहीं, बोलने वाले को अच्छा समझना नही मन से, वचन से, काया से जीवन पर्यन्त। ऐसे दूसरे महाव्रत की पाच भावना-- १. सोच विचार कर शांति पूर्वक बोलना २-३. क्रोध, लोभ आदि कषायो के उदय के समय क्षमा, संतोष आदि भावो को उपस्थित रखना मौन एव विवेक धारण करना ४. हंसी मजाक कुतुहल के प्रसंग या भाव उपस्थित होने पर भी मौन एवं गंभीरता धारण करना ५. भय संज्ञा के उत्पन्न होने पर निडरता एवं धैर्य धारण करना। ऐसे दूसरे महाव्रत और उसकी पांच भावना के विषय में

कोई अतिचार लगा हो तो उसका मैं चिंतन अवलोकन करता हूँ (तो मेरा पाप निष्फल हो। मिच्छामि दुक्कडं)।

तीसरा महाव्रत सम्पूर्ण अदत्त का त्यागः- कही भी कैसी भी छोटी बड़ी वस्तु बिना आज्ञा अथवा बिना दिये ग्रहण नही करना, ग्रहण नहीं कराना, अदत्त ग्रहण करने वाले को भला भी न जानना मन से, वचन से, काया से जीवन पर्यन्त। ऐसे तीसरे महाव्रत की पांच भावना– १ निर्दोष स्थान शंय्या सथारा की याचना करना २. तृण काष्ट, कंकर, पत्थर आदि भी याचना करके लेना ३. स्थानक आदि का परिकर्म करना नही ४. साथी श्रमणो का आहार उपकरण आदि अदत्त लेना नही ५. विनय तप संयम धर्म के कर्तव्यो का ईमानदारी से पालन करना अर्थात् तप का चोर, रूप का चोर, व्रत का चोर, आचार का चोर एवं भगवदाज्ञा का चोर नही होना।

ऐसे तीसरे महाव्रत एव उसकी पांच भावना के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो तो उसका मै चिंतन अवलोकन करता हूँ (तो मेरा पाप निष्फल हो मिच्छामि दुक्कड)।

चौथा महाव्रत सम्पूर्ण कुशील का त्यागः- मनुष्य, पशु, देव सम्बन्धी काम भोगो का सेवन या संकल्प चाहना नही करना। दृष्टि विकार या काम कुचेष्टा नही करना। इस प्रकार के कुशील अब्रह्मचर्य का सेवन नही करना, नही कराना, कुशील सेवन को अच्छा भी नही समझना मन से वचन से, काया से जीवन पर्यन्त। ऐसे चौथे महाव्रत की पांच भावना - १. स्त्री, पशु आदि से रहित मकान मे ठहरना २. स्त्री संपर्क परिचय वार्ता का विवेक रखना ३. स्त्री के अंगोपांगो को राग भाव से आशक्ति भाव से देखना, झांकना या निरखना नहीं ४. पूर्व अनूभूत भोगो को स्मरण करना नही एवं नये का कुतुहल आकांक्षा करना नहीं ५. सदा सरस स्वादिष्ट अतिमात्रा मे आहार करना नही या आसक्ति से खाना नहीं अर्थात् उणोदरी तप एवं रसेन्द्रिय विजय करना।

ऐसे चौथे महाव्रत एवं उसकी पांच भावनाओ के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो तो उसका मैं चिंतन अवलोकन करता हूँ (तो मेरा पाप निष्फल हो मिच्छामि दुक्कडं)

पांचवा महाव्रत सम्पूर्ण परिग्रह त्यागः- सोना, चादी, धन, सम्पत्ति, जमीन, जायदाद रखने का सम्पूर्ण त्याग। संयम शरीर के आवश्यक उपकरणो

के अतिरिक्त सम्पूर्ण छोटे बड़े पदार्थों का त्याग, ग्रहित अग्रहित सभी पदार्थों पर ममत्व मूर्छा आशक्ति भाव का पूर्ण रूप से त्याग। इस प्रकार द्रव्य एवं भाव परिग्रह करना नही, कराना नही, करने वाले का अनुमोदन करना नहीं मन से, वचन से, काया से जीवन पर्यन्त। ऐसे पांचवे महाव्रत की पांच भावना है– १-५ शब्द, रूप, गंध, रस एवं स्पर्श के शुभ संयोग मे राग भाव आशक्ति भाव नही करना एवं अशुभ संयोग मे द्वेष हीलना अप्रसन्न भाव करना नही, पुद्गल स्वभाव चिंतन पूर्वक सम भाव तटस्थ भाव के परिणामो मे रहना। राग द्वेष से रहित बनने का एवं कर्म बंध नही करने का प्रयत्न रखना।

ऐसे पांचवे महाव्रत एवं उसकी पांच भावनाओ के विषय मे कोई अतिचार लगा हो तो उसका मैं चिंतन अवलोकन करता हूँ (तो मेरा पाप निष्फल हो मिच्छामि दुक्कडं)।

पांच समिति तीन गुप्ति-

ईर्या समिति- शांति से चलना, नीचे देख कर चलना, एकाग्रचित से चलना, छ: काया जीवों की रक्षा के विवेक से चलना, चलते हुए किसी से बाते नही करना, रात्रि मे पूंज कर (प्रमार्जन कर) के चलना। जीव अधिक दिखे तो दिन मे भी पूंज कर चलना, कही अंधेरा हो तो दिन मे भी पूंज कर चलना। चलते समय शब्द रूप आदि भावो मे आशक्त न होना एवं स्वाध्याय अनुप्रेक्षादि भी नही करना। ऐसी ईर्या समिति के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो उसका मैं चिंतन अवलोकन करता हूं, (तो मेरा पाप निष्फल हो, तो मिच्छामि दुक्कडं)।

भाषा समिति- कठोर, कर्कश, छेदकारी, भेदकारी, मर्मवचन, सावद्य वचन, निश्चयकारी वचन, अतिशयोक्ति युक्त वचन नही बोलना, गप्पे नही लगाना, परस्पर निरर्थक निष्प्रयोजन अनावश्यक वार्ता नही करना अर्थात् समय व्यतीत करने के लिये आपस मे विकथा नही करना। किसी की हीलना निंदा हंसी तिरस्कार की वार्ता नहीं करना। अति वाचालता नहीं करना एवं उटपटांग या विकृत भाषाएं नही बोलना।

ऐसी भाषा समिति के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो तो उसका मैं चिंतन अवलोकन करता हूँ (तो मेरा यह पाप निष्फल हो मिच्छामि दुक्कडं)।

एषणा समिति- गवेषणा एवं परिभोगेषणा के विधि नियमो का पूर्ण पालन करना विवेक विरक्ति एवं सत्य निष्ठा के साथ आहार वस्त्र पात्र आदि ग्रहण

करना एवं उपयोग करना अर्थात् ऐषणा के ४२ दोषोका और मांडला के पांच दोषो का सेवन नहीं करना। प्रथम प्रहर मे ग्रहण किया आहार पानी चौथे प्रहर मे नही रखना। अपने स्थान से चौ तरफ दो कोश उपरांत आहारपानी नही ले जाना। ऐसी ऐषणा समिति के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो उसका मैं चिंतन अवलोकन करता हूं, (तो मेरा वह पाप निष्फल हो, मिच्छामि दुक्कडं)।

आदान निक्षेप समिति- भंडोपकरण अर्थात् वस्त्र पात्र ओघा डंडा सूई कागज पुस्तक आदि कोई भी उपकरण उपर से फेकना डालना नही, विवेक पूर्वक नीचे झुक कर भूमि आदि पर रखना। इन पदार्थों को उठाना हो तो भी शाति और विवेक के साथ यतना पूर्वक उठाना। अपने पास रखे जाने वाले उपकरणो की सुबह शाम विधि पूर्वक प्रतिलेखन करना और उन उपकरणो पर ममत्व मूर्छा भाव न रखते हुए उनका पूर्ण उपयोग लेना। अनावश्यक उपकरणो का सग्रह नही करना। संयम एव शरीर के अति आवश्यक उपकरण ही ग्रहण करना। ऐसी चौथी आदान निक्षेप समिति के विषय मे कोई अतिचार लगा हो तो उसका मै चिंतन अवलोकन करता हूँ (तो मेरा वह पाप निष्फल हो- मिच्छामि दुक्कड)।

परिष्ठापनिका समिति- शरीर के अशुचि पदार्थो को, जीर्ण उपधि को परिशेष जल या आहारादि को अर्थात् परठने योग्य सभी पदार्थो को उन उन के योग्य विवेक के साथ योग्य स्थान मे परठना। बडी नीत परठने योग्य भूमि १० बोल (गुण) युक्त होना अर्थात् वैसे स्थान पर ही शौच निवृति के लिये बैठना। शौच निवृति के अन्य भी आगमोक्त विधियो का पूर्ण पालन करना। कफ खेल आदि परठने मे भी पूर्ण विवेक एव यतना भाव रखना। किसी भी पदार्थ को परठने के बाद उसको वोसिराना अर्थात् **''वोसिरे वोसिरे''** कहना। बडी नीत के लिये बाहर जाकर आने के बाद ईर्यावहि का कायोत्सर्ग करना। परठने मे त्रस स्थावर जीवो की विराधना न हो उसका पूर्ण विवेक रखना। ऐसी परिष्ठापनिका समिति के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो मै उसका चिंतन अवलोकन करता हूँ, (तो मेरा वह पाप निष्फल हो, तस्स मिच्छामि दुक्कड)।

मन गुप्ति- मन मे संकल्प विकल्प विशेष घाट घड करना नही, चिंता अधैर्य करना नही, सदा शात प्रसन्न मन रहना। ऐसी मन गुप्ति के विषय मे

जो कोई अतिचार लगा हो, तो मैं उसका चिंतन अवलोकन करता हूँ, (तो मेरा वह पाप निष्फल हो, तस्स मिच्छामि दुक्कडं)।

वचन गुप्ति- विकथा आदि नही करते हुए अधिकतम मौन वृति से रहना। ऐसी वचन गुप्ति के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, तो उसका मैं चिंतन अवलोकन करता हूँ, (मेरा वह पाप निष्फल हो, मिच्छामि दुक्कडं)।

काया गुप्ति- हाथ पांव सिर एवं समस्त शरीर को निष्प्रयोजन हिलाना नही, अविवेक से प्रवर्तन करना नही, हाथ पांव आदि को पूर्ण संयमित रखते हुए प्रत्येक प्रवृति करना। जीव जंतु को देख पूंज कर फिर खाज खुजलाना, भीत आदि का सहारा लेना, हाथ पांव का संकोच विस्तार करना, सोना करवट पलटना आदि भी विवेक पूर्वक करना। इत्यादि काया गुप्ति के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो, नो उसका मैं चिंतन अवलोकन करता हूँ, (तो मेरा वह पाप निष्फल हो, तस्स मिच्छामि दुक्कडं)।

तप एवं उसके अतिचार:-

१. नवकारसी, २. पोरूषी, ३. दो पोरूषी, ४ अभिग्रह, ५. एकासन, ६. एकलठाणा, ७. निवी, ८. आयंबिल, ९. एक उपवास यावत् छः मासी तप १०. दिवस चरिम प्रत्याख्यान। अपने आत्म कर्मो की निर्जरा के लिए इनमे से यथा शक्ति तप करना। तथा मरण समय मे आजीवन अनशन– १. भक्त प्रत्याख्यान (चारो आहार और १८ पाप का त्याग) २. इगिनी संथारा (अन्य के द्वारा सेवा परिचर्या कराने का त्याग) ३. पादपोपगमन सथारा (शरीर की सम्पूर्ण सेवा परिचर्या का एवं ममत्व का त्याग) इन तीन प्रकार के संथारे मे से कोई एक अनशन संथारा धारण करना।

इन अल्पकालीन एवं आजीवन तपो के मुख्य पाच अतिचार जानने योग्य हैं किन्तु आचरण करने योग्य नहीं है। वे इस प्रकार है– १. तपस्या करके इस भव के मान सम्मान सुख समृद्धि की चाहना की हो २. पर भव के मान सम्मान सुख समृद्धि की चाहना की हो ३ अधिक जीने की या यश की चाहना की हो ४. दु:ख से घबराकर जल्दी मरने की चाहना की हो ५. तपस्या के समय मे काम भोगों की या इन्द्रिय विषयों की चाहना की हो तथा शक्ति होते हुए भी प्रतिदिन कुछ तप नही किया हो एवं अष्टमी चतुदर्शी आदि पर्व दिनो मे भी कोई तप न किया हो।

इन अतिचारो मे से मुझे दिवस सम्बन्धी कोई अतिचार लगा हो, तो उसका

मैं चिंतन अवलोकन करता हूँ, (तो वह मेरा पाप निष्फल हो, तस्स मिच्छामि दुक्कडं)।

मूल गुण उत्तर गुण पाठः-

मूल गुण समिति गुप्ति युक्त पांच महाव्रत और उत्तर गुण दस पच्चक्खाण एवं अन्य नियम प्रत्याख्यान तप स्वाध्याय ध्यान योग आदि है इनके विषय मे कोई अविवेक प्रवर्तन प्ररूपण हुआ हो, तो उसका मैं चिंतन अवलोकन करता हूँ, (तो मेरा वह पाप निष्फल हो, मिच्छामि दुक्कडं)।

अठारह - पापस्थान का पाठः-

१ हिंसा, २. झूठ, ३. चोरी, ४. कुशील, ५. परिग्रह, ६. क्रोध, ७. मान, ८. माया, ९. लोभ, १०. राग-मोह, ११. द्वेष, १२. कलह, १३. कलंक लगाना १४. चुगली करना, १५. दूसरो की निंदा अवगुण-अपवाद करना, १६. सुख दुःख मे हर्ष-शोक करना १७. कपट युक्त झूठ बोलना-छल प्रपंच धोखा बाजी करना १८. जिन वाणी से विपरीत मान्यता रखना-हिंसा आदि पाप मे धर्म मानना।

इन पाप स्थानो मे से किसी पाप का अनजाने अविवेक प्रमाद से सेवन हुआ हो, तो उसका मै चिंतन अवलोकन करता हूँ, (हे भगवन मेरा वह प्रमाद जन्य पाप निष्फल हो (मिच्छामि दुक्कडं)

[इसके बाद ''णमो अरिहंताणं'' इस उच्चारण के साथ कायोत्सर्ग खोलना, फिर कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ बोलना]

कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ-

कायोत्सर्ग मे आर्तध्यान रौद्र ध्यान के संकल्प विकल्प किए हों और मन वचन काया के योग चलित हुए हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

चौबीस जिन स्तुति - (लोगस्स)

१ लोक मे प्रकाश करने वाले, धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले, राग द्वेष को जीतने वाले तीर्थंकरो की मै स्तुति करता हूँ। वे केवलज्ञानी तीर्थंकर चौबीस हैं—

२. श्री ऋषभनाथ, श्री अजितनाथ, श्री सभवनाथ, श्री अभिनन्दन, श्री सुमतिनाथ, श्री पद्मप्रभ, श्री सुपार्श्वनाथ, श्री चन्द्रप्रभ।

३. श्री सुविधिनाथ (पुष्पदंत), श्री शीतलनाथ, श्री श्रेयांसनाथ, श्री वासुपूज्य, श्री विमलनाथ, श्री अनंतनाथ, श्री धर्मनाथ, श्री शान्तिनाथ।

४. श्री कुंथुनाथ, श्री अरनाथ, श्री मल्लिनाथ, श्री मुनिसुव्रत, श्री नमिनाथ, श्री अरिष्टनेमि, श्री पार्श्वनाथ, श्री वर्द्धमान (महावीर)।

५. ये तीर्थंकर कर्म-मल रहित है, जरा और मरण से मुक्त है। धर्म-तीर्थ के प्रवर्तक है। ये चौबीस तीर्थंकर मुझ पर प्रसन्न हो।

६ मुझ द्वारा प्रशंसित, वन्दित और पूजित लोक मे उत्तम सिद्ध मुझे आरोग्य, सम्यक्त्व तथा समाधि का श्रेष्ठ वर दे।

७. चन्द्रो से अधिक निर्मल, सूर्यो से अधिक तेजस्वी, सागर से अधिक गम्भीर सिद्ध मुझे सिद्धि (मुक्ति) प्रदान करे।

सविधि उत्कृष्ट वंदन पाठ:- (खमासमणा)-

हे क्षमाश्रमण! मैं संयत शरीर के द्वारा आपको वंदना करना चाहता हूँ इसलिये आप मुझे अपने परिमित अवग्रह (क्षेत्र) मे प्रवेश करने की आज्ञा दें। (यहां उकडू आसन से बैठना) मै आपके चरण का मस्तक से स्पर्श करता हूँ।[१] इस स्पर्श करने मे आपको कोई कष्ट पहुंचा हो तो आप मुझे क्षमा करे।

कष्टानुभूति से रहित आप का यह दिन निर्विघ्नरूप मे शुभ कल्याणकारी प्रवृति मे बीता?

आपकी यात्रा- "तप, नियम, स्वाध्याय, ध्यान की प्रवृत्ति" प्रशस्त रही? आपका यमनीय - "इन्द्रिय और मनो संयम प्रशस्त रहा?[२]

हे क्षमाश्रमण! आपके प्रति होने वाले दिवस-सम्बन्धी व्यतिक्रम के लिए आप मुझे क्षमा करे।

आपके लिये अवश्य करणीय कार्य मे मेरा कोई प्रमाद हुआ हो तो मै उसका प्रतिक्रमण करता हूँ। (यहां खडे हो जाना)

हे क्षमाश्रमण! आपकी तेतीस मे से कोई एक भी आशातना की हो, आपके प्रति यत् किंचित मिथ्याभाव आया हो या मिथ्या व्यवहार किया हो, आपके प्रति मन मे कोई बुरा विचार आया हो, खराब वचन बोले हो, काया की दुष्प्रवृत्ति की हो, आपके प्रति यदि क्रोध, मान, माया और लोभ के आवेश मे कोई अवांछनीय व्यवहार किया हो, सर्वकाल मे अर्थात् किसी भी क्षण मे होने वाली, सर्वमिथ्या चरणो से होने वाली, सब प्रकार के धर्म का अतिक्रमण

टिप्पण:- १. यहा पर तीन आवर्तन करें "अहो... काय . काय" इस उच्चारण के साथ
२. यहां पर तीन आवर्तन करें "जत्ता भे. जवणिज्ज..च भे" इस उच्चारण के साथ
विशेष:- आवर्तन के अत में भूमि तक मस्तक झुकाना चाहिये।

करने वाली कोई भी आशातना की हो इत्यादि जो मैने दिवस सम्बन्धी अतिचार किया हो तो उसका हे क्षमाश्रमण! मैं प्रतिक्रमण करता हूँ, निंदा करता हूँ, गर्हा करता हूँ, आशातना मे प्रवृत्त अपनी आत्मा का व्युत्सर्जन करता हूँ।[३]

(फिर खड़े होकर कायोत्सर्ग मे गिने पाठो का उच्चारण करना। विशेष यह ध्यान रखना कि सभी पाठो के अंत में "तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं" बोलना अंत मे निम्न पाठ बोलना—

आलोचना पाठ (तस्स सव्वस्स)

मन मे बुरे विचार कर, बुरे वचन बोलकर एव शरीर की पापकारी प्रवृत्ति कर जो दिन मे अतिचार किए हो, उन सबकी आलोचना करता हुआ निवृत्त होता हूँ। उसकी निंदा करता हूँ, गर्हा करता हूँ। उस पापकारी प्रवृत्ति रूप आत्मा का विसर्जन करता हूँ।

(इसके बाद दाहिना घुटना ऊंचा करके बाया घुटना दबाकर बैठना। फिर- १. नमस्कार मंत्र, २. मंगल पाठ ३. सामायिक प्रतिज्ञा पाठ ४. संक्षिप्त अतिचार प्रतिक्रमण पाठ बोलना। फिर निम्न पाठ बोलना—

गमनागमन अतिचार प्रतिक्रमण पाठः- (इच्छाकारेणं)

भगवन! रास्ते मे चलते-फिरते समय जो मेरे से जीव-हिंसा हुई हो, उस हिंसा से होने वाले अतिचार से निवृत्त होने की मैं इच्छा करता हूं। मार्ग मे आते-जाते समय मैंने यदि किसी जीव को दबाया हो, कुचल डाला हो, किसी जीव सहित बीज, हरी वनस्पति, ओस की बूंदे, चींटियो के बिल, पांच वर्ण की फूलन, जीव सहित पानी, जीव सहित मिट्टी तथा मकडियो के जाल आदि को दबाया हो, कुचल डाला हो, जीव हिंसा की हो, एक इन्द्रिय वाले, दो इन्द्रिय वाले, तीन इन्द्रिय वाले, चार इन्द्रिय वाले, पाच इन्द्रिय वाले जीव को १. चोट पहुचाई हो, २. उनको धूल आदि से ढँका हो, ३. जमीन पर उनको आपस मे मसलकर, ४. इकट्ठा कर, ५. उनका ढेर किया हो, उनको कष्ट पहुंचाया हो, ७. मृतकवत् कर डाला हो, ८. भयभीत किया हो, ९. एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान मे अयतनापूर्वक रखकर, १०. उनका जीवन नष्ट किया हो। इस प्रकार जाने-अनजाने जो भी हिंसा मुझसे हुई हो, तो मेरा वह

---

३ इसी प्रकार दूसरी बार विधि सहित बोलना किंतु बीच मे खडे नही होन

पाप निष्फल हो (मिच्छामि दुक्कडं)।

ज्ञान व उसके अतिचार का पाठ- (आगमे तिविहे)

बारह अंग सूत्र और अन्य अनेक सूत्र रूप श्रुतज्ञान होता है जिसमे वर्तमान मे ३२ आगम उपलब्ध माने गये हैं उनके अर्थ रूप मे अनेक सूत्रो की व्याख्याएं - निर्युक्तियां भाष्य चूर्णी टीका अनुवाद उपलब्ध है। ३२ आगम के नाम इस प्रकार हैः-

११ अंग सूत्र- १. आचारांग सूत्र २. सूत्रकृतांग सूत्र ३. ठाणांग सूत्र ४. समवायांग सूत्र ५. भगवती सूत्र ६. ज्ञाता धर्म कथा सूत्र ७. उपासक दशा सूत्र ८. अंतकृत दशा सूत्र ९. अणुत्तरोपपातिक सूत्र १०. प्रश्न व्याकरण सूत्र ११. विपाक सूत्र।

१२ उपांग सूत्र- १. औपपातिक सूत्र २. राजप्रश्नीयसूत्र ३. जीवाभिगम सूत्र ४. प्रज्ञापना सूत्र, ५ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र ६-७ ज्योतिषगणराज प्रज्ञप्ति सूत्र (सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र, चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र) ८-१२. उपांग सूत्र (निरयावलिका- कप्पिया, कप्पवडंसिया, पुप्फिया, पुप्फ चूलिया, वण्हिदसा)

४ छेद सूत्र- १. निशीथ सूत्र २. दशाश्रुत स्कंध सूत्र ३. वृहत्कल्प सूत्र ४. व्यवहार सूत्र।

४ मूल सूत्र- १ उत्तराध्ययन सूत्र २. दशवैकालिक सूत्र ३. नंदी सूत्र ४. अनुयोग द्वार सूत्र, बत्तीसवां आवश्यक सूत्र। इनके विषय मे मुख्य १४ अतिचार जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नही है। वे इस प्रकार हैः-

१. सूत्र के अक्षर या पद आगे पीछे बोले हो २. एक सूत्र पाठ को दूसरे सूत्र में बोला हो ३. अक्षर कम बोले हो ४. अक्षर अधिक बोले हो ५. शब्द कम बोले हो ६. विनय रहित पढा हो ७. संयुक्त अक्षर शुद्ध न पढे हो ८. उच्चारण स्पष्ट न किया हो ९. अयोग्य को पढाया हो १०. अयोग्य रीति से - अविनय से ज्ञान ग्रहण किया हो ११. शास्त्र असमय मे पढा हो १२. समय पर शास्त्र न पढा हो १३४. चौतीस अस्वाध्याय मे शास्त्र पढा हो १४. अस्वाध्याय न हो तो भी प्रमाद वश शास्त्र न पढा हो। इन अतिचारो मे से मुझे कोई भी अतिचार लगा हो उससे सम्बन्धी मेरा वह दुष्कृत निष्फल हो (मिच्छामि दुक्कडं)

दर्शन-सम्यक्त्व एवं उसके अतिचार का पाठः- (अरिहंतो महदेवो)

केवल ज्ञान केवल दर्शन से युक्त राग द्वेष रहित वीतराग अरिहंत - तीर्थंकर प्रभू मेरे आराध्य देव है।

पांच महाव्रत पांच आचार, पांच समिति, तीन गुप्ति, नव वाड सहित ब्रह्मचर्य, पांच इन्द्रिय विजय, चार कषाय मुक्ति इन गुणो को धारण करने वाले सभी श्रमण श्रमणी मेरे आराध्य गुरु है।

सवर निर्जरा रूप धर्म अर्थात् सामायिक पौषध एवं त्याग नियम श्रावक व्रत, संयम तप आदि मय धर्म ही मेरा आराध्य धर्म है।

जिनेश्वर भाषित एवं गणधर या पूर्वधर श्रमणो द्वारा रचित आगम ही मेरे श्रद्धा केन्द्र शास्त्र है। ऐसी सम्यक्त्व की प्रतिज्ञा को मैं जीवन भर के लिए धारण करता हूँ।

मैं जिन भाषित जीवादि तत्वो का ज्ञान बढाऊंगा, ऐसे ही ज्ञानी जनो की सगति करूगा। अन्य दर्शनियो की - मतावलंबियो की संगति नही करूंगा एवं सम्यक्त्व को धारण कर पुनः उसका वमन करके जो मिथ्यादृष्टि बन गये हैं, उनकी संगति भी नही करूँगा।

इस प्रकार की समकित के पांच प्रमुख अतिचार जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नहीं है। वे इस प्रकार है- १. भगवान के वचनो मे (सूक्ष्म तत्वो में) संदेह किया हो २. परमत की प्रभावना चमत्कार देखकर मन आकर्षित हुआ हो ३. धर्म करणी के फल में संदेह हुआ हो ४. परमत की प्रसंसा की हो ५ परमत के सन्यासी का उनके शास्त्र का परिचय सम्पर्क किया हो। इन अतिचारो मे से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो वह मेरा दुष्कृत निष्फल हो (मिच्छामि दुक्कडं)।

श्रमण सूत्र के पांच पाठ

सयन निद्रा प्रतिक्रमण पाठ-

मैं प्रतिक्रमण करना चाहता हूँ— अतिमात्रा से सोने मे, जब इच्छा हुई तब सोने मे या बार-बार सोने मे, बिछोने पर सोने उठने-बैठने मे, करवट बदलने मे, शरीर को सिकोड़ने फैलाने में, जूं आदि का संघट्टन होने मे, नीद मे बोलने और दांत पीसने मे, छीक और जम्हाई लेने मे, किसी का स्पर्श करने मे तथा सचित्त रजयुक्त वस्तु भूमि का स्पर्श करने मे अतिचार किया हो,

शयन हेतुक अथवा स्वप्न हेतुक आकुल-व्याकुलता होने मे, स्वप्न मे स्त्री विषयक कामराग, दृष्टि राग, मनोराग हुआ हो और खाने-पीने के विषय मे अन्यथा भाव हुआ हो इन अतिचारो मे मुझे कोई अतिचार दोष लगा हो तो उससे सम्बन्धित मेरा दुष्कृत निष्फल हो (मिच्छामि दुक्कडं)।

भिक्षाचरी प्रतिक्रमण पाठ-

मैं गोचरचर्या- गाय की भांति अनेक स्थानो से थोड़ा-थोड़ा लेने वाली - भिक्षाचर्या से सम्बन्धित अतिचारो का प्रतिक्रमण करता हूँ— गोचरी मे बिना आज्ञा बंद किवाड़ को खोला हो, कुत्ते, बछड़े और स्त्री का संघट्टा किया हो, सजाकर रखे हुए भोजन मे से भिक्षा ली हो, अग्नि प्रक्षेप आदि करके दी जाने वाली भिक्षा ली हो, भिक्षाचर आदि याचको या श्रमणो के लिए स्थापित भोजन लिया हो, शंका सहित आहार लिया हो बिना सोचे शीघ्रता मे आहार लिया हो, एषणा-पूछताछ किए बिना आहार लिया हो प्राणी बीज और हरितयुक्त आहार लिया हो, भिक्षा देने के पश्चात् उसके निमित्त से हस्त-प्रक्षालन् आदि आरम्भ किया जाए वैसी भिक्षा ली हो, भिक्षा देने के पूर्व उसके निमित्त से आरम्भ किया जाए वैसी भिक्षा ली हो, सचित्त जल से स्पृष्ट वस्तु को लाकर दी जाने वाली भिक्षा ली हो, सचित्त रज से स्पृष्ट वस्तु को लाकर दी जाने वाली भिक्षा ली हो, भूमि पर गिराते-गिराते दी जाने वाली भिक्षा ली हो, खाने पीने की वस्तु मे से अयोग्य पदार्थ फेकते हुए दी जाने वाली भिक्षा ली हो, विशिष्ट भोज्य-पदार्थ मांग कर लिए हो, उद्गम, उत्पादन और एषणा के ४२ दोषो से युक्त आहार लिया हो, खाया हो, दोष युक्त आहार ज्ञात हो जाने पर भी उसका परिष्ठापन न किया हो, इन अतिचारो मे से मुझे कोई अतिचार दोष लगा हो तो मेरा दुष्कृत निष्फल हो (मिच्छामि दुक्कडं)

स्वाध्याय प्रतिलेखन प्रतिक्रमण पाठ-

मै प्रतिक्रमण करता हू- चातुष्कालिक - दिन के प्रथम और अन्तिम प्रहर, तथा रात के प्रथम और अंतिम प्रहर मे स्वाध्याय न किया हो, उभय काल- दिन के प्रथम तथा अन्तिम प्रहर मे पात्र, वस्त्र आदि उपकरणो का प्रतिलेखन न किया हो अथवा अविधि से किया हो, स्थान आदि का प्रमार्जन न किया हो अथवा अविधि से किया किया हो, इन अतिचारो मे मुझे कोई अतिचार दोष लगा हो तो मेरा वह दुष्कृत निष्फल हो। (मिच्छामि दुक्कडं)

तेतीस बोल प्रतिक्रमंण पाठ-

मै निम्न तेतीस बोलो का प्रतिक्रमण करता हूँ **यथा-** एक प्रकार के असंयम का, राग और द्वेष दो बंधनो का, मन वचन काया इन तीन दंडो का, माया, निदान और मिथ्यात्व इन तीन शल्यो का, रस, ऋद्धि, शाता इन तीन प्रकार के गर्वो का, मन वचन काया की तीन गुप्तियो का और ज्ञान, दर्शन चारित्र इन तीन की विराधना का प्रतिक्रमण करता हूं।

चार कषाय, चार सज्ञा, चार विकथा, और चार ध्यान का प्रतिक्रमण करता हूं।

कायिकी आदि पांच क्रिया, शब्द आदि पांच काम गुण, अहिंसा आदि पांच महाव्रत एवं ईर्या समिति आदि पांच समिति का प्रतिक्रमण करता हूँ।

छः काया और छः लेश्या, ७ भय, ८ मद का प्रतिक्रमण करता हूँ।

इसी प्रकार नौ ब्रह्मचर्य की वाड, दस यति धर्म, ११ श्रावक पडिमा, १२ भिक्षु पडिमा, १३ क्रिया स्थान, १४ जीव के भेद, १५ परमाधर्मिक देव, १६ सूत्रकृतांग सूत्र प्रथम श्रुत स्कंध के अध्ययन, १७ असमय, १८ अब्रह्मचर्य, १९ ज्ञाता सूत्र के अध्ययन,

२० असमाधि स्थान, २१ शलब दोष, २२ परीषह, २३ सूत्र कृतांग सूत्र के कुल अध्ययन २४ चार जाति देव २५ पांच महाव्रतो की भावना, २६ तीन छेद सूत्र (दशा कप्प ववहार) के अध्ययन, २७ अणगार के गुण, २८ आचार प्रकल्प, २९ पाप सूत्र, ३० महामोहनीय के बध स्थान, ३१ सिद्धो के गुण, ३२ योग संग्रह, ३३ आशातना।

इन उक्त बोलो मे से जानने योग्य जाना न हो आचरण करने योग्य का आचरण न किया हो और त्यागने योग्य का त्याग न किया हो तो तत्सबंधी मेरा वह दुष्कृत मिथ्या हो। (मिच्छामि दुक्कड)

नोटः- इन तेतीस बोलो का विस्तार आगे सातवे परिशिष्ट मे देखे।

निर्ग्रन्थ प्रवचन श्रद्धान नमन प्रतिक्रमण पाठ - (णमो चौवीसाए)

मैं ऋषभ देव से लेकर महावीर प्रभु तक के चौबीस तीर्थंकरो को नमस्कार करता हू। यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही सत्य, अनुत्तर, अद्वितीय, प्रतिपूर्ण, मोक्ष मे ले जाने वाला, सर्वत शुद्ध, माया, निदान और मिथ्यादर्शन- इन तीनो शल्यो को छिन्न करने वाला है।

यह सिद्धि मुक्ति, निर्माण- मोक्ष, निर्वाण-शांति का मार्ग है। यह सत्य अविच्छिन्न और सर्व दु:खो के प्रहाण का मार्ग है।

इस निर्ग्रन्थ प्रवचन मे स्थित मनुष्य सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होते हैं तथा सब दु:खो का अन्त करते है।

मै इस निर्ग्रन्थ धर्म पर श्रद्धा, प्रतीति और रूचि करता हूँ। इसका आचरण और अनुपालन करता हूँ।

इस निर्ग्रन्थ धर्म पर श्रद्धा, प्रतीति और रूचि करता हुआ, इसका आचरण और अनुपालन करता हुआ, इस निर्ग्रन्थ धर्म की आराधना के लिए तत्पर होता हूँ, विराधना से विरत होता हूँ।

मैं असमय, अब्रहमचर्य, अकल्प, अज्ञान, अक्रिया, मित्थात्व, अबोधि और अमार्ग का प्रत्याख्यान करता हूँ तथा सयम, ब्रह्मचर्य, कल्प, ज्ञान, क्रिया, सम्यक्त्व, बोधि और सन्मार्ग को स्वीकार करता हूँ।

अतिचार की स्मृति या अस्मृति, उसके प्रतिक्रमण या अप्रतिक्रमण से सम्बन्धित सब देवसिक अतिचारो का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

मै श्रमण हूँ, संयत और विरत हूँ। मैने अतीत के पापकर्मों की आलोचना की है और भविष्य मे पापकर्मों का प्रत्याख्यान किया है। मै निदान-मुक्त, दृष्टि-सम्पन्न और माया-मृषा का विवर्जन करने वाला हूँ।

अढाई द्वीप-समुद्रो और पन्द्रह कर्म-भूमियो मे मुखवस्त्रिका रजोरहण, गोच्छग और पात्र को धारण करने वाले, पंचमहाव्रती, अट्ठारह हजार शीलांग गुणो के अभ्यासी, अक्षत आचार और चरित्र वाले जितने साधु है, उन सबको सिर और मन को प्रणत कर, ललाट पर अजलि करके वन्दना करता हूँ।

सर्व जीव क्षमापना पाठ - (खामेमि सव्वे जीवा)

मै सब जीवो को क्षमा करता हूँ। सब जीव मुझे क्षमा करे। सब जीवो के साथ मेरी मैत्री है। किसी के साथ मेरा वैर नहीं है।

इस प्रकार मैने सम्यक् रूप मे अतिचारो की आलोचना, निंदा, गर्हा और जुगुप्सा की है। मै तीन करण और तीन योग से प्रतिक्रमण करता हुआ चौबीस तीर्थंकरो को वंदना करता हूँ।

आराधन अभ्युत्थान पाठ – (तस्स धम्मस्स)

मै सर्वज्ञ-प्रणीत धर्म की आराधना करने के लिए उद्यत होता हूँ। उसकी

विराधना से विरत होता हूँ। सब अतिचारों का मन, वचन और काया से प्रतिक्रमण करता हुआ चौबीस तीर्थंकरो को नमस्कार करता हूँ।

(इसके बाद दो बार उत्कृष्ट वंदन करना - फिर खड़े होकर निम्न पाठ बोलना)

कायोत्सर्ग आज्ञा पाठ (देवसिय पायच्छित)

हे भंते! आपकी आज्ञा लेकर दिवस सम्बन्धी प्रायश्चित्त योग्य अतिचारो की शुद्धि के लिए कायोत्सर्ग करता हूँ।

(इसके बाद १. नमस्कार मंत्र २. मंगल सूत्र ३. सामायिक सूत्र ४. संक्षिप्त अतिचार प्रतिक्रमण सूत्र ५. कायोत्सर्ग प्रतिज्ञा सूत्र बोलना)

(इसके बाद कायोत्सर्ग मे क्षमाभाव समभाव का चिंतन करना)

- सम भाव क्षमा भाव चिंतन -

खामेमि जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे,
मित्ती मे सव्व भूएसु, वेरं मज्झ न केणई (१)
क्षमा वडन को चाहिए, छोटन को उत्पात।
कहा कृष्ण को थई गयो, भृगुजी मारी लात (२)
जैसी जापे वस्तु है, वैसी दे दिखलाय।
वांका बुरा न मानिए, वो लेन कहां पर जाय (३)
बांध्या बिन भुगते नही, बिन भुगत्यां न छुडाय।
आप ही करता भोगता, आप ही दूर कराय (४)
बांध्या सो ही भोगवे, कर्म शुभाशुभ भाव।
फल निर्जरा होत है, यह समाधि चित चाव (५)
जो जो पुद्गल फरसना, निश्चय फरसे सोय।
ममता समता भाव से, कर्म बंध क्षय होय (६)
राई मात्र घट वध नही, देख्या केवल ज्ञान।
यह निश्चय कर जानिए, तजिए आर्तध्यान (७)
सुख दु:ख दोनो बसत है, ज्ञानी के घट माँहि।

गिर सर दीसे मुकुर मे, भार भीजवो नाँहिं (८)
निज आतम को दमन कर, पर आतम मत चीन।
परमातम को भजन कर, सो ही मत परवीन (९)
पर स्वभाव को मोड़ा चाहता, अपना ठसा जमाता है।
यह न हुई न होने की, तूं नाहक जान जलाता है (१०)
गई वस्तु सोचे नही, आगम वांछा नाँय।
वर्तमान वर्ते सदा, सो ज्ञानी जग मांय (११)
अवगुण उर धरिए नहीं, जो हो वृक्ष बबूल।
गुण लीजे कालू कहे, नही छाया मे सूल (१२)
ईष्ट मिले आशा मिले, मिले खान अरू पान।
एक प्रकृति ना मिले, इसकी खेचातान (१३)
गाली सह्या गुण घणा, देने से लगता दोष।
देने मे मिलती दुर्गति, सहने से मिलता मोक्ष (१४)
परालब्ध पहले बना, पीछे बना शरीर।
यह अचंभा हो रहा, मन नही धरता धीर (१५)

इसके बाद जिस जिस व्यक्ति, जीव, श्रावक, श्राविका, शिथिलाचारी, सहचारी, साधु, साध्वी के साथ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे विषम भाव चिंतन मे चलते हो उन्हे स्मृति मे लेकर उनके प्रति समभाव जागृत करने चाहिए।[१]

तप चिंतन विधि

(पांचवे आवश्यक में - रात्रि प्रतिक्रमण में)

किं तवं पडिवज्जामि, एवं तत्थ विचिंतए। - उत्तरा. २६

छम्मासी तप करना? - शक्ति नही/अभ्यास नही

टिप्पण:- १. देवसिक प्रतिक्रमण मे उक्त चिंतन करना एव रात्रि प्रतिक्रमण मे इसके साथ तप चिंतन भी करना।

पांच, चार, तीन, दो मासी तप करना? - शक्ति नहीं/अभ्यास नही
मासखमण करना? - शक्ति है किन्तु अवसर नही
१५, ८, ७, ६, ५, ४, ३ बेला करना? शक्ति है किन्तु अवसर नही
उपवास, आयंबिल निवी करना? - शक्ति है किन्तु अवसर नही
एकाशन, पुरिमुड्ढ पोरिषी करना? - शक्ति है किन्तु अवसर नही
नवकारसी करना - शक्ति है, अवसर है, भाव है

ज्ञातव्य- जो तप जीवन मे कभी न किया हो उसके लिए कहना कि "शक्ति नहीं"। जो तप पहले किया है किन्तु आज नही करना, उसके लिए कहना कि शक्ति है पण अवसर नही और जो तप करना हो उसके उत्तर मे कहना कि शक्ति है, अवसर है, भाव है। उसके बाद ही कायोत्सर्ग पूर्ण करना अर्थात् फिर उसके आगे प्रश्न करने की और उत्तर चिंतन करने की आवश्यकता नही होती है।

इसके बाद "णमो अरिहंताणं" के उच्चारण के साथ कायोत्सर्ग खोलना। फिर कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ, चौबीस जिन स्तुति पाठ, उत्कृष्ट गुरू वंदन पाठ

फिर गुरु रत्नाधिक श्रमण से या स्वय खड़े होकर विनय सहित प्रत्याख्यान करना।

प्रत्याख्यान पाठ–

उग्गए सूरे णमुक्कारसहिय पच्चक्खामि चउविह पि आहार असण पाण खाइमं साइम अण्णत्थऽणाभोगेण, सहसागारेण वोसिरामि।

अर्थ- हे भते! मै सूर्योदय से लेकर नमस्कार मंत्र उच्चारण न करूं तब तक चारो आहार का प्रत्याख्यान करता हूँ यथा- १ भोजन के पदार्थ २. पानी ३. फल मेवा ४. मुखवास। भूल से खाने मे आ जाय या स्वत सहसा मुँह मे छींटा आदि चला जाय उसका आगार। इसके अतिरिक्त मै आहार का विसर्जन करता हूँ।

प्रतिक्रमण शुद्धि का पाठ-

प्रतिक्रमण के पाठो का उच्चारण शुद्ध न किया हो विधि मे कोई अविधि हुई हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कड।

अर्थ चिंतन ... द्धि पूर्वक, अन्यत्र कही भी मन को ...

बिना, एकाग्रचित्त होकर, पूर्ण भाव युक्त, प्रतिक्रमण न किया हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

सम संवेग निर्वेद अनुकंपा आस्था ये पांच व्यवहार समकित के लक्षण है। देव अरिहंत, गुरु सुसाधु, धर्म केवली भाषित, ये तीन तत्व सार, संसार असार, अरिहंत भगवन्! आपका मार्ग सत्य है, सत्य है, सत्य है, स्तव स्तुति मंगल करता हूँ।

इसके बाद दो बार "सिद्ध स्तुति का पाठ" विधी पूर्वक बैठ कर बोलना।

सिद्ध स्तुति का पाठ - (णमोत्थुणं)

मै अरिहन्त भगवान को नमस्कार करता हूँ। वे धर्म सृष्टि के करने वाले हैं। साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप तीर्थ चतुष्टय के कर्ता हैं। जिन्होने बिना किसी उपदेश के स्वय ज्ञान प्राप्त किया है, सब पुरूषो से उत्तम है, सिंह के समान निर्भीक है, कमल के समान अलिप्त है, गन्ध हस्ती के समान प्रधान है, लोक मे उत्तम है, लोक के नाथ है, लोक के हितकारी हैं, लोक मे दीप के समान ज्योतिपुंज है, लोक मे प्रकाश करने वाले है, सबको अभय देने वाले हैं, चक्षुदाता है, पथ दर्शक है, शरण देने वाले है, संयम जीवनदाता है, बोधिदाता है, धर्मदान देने वाले है, धर्म के उपदेशक है, धर्म के नायक है, धर्म-रथ के सारथी है, दिगत विजेता प्रवर धर्म-चक्रवर्ती है। संसार समुद्र मे डूबते हुए प्राणियो के लिए द्वीप है, त्राण हैं, शरण हैं, गति है, प्रतिष्ठा (आधार) है। अबाध ज्ञान और दर्शन के धारण करने वाले हैं, कर्म के आवरण से रहित हैं, स्वय राग-द्वेष के विजेता है, दूसरो को राग-द्वेष विजेता बनाने वाले हैं। स्वय संसार समुद्र से तरने वाले तथा दूसरो को भी तारने वाले हैं। स्वयं बोधि-प्राप्त है तथा दूसरो को भी बोधि देने वाले है। स्वयं मुक्त है, दूसरो को मुक्त करने वाले है। सर्वज्ञ है, सर्वदर्शी है, उपद्रव-रहित, अचलायमान, व्याधि-रहित, अनन्त, अक्षय, बाधा-पीड़ा रहित, पुनर्जन्म-रहित, सिद्धिगति नामक स्थान (मोक्ष) को सप्राप्त है। जो सब ओर से अभय है, उन जिनेश्वरो को मै नमस्कार करता हूँ।

(इसके बाद गुरू वंदन कर प्रायश्चित्त ग्रहण करना फिर अन्य रत्नाधिको को वंदन करना)

।। इति श्रमण हिन्दी प्रतिक्रमण सम्पूर्ण ।।

परिशिष्ट- ७

तेतीस बोल विस्तार

प्रथम बोल से छट्ठे बोल तक प्रचलित एवं सरल बोल है वे मूल आगम पाठ मे प्रथम विभाग मे दे दिये गये हैं। शेष बोलो मे से कुछ बोलो का विस्तार यहां दिया जा रहा है। अन्य सूत्रो मे आये बोलो के लिये उन सूत्रो को देखने का निर्देश भी कर दिया गया है।

भय के सात स्थान-

भय यह मोहनीय कर्म की एक प्रकृति है। उसके प्रभाव से होने वाला आत्म-परिणाम भय कहलाता है। वह सात प्रकार का है—

१. **इहलोकभय**— सजातीय भय— जैसे मनुष्य को मनुष्य से होने वाला भय।

२. **परलोकभय**— विजातीय भय— जैसे तिर्यंच, देव आदि से होने वाला भय।

३. **आदानभय**— धन आदि के अपहरण से होने वाला भय।

४. **अकस्मात् भय**— बाह्य निमित्तो के बिना अपने ही विकल्पो से होने वाला भय।

५. **वेदना भय**— पीड़ा आदि से उत्पन्न भय।

६. **मरण भय**— मृत्यु का भय।

७. **अश्लोक भय**— अकीर्ति का भय।

[आठ मद प्रज्ञापना सूत्र सारांश पुष्प २६ में देखें।]

ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियां-

१. विविक्त- स्त्री पशु रहित शय्या उपाश्रय का सेवन करना।

२. स्त्री सम्बन्धी कथा वार्ता चर्चा आदि न करना।

३. स्त्री के साथ एक आसन पर न बैठना एवं उनके उठने के बाद भी उस स्थान पर कुछ देर नही बैठना।

४. स्त्रियो के अवयवो को, चेष्टाओ आदि को, आसक्त दृष्टि से न देख

५ स्त्रियो के हास्य विलाप गीत कुजित ध्वनि आदि शब्दो को राग न

सुनना नही।

६. पूर्व अवस्था मे आचीर्ण भोगों की स्मृति चिंतन न करना।

७. सदा प्रणीतरस– गरिष्ठ भोजन न करना।

८. अतिमात्रा मे आहार न करना।

९. विभूषावृत्ति स्नान श्रंगार करना नही

१०. शब्दादि इन्द्रिय विषयो मे तथा यश कीर्ति श्लाघा मे आसक्त न होना

नोटः- यहां १० वां बोल उत्तरा. अ. १६ की ब्रह्मचर्य की दस समाधि से लिया गया है

दस प्रकार का श्रमण-धर्म–

१. **क्षान्ति** - क्षमा, क्रोध का विवेक

२. **मुक्ति** - अकिन्चन्य, लोभ का विवेक

३. **आर्जव** - ऋजुता, माया का विवेक

४. **मार्दव** - मृदुता, मान का विवेक

५. **लाघव** - हल्कापन, अप्रतिबद्धता

६. **सत्य** - महाव्रत आदि पालन मे सत्य निष्ठा

७. **संयम** - इन्द्रिय निग्रह आदि

८. **तप** - अनशन आदि

९. **त्याग** - साधर्मिक साधुओ को भोजन आदि देना।

१०. **ब्रह्मचर्यवास** - नियम, उपनियम, दस समाधि से युक्त ब्रह्मचर्य पालन

[ग्यारह श्रावक पडिमा और बारह भिक्षु पडिमा दशाश्रुतस्कंध सूत्र सारांश पुष्प ८ में देखें]

तेरह क्रिया स्थान–

क्रिया का सामान्य अर्थ है प्रवृत्ति। प्रस्तुत प्रसंग मे उन प्रवृत्तियो का संकलन है जो कर्मबन्ध की हेतुभूत है। क्रियाओ के विविध प्रकार के वर्गीकरण प्राप्त है। सूत्रकृताग सूत्र के अनुसार तेरह क्रियाओ का उल्लेख इस प्रकार है–

१. **अर्थदण्ड** – अपने लिये या दूसरे के लिए हिंसा की प्रवृत्ति करना।

२. **अनर्थदण्ड** – निष्प्रयोजन हिंसा की प्रवृत्ति करना।

३. **हिंसादंड** – प्रतिशोध की भावना से हिंसा की प्रवृत्ति करना।

४. **अकस्मातदण्ड** – किसी को 'मारने के प्रयत्न मे किसी दूसरे को मार डालना।

५. **दृष्टिदोष दण्ड** – दृष्टि की विपरीतता से होने वाली हिंसक प्रवृत्ति - जैसे अचोर को चोर,-मित्र को अमित्र मानकर मार डालना।

६. **मृषाप्रत्ययिक** - झूठ बोलने की प्रवृत्ति करना।

७. **अदत्तादानप्रत्ययिक** - चोरी की प्रवृत्ति करना।

८. **अध्यात्म (मनः) प्रत्ययिक** - अन्तर्मन से सावद्य प्रवृत्ति करना।

९. **मानप्रत्ययिक** - अहंकार के वशीभूत होकर प्रवृत्ति करना।

१०. **मित्रद्वेषप्रत्ययिक** - अपने ज्ञातिजनो के अल्प अपराध पर भारी दंड देना।

११. **मायाप्रत्ययिक** - मायायुक्त प्रवृत्ति करना।

१२. **लोभप्रत्ययिक** - लोभ के वशीभूत होकर सावद्य प्रवृत्ति करना।

१३. **एर्यापथिक** - समिति और गुप्ति की साधना मे संलग्न अनगार वीतराग की प्रवृत्ति।

इनमे प्रथम बारह अग्राह्य और तेरहवां क्रियास्थान उपादेय है।

[१४ जीव के भेद एवं १५ परमाधामी देव प्रज्ञापना सूत्र सारांश पुष्प २५ में देखें]

[१६ अध्ययन सूत्रकृतांग सूत्र सारांश पुष्प ४ में देखें]

सतरह प्रकार का असंयम-

१. पृथ्वीकाय असंयम २. अप्काय असंयम ३. तेजस्काय असयम ४. वायुकाय असंयम ५. वनस्पतिकाय असंयम ६. द्वीन्द्रिय असंयम ७. त्रीन्द्रिय असंयम ८. चतुरिन्द्रिय असंयम ९. पंचेन्द्रिय असंयम १०. अजीवकाय असंयम ११. प्रेक्षा असंयम १२. उपेक्षा असंयम १३. अपहत्य असंयम १४. अप्रमार्जना असंयम १५. मन असंयम १६ वचन असंयम १७. काया असंयम

पृथ्वीकायिक आदि पाच स्थावर जीवो तथा द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवो का मन, वचन, काया से संघट्टन आदि करना, उन्हे पीड़ा पहुंचाना — यह इन जीवो के प्रति किया जाने वाला असंयम है।

अजीव वस्तुएं जो निरन्तर काम मे ली जाती है, उनके व्यवहरण मे जो प्रमाद होता है, वह अजीवकाय असंयम है।

स्थान आदि का प्रतिलेखन न करना - प्रेक्षा असंयम है।

साधर्मिक व्यक्तियो को संयम के प्रति प्रेरित न करना- उपेक्षा असंयम है।

परिष्ठापन योग्य भोजन, वस्तु आदि का परिष्ठापन न करना - अपहृत्य असंयम है।

अकुशल मन का प्रवर्तन करना मन असंयम है।

अकुशल वचन का प्रवर्तन करना वचन असंयम है।

काया की असम्यक् प्रवृत्ति करना काय असंमय है।

अठारह प्रकार का अब्रह्म - तीन करण x तीन योग से यो नौ प्रकार मनुष्य सम्बन्धी एवं नौ प्रकार तिर्यंच सम्बन्धी।

[१९ अध्ययन ज्ञाता सूत्र पुष्प १४ मे, २० असमाधि दोष २१ सबल दोष दशाश्रुत स्कंध पुष्प ८ मे, बावीस परीषह उत्तराध्ययन सूत्र पुष्प १ मे और २३ अध्ययन सूत्र कृतांग सूत्र पुष्प ४ मे देखें]

२४ देवता – १० भवनपति, ८ व्यंतर, ५ ज्योतिषी, १ वैमानिक

[पांच महाव्रतो की पच्चीस भावना आचारांग सूत्र पुष्प २ एव प्रश्न व्याकरण सूत्र पुष्प १८ मे देखें]

[छब्बीस अध्ययन - तीन छेद सूत्रो के २६ उद्देशक है]

अनगार के सतावीस गुण-

१. प्राणातिपात विरमण २. मृषावाद विरमण ३. अदत्तादान विरमण, ४. मैथुन विरमण, ५. परिग्रह विरमण, ६. श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह, ७. चक्षुरिन्द्रिय निग्रह, ८. घ्राणेन्द्रिय निग्रह, ९. रसनेन्द्रिय निग्रह, १०. स्पर्शनिन्द्रिय निग्रह, ११. क्रोध विवेक, १२. मान विवेक, १३. माया विवेक, १४. लोभ विवेक, १५. भावसत्य– अन्तरात्मा की पवित्रता १६. करणसत्य- क्रिया की पवित्रता, १७. योगसत्य- मन वचन काया का सम्यक् प्रवर्तन, १८. क्षमा, १९. वैराग्य, २० मन समाहरण- मन का संकोचन २१. वचनसमाहरण- वचन का संकोचन, २२. कायासमाहरण-काया का संकोचन, २३. ज्ञान संपन्नता, २४. दर्शन संपन्नता, २५. चारित्र संपन्नता, २६. कष्ट वेदना की सहनशीलता २७. मारणान्तिक कष्ट की सहनशीलता।

आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति (पृष्ट ११३) मे इनका उल्लेख भिन्न प्रकार से है वहां रात्रि भोजन विरमण सहित व्रत षट्क, पांच इन्द्रियनिग्रह, षट्काय, (१८)

भाव सत्य (१९)करण सत्य, (२०) क्षमा, (२१) विरागता, (२२-२४) मनोवाक्कायनिग्रह, (२५) संयमयोगयुक्तता, (२६) वेदनाअभिसहन (२७) मारणान्तिक अभिसहन।

२८ आचार - प्रकल्प-

इसके दो अर्थ है— १. आचारांग का एक अध्ययन जो निशीथ कहलाता है तथा २. साध्वाचार का व्यवस्थापन

इसका अर्थ इस प्रकार भी किया जाता है—

१. आचार - आचारांग सूत्र के दोनो श्रुतस्कंधो के (१६+९) पचीस अध्ययन

२. प्रकल्प - निशीथ के तीन अध्ययन १. लघु २. गुरू ३. आरोपणा।

[विशेष- ठाणांग सूत्र एवं निशीथ सूत्र पुष्प ५ और ७ मे इस सम्बन्ध मे विस्तार से देखें]

प्रायश्चित्त की अपेक्षा २८ आचार प्रकल्प इस प्रकार है-

१. पांच दिन का प्रायश्चित्त २ दस दिन का ३. पंद्रह दिन का ४. बीस दिन का ५. पच्चीस दिन का ६. एक मास का ७. एक मास पांच दिन ८. एक मास दस दिन ९ एक मास १५ दिन, १० एक मास २० दिन, ११. एक मास २५ दिन, १२. दो मास १३. दो मास पाच दिन १४. दो मास दस दिन १५. दो मास पंद्रह दिन १६. दो मास २० दिन, १७. दो मास पच्चीस दिन १८. तीन मास १९ तीन मास पांच दिन २० तीन मास दस दिन, २१. तीन मास पंद्रह दिन २२ तीन मास बीस दिन २३. तीन मास पच्चीस दिन २४. चार मास।

२५. लघु (अल्पतम) २६ गुरू (महत्तर) २७. संपूर्ण प्रायश्चित्त आरोपणा २८. कुछ कम प्रायश्चित्त आरोपणा (रियायत) यथा— एक मास की १५ दिन आरोपणा, और दो मास की बीस दिन आरोपणा।

२९ पाप सूत्रः-

जो शास्त्र पाप या बन्धन का उपादान होता है उसे ‘‘पापश्रुत’’ कहा जाता है। प्रसंग के दो अर्थ है - आसक्ति और आसेवन। पापश्रुतप्रसंग के उनतीस प्रकार ये हैं-

१. भौम २. उत्पात ३. स्वप्न ४. अन्तरिक्ष ५. अंग ६. स्वर ७. व्यन्जन

८. लक्षण- इन आठो के सूत्र, वृत्ति और वार्त्तिक — ये तीन-तीन प्रकार होने से २४ भेद होते है। २५. विकथानुयोग २६. विद्यानुयोग २७. मंत्रानुयोग २८. योगानुयोग २९. अन्यतीर्थिक-प्रवृत्तानुयोग।

[तीस महामोह बंध के स्थान दशाश्रुतस्कंध पुष्प ८ मे देखें]

३१ सिद्धों के आदि-गुण-

आदि गुण का अर्थ है- मुक्त होने के प्रथम क्षण मे होने वाले गुण। उनकी संख्या इकतीस है। यह संख्या दो प्रकार से बतलाई गई है।

१. ज्ञानावरणीय कर्म की पांचो प्रकृतियो की क्षीणता से निष्पन्न गुण	५
२. दर्शनावरणीय कर्म की नौ प्रकृतियो की क्षीणता से निष्पन्न गुण	९
३. आयुष्य कर्म की चार प्रकृतियो की क्षीणता से निष्पन्न गुण	४
४. अन्तराय कर्म की पांच प्रकृतियो की क्षीणता से निष्पन्न गुण	५
५. वेदनीय कर्म की दो प्रकृतियो की क्षीणता से निष्पन्न गुण	२
६. मोहनीय कर्म की दो प्रकृतियो की क्षीणता से निष्पन्न गुण	२
७. नाम कर्म की दो प्रकृतियो की क्षीणता से निष्पन्न गुण	२
८. गोत्र कर्म की दो प्रकृतियो की क्षीणता से निष्पन्न गुण	२
	३१

दूसरे प्रकार के संख्या-आकलन मे संस्थान, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और वेद- ये छः घटक तत्त्व है—

१. **संस्थान** - आयत, वृत्त, त्र्यंस, चतुरस, परिमंडल।

२. **वर्ण** - कृष्ण, नील, रक्त, पीत, शुक्ल।

३. **गंध** - सुरभिगंध, दुरभिगंध।

४. **रस** - तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल, मधुर।

५. **स्पर्श** - कर्कश, मृदु, गुरू, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष।

६. **वेद** - स्त्री, पुरुष, नपुंसक। इनका कुल योग इकतीस होता है।

इन सब गुणो के साथ "नकार" लगाना चाहिए। जैसे वे न दीर्घ है, न ह्रस्व है आदि-आदि।

नके अतिरिक्त तीन गुण और है - अशरीरी, अजन्मा, अनासक्त।

३२ योगसंग्रह-

योग का अर्थ है - मन, वचन और काया की प्रवृत्ति। उस प्रवृत्ति का संग्रह-संकलन योगसंग्रह है। यहां शुभ-आदर्श कर्तव्यो का गुणो का संकलन है वे बत्तीस इस प्रकार है—

१. **आलोचना** - अपने प्रमाद का निवेदन कर प्रायश्चित ग्रहण करना।

२. **निरपलाप** - आलोचित प्रमाद का अप्रकटीकरण।

३. **आपत्काल में दृढ़धर्मता** - दृढ़धर्मी बने रहना।

४. **अनिश्रितोपधान** - दूसरो की सहायता लिए बिना तपःकर्म करना।

५. **शिक्षा** - सूत्रार्थ का पठन-पाठन तथा क्रिया का आचरण।

६. **निष्प्रतिकर्मता** - शरीर की सार-संभाल या चिकित्सा का वर्जन।

७. **अज्ञातता** - अज्ञात रूप मे तप करना, उसका प्रदर्शन या प्रख्यापन नही करना। अथवा अज्ञात कुल की गोचरी करना।

८. **अलोभ** - निर्लोभता का अभ्यास करना।

९. **तितिक्षा** - कष्ट-सहिष्णुता, परीषहो पर विजय पाने का अभ्यास करना।

१०. **आर्जव** - सरलता। साफ दिल सरल होना।

११. **शुचि** - पवित्रता - सत्य, सयम आदि का आचरण।

१२. **सम्यग्दृष्टि** - सम्यग्दर्शन की शुद्धि।

१३. **समाधि** - चित्त-स्वास्थ्य। चित्त की प्रसन्नता बनाये रखना।

१४. **आचार** - आचार का सम्यग् प्रकार से पालन करना,।

१५. **विनयोपग** - विनम्र होना, अभिमान न करना।

१६. **धृतिमति** - धैर्ययुक्त बुद्धि, दीनता नही करना धैर्य रखना।

१७. **संवेग** - वैराग्य वृद्धि अथवा मोक्ष की अभिलाषा।

१८. **प्रणिधि** - अध्यवसाय की एकाग्रता, शरीर की स्थिरता रखना।

१९. **सुविधि** - सदअनुष्ठान का अभ्यास।

२०. **संवर** - आस्रवो का निरोध।

२१. **आत्मदोषोपसंहार** - अपने दोषो का उपसंहरण, निष्कासन।

२२. **सर्वकामविरक्तता** - सर्व विषयो से विमुखता।

२३. **प्रत्याख्यान** - मूलगुण विषयक त्यागं अथवा पाप त्याग।

आहार दिखावे, निमंत्रण करे और देवे फिर गुरु को कहे, दिखावे, निमंत्रण करे और देवे।

१८. साथ मे बैठ कर आहार कर रहे हो तो मनोज्ञ आहार को शिष्य बड़ो की अपेक्षा जल्दी जल्दी और ज्यादा खावे अर्थात् आशक्ति भाव के कारण माया करे या अविवेक करे।

१९-२०. गुरू आदि के बुलाने पर सुना अनसुना करदे या उद्धतापूर्वक अविनय से बोले।

२१. गुरू के बुलाने पर रोषयुक्त बोले कि क्या है, क्या कहते हो?

२२. शिष्य गुरू आदि को तूं तूं ऐसे तुच्छ शब्द से कहे।

२३. शिक्षा या सेवा कार्य बताने पर कहे कि ऐसा तो आप ही कर लो अथवा आप ही क्यो नही कर लेते हो।

२४. गुरू आदि धर्मोपदेश दे रहे हो तो उसे अच्छा नही समझे, अनमना रहे।

२५. धर्म कथा करते समय गुरू आदि को कहे - आपको यह याद नही है।

२६. धर्म कथा करते समय गुरू का या परिषद का लिंक-एकाग्रता तोड़े।

२७. श्रोताजन को उपदेश से खिन्न करे।

२८. गुरू के कहे उपदेश को पुनः स्वयं कहे।

२९. गुरू के आसन या उपकरण के पांव लग जाने पर उसका खेद प्रकट किये बिना अनुनय विनय शिष्टता किये बिना ही चला जावे।

३० गुरू के बिना कहे ही उनके शय्या आसन पर बैठे, सोवे या खड़ा रहे।

३१. शिष्य गुरू से ऊंचे आसन पर बैठे सोवे अर्थात् उनसे अपने को ज्यादा समझे या अविवेक करे।

३२. शिष्य गुरू के बराबरी मे बैठे सोवे खड़ा रहे अर्थात् उनकी बराबरी करे या अविवेक करे।

३३. गुरू आदि के कुछ भी कहने पर दूर रहे अपने आसन पर अविवेक युक्त बैठे-बैठे ही सुने, उत्तर देवे। विवेक विनय पूर्वक निकट आकर न बोले।

दूसरे प्रकार की तेतीस आशातना:-

१. अरिहंत २. सिद्ध ३. आचार्य ४. उपाध्याय ५. साधु ६. साध्वी, ७.

श्रावक ८. श्राविका ९. देव १०. देवी ११. इस लोक १२. परलोक १३. केवलिप्रज्ञप्त धर्म १४. देव मनुष्य मय लोक १५. सर्व प्राणी १६. काल १७. श्रुत १८. गणधर १९. वाचनाचार्य इन उन्नीस की आशातना।

शेष १४ ज्ञान के अतिचारो का यहां संकलन समझना चाहिये।

इस प्रकार १९+१४=३३ यह व्याख्याकार कृत प्रकारांतर से ३३ आशातना का संकलन है। काल प्रमाद दोष से मौलिक आशातना की जगह इन संकलित ३३ आशातनाओ ने आवश्यक सूत्र के मूल पाठ मे स्थान ले लिया है।

पांच अस्तिकाय, षड जीवनिकाय, पांच महाव्रत, आठ प्रवचन माता एव नौ तत्व इन तेतीस तत्वो के प्रति अविनय करना आशातना है यह तीसरा प्रकार "मूलाचार" ग्रंथ मे है।

****

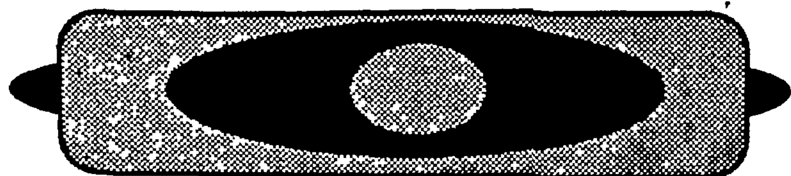
नोट- इन तेतीस बोलों का थोकडा भी अलग से प्रचलित है एवं उसकी स्वतंत्र पुस्तक भी उपलब्ध होती है। प्रत्येक साधक को वह थोकड़ा पुर्ण रूप से कंठस्थ धारण करना चाहिये।

पुस्तक प्राप्ति स्थान-

१. सिटी पुलिस के सामने सुधर्म प्रचार मंडल कार्यालय, जोधपुर- ३४२००१

२. नेहरू गेट बाहर, ब्यावर नेमीचन्दजी बाठिया- ३०५९०१

३. अगरचन्द भेरूदान सेठिया, बीकानेर।



परिशिष्ट - ८

सामायिक प्रतिक्रमण के विशेष प्रश्नोत्तर

प्राक्कथन-

प्रस्तुत आवश्यक सूत्र प्रतिक्रमण एव सामायिक के रूप मे समाज मे पूर्ण प्रचलित है। इसकी विधि प्रक्रिया भी पूर्ण प्रचलित है अर्थात् इस सूत्र की प्रक्रिया समाज मे सर्वत्र व्याप्त है।

इस व्यापकता के कारण इस सूत्र की प्रक्रियाओ के विषय मे अनेक मतभेद एवं शका-जिज्ञाशाएं भी उत्पन्न होती रहती है। कई साधको के मस्तिक मे अनेक प्रश्न चक्कर काटते रहते है। उनका कही समाधान होता है और कही किसी का समाधान नही होता है।

इस अपेक्षा को ध्यान मे रखते हुए एवं स्वाध्यायियो के ज्ञान विकास के लिये यह आठवां परिशिष्ट प्रश्नोत्तर रूप मे रखा गया है जिसमे सामायिक प्रतिक्रमण के पाठो से सम्बन्धित एव साधना प्रवृति से सम्बन्धी प्रश्नो का सकलन कर उनका आगम सापेक्ष चिंतन के साथ समाधान दिया गया है।

हार्दिक जिज्ञासा पूर्वक एव तटस्थता पूर्वक जो स्वाध्यायी इस प्रकरण का अध्ययन करेगे, चिंतन मनन करेगे, तो अवश्य ही तत्व लाभ प्राप्त करेगे।

नोट :- नूतन शकाओ के समाधान के लिये सम्पूर्क सूत्र के माध्यम से पत्र व्यवहार करे।

फोटो टाईपसेटिंग व मुद्रण **माणक ऑफसेट प्रिण्टर्स**, म. गां. अस्पताल रोड जोधपुर फोन-37838&37839

सामायिक प्रतिक्रमण के विशेष प्रश्नोत्तर

प्र. नमस्कार मंत्र मे किनको नमस्कार किया गया हैं?

उ. अरिहंत, सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु इन पांच पदो को नमस्कार किया गया है।

प्र. पद किसे कहते हैं?

उ. योग्यता गुण वृद्धि से प्राप्त हुए पूज्य स्थान को पद कहते हैं एवं कार्य क्षमता की योग्यता से दिये गये पूज्य स्थान को पद कहते हैं।

प्र. प्रथम अरिहंत पद मे किनको नमस्कार किया गया हैं?

उ. ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय मोहनीय और अंतराय इन चार घाती कर्मों को नष्ट करके, केवल ज्ञान केवल दर्शन प्राप्त कर मनुष्य लोक मे विचरण करने वाले तीर्थंकर भगवान को प्रथम अरिहंत पद मे नमस्कार किया गया है।

प्र. सिद्ध किसे कहते हैं?

उ. जिन्होने आठ कर्मों को नष्ट कर सम्पूर्ण आत्म-कल्याण साध लिया है जो मोक्ष मे चले गये हैं वे सिद्ध भगवान कहलाते हैं।

प्र. आचार्य किसे कहते हैं?

उ. जो साधु संघ के नायक हैं स्वयं आचार पालते हैं और साधु संघ से पलवाते हैं उन्हें आचार्य कहते हैं।

प्र. उपाध्याय किसे कहते हैं?

उ. जो शास्त्रो के जानकार हो और शिष्यो को शास्त्र का अध्ययन कराते हो उन्हे उपाध्याय कहते हैं।

प्र. साधु किसे कहते हैं?

उ. जो पांच महाव्रत पांच समिति तीन गुप्ति का पालन करते हैं तथा [illegible] के अनुसार आचरण करते हैं उन्हे साधु कहते हैं।

प्र. ये पद स्वतः प्राप्त होते हैं या किसी के देने से?

उ. अरिहंत और सिद्ध ये दो पद स्वतः प्राप्त होते हैं। तथा संयम ग्रहण करने पर साधु पद प्राप्त होता है। सम्पूर्ण संघ को संभालने की योग्यता हो ऐसे विद्वान साधु को आचार्य पद दिया जाता है। शिष्यो को पढाने मे कुशल हो ऐसे विद्वान साधु को उपाध्याय पद दिया जाता है। इस प्रकार तीन पद गुणो से स्वयं प्राप्त होते हैं और दो पद दिये जाने पर प्राप्त होते हैं।

प्र. पांच पदो मे देव कितने हैं? और गुरू कितने हैं?

उ. अरिहंत और सिद्ध ये दो हमारे आराध्य देव हैं और आचार्य उपाध्याय साधु ये तीन हमारे पूज्य गुरु भगवंत है।

प्र. गुरू एक होते हैं या अनेक?

उ. लोक मे जितने भी आचार्य उपाध्याय और साधु हैं जो भगवान की आज्ञानुसार विचरण करते हैं वे सभी साधु-साध्वी गुरू पद मे गिने जाते है।

प्र. शास्त्र मे ऐसा कहां बताया है?

उ. "अरिहंतो मह देवो, जावज़्जीवाए सुसाहुणो गुरूणो" इस पाठ मे बताया है।

प्र. साधुओं के गुरु एक ही होते हैं?

उ. साधु जिनके पास दीक्षा ग्रहण करता है वे एक ही दीक्षा देने वाले उसके धर्म गुरू धर्माचार्य कहलाते हैं। यह अलग अपेक्षा है। इस अपेक्षा से तो तीर्थंकर अरिहंत देव भी गौतम स्वामी आदि श्रमणो के धर्म गुरू धर्माचार्य दीक्षा गुरु ही होते हैं। किंतु सम्यक्त्व प्रतिज्ञा मे सभी अरिहंत सिद्ध भगवंत आराध्य देव कहे जाते हैं। सभी श्रमण श्रमणी गुरु पद मे होते हैं।

प्र. धर्म गुरू धर्माचार्य किसे कहते हैं?

उ. जिसने अधर्मी से धर्मी बनाया। धर्म विमुख को धर्म सन्मुख किया ऐसे अपने प्रथम उपकारी को धर्म गुरु धर्माचार्य कहा जाता है तथा दीक्षा दाता गुरू को भी धर्म गुरु धर्माचार्य कहा जाता है। क्यो कि वे तो परमोपकारी होते ही हैं।

अतः तीर्थंकर भगवान या आचार्य या साधारण साधु या श्रावक किसी भ।

प्रथम उपकारी को धर्म गुरु धर्माचार्य कहा जा सकता है।

प्र. अरिहंत भगवान बडे हैं या सिद्ध भगवान?

उ. सिद्ध भगवान बडे है। अरिहंत भी उन्हे नमस्कार करते है।

प्र. नमस्कार मंत्र मे पहले अरिहंतो को नमस्कार क्यो किया गया है।

उ. सिद्ध भगवान निराकार स्वरूप है उनकी पहिचान भी अरिहंत कराते है वे ही धर्म का मार्ग प्रकट करते हैं अतः अधिक उपकारी होने से उन्हे प्रथम पद मे नमस्कार किया है।

प्र. आचार्य पांचवें पद वाले साधुओ को नमस्कार करते हैं?

उ. प्रथम पद वाले अरिहंत अपने से बडे दूसरे पद वाले सिद्ध भगवान को नमस्कार करते हैं। उसी तरह संयम पर्याय मे अपने से बडे साधुओ को और अपने गुरु को आचार्य भी वंदना करते है। देश का प्रधान मंत्री या चक्रवर्ती वासुदेव भी अपने माता पिता बड़े भाई को प्रणाम करते ही है।

प्र. सिद्ध भगवान मे गुण कितने होते हैं?

उ. सिद्ध भगवान आत्मा के सर्व गुणो से सम्पन्न होते है। तथा आठ कर्म के क्षय होने से उनमे तत्संबंधी मुख्य ३१ गुण होते है।

प्र. साधुजी मे कितने गुण होते है?

उ. साधुजी मे हजारो गुण होते है जिन्हे १८ हजार गुण भी कहे हैं। तथा मुख्य गुण २७ कहे गये है। अरिहंत आचार्य उपाध्याय ये भी साधु ही होते हैं अतः इनमे भी ये मुख्य गुण २७ तो होते ही है तथा अन्य अनेक विशेष गुण सम्पन्न होने से वे आचार्य उपाध्याय और अरहिंत पद मे कहे जाते है।

प्र. वे २७ गुण कौन से हैं?

उ. ५ महाव्रत पालन करे, ५ इन्द्रियो को वश मे रखे, ४ कषाय नही करे, भाव सत्य, करण सत्य, योग सत्य, क्षमावंत, वैराग्य वंत, पवित्र मन, मधुर वचन, काया की सम्यग् प्रवृति, ज्ञान सम्पन्न, दर्शन सम्पन्न, चारित्र सम्पन्न, वेदना मे सहनशील और मरण संकट को सहने वाले।

प्र. अरिहंतो मे विशेष गुण कौन से होते है।

उ. ३४ अतिशय ३५ वाणी के गुण ८ महाप्रातिहार्य तथा वे शरीर के

१००८ लक्षणो से सम्फन्न होते हैं।

प्र. आचार्य के विशिष्ट गुण कौन से होते है?

उ. आचार्य के आठ प्रकार की संपदा होती है। (१) आचार संपदा (२) ज्ञान संपदा (३) शरीर संपदा (४) वचन संपदा (५) वाचना संपदा (६) मति संपदा (७) तर्क शक्ति की संपदा (८) संग्रह परिज्ञा संपदा।

आचार्य शरीर से सुंदर सुडौल जाति सम्पन्न बुद्धिमान विचक्षण आगमो के ज्ञाता बहुश्रुत संयमनिष्ठ और प्रभावशाली ऐश्वर्य सम्पन्न होते हैं।

प्र. उपाध्याय के विशेष गुण कौन से हैं?

उ. शिष्यो को पढाने मे, सूत्र कण्ठस्थ कराने मे वे कुशल होते है। स्वयं शास्त्र ज्ञान मे बहुश्रुत होते है। पढने पढाने की तीव्र रुचि वाले होते है तथा आचार्य के अनेक गुणो से भी सम्पन्न होते है। अन्य गण से पढने के लिये आने वाले साधुओ को अध्ययन कराते हैं। आचार्य तो सकल गण के नायक शिरोमणि होते ही हैं। उनके बाद संघ मे दूसरा पूज्य पद उपाध्याय का होता है।

प्र अरिहंत कब कहां और कितने होते हैं?

उ. अरिहंत मनुष्य क्षेत्र मे १५ कर्म भूमि क्षेत्रो मे होते है। भरत एरावत क्षेत्र मे तीसरे चौथे आरे मे होते है। महाविदेह क्षेत्र मे सदा शास्वत होते हैं। भरत क्षेत्र मे एक समय मे एक होते है और एक उत्सर्पिणी या एक अवसर्पिणी काल मे तीसरे चौथे आरे मे कुल मिलाकर २४-२४ होते हैं। ५ महाविदेह क्षेत्रो मे १६० विजय है उनमे एक एक हो सकते है अत: उत्कृष्ट १६० अरिहंत (तीर्थंकर) वहां हो सकते है तथा कम से कम २० तीर्थंकर तो सदा रहते है। इससे कम संख्या कभी नहीं होती है।

संपूर्ण लोक मे कुल मिलाकर उत्कृष्ट १७० तीर्थंकर हो सकते हैं। ५ भरत के ५ एव ५ एरावत के ५ और ५ महाविदेह की १६० विजय के १६० अर्थात् ५+५+१६०= १७० हो सकते हैं। और जघन्य २० तो सदा होते हैं। अभी भरत क्षेत्र मे कोई अरिहंत नही है। महाविदेह क्षेत्र मे २० तीर्थंकर अभी विचरण कर रहे हैं।

प्र. सिद्ध भगवान कब कहां कितने होते हैं?

उ. सिद्ध भगवान अनंत है। सदा अनंत रहते है। ऊंचे लोक मे देवलोके

से उपर लोक के आखिरी किनारे शिद्ध शिला है उससे भी उपर लोकाग्र भाग मे विराजमान है। उनके जन्म मरण नहीं होने से वे आत्म स्वरूप मे सदा के लिये वहां स्थिर हैं। मनुष्य ही कर्मों को सम्पूर्ण नष्ट कर सिद्ध बनते हैं। अभी हमारे भरत क्षेत्र मे से कोई सिद्ध नहीं हो सकता है। महाविदेह क्षेत्र से अभी भी मनुष्य कर्म क्षय कर सिद्ध बनते है।

प्र. आचार्य उपाध्याय साधु कहां कब कितने होते हैं?

उ. मनुष्य क्षेत्र के १५ कर्म भूमि मे होते हैं। जब जहां अनेको साधु साध्वी होते हैं तब वहां उनके आचार्य उपाध्याय भी होते हैं। एक गच्छ मे एक ही आचार्य होते हैं। गच्छ अत्यन्त विशाल हो तो व्यवस्था संभालने के लिये प्रवर्तक स्थविर गणधर गणी गणावच्छेदक आदि बनाये जा सकते हैं। उपाध्याय एक या अनेक भी आवश्यकतानुसार हो सकते हैं। भरत क्षेत्र मे तीसरे चौथे या कभी पांचवें आरे मे आचार्य उपाध्याय साधु होते हैं और महाविदेह क्षेत्र में सदा शास्वत रहते हैं। साधुओ की संख्या सर्वत्र मिलाकर कम से कम भी अनेक हजार करोड होती है और अधिक से अधिक भी अनेक हजार करोड होती है। तदनुसार आचार्य उपाध्याय भी अनुमान से हजारो लाखो मे समझ लेना चाहिये।

प्र. शुद्ध संयम पालन करने वालो की संख्या अधिक होती है या संयम में दोष लगाने वालों की संख्या अधिक होती है?

उ. संपूर्ण लोक की अपेक्षा शुद्ध संयम पालने वालो की संख्या अधिक होती है अर्थात् लोक मे शुद्ध संयम पालन करने वालो की संख्या अनेक हजार करोड होती है और दोष लगाने वालो की संख्या अनेक सो करोड होती है। मूल गुण और उत्तर गुण मे दोष लगाने वाले साधु भी महाविदेह क्षेत्र में सदा शास्वत अनेक सो करोड तो होते ही हैं। भरत क्षेत्र में तो कभी साधु होते हैं और कभी नहीं होते हैं कभी १००-५० भी होते हैं कभी लाखो भी होते हैं। कभी दोष लगाने वाले ज्यादा हो जाते हैं तो कभी शुद्ध संयम पालन करने वाले ज्यादा हो जाते हैं।

प्र. ये दोष लगाने वाले अनेक सो करोड साधु पांचवें पद मे रहते हैं, उन्हें वंदना की जाती है?

उ. यह अनेक सो करोड की संख्या पांचवे साधु पद मे गिने जाने वालो

की बताई गई है। ये कारण-परिस्थिति से दोष सेवन करके भी अंतःकरण मे उसका खेद रखते हैं उसे अपना दोष समझते हैं और यथावसर उस प्रवृति को छोड कर प्रायश्चित्त ग्रहण करते हैं। अत: ये पांचवे पद में होते हैं और वंदनीय भी होते हैं। ये अपने दोष की पुष्टी व परूपणा नहीं करते हैं किन्तु अपनी कमजोरी समझते हैं। और उस कमजोरी के सिवाय तप संयम और ज्ञान ध्यान में लीन रहते हैं। शुद्ध श्रद्धा पूर्वक शुद्ध प्ररूपणा करते हैं। शुद्ध संयम पालन करने वाले साधुओ के प्रति हृदय मे आदर भाव रखते हैं।

इसके अतिरिक्त संयम नियम व भगवदाज्ञा के प्रति लापरवाही रखने वाले या अशुद्ध श्रद्धा प्ररूपणा वाले साधु-साध्वी इस संख्या मे समाविष्ट नही है। अत वे पांचवें पद मे भी समाविष्ट नहीं है। अत: वें भाव वंदनीय भी नही होते हैं। द्रव्य लिंग व समाज से ग्रहित होने के कारण वे मात्र व्यवहार से वंदनीय होते हैं।

एक गच्छ मे भी अनेक तरह के साधक होते हैं उनमें भी कई भाव वंदनीय नही होते है फिर भी वे गच्छ ग्रहित हो तब तक व्यवहार वंदनीय रहते ही हैं।

प्र. नमस्कार मंत्र कब गिनना चाहिये?

उ. सोते समय, उठते समय, घर से बाहर जाते समय या कष्ट आपत्ति के समय या मृत्यु समय में नमस्कार मत्र अवश्य गिनना चाहिये।

प्र. नमस्कार मंत्र कब कहां नहीं गिनना चाहिये?

उ. नमस्कार मंत्र के लिये कोई स्थान या किसी समय की मनाई नहीं है। जब जहां समय हो, इच्छा हो, आवश्यक लगे वहां गिना जा सकता है। शौचगृह में भी यदि कष्ट, संकट या मृत्यु समय निकट लगे तो वहां भी नमस्कार मंत्र का स्मरण किया जा सकता है।

प्र. पांचों पद में कुल कितने गुण है?

उ. पांच पद में एक पद सिद्ध भगवान का है और चार पद साधु अवस्था के हैं। इसलिये इन दो पदो की अपेक्षा शास्त्र में सिद्धो के मुख्य ३१ गुण कहे हैं और साधुओ के मुख्य २७ गुण कहे हैं। शेष तीन पद की गुण संख्या शास्त्र में नहीं कहीं है।

किन्तु आचार्यो ने अन्य अपेक्षा से अरिहंत के १२, सिद्ध के ८, आचार्य के ३६ उपाध्याय के २५ और साधु के २७ इस तरह कुल १०८ गुण पंच परमेष्टी पद के बताये है।

प्रश्न - आगम मे वंदन के पाठ कौन कौन से है?

उत्तर - तिक्खुत्तो, णमोत्थुणं और खमासमणो।

प्रश्न - मार्ग मे चलते हुए मुनिराज को वंदन कैसे करना?

उत्तर - दर्शन होने पर कुछ दूरी से हाथ जोड़ कर मस्तक झुकाकर "मत्थएण वंदामि" बोलते हुए वंदन करना चाहिए।

प्रश्न - अरिहंत तीर्थंकर या साधु साध्वी के स्थान पर प्रत्यक्ष दर्शन होने पर किस पाठ से वंदन करना?

उत्तर - अरिहंत एवं साधु साध्वी के स्थान पर प्रत्यक्ष दर्शन होने पर तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार आवर्तन करके वंदन करना चाहिये।

प्रश्न - नौ आवर्तन करते हुए तीन बार तिक्खुत्तो के पाठ से वंदन करना उपयुक्त हैं?

उत्तर - ऐसा करना आगम सम्मत नही है। अनेक आगमो मे तीन आवर्तन के साथ एक बार वंदन करने का ही उल्लेख मिलता है। तीन बार उठ बैठ करने की परम्परा चल पड़ी है उसके लिये आगम का कोई आधार नही है। हां तीन बार मत्थएण वंदामि बोलते हुए मस्तक भूमि पर लगाया जा सकता है।

प्रश्न - अरिहंत सिद्ध और साधु साध्वी कों परोक्ष वंदन किस पाठ से करना?

उत्तर - अरिहंत सिद्धो को परोक्ष वंदन णमोत्थुणं के पूरे पाठ का उच्चारण करके करना चाहिये।

साधु साध्वी को भी परोक्ष मे संक्षिप्त णमोत्थुण के पाठ से ही वंदन करना चाहिये यही आगम सम्मत है। परोक्ष मे किसी को भी तिक्खुत्तो के पाठ से वंदन करना आगम सम्मत नही है, वह केवल चल पड़ी अशुद्ध परंपरा है।

प्रश्न - खमासमणो के पाठ से वंदन कब किया जाता है?

उत्तर - प्रतिक्रमण के बीच मे तीन जगह खमासमणो के पाठ से वंदन किया जाता है। अन्य किसी भी समय इस पाठ से वंदन करना आगम सम्मत नही है। क्योंकि इस पाठ का सम्बन्ध प्रतिक्रमण से है। अन्य समय मे प्रत्यक्ष वंदन तिक्खुत्तो के पाठ से और परोक्ष वंदन णमोत्थुणं के पाठ से किया जाता है और चलते हुए श्रमणो को "मत्थएण वंदामि" कह कर दूर से संक्षिप्त वंदन ही करना चाहिये।

प्रश्न - इन पाठो मे क्या विषय है?

उत्तर - १. तिक्खुत्तो के पाठ मे वंदन विधि एवं वचन सन्मान है।

२ णमोत्थुणं के पाठ मे नमस्कार के साथ गुणनुवाद है।

३. खमासमणो के पाठ मे वंदन भक्ति एवं त्रुटियो का प्रतिक्रमण तथा क्षमायाचना है।

प्रश्न - लोगस्स और णमोत्थुणं के विषय मे क्या अंतर है?

उत्तर - लोगस्स के पाठ मे वर्तमान चौवीस तीर्थंकरो का गुणानुवाद है साथ ही वचन द्वारा भाव वंदन प्रकट किया जाता है। णमोत्थुणं के पाठ में तीर्थंकर सिद्ध होने वाले सिद्ध भगवंतो के गुणग्राम है साथ ही नमस्कार भी किया गया है।

प्रश्न - णमोत्थुणं के पाठ से गुणग्राम नमस्कार कितनी बार करना?

उत्तर - १. सिद्धो की मुख्यता हो तो केवल एक बार।

२. अरिहंतो की मुख्यता हो तो प्रथम सिद्धो को फिर अरिहंतो को यो दो बार।

३. धर्म गुरू धर्माचार्य की मुक्यता हो तो कभी दो बार और कभी तीन बार अर्थात् भरत क्षेत्र में अरिहंत भगवान विचरण करते हो तो सिद्ध, अरिहंत और गुरु को यो तीन बार णमोत्थुणं से वंदन करना और यदि अरिहंत भगवान भरत क्षेत्र मे नही विचरते हो तो सिद्ध और गुरु को यो दो बार णमोत्थुणं से वंदन करना।

प्रश्न - इन उपरोक्त वंदन सम्बन्धी ज्ञान का आधार प्रमाण क्या है?

उत्तर - राजप्रश्नीय सूत्र, भगवती सूत्र, औपपातिक सूत्र आदि के वंदन प्रकरणो के आगम पाठ ही उक्त वंदन ज्ञान के मुख्य आधार है उन्ही के आशय आधार से ये समाधान दिये गये है।

प्रश्न - एक ही बार मे एक साथ दो वंदन पाठो से वंदना की जा सकती है?

उत्तर - नही। एक प्रसंग मे उक्त समाधानो के अनुसार किसी भी एक पाठ से वंदन किया जाना चाहिये।

प्रश्न - प्रतिक्रमण में तिक्खुत्तो के पाठ से वंदन करके फिर उसी के साथ खमासमणो के पाठ से वंदन किया जाता है न?

उत्तर - वह गलत परंपरा है। प्रतिक्रमण के बीच मे तीन जगह खमासमणो के पाठ से वंदन करना उपयुक्त है उसके अतिरिक्त बीच बीच मे बारंबार तिक्खुत्तो के पाठ से वंदन करना या खमासमणो के वंदन के पहले तिक्खुत्तो से वंदन करना, यह अनुपयुक्त है एवं गलत समझ से चल पडी परंपरा मात्र है।

प्रतिक्रमण प्रारम्भ करने की आज्ञा प्रत्यक्ष मे गुरू या रत्नाधिक को तिक्खुत्तो के पाठ से प्रत्यक्ष वंदन करके ली जाती है और प्रतिक्रमण के अंत मे प्रत्यक्ष गुरू वंदन तिक्खुत्तो के पाठ से करके क्षमायाचना एवं प्रायश्चित्त ग्रहण किया जाता है एवं सभी रत्नाधिको को प्रत्यक्ष वंदन तिक्खुत्तो के पाठ से किया जाता है।

प्रतिक्रमण के बीच मे व्रत अतिचारों के प्रतिक्रमण करने के पहले, प्रायश्चित्त शुद्धि कायोत्सर्ग के पूर्व एवं पच्चक्खाण करने के पूर्व यो तीन जगह ख़मासमणो के पाठ से वंदन किया जाता है।

मध्यम वंदना एक बार करना चाहिये। तीर्थंकर भगवान के लिये श्रावक श्राविकाओं द्वारा तीन आवर्तन कर एक बार वंदन करके बैठ जाने का वर्णन अनेक आगमो मे उपलब्ध है। केवल उत्कृष्ट वंदन प्रतिक्रमण मे तीन जगह दो-दो बार किया जाता है। तीन बार मध्यम वंदन की परंपरा का कोई आगम आधार नही है। साधु हजारो गुणो का धारक होता है और मुख्य २७ गुण का धारक होता है तो क्या प्रत्येक गुण की वंदना की जायेगी? नही।

ज्ञान दर्शन चारित्र की तीन वंदना करने का रिवाज है किन्तु साधुओं को तीन बार करने के साथ सिद्धो को भी तीन बार वंदना की जाती है जबकि उनमे ज्ञान दर्शन दो हीं है, चारित्र नहीं।

अनेक श्रावकों के द्वारा भगवान को वंदन करने का वर्णन आगमो मे देखने से यही स्पष्ट होता है कि तीन आवर्तन और एक बार वंदन करना ही आगम सम्मत वंदन विधि है।

प्रश्न - गमनागमन अतिचार प्रतिक्रमण का पाठ दो तरह से देखने को मिलता है उसमे सही कौनसा है

उत्तर - "इच्छामि पडिक्कमिउं इरियावहियाए" इस तरह प्रारम्भ होने वाला पाठ शुद्ध है और "इच्छाकरेणं संदिसह भगवं इग्यिावहियं पडिक्कमामि इच्छं"। इतना पाठ बाद में बनकर जुड गया है ऐसा प्राचीन प्रतियो को देखने से ज्ञात होता है।

प्रश्न - प्रतिक्रमण करने की विधि मे कोई पाठ कितनी बार आ सकता हैं?

उत्तर - प्रतिक्रमण विधि मे अलग अलग जगह एक पाठ तीन बार आ सकता है उससे अधिक आना अशुद्ध चली हुई परंपरा है। उसका कोई आधार भी नही है। तीन से अधिक बार बोलना अनावश्यक भी है।

प्रश्न - कायोत्सर्ग खड़े खड़े करना या बैठ कर?

उत्तर - शारीरिक बाधा का कारण न हो तो कायोत्सर्ग खड़े होकर ही करना चाहिये। कारण परिस्थिति होने पर सुखासन से बैठकर भी कायोत्सर्ग किया जा सकता है

प्रश्न - कायोत्सर्ग पारने के समय पूरा नमस्कार मंत्र बोलना चाहिये या केवल एक पद ही बोलना?

उत्तर - केवल "णमो अरिहंताणं" इतना ही एक पद ही बोलना चाहिये। तस्स उत्तरी के पाठ से भी यही साबित होता है। पूरा नमस्कार मंत्र बोलना चल पडी परम्परा मात्र है।

प्रश्न - कायोत्सर्ग शुद्धि का सही पाठ क्या है?

उत्तर - यह पाठ आगम मे नहीं मिलता है अतः इसमे दो ध्यान और ४ ध्यान के नाम बोलने में मतभेद है अपेक्षा से दो ध्यान बोलना ही विशेष उपयुक्त लगता है।

प्रश्न - लोगस्स का पाठ कब बोला जाता है।

उत्तर - किसी भी प्रकार का आगमोक्त कायोत्सर्ग करने के बाद प्रकट मे

लोगस्स का पाठ किया जाता है। प्रतिक्रमण मे भी कायोत्सर्ग के बाद लोगस्स के पाठ का उच्चारण किया जाता है। लोगस्स का पाठ तीर्थंकर का उत्कीर्तन है, गुणग्राम है। कीर्तन और गुणग्राम मन मे करने का या मौन से करने का नही होता है। वह तो प्रकट मे बोल कर किया जाता है तभी उसका "कीर्तन" नाम सार्थक होता है। आगम दशवैकालिक सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, आवश्यक सूत्र मे भी कायोत्सर्ग के बाद लोगस्स का पाठ बोलने का विधान है। कायोत्सर्ग के अंदर लोगस्स का पाठ करने का विधान किसी भी मूल आगम मे नही है किन्तु बाद मे बोलने का अवश्य है। तथापि पूर्वाचार्यो ने सामान्य लोगो की दृष्टि से कायोत्सर्ग मे भी आलंबन हेतु लोगस्स का पाठ गिनने की परम्परा चलाई है।

वास्तव मे तो कायोत्सर्ग आत्म चिंतन, अतिचार दोष चिंतन के लिये किया जाता है। गुण कीर्तन के लिये कायोत्सर्ग करने की आवश्यकता नही होती। वह तो प्रकट उच्चारण से करने की वस्तु है। तभी उसे कीर्तन कहा जा सकता है।

प्रश्न - सामायिक पारने का पाठ कितना है?

उत्तर - सामायिक व्रत के पांच अतिचार का पाठ, समाइयं सम्मं काएणं..... इत्यादि पाठ और ३२ दोषो का पाठ ये तीन पाठ मुख्य रूप से है। शेष हिन्दी के पाठ ४ संज्ञा, ४ विकथा आदि पाठ स्पष्टीकरण के लिये जोड़े गये है। जिनका समावेश ३२ दोषो मे हो जाता है।

प्रश्न - सामायिक लेने पारने की विधि मे फर्क क्यो आता हैं?

उत्तर - सामायिक लेने पारने के पाठोच्चारण विधि या क्रम निर्देश किसी भी आगम मे या उसकी व्याख्या मे नहीं मिलता है। मूल आधार कुछ भी नही मिलने से एवं भिन्न-भिन्न परम्पराओ से प्राप्त होने के कारण विधि मे फर्क आता है।

तत्व दृष्टि से समझने के लिये निम्न तत्व विचारणीय है - सामायिक लेते समय इरियावहि प्रतिक्रमण हेतु "इच्छाकारेणं" के पाठ का ध्यान करना उपयुक्त है। सामायिक पारने के समय सामायिक मे किये गये १८ पापो के त्याग रूप व्रत मे लगे अतिचारो का चिंतन करने हेतु १८ पाप स्थान के पाठ का ध्यान करना उपयुक्त होता है। लोगस्स का पाठ और कायोत्सर्ग

शुद्धि का पाठ तो प्रत्येक कायोत्सर्ग के बाद मे बोला ही जाता है।

कायोत्सर्ग और लोगस्स के पाठ के बाद सामायिक की प्रतिज्ञा करेमि भंते के पाठ से विनय पूर्वक ली जाती है।

तस्स उत्तरी का पाठ प्रत्येक कायोत्सर्ग करने के पहले बोला ही जाता है क्योंकि वह काउसग्ग करने का प्रतिज्ञा पाठ है।

विधि के आदि मंगल के लिये नमस्कार मंत्र और मंगल पाठ गिनना चाहिये और प्रतिक्रमण की समाप्ति मे जिस प्रकार सिद्ध स्तुति णमोत्थुणं के पाठ से की जाती है वैसे ही सामायिक लेने की विधि के अंत मे एवं पारने की विधि के अंत मे णमोत्थुणं का पाठ गिनना चाहिये।

सामायिक पारने का अतिचार शुद्धि का पाठ भी अंत मे बोलना आवश्यक है और अंतिम मंगल की अपेक्षा सामायिक समाप्त करने के वक्त नमस्कार मंत्र गिनना भी उपयुक्त है।

ये आवश्यक तत्व सामायिक की विधि निर्णय के लिये ज्ञातव्य है।

कायोत्सर्ग मे इच्छाकारेणं का पाठ गिनना ही है तो कायोत्सर्ग के पहले उसका गिनना अनुपयुक्त होता है। लोगस्स का पाठ कायोत्सर्ग बाद गिनना ही है अत· कायोत्सर्ग मे लोगस्स गिनना भी अनुपयुक्त होता है।

प्रश्न - रात्रिक और देवसिक प्रतिक्रमण का समय कौन सा है।

उत्तर - प्रतिक्रमण करने का समय उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २६ से सूर्यास्त के बाद एव सूर्योदय के पूर्व करने का स्पष्ट होता है। सूर्यास्त के बाद देवसिक प्रतिक्रमण और सूर्योदय पूर्व रात्रिक प्रतिक्रमण करना चाहिये।

उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २६ मे सूर्यास्त के समय स्थंडिल प्रतिलेखन का कार्य बताया गया है दशाश्रुत स्कंध सूत्र मे सूर्यास्त के पूर्व समय तक चलना, विहार करना बताया गया है। वृहत्कल्प सूत्र मे सूर्यास्त पूर्व समय तक खाने वाले साधु के भी आराधना बताई गई है। इस प्रकार सूर्यास्त के निकट पूर्व समय मे प्रतिलेखनं, विहार एवं आहार विधि के आगम निर्देश होने से उस काल को प्रतिक्रमण का काल निश्चित नही किया जा सकता।

अत: सूर्यास्त के पूर्व प्रतिक्रमण का काल मानना आगम विपरीत होता है आगम सम्मत नही होता है।

प्रात· सूर्योदय के बाद के समय मे आगम मे प्रतिलेखन, विहार एवं

आहार का कथन है। अतः सूर्योदय के पूर्व ही प्रतिक्रमण का काल मानना उपयुक्त है।

इस प्रकार आगम सम्मत तत्व यही है कि सूर्यास्त बाद देवसिक प्रतिक्रमण और सूर्योदय पूर्व रात्रिक प्रतिक्रमण करना चाहिये।

प्रश्न - प्रतिक्रमण मे ४८ मिनट का समय लगना चाहिये[१]।

उत्तर - आगमो मे ऐसे कोई निश्चित समय का उल्लेख नही है फिर भी एक रूपता एवं व्यवस्थितता की दृष्टि से ऐसा कहा जाता है कि ४८ मिनट या एक घंटे मे प्रतिक्रमण हो जाना चाहिये।

वास्तव मे नये पुराने सीखे व्यक्ति या अभ्यस्त अनभ्यस्त व्यक्ति की अपेक्षा हीनाधिक समय लग सकता है।

विशेष परिस्थिति मे एवं नये सीखे हुए साधक को उक्त समय से अधिक समय भी लग सकता है अर्थात किसी को घंटा, डेढ घंटा तक भी लग सकता है और किसी को २०-२५ मिनट मे भी पूर्ण हो सकता है।

लाल दिशा सम्बन्धी (यूपक काल) अस्वाध्याय काल भी कभी ३०, ४०, ५० मिनट एवं कभी घंटा से भी अधिक समय का हो सकता है।

सार तत्व यह है कि प्रतिक्रमण प्रमाद रहित होकर करना एवं परस्पर वार्ताएं नही करना चाहिये। फिर भले किसी को ३०, ४०, ५० मिनट या घंटा भी लग जाय तो भी कोई आगम विरुद्ध नही होता है।

वास्तव मे जो मूल आगम कालीन प्रतिक्रमण है वह तो अत्यन्त छोटा ही है उसके लिये तो आधा घंटा भी पर्याप्त है किन्तु वर्तमान मे कई पाठ दोहे सवैये भजन स्तुति प्रतिक्रमण मे प्रविष्ट हो गये है।

मूल आवश्यक सूत्र तो आज भी १००-२०० श्लोक का ही माना जाता है फिर भी किया जाने वाला विधि युक्त प्रतिक्रमण करीब एक हजार से पांच हजार श्लोक प्रमाण बडा भी किया जाता है।

इस प्रकार प्रतिक्रमण के परिमाण की समानता नही है, व्यक्तिगत उच्चारण गति मे भी मंदता तीव्रता होती है अतः समय भी हीनाधिक लगता है। जिसके लिये शास्त्र मे कोई स्पष्टोल्लेख नही है। उत्तराध्ययन सूत्र मे कुछ संकेत है तदनुसार प्रतिक्रमण का समय आधा घंटा से लेकर सवा घंटा भी हो सकता है।

प्रश्न - प्रतिक्रमण की आज्ञा लेने के बाद बीच में प्रत्येक आवश्यक की आज्ञा लेनी चाहिये?

उत्तर - छ: आवश्यक तो आवश्यक सूत्र के अध्ययन रूप विभाजन है। उन अध्ययनो मे आये पाठो को आगे पीछे एक या अनेक बार जोडने से पूर्ण विधि युक्त प्रतिक्रमण होता है इसके बीच बीच मे आवश्यक लगाना और बार बार आज्ञा लेना उपयुक्त नही है।

यथा आवश्यक सूत्र मे लोगस्स दूसरे आवश्यक अध्याय मे है, खमासमणो तीसरे आवश्यक अध्याय मे है जबकि विधि युक्त प्रतिक्रमण मे लोगस्स दो बार खमासमणो तीन बार बोला जाता है तो दूसरा आवश्यक दो बार और तीसरा आवश्यक तीन बार 'कहना पड़ेगा। इसी प्रकार करेमि भंते का पाठ आवश्यक सूत्र मे तो प्रथम आवश्यक मे है। जो कि विधि युक्त प्रतिक्रमण मे तीन बार बोला जाता है। तो क्या 'प्रथम आवश्यक की आज्ञा है' ऐसा तीन बार बोला जायेगा? नही, ऐसा संभव नही है अत: एक बार पूर्ण प्रतिक्रमण की आज्ञा लेने के बाद बार बार आज्ञा लेना अनावश्यक एवं असंगत है।

प्रश्न - जो अतिचार चिंतन के पाठ कायोत्सर्ग मे अतिचार चिंतन रूप मे गिनते है क्या उन्हे पहले ही बोलकर मिच्छामि दुक्कडं दे देना उपयुक्त है?

उत्तर - विधि संकलना का विस्तृत आगमाधार नहीं होने से कई पाठो की क्रम परंपरा पुन: विचारणीय है। यथा गमनागमन अतिचार प्रतिक्रमण (इच्छाकारेण), संक्षिप्त अतिचार प्रतिक्रमण (इच्छामि ठामि) के पाठ कायोत्सर्ग के पहले बोल कर फिर कायोत्सर्ग मे भी गिने जाते हैं, वह उपयुक्त नही है।

उत्तराध्ययन सूत्र मे प्रतिक्रमण की संक्षिप्त विधि बताई गई है किन्तु क्रम पूर्वक पाठो की विस्तृत विधि किसी आगम मे उपलब्ध नही होने से प्रचलित क्रम कुछ विचारणीय एवं संशोधनीय अवश्य प्रतीत होता है।

विचारणा से यह निर्णय आता है कि कायोत्सर्ग के पूर्व आदिमंगल सामायिक प्रतिज्ञा एवं कायोत्सर्ग प्रतिज्ञा पाठ होना ही पर्याप्त होता है जैसा कि चौथे विधि परिशिष्ट मे बताया गया है।

प्रश्न - नमस्कार मंत्र कौन से आवश्यक का पाठ है?

उत्तर - छः आवश्यको मे नमस्कार मंत्र का पाठ नही है इसे आदि मंगल पाठ रूप मे माना गया है। भगवती सूत्र के प्रारम्भ मे नमस्कार मंत्र का पाठ है अन्य सूत्रो के प्रारम्भ मे नही है। इसी प्रकार णमोत्थुणं का पाठ भी छः आवश्यक मे नही है। उसे अंतिम मंगल रूप मे माना गया है। अन्य अनेक आगमो मे णमोत्थुणं का पाठ मिलता है।

प्रश्न - आगमे तिविहे और अरिहंतो महदेवो का पाठ किस आवश्यक मे है?

उत्तर - ये दोनो पाठ छंः आवश्यक मे नहीं है। इन्हे बाद मे आचार्यो ने संपादित करके बनाये है। अतः इनमे हिन्दी प्राकृत मिक्स भाषा है। अरिहंतो महदेवो आवश्यक निर्युक्ति के आधार से एवं आगमे तिविहे का पाठ चौथे आवश्यक के तेतीस बोल के पाठ से लेकर ज्ञानातिचार और दर्शनातिचार की आवश्यकता के लिये उपयोगी समझकर संपादित किया गया है।

प्रश्न - श्रावक प्रतिक्रमण के पाठ किस आवश्यक मे है?

उत्तर - आवश्यक सूत्र के ६ आवश्यको मे साधु प्रतिक्रमण के पाठो का ही उल्लेख है।

श्रावक योग्य पाठ करेमि भंते, इच्छामि ठामि आदि श्रमण प्रतिक्रमण के पाठ से संशोधित संपादित किये गये है। और अन्य पाठ अनेक आगमो से भी लिये गये हैं यो कुल मिलाकर पूरा श्रावक प्रतिक्रमण यथोचित रूप से संकलित करके संपादित किया गया है। श्रावक प्रतिक्रमण भी आवश्यक होने से इसका संपादन उपयोगी ही है।

उपलब्ध छः आवश्यक मे तो केवल २३ पाठ है और दो आदि अंत मंगल पाठ माने गये है यो कुल २५ पाठ से श्रमण प्रतिक्रमण पूर्ण किया गया है। छट्ठे आवश्यक के बाद परिषिष्ट रूप मे श्रावक प्रतिक्रमण संक्षेप मे व्याख्याकार ने स्वीकार किया है। उसी के आधार से विस्तृत रूप मे पूर्ण श्रावक प्रतिक्रमण प्रचलित है। जिसमे कालांतर से कई स्तुतियां भजन दोहे भी प्रविष्ट हो गये हैं।

प्रश्न - खमासमणा के पाठ से उत्कृष्ट वंदन की विधि कहां बताई गई है?

उत्तर - समयांग सूत्र के १२ वे समवाय से इसकी विधि सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त होता है। उसी के आधार से दो बार खमासणा, ४ बार मस्तक झुकाना, १२ बार आवर्तन करना, प्रवेश, निष्क्रमण, उक्डु आसन आदि किये जाते हैं। इनका स्पष्टीकरण समवायांग टीका एवं आवश्यक सूत्र की निर्युक्ति टीका मे उपलब्ध है।

प्रश्न - कायोत्सर्ग मे बोले जाने वाले ९९ अतिचार आदि पाठो को दुबारा प्रकट क्यो बोला जाता हैं?

उत्तर - कायोत्सर्ग मे मौन पूर्वक व्रतो के अतिचार दोषो का चिंतन, आत्मानुप्रेक्षण, किया जाता है और फिर प्रकट मे बोलकर उनका आलोचना प्रतिक्रमण मिथ्यादुष्कृत दिया जाता है।

प्रश्न - दो बार बोलना ठीक है तो तीन बार अतिचारो को क्यो बोला जाता हैं?

उत्तर - उत्तराध्ययन सूत्र के आधार से ही प्रतिक्रमण की विधि स्पष्ट होती है तदनुसार तो दो बार गिनना ही स्पष्ट होता है अर्थात् कायोत्सर्ग मे चिंतन करके फिर प्रकट मे व्रत अतिचारो का प्रतिक्रमण संलग्न कर लेना चाहिये और फिर प्रायश्चित्त शुद्धि के लिये पुनः कायोत्सर्ग कर लेना चाहिये। विशेष जानकारी के लिये उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २६ देखना चाहिये।

प्रश्न - सकलित संपादित पाठ कितने और कौन से है?

उत्तर - यो तो श्रावक प्रतिक्रमण संपूर्ण ही संकलित संपादित है और श्रमण प्रतिक्रमण मे कुछेक पाठ संकलित सपादित बोले जाते है। इन पाठो की स्पष्ट जानकारी के लिये इस पुष्प नं ३२ के परिशिष्ट नं. २ और ३ का अध्ययन करना चाहिये वहां अन्य आगमो से संकलित पाठ तथा आगमातिरिक्त संकलित संपादित पाठो का एक साथ संग्रह दिया गया है।

सामान्य रूप से यह समझा जा सकता है कि जितने भी पाठ हिन्दी गुजराती भाषा मे या मिक्स भाषा मे है, वे सब नये संपादित है। और २५ मित्यात्व, १४ सम्मुर्च्छिम, महाव्रत, समिति, गुप्ति, अणुव्रत, संलेखना, पांच पद की वंदना, आयारिय उवज्झाए, तस्स सव्वस्स आदि पाठ भी संग्रहित संपादित है।

श्रावक प्रतिक्रमण के करेमि भंते और इच्छामि ठामि का पाठ भी संपादित

संशोधित है।

प्रश्न - श्रावक के ९९ अतिचार और साधु के १२५ अतिचार का कथन संकेत कहां है?

उत्तर - ऐसी संख्या का संकेत किसी भी आगम मे नहीं है। और भी ऐसी संख्याओ की गिनती परंपरा मे चल जाती है जिसका कि आगमो मे कोई निर्देश नही होता है।

जैसे कि २१ प्रकार का धोवण

१०८ पंच परमेष्ठी के गुण

३६ आचार्यो के गुण

२५ उपाध्याय के गुण

५६३ जीव के भेद इत्यादि।

ये सभी अपेक्षा से संकलित करके बनाये गये है। जो कोई तो आगम सम्मत भी होते है और कोई असंगत भी हो जाते है।

प्रश्न - संलेखना तो जीवन के अंत समय मे होती है उसके अतिचारो की हमेशा के कायोत्सर्ग मे चिंतन की क्या आवश्यकता है?

उत्तर - यह तप के अतिचारो की अपेक्षा संकलित पाठ है अत: इसमे संलेखना के स्थान पर तप के अतिचार कहने चाहिये और साथ ही तप स्वरूप भी बोलना चाहिये। इस ३२ वे पुष्प मे इस संलेखना पाठ के स्थान पर 'तप स्वरूप और उसके अतिचार' नाम से पाठ दिया गया है।

प्रश्न - १२ अणुव्रतो मे करण और योग का पाठ एक समान क्यो नही है?

उत्तर - श्रावक के अणुव्रत तीन करण और तीन योग के ४९ भंगो मे से किसी भी भंग से लिये जा सकतें हैं ऐसा भगवती सूत्र मे बताया गया है।

प्रत्येक व्रत मे श्रावक की परिस्थिति अलग अलग होती है अत: करण योग समान नही हो सकते। अत: ये व्रत मध्यम दर्जे के साधक श्रावको की योग्यता को लक्ष्य मे रख कर संपादित है। जो एक प्रकार की सामुहिक व्यवस्था की दृष्टि से उपयुक्त भी है। आगम से कोई विरोध भी नहीं है, कितने भी करण योग कहे जा सकते हैं। अत: इन पाठो के सही आशय

को विवेक बुद्धि से समझ लेना चाहिये।

इन अणुव्रतो के मूल पाठो मे आगार (छूट), व्रत स्वरूप और उसके अतिचारो की संघटना बहुत अनुभव पूर्ण है। इस संरचना से युक्त इन व्रतो को गरीब-अमीर, युवा या वृद्ध, स्त्री-पुरुष एवं राजा-नौकर या सेठ-मुनीम कोई भी धारण करना चाहे तो कर सकता है।

प्रथम के तीन व्रत एवं आठवां नौवां ग्यारहवां व्रत २ करण ३ योग से होना उपयुक्त एवं संभव है। किन्तु पांचवा छट्ठा सातवां दसवां व्रत एक करण तीन योग से लेना सुगम होता है। जब कि चौथा व्रत तो एक करण एक योग से ही पालन होना सुगम होता है। इस प्रकार सभी व्रतो मे करण योग समझ लेना। बारहवे व्रत मे करण योग के खोलने की आवश्यकता भी नही रही है। उसमे तो सुपात्र दान देने का नियम है जो तीन करण तीन योगो की संपूर्ति के साथ दिया जाना चाहिये तभी श्रेष्ठ दान होता है।

प्रश्न - प्रतिक्रमण मे पांच पदो की विस्तृत भाव वंदना कैसे और क्यो?

उत्तर - प्रतिक्रमण का (मुख्य) उद्देश्य तो व्रत प्रत्याख्यानो की शुद्धि करना है। लगे अतिचार दोषो का चिंतन, स्वदोष दर्शन एवं उनका परिशोधन करना है। आत्मा के कषाय परिणामो का परिवर्तन समभावो मे करना है। इस मुख्य उद्देश्य से ही मौलिक प्रतिक्रमण के पाठ आवश्यक सूत्र मे उपलब्ध है। उन्ही से प्रतिक्रमण का पूर्ण प्रयोजन सिद्ध हो जाता है। फिर भी उत्तराध्ययन सूत्र के २९ वे अध्ययन एवं २६ वे अध्ययन मे प्रतिक्रमण पूर्ण हो जाने पर अर्थात् पच्चक्खाण हो जाने के बाद 'स्तव स्तुति मंगल' करने का भी निर्देश है एवं उसका भी महत्व प्रतिक्रमण के साथ जोडा गया है।

उन दोनो सूत्र स्थलो के निर्देशानुसार पांच पदो की भाव वंदना आदि गुणग्राम पच्चक्खाण के बाद होना उपयुक्त है। किन्तु परम्परा मे प्रतिक्रमण के बीच मे इन स्तुति गुणग्राम के पाठो ने स्थान ले लिया है, यह आगम सम्मत नहीं है। ये अतिरिक्त सभी स्तुति गुणग्राम पच्चक्खाण के बाद होना ही आगम सम्मत है किन्तु बीच मे प्रवेश पा जाने से प्रतिक्रमण का अधिक समय इनमे लगा दिया जाता है और मौलिक अतिचार चिंतन, स्वदोष दर्शन, आत्म शुद्धि का उपक्रम, कम कर दिया जाता है, गौण कर दिया

जाता है, उसमे रस कम लिया जाता है। स्तुति भक्ति के रस मे ही अधिकतम प्रतिक्रमण का समय व्यतीत कर दिया जाता है।

जब कि प्रतिक्रमण का मुख्य उद्देश्य भक्ति रस का आनन्द लेने का नही होकर स्वदोष दर्शन एवं आत्म परिणाम विशुद्धिकरण का, कषायोपशांतिकरण का है।

अत· इन स्तुति गुणग्राम रूप पांच पदो की भाव वंदना के निषेध करने की अपेक्षा उनका स्थान परिवर्तन होकर आगम सम्मत स्थल मे अर्थात् प्रतिक्रमण के पच्चक्खाण कार्य के बाद मे होना चाहिये।

प्रश्न - महाव्रत समिति गुप्ति के हिन्दी पाठ आगम सम्मत है?

उत्तर - प्रचलित श्रमण प्रतिक्रमण मे हिन्दी के सम्पादित महाव्रत समिति गुप्ति के पाठ है उनमे भी कोई-कोई स्थल संशोधन योग्य है अर्थात् आगम संगति से कुछ अन्यथा भी है। इसके लिये आचारांग सूत्र और प्रश्न व्याकरण सूत्र गत महाव्रत समिति गुप्ति एवं २५ भावनाओ का अध्ययन करना चाहिये। प्रस्तुत ३२ वे पुष्प मे उन हिन्दी पाठो को संशोधन करके प्रस्तुत किया गया है। विद्वान पाठक ध्यान रखने पर समझ सकते है। उत्तराध्ययन सूत्र २४ मे भी पांच समिति तीन गुप्ति का वर्णन है।

प्रश्न - इच्छामि णं भंते प्रतिक्रमण का प्रथम पाठ है यह मौलिक आवश्यक सूत्र मे हैं?

उत्तर - यह पाठ प्रतिक्रमण की आज्ञा लेने की विधि रूप है और संपादित किया गया पाठ है। मूल मे नही है।

प्रश्न - प्रतिक्रमण मे अतिचार के पाठो के साथ आने वाले "जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नही है", इन शब्दो का क्या आशय है? क्या उनका आचरण करने वाला श्रावक साधु की कोटी मे नही गिना जायेगा?

उत्तर - प्रतिक्रमण मे प्रयुक्त उपरोक्त शब्द आदर्श शिक्षा रूप है। इन्हे एकांतिक आग्रह मे नही लेने चाहिये अर्थात् व्रत धारियो के व्रतो की शोभा या परिपुष्टि के लिये ये सावधानियां, शिक्षाएं, प्रेरणाएं है। इनका यथावत् ध्यान रखने से व्रत पुष्ट होते हैं एवं व्रतधारी आदर्श स्थान को प्राप्त करता है।

इन शिक्षाओ का पालन न होने से व्रतो की परिपुष्टि मे कमी होती है साधक आदर्शता से सामान्यता मे पहुंचता है एवं उसके व्रतो मे किंचित अतिचरण भी होता है। इस प्रकार इन वाक्यो का आशय समझना चाहिये। किन्तु उन्हे साधकता से अर्थात् श्रावकपन से रहित नही कहा जा सकता।

यथा - पंद्रह कर्मादान व्यापार धन्धे छोडने योग्य है, फिर भी आगमोक्त कई श्रमणोपासको के वह व्यापार धन्धा नही छूट सका था। बंध और वध प्रथम व्रत मे आचरण करने योग्य नही है फिर भी कई श्रमणोपासक राजा आदि युद्ध मे शस्त्र प्रयोग करते ही थे।

इसी प्रकार संयम साधक के विषय मे भी आदर्श गुणो के लिये समझ लेना चाहिये। साधु को २२ परिषह जीतने की ध्रुव आज्ञा आदेश प्रेरणा है फिर भी रोग परीषह सहन न होने से औषध उपचार करने कराने वाले को शास्त्र मे असाधु नही माना गया है।

उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २ मे औषध उपचार नही लेने को ही सच्चा साधुत्व कहा है फिर भी यह आदर्श शिक्षा वाक्य है इसे एकांत मे नही लिया जा सकता कि जो औषध उपचार का सेवन करे उनका साधुत्व सच्चा नही है तो खोटा साधुत्व है, ऐसा नही कहा जा सकता।

मैल परीषह आजीवन सहन करने का सूत्र मे आदेश होते हुए भी प्रक्षालन प्रवृति करने वाले को बकुश निर्ग्रन्थ के दर्जे मे भगवती सूत्र मे माना गया है। और दशवैकालिक अध्ययन ४ मे प्रक्षालन प्रवृति मे पडने वालो की सद्गति होना ही दुर्लभ-कठिन बताया है। इस तरह आगम वाक्यो को अपेक्षा भरा समझना चाहिये, एकांतिक नही समझना चाहिये।

प्रश्न - दसवां व्रत और ग्यारहवां व्रत मे क्या अंतर है और दसवां पोषध और ग्यारहवा पौषध क्या है?

उत्तर - पौषध का व्रत ग्यारहवां है उसके दसवां ग्यारहवा दो भेद करना आगम सापेक्ष नही है। सभी प्रकार के पौषध ग्यारहवे व्रत मे ही समझने चाहिये। क्योकि पौषध का व्रत एक ही है ग्यारहवां ही है।

कोई भी व्रत जघन्य मध्यम उत्कृष्ट दर्जे का धारण किया जा सकता है किंतु उसको उसी व्रत मे ही गिना जायेगा अन्य व्रत मे नही। यथा स्व स्त्री की मर्यादा मे एक स्त्री की मर्यादा करने वाला या आठ अथवा ५० स्त्रियो

की मर्यादा करने वाला भी चतुर्थ व्रत मे समाविष्ट होगा। उसे चौथे से उतार कर तीसरे व्रत मे कहना अनुपयुक्त होगा और स्वस्त्री सेवन का त्याग करके पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करने वाले को चौथे व्रत से बढाकर पांचवे व्रत वाला नहीं कहा जायेगा।

उसी तरह १८ पापो के त्याग रूप संवर प्रवृति के हीनाधिक होने पर, आहार त्याग या आहार सेवन होने पर भी अथवा २४ घंटे का २० या १६ घंटे होने पर भी उस संवर प्रवृति (सावध त्याग प्रवृति) को ग्यारहवे व्रत से उतार कर दसवे व्रत में डालना या दसवां पौषध संज्ञा देना, नामकरण करना उपयुक्त नही है और आगम सम्मत भी नहीं है। विशेष विचारणा के लिये भगवती सूत्र के शंख पुष्कली श्रावक के प्रकरण का सारांश पुष्प ३० मे अध्ययन करना चाहिये। वहां भगवान के प्रमुख श्रावको का आहार युक्त पौषध ग्यारहवे व्रत मे गिना गया है। क्यो कि पक्खी का प्रतिपूर्ण पौषध करने का उन श्रावको के आजीवन का नियम था।

प्रश्न - पौषध मे सामायिक ली जा सकती है?

उत्तर - पौषध मे सामायिक लेने का वास्तव मे कोई प्रयोजन नहीं होता है क्योंकि पौषध का ही स्वत: अप्रमाद भाव से आचरण होता है उसमे रात दिन आत्मा को धर्म जागरणा मे लगाया जाता है। किन्तु प्रवाह रूप मे सामान्य साधको को व्यर्थ के प्रमाद प्रवृति से बचाने के लिये सामायिक के प्रेरणा की प्रवृति चल गई है कि इस निमित से साधक सोने का आलस्य प्रमाद नही करेगा।

वास्तव मे यह तो पौषध के स्वरूप को नही समझने या भुलाने वाले सामान्य साधको को सामायिक के महत्व से प्रमाद से अटकाने का एक उपाय है। वास्तव मे तो पौषध का महत्व सामायिक से भी अधिक अप्रमत्तता का है। अत: विज्ञ साधको को पौषध मे सामायिक लेना या गिनना कोई जरूरी नही है। फिर भी सामान्य प्रवाह के साथ सभी को चलने मे एक रूपता रहे अत: सामायिक लेना और गिनना किया जाय तो कोई नुकशान नही समझना चाहिये। और सामायिक लेने या न लेने का एकांतिक आग्रह भी नही करना चाहिये। यह हानि लाभ के विचार से सामान्य साधको की अपेक्षा चलाई गई प्रवृति है ऐसा समझ लेना चाहिये।

प्रश्न - सामायिक मे पिछले काल की सामायिक मिलाकर आगे की सामायिक ली जा सकती है?

उत्तर - पूर्व समाधान के आशय के समान ही इस प्रश्न का समाधान है। सामायिक रूप नवमां व्रत यथावसर अधिकतम समय के लिये प्रतिदिन करते रहना चाहिये, यह श्रावक का शिक्षाव्रत है। इसकी संख्या की गिनती लगाना भी सामान्य साधको के प्रेरणा हेतु प्रचलित है ऐसा समझना चाहिये। आगम मे श्रावको के ६ पौषध की गिनती तो बताई गई है किन्तु सामायिक की गिनती किसी भी श्रावक के नहीं बताई गई है।

परम्परा मे ४८ मिनिट की एक सामायिक के परिमाण से सामायिक की गिनती करने की परंपरा है। अधिकतम साधको को अपनी करणी की गिनती करने से साधना मे प्रेरणा की वृद्धि होती है और उत्साह वृद्धि होती रहती है। इस अपेक्षा से हानि लाभ के विचार से सामायिक का हिसाब रखना गिनती करना लाभप्रद है। इसी प्रसंग से एक साथ अनेक सामायिक करके उनके गिनती करने की प्रवृति की जाती है। उस प्रवृति की व्यवस्था मे कभी एक सामायिक लेने के बाद उसमे अनेक सामायिक जोडी जाती है जो ४८ मिनट के हिसाब से गिनती की जाती है।

इस प्रवृति की व्यवस्था मे अगली सामायिक कभी भी ली जा सकती है।

यथा- एक सामायिक ली और ज्ञान ध्यान आदि मे २-३ घन्टे व्यतीत हो गये तो याद आने पर पिछले समय का हिसाब लगाकर आगे की सामायिक ली जा सकती है।

व्यवहारिक विवेक के लिये इतना ध्यान तो अवश्य रखना चाहिये कि अगली सामायिक पच्चक्खाण लेते ही सामायिक पारना प्रारम्भ नही कर देना चाहिये अर्थात् समय पूर्ण हो भी गया हो तो नये पच्चक्खाणण के बाद ५-१० मिनट और धर्म ध्यान मे समय व्यतीत करके फिर ही सामायिक पारना चाहिये।

प्रश्न - प्रतिक्रमण समाप्ति का जो उपसंहार पाठ पच्चक्खाण के बाद बोला जाता है वह पूर्ण उपयुक्त एवं आगमोक्त हैं?

उत्तर - यह पाठ मूल आवश्यक आगम मे नही है और व्याख्या मे भी नहीं है। बहुत बाद का संकलित संपादित है। इसमे अनावश्यक और

असंगत होने जैसा भी आभाष होता है। अत: जितना आवश्यक हो उतना ही विचार करके बोलना चाहिये। साथ ही अनुयोग द्वार सूत्र मे भाव आवश्यक विचारणा मे दिये गये पाठ का यहां संकलन संपादन करना आवश्यक है, वह नही बोला जाता है उसे बोलना बहुत ही उपयुक्त है। प्रस्तुत पुष्प ३२ मे इस विचारणा युक्त पाठ का संपादन प्रस्तुत किया गया है पाठक यथा स्थान देखे।

प्रश्न - ''गंठिसहियं'' पच्चक्खाण का पाठ भी आवश्यक सूत्र मे कहां है?

उत्तर - आवश्यक सूत्र मे नमुक्कार सहियं आदि दस पच्चक्खाण के पाठ हैं। किन्तु यह पाठ आवश्यक सूत्र मे नही है। यह संकलित संपादित पाठ है। इसमे गंठिसहियं मुट्ठिसहियं दो शब्द व्याख्या ग्रन्थो से लेकर जोड़े गये हैं। जो नमुक्कार सहियं के सदृशता वाले है ये तीनो संकेत पच्चक्खाण गिने जाते है अर्थात् १. गांठ नही खोले तब तक पच्चक्खाण, २. मुट्ठि नही खोले तब तक पच्चक्खाण ३ नमस्कार मंत्र नही गिने तब तक पच्चक्खाण।

संकेतिक पच्चक्खाण होने से इनमे सर्व समाधि प्रत्ययिक आगार नही है। क्योकि निर्दिष्ट संकेत से जब चाहे तब पच्चक्खाण समाप्त किया सकता है। इसलिये सर्व समाधि प्रत्ययिक आगार की आवश्यकता नही होती है।

सर्व समाधि प्रत्ययिक आगार अद्धा प्रत्याख्यान मे आवश्यक होता है क्योकि उसमे पच्चक्खाण के साथ काल मर्यादा होती है और उस काल समाप्ति के बहुत पहले ही कोई विकट शारीरिक स्थिति खड़ी हो जाय तब सर्व समाधि प्रत्ययिक आगार के आधार से उस प्रत्याख्यान को समय से पूर्व ही समाप्त किया जा सकता है, पार लिया जा सकता है।

वर्तमान मे नमुक्कार सहित पच्चक्खाण को भी ४८ मिनट के समय निर्धारण के साथ अद्धा प्रत्याख्यान कर दिया गया है किन्तु उसके पच्चक्खाण के पाठ मे परिवर्तन नही किया गया है। यह सही स्थिति नही है। प्रचलित परंपरा से संगत ही पच्चक्खाण का पाठ होना चाहिये।

प्रश्न गत ''गंठि सहियं'' पाठ की अपेक्षा आगमिक ''नमुक्कार सहियं'' आदि के पाठ से पच्चक्खाण करना विशेष उपयुक्त एवं शास्त्र संगत है।

क्योकि ऐसे मिक्स पाठ से आगारो का सही उच्चारण नही हो सकता है। इसलिये अधिकतम जैन श्रमणो मे आज भी नमुक्कार सहियं के पाठ से पच्चक्खाण कराया जाता है। तद्नुसार सभी श्रमण श्रमणोपासको को भी सामुहिक रूप मे नमुक्कार सहियं का पच्चक्खाण ही करना एवं धारणा चाहिये।

कई साधु श्रावक इस गंठि सहियं के पाठ से पच्चक्खाण की परंपरा पालते हुए भी कुछ भी पच्चक्खाण नही धारते और नही करते हैं। केवल पाठ का उच्चारण श्रवण ही करके संतोष कर लेते है। इस प्रकार की उपेक्षा बहुत ही अनुचित है। ऐसी उपेक्षा करने वालो को स्वत· अपना सुधार करना चाहिये और कम से कम नमुक्कार सहियं का पच्चक्खाण तो अवश्य करना चाहिये।

प्रश्न - दोनो समय प्रतिक्रमण मे नमुक्कार सहियं का पच्चखाण करने से एक ही पच्चक्खाण दो बार करना हो जायेगा?

उत्तर- आगमिक अर्थ वाले नमुक्कार सहियं का पच्चक्खाण करना हो तो शाम को एक नमस्कार का एवं सुबह पांच नमस्कार गिनने का पच्चक्खाण धारण किया जा सकता है।

परंपरा रूढ अर्थ वाले नमुक्कार सहियं का पच्चक्खाण करना हो तो शाम को नमुक्कारसहियं पच्चक्खाण ४८ मिनट की अपेक्षा करना और फिर सुबह के पच्चक्खाण मे उससे ५-१० मिनट उपरांत का पच्चक्खाण करना चाहिये। इस प्रकार करने से दोनो वक्त नया पच्चक्खाण हो जायेगा। और ऐसा करने से एक ही पच्चक्खाण को दुबारा करना नही होगा। इसी उलझन के कारण कई संत शाम को पच्चक्खाण नही करके सुबह ही पच्चक्खाण करते है।

प्रश्न - कायोत्सर्ग मे कितने लोगस्स गिनने चाहिये।

उत्तर - सर्व प्रथम यह स्मरण रखना चाहिये कि लोगस्स का पाठ कायोत्सर्ग मे गिनना ही संगत नही है। इस विषय मे पूर्व प्रश्नोत्तरो मे समझाया गया है।

प्राचीन परंपरा से दैवसिक प्रतिक्रमण मे ४ रात्रि मे २, पक्खी मे १२, चौमासी मे २०, संवत्सरी मे ४० लोगस्स गिनने का उल्लेख मिलता है

वर्तमान परम्परा में क्रमश: ४,२,८,१२,२० लोगस्स करने की प्रवृति भी चालू है। इसके अतिरिक्त अन्य संख्या भी है। गुजरात मे कायोत्सर्ग में लोगस्स नही गिनने की परंपरा भी व्याप्त है।

वास्तव मे २४ वे भगवान के शासन मे जहां दोनो समय प्रतिक्रमण करना-जरूरी होता है वहां इतने ढेर सारे लोगस्स गिनना साधुओ के लिये कदापि उपयुक्त नही है। उन्हे तो दैवसिक प्रतिक्रमण मे क्षमाभाव चिंतन एवं रात्रिक प्रतिक्रमण मे तप चिंतन करना सदा आवश्यक समझना चाहिये। प्रतिक्रमण के कायोत्सर्ग मे अतिचार चिंतन और क्षमापना भाव चिंतन ही मुख्य पहलू है, लोगस्स गिनना तो जिनसे उक्त चिंतन संभव न हो उनके लिये चलाई गई अवलंबन रूप परंपरा है।

यो कायोत्सर्ग मे सम्पूर्ण योगो का व्युत्सर्जन किया जाता है केवल श्वासोश्वास की गिनती समय परिमाण के लिये की जाती है। आवश्यक सूत्र की प्राचीन व्याख्या मे पहला विकल्प श्वासोश्वास गिनती का है। दूसरा विकल्प लोगस्स का कहा है किन्तु उसे खेंचतान कर बैठाना पडता है सहज नहीं जमता है।

संवत्सरी पक्खी चौमासी के दिन भी लोगस्स गिनने की अपेक्षा "क्षमाभाव क्षमापना भाव को पुष्ट करने का चिंतन करना, इसे प्रतिक्रमण का मुख्य पहलू ध्यान में रख कर उसी का चिंतन करना चाहिये। यही नूतन विकास का माध्यम अनुभव पूर्ण ध्यान मे आता है एवं केवल परंपरा निर्वाह के लिये उक्त लोगस्स गिनते रहना चाहिये।

कायोत्सर्ग में लोगस्स गिनने का आगम मे कहीं विधान नहीं है किन्तु कायोत्सर्ग पूर्ण करने के बाद कीर्तन करने के लिये इसका विधान आवश्यक सूत्र के दूसरे आवश्यक रूप से है और पांचवे आवश्यक रूप कायोत्सर्ग के बाद भी कीर्तन रूप मे लोगस्स प्रकट बोलने का उत्तराध्ययन सूत्र मे विधान है। अत: कायोत्सर्ग मे लोगस्स गिनने में आगम के मूल पाठ का आधार नहीं है किन्तु प्रगट गिनने के प्रमाण स्पष्ट है।

कायोत्सर्ग के बाद लोगस्स गिनने का प्रमाण :-

१. उत्तरा. अ २६.

२. दशवै. अ. ५ उ. १

३. आवश्यक सूत्र, दोनो काउसग्ग के बाद

प्रश्न - पक्खी चौमासी संवत्सरी पर्व दिनों मे दो प्रतिक्रमण करने

चाहिये?

उत्तर - २४ वे तीर्थंकर के शासन के साधु साध्वी सदा दोनो समय प्रतिक्रमण करते हैं उनके लिये यह दो प्रतिक्रमण करने की बात व्यर्थ एवं आगम विपरीत है। मध्य के २२ तीर्थंकर के शासन के साधु साध्वी सदा प्रतिक्रमण आवश्यक रूप से नहीं करते। उन्हे पूर्व दिनो मे प्रतिक्रमण करना आवश्यक होता है। तब वे पहले देवसिक प्रतिक्रमण करते हैं और दूसरा उस पर्व दिन का प्रतिक्रमण करते है। एक जगह की बात को दूसरी जगह फिट कर देना बुद्धि का भ्रम है ऐसा नही करना चाहिये। इस विषय की प्रासंगिक वार्ता पुष्प १४ एवं पुष्प २१ मे यथा स्थान देखे।

प्रश्न - प्रतिक्रमण मे सामायिक करना आवश्यक है?

उत्तर - सामान्यतया सामायिक युक्त ही प्रतिक्रमण करना आगम आशय युक्त है।

विशेष परिस्थिति मे बिना सामायिक के भी प्रतिक्रमण कर लेना चाहिये अर्थात् सामायिक करने जितना समय या प्रसंग न हो तो।

प्रश्न - बारह व्रत धारी श्रावको को ही प्रतिक्रमण करना चाहिये?

उत्तर - एक व्रत धारी या १२ व्रत धारी किसी भी श्रावक को प्रतिक्रमण करने मे कोई आपत्ति नही है। हां १२ व्रत धारी को यथा समय प्रतिक्रमण करना आवश्यक होता है।

प्रतिक्रमण के स्वरूप का ज्ञान कराते हुए उसकी व्याख्या मे तीन वैद्यों का दृष्टांत दिया गया है।

प्रथम वैद्य की दवा - रोग हो तो ठीक करे अन्यथा नया रोग खडा करे।

दूसरे वैद्य की दवा - रोग हो तो ठीक करे अन्यथा कुछ नहीं करे।

तीसरे वैद्य की दवा - रोग हो तो ठीक करे अन्यथा शरीर को पुष्ट करे।

प्रतिक्रमण को तीसरे वैद्य की दवा के समान बताया है। अतः व्रत हो या न हो अतिचार लगे हो या न लगे हो, प्रतिक्रमण करने मे सुनने मे लाभ ही है हानि नहीं है।

एक बात और ध्यान रखने की है जिस श्रावक के जो जो फुटकर त्याग प्रत्याख्यान लिये होते हैं उन छोटे बड़े सभी नियमो की एक लिस्ट बनाकर रखनी चाहिये और उनका यथा समय पर्व दिनो मे चिंतन पूर्वक अवलोकन

करना चाहिये कि मेरे ये सभी व्रत प्रत्याख्यान शुद्ध पालन हो रहे हैं? यदि संभव हो तो प्रतिक्रमण के समय कायोत्सर्ग मे भी उनका स्मरण अवलोकन किया जा सकता है। वृहदालोयणा की जगह उसका वांचन पर्व दिनों मे अवश्य करना चाहिये।

प्रश्न - प्रतिक्रमण क्या हैं?

उत्तर - व्रत शुद्धि की, स्वदोष दर्शन की, दोषावलोकन की, भाव विशुद्धि एवं समभाव वृद्धि करने की प्रक्रिया है। आत्मा को व्रतो के संस्कार से भावित करने की प्रक्रिया है। छद्मस्थावस्था मे सूक्ष्म स्थूल भूले होना शक्य है उनके परिमार्जन-अवलोकन की यह प्रशस्त प्रक्रिया है। ऐसे प्रतिक्रमण करने वालो के साथ बैठकर ध्यान पूर्वक सुनना, श्रद्धा को और व्रत रूचि को बढाने वाला है। यह श्रवण आत्मा को संस्कारित करने का माध्यम भी हो सकता है। इससे व्रत धारण की प्रेरणा भी प्राप्त होती है। कभी कईयो का संक्षिप्त रूचि से भी कल्याण हो जाता है

यथा- भगवती सूत्र मे ''वरूण नाग नतुए'' के मित्र का दृष्टांत है। उसने मृत्यु समय मे इतना ही किया कि ''मेरे धर्मी मित्र ने जो धर्म स्वीकार किया उसे मैं भी स्वीकार करता हूं।'' इतने मात्र से वह अनंतर भव से मुक्त होने योग्य बन गया। अत· किसी भी धार्मिक प्रवृति को बेकार या व्यर्थ होना नही कहना चाहिये। कब किसके लिये कौनसी छोटी भी धर्म प्रक्रिया जीवन मे महत्व शील मोड देने वाली हो सकती है। अतः प्रतिक्रमण करना या सुनना लाभकारी ही समझना चाहिये, व्रत धारण किये हो या नही किये हो।

ध्यान यह रहे कि एकाग्रचित से भाव पूर्वक प्रतिक्रमण सुनना एवं करना चाहिये और व्रत न लिये हो उन्हे लेने के लिये आत्मा मे प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये।

प्रश्न - गुरू वंदन छोटे बडे के क्रम से करना चाहिये और ज्यादा संत हो अथवा शरीर मे कोई रूग्णता हो तो सही वंदन किस तरह करना चाहिये।

उत्तर - संभव हो तो छोटे बडे के क्रम से वंदन करना ही राज मार्ग है।

वंदन करने की जो सही विधि सिखाई जाती है तदनुसार ही तीन

आर्वतन, पंचांग नमन युक्त वंदन, शांति से और भक्ति युक्त करना चाहिये। राजवेस्ट या बेगारी की तरह या असभ्यता युक्त वंदन करना दोष है। वंदन की सही विधि की उपेक्षा करना श्रद्धा भक्ति और विवेक की कमी है। ऐसा कभी भी नही करना चाहिये।

यदि समयाभाव हो या सामान्य शारीरिक कारण हो तो भी शांति पूर्वक तीन आवर्तन, पंचांग नमन तो आवश्यक रूप से करने ही चाहिये। चाहे तीन बार उठना बैठना न भी हो तो भी केवल बैठे बैठे या खड़े खड़े जैसी भी शारीरिक परिस्थिति हो विवेक पूर्वक भक्ति युक्त वंदन करना चाहिये। बिना कारण ढर्रे रूप मे लापरवाही से बेगारी की तरह वंदन करना अनुचित है। ऐसी नकल भी करना अनुचित है। विनय के लिये निर्जरा के लिये किया जाने वाला वंदन भावयुक्त भक्ति युक्त एवं विधि सहित ही होना चाहिये। जिसमे तीन आवर्तन एवं पंचांग नमन आवश्यक है और अंत मे मत्थएण वंदामि बोलते समय मस्तक भूमि तक अवश्य झुकाना चाहिये।

वंदना के ३२ दोष कहे गये हैं जिसकी जानकारी करके सही वंदन करना चाहिये।

प्रश्न - पहला आवश्यक पूरा हुआ दूसरे आवश्यक की आज्ञा है, इसी प्रकार फिर दूसरा आवश्यक पूरा हुआ तीसरे आवश्यक की आज्ञा है, इत्यादि बोलना चाहिये?

उत्तर - आवश्यक सूत्र के अध्ययन ६ है उनके नाम "सामायिक" आदि है। प्रतिक्रमण करने की विधि मे उन अध्ययनो के नाम बोलने की कोई आवश्यकता नही है। अध्ययनो मे आये पाठ और उनका क्रम अलग है और प्रतिक्रमण की विधि मे उनको भिन्न क्रम से एक या अनेक बार बोला जाता है। अत: "अमुक आवश्यक पूरा हुआ अमुक की आज्ञा" ऐसा बोलना योग्य नही है। ऐसा बोलने का कोई प्राचीन प्रमाण भी नही है।

प्रथम आवश्यक अध्ययन मे "सामायिक" का पाठ है जो तीन बार बोला जाता है। द्वितीय आवश्यक अध्ययन मे लोगस्स का पाठ है वह प्रत्येक कायोत्सर्ग के बाद बोला जाता है। तृतीय आवश्यक अध्ययन मे "इच्छामि खामसमणो" का पाठ है वह भी कुल ६ बार और तीन स्थल पर बोला जाता है। चौथा आवश्यक मे व्रत आदि व अतिचारो के पाठ है

उन्हे "लोगस्स" इच्छामि खमासमणो" रूप दूसरे तीसरे आवश्यक के पूर्व ही कायोत्सर्ग मे तथा उनके बाद प्रकट मे बोला जाता है। "गमनागमन अतिचार" और समुच्चय अतिचार का पाठ "इच्छामि ठामि" भी चौथे आवश्यक अध्ययन मे होते हुये भी कायोत्सर्ग पूर्व व बाद मे तीन बार बोला जाता है। "तस्स उत्तरी" का पाठ पांचवां आवश्यक अध्ययन मे है वह प्रारम्भ के अतिचार चिंतन कायोत्सर्ग के पूर्व भी बोला जाता है। अत: आवश्यक सूत्र के अध्ययनो का नाम या क्रम प्रतिक्रमण विधि मे बोलना उपयुक्त नही है और इसलिये प्रतिक्रमण की आज्ञा लेने के बाद पुन: पुन: आज्ञा लेना भी उपयुक्त नहीं है। विधि के बीच में विनय की आवश्यकता में "इच्छामि खमासमणो" उत्कृष्ट गुरू वंदन का पाठ दो-दो बार तीन स्थल पर बोला ही जाता है। अत: उसके शिवाय अन्य वंदन और आज्ञा निष्प्रयोजन होते हैं। प्रतिक्रमण के प्रारम्भ मे शासन पति की आज्ञा और अंत मे समुच्चय वंदन पर्याप्त होता है।

प्रश्न - तीसरे व्रत के अतिचार कैसे समझना?

उत्तर - चोरी की वस्तु खरीदने में बडी चोरी की वस्तु समझना अर्थात् सेध लगाकर, ताला तोड कर आदि पांच प्रकार की बडी चोरी की वस्तु मालुम पड़ जाने पर कम कीमत मे मिलने से खरीदना तीसरे व्रत का अतिचार है। बिना मालुम पूरे भाव मे खरीदने पर अतिचार नहीं लगता है।

प्रश्न - पांचवें व्रत के अतिचार कैसे लगते हैं?

उत्तर - पांचवे व्रत मे ध्यान नहीं रखने से, हिसाब नहीं मिलाने से, मर्यादा उल्लंघन हो जाय या गडा-पडा आदि धन मिल जाने से मर्यादा उल्लंघन हो जाय फिर उसे शीघ्र समय की मर्यादा कर उतने समय में सीमित कर लेने पर यह इस व्रत का अतिचार होता है और जानकर लोभ लापरवाही से मर्यादा उल्लंघन करना इस व्रत का अनाचार होता है।

प्रश्न - छट्टे व्रत के अतिचार कैसे समझना?

उत्तर - छट्ठे व्रत में शारिरिक आदि परिस्थितियो से या भूल से दिशा परिमाण का उल्लंघन हो तो वह अतिचार कहा जाता है।

प्रश्न - सातवे व्रत के अतिचार कैसे हैं?

उत्तर - त्याग नहीं होते हुए भी सचित वस्तुओं का सेवन, अभक्ष्य

अनंतकाय भक्षण और १५ कर्मादान का व्यापार ये श्रावक के लिये सातवे व्रत के अतिचार हैं। यथा - किसी को मारने पीटने आदि का प्रत्याख्यान न भी हो तो भी बंधे वहे छविच्छेए अइभारे भत्तपाण वुच्छेए प्रथम व्रत के अतिचार है अर्थात् त्रस जीव की संकल्प पूर्वक हिंसा करने का त्याग मात्र होते हुए भी गुस्से मे किसी को निर्दयता से मारपीट करना आदि तथा अधिक भार भरना आदि, वैसे ही चोरी की वस्तु खरीदना आदि अतिचार कहे गये हैं। वैसे ही ये सातवे व्रत के अतिचार त्याग न होते हुए भी श्रावक के आचरण योग्य नही होने से अतिचार तो है ही ऐसा समझ कर यथा शक्य शीघ्र त्याग करना चाहिये।

गन्ना आदि तुच्छ वस्तु नही है। बहु उज्झित धर्म वाला है। किन्तु मद्य मांस अंडे मछली आदि अभक्ष्य बीडी, सिगरेट, तंबाखू आदि ये तुच्छ हेय पदार्थ है। तथा अधिक पाप के कारण कर्मादान हेय है। वैसे ही कंद मूल अनंतकाय के पदार्थ भी हेय तुच्छ वस्तु है, ये श्रावक को त्यागने योग्य है।

सातवे व्रत में मुख्य नये २० अतिचार का कथन किया गया है शेष अपने मर्यादित पदार्थों मे व व्यापारो मे कोई दोष लगे उसका अतिचार स्वयं समझ लेना चाहिये। और जानकर स्वयं भंग करे तो उसे अनाचार समझ कर अलग से आलोचना कर प्रायश्चित्त ग्रहण करना चाहिये।

अभक्ष्य :- बीडी, सिगरेट, चिलम तम्बाखू, अंडे, मांस, मछली, शराब, भांग, अफीम, गांजा आदि।

प्रश्न - दसवे व्रत के अतिचारो का क्या आशय हैं?

उत्तर - दसवें व्रत मे दिशा की मर्यादा कर दो करण तीन योग से त्याग किया जाता है इसलिये आगे से १. सामान मंगाना २. भिजवाना ३. दूसरे को बोलकर संकेत करना, ४. लिखकर या चेहरे इशारे से संकेत करना, ५. फौन चिट्ठी तार आदि देना। अतिचार है।

प्रश्न - अतिचारों और पापो के प्रतिक्रमण मे क्या अंतर हैं?

उत्तर - व्रतो मे लगे अतिचारों का प्रतिक्रमण मे मिच्छामि दुक्कडं दिया जाता है। जो व्रत जानकर भंग किये गये हों उसका प्रतिक्रमण करने के शिवाय गुरू आदि के समक्ष स्वतंत्र आलोचना प्रायश्चित्त और किया जाता है तब शुद्धि होती है। तथा जिन पापों का त्याग नहीं है उनका प्रतिक्रमण

और प्रायश्चित्त न होकर खेद पश्चाताप या त्याग का मनोरथ या भावना रखी जाती है। अर्थात् व्रत प्रत्याख्यान के अतिचचारो की शुद्धि प्रतिक्रमण से होती है शेष अव्रत या पापो के लिये प्रतिक्रमण से ज्ञान, श्रद्धान, त्याग की भावना व खेद पश्चाताप होता है।

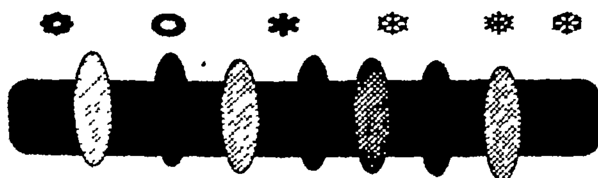
प्रश्न - उत्कृष्ट वंदन पाठ मे 'जवणिज्जं' शब्द को तोडकर बोलना उपयुक्त हैं?

उत्तर - ''जवणिज्जं'' एक शब्द है अत: आवर्तन मे उसे न तोडते हुए एक आवर्तन करना उपयुक्त है अगला आवर्तन ''च भे'' दो अक्षर से पूर्ण किया जा सकता है। यथा- ''अ हो'' मे भी दो अक्षर से आवर्तन पूर्ण किया ही जाता है अत: ''च भे'' से आवर्तन पूर्ण करने मे कोई दोष नही है। ''जवणिज्जं'' का अर्थ होता है यपनीय = मन तथा इन्द्रिय निग्रह।

प्रश्न - क्षमापना भाव नही करने से क्या होता है?

उत्तर - क्षमापना भाव न करने से समकित व्रत मे अतिचार लगता है। मुख्य अतिचार मे कथन नही होते हुए परिशेष अतिचारो मे इसे समझना। तथा नाराजी रोष भाव अधिक समय रखने पर और क्षमा भाव लंबे समय तक न करने पर समकित व्रत ही नष्ट हो जाता है अर्थात् उसे समकित छूट कर मिथ्यात्व आ जाता है। उसके शेष त्याग नियम का भी कोई महत्व नही रहता है आराधना नही होती है। कितना ही तप नियम और संथारा करले किन्तु समस्त प्राणियो के प्रति क्षमापना न करे किसी को भी शत्रु माने या रंज रखे तो धर्मी व समदृष्टि की गिनती मे भी वह नही आता है तथा सम्यग्दृष्टी की गति को प्राप्त नही करता है। मिथ्यात्वी की गति को प्राप्त करता है। अत: किसी भी व्यक्ति से रंज भाव लम्बे समय तक नही रखना चाहिये। शीघ्र क्षमाभाव धारण कर लेना चाहिये।

एक दिन से अधिक रंजभाव कषाय रखे तो साधुत्व नही रहता है। १५ दिन से अधिक रखे तो श्रावक पन नही रहता है और एक वर्ष से अधिक रखे तो समकित या धर्मीपन भी नही रहता है।



परिशिष्ट- १

विधि सहित सामायिक सूत्र

प्राक्कथन-

श्रमणोपासक का नवमा व्रत है यथासमय सामायिक ग्रहण करना। सामायिक विधि सहित ग्रहण करनी चाहिये। अत: विधि का ज्ञान होना भी आवश्यक हो जाता है।

इस प्रकरण मे सर्व प्रथम सामायिक ग्रहण करने के मूल पाठ विधि सहित क्रम से दिये गये हैं साथ ही विधि का आवश्यक संकेत भी दिया है। तदनतर सामायिक पारने की विधि का क्रम सूचित किया है।

पाठक यदि मूल पाठों का हिन्दी अनुवाद जानना चाहे अथवा मूल पाठों के स्थान पर हिन्दी मे बोलना अथवा याद करना चाहे तो आगे सभी पाठों का हिन्दी मे सपादन किया गया है।

तदनंतर सामान्य ज्ञान के लिये प्रत्येक पाठ से सम्बन्धित एव सामायिक सम्बन्धी प्रश्नोत्तर दिये हैं।

यहा विधी सपादन में परपरा का अनुकरण न करके नूतन चिंतन अनुभव का उपयोग किया गया है।

मुख्य बात ध्यान देने की यह है कि जो पाठ कायोत्सर्ग में गिनना है उसे कायोत्सर्ग के पहले भी बोल लेना एक सही परम्परा नहीं है।

सामायिक पारने में सामायिक के अतिचार दोषों की शुद्धि हेतु कायोत्सर्ग किया जाता है उसमें १८ पाप स्थानों का अवलोकन करना उपयुक्त है क्यो कि सामायिक में उन पापों का त्याग होता है अत. तत्सम्बन्धी कोई भूल हुई हो तो उसका प्रतिक्रमण होने के लिये उस पाठ का चिंतन ही कायोत्सर्ग में करना चाहिये।

इसी उद्देश्य से इस प्रकरण में विधि परंपरा में कुछ परिवर्तन किया गया है।

विशेष जिज्ञासा हेतु सामायिक प्रतिक्रमण सम्बन्धी प्रश्नोत्तरों का पुष्प ३२ परिशिष्ट ८ में अध्ययन करना चाहिये।

फोटो टाईपसेटिंग व मुद्रण माणक ऑफसेट प्रिण्टर्स, म. गा. अस्पताल रोड
☎37838&37839

- विधि सहित सामायिक सूत्र -

(बिना सिले श्वेत वस्त्र धारण कर मुखवस्त्रिका बांध कर गुरूवंदन करना)

गुरू वंदन का पाठ

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेमि वंदामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइय पज्जुवासामि मत्थएण वंदामि।

(बैठकर निम्न विधि करना)

नमस्कार मंत्र

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाण णमो आयरियाण णमो उवज्झायाण णमो लोए सव्व साहूणं।

एसो पंच णमुक्कारो सव्व पावप्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवई मंगलं।।

कायोत्सर्ग करने का पाठ

तस्स उत्तरी करणेण पायच्छित्त करणेणं विसोही करणेणं विसल्ली-करणेणं पावाण कम्माणं णिग्घायणट्ठाए ठामि काउस्सग्गं।

अण्णत्थ उससीएण निससीएणं खासिएणं छीएण जभाइएण उड्डुएणं वायणिसग्गेणं भमलीए पित्त-मुच्छाए सुहुमेहिं अंग संचालेहिं सुहुमेहिं खेल-संचालेहिं सुहुमेहिं दिट्ठी संचालेहिं एवमाइएहिं आगारेहिं ।अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सग्गो जाव अरिहंताण भगवंताण णमुक्कारेणं न पारेमि ताव कायं ठाणेण मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि।

(फिर कायोत्सर्ग कर निम्न पाठ मन मे गिनना)

गमना गमन अतिचार शुद्धि का पाठ

इच्छामि पडिक्कमिउं इरियावहियाए विराहणाए गमणागमणे पाणक्कमणे बीयक्कमणे हरियक्कमणे ओसा-उत्तिंग पणग-दग-मट्टी मकड़ा-संताणा संकमणे जे मे जीवा विराहिया एगिंदिया बेइन्दिया तेइन्दिया चउरिन्दिया पंचिंदिया अभिहया वत्तिया लेसिया संघाइया संघट्टिया परियाविया किलामिया उद्दविया ठाणाओ-ठाणं संकामिया जीवियाओ-ववरोविया तस्स-मिच्छामि-दुक्कडं।

"फिर "णमो अरिहंताणं" ऐसा उच्चारण कर कायत्सर्ग पारना तथा निम्न

पाठ बोलना।

कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ

कायोत्सर्ग मे आर्तध्यान रौद्रध्यान किया हो या मन वचन काया चलित हुए हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कड।

२४ जिन स्तुति का पाठ

लोगस्स उज्जोयगरे, धम्म तित्थयरे जिणे
अरिहते कित्तइस्स, चउवीसं पि केवली ॥१॥
उसभ-मजिय च वदे, सभव-मभिणदण च सुमइच।
पउमप्पह सुपास जिणं च चदप्पह वदे ॥२॥
सुविहिं च पुप्फदंत सीयल सिज्जस वासुपुज्ज च
विमल-मणंत च जिण धम्म संति च वदामि ॥३॥
कुथं अर च मल्लि वदे मुणि-सुव्वय णमि जिण च।
वदामि रिट्ठनेमिं पास तह वद्धमाण च ॥४॥
एव मए अभिथुया विहुय-रय-मला पहीण-जर-मरणा।
चउवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयतु ॥५॥
कित्तिय वदिय महिया जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा।
आरूग्ग-बोहि-लाभ समाहि वर मुत्तम दिंतु ॥६॥
चदेसु णिम्मल-यरा आइच्चेसु अहिय पयासंयरा॥
सागर-वर-गभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसतु ॥७॥
(फिर गुरूवदन कर खड़े रहकर निम्न पाठ से सामायिक व्रत ग्रहण करना)

सामायिक व्रत लेने का पाठ

करेमि भते! सामाइय, सावज्ज जोग पच्चक्खामि जाव नियम (एक मुहुर्त उपरात) पज्जुवासामि दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि।

(फिर नीचे बैठकर बायाँ घुटना ऊंचा रख कर दो बार निम्न पाठ बोलना)

सिद्ध-स्तुति (शक्र-स्तव)

णमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं आइगराणं तित्थयराणं सय-सबुद्धाण पुरिसुत्तमाणं पुरिस-सीहाणं पुरिस-वर पुंडरियाण पुरिसवर-गंध हत्थिण लोगुत्तमाण लोगणाहाणं लोगहियाणं लोगपइवाणं लोगपज्जोयगराण अभयदयाण

चक्खुदयाण मग्गदयाणं सरणदयाण जीवदयाण बोहिदयाण धम्मदयाणं धम्मदेसियाणं धम्मनायागाण धम्मसारहीणं, धम्मवर-चाउरंत-चक्कवट्टीण दीवोताण सरण-गइ-पइट्ठाणं

अप्पडि-हय-वर-णाण दंसण धराण विअट्ट-छउमाणं जिणाण जावयाणं तिण्णाण तारयाण बुद्धाण-बोहयाणं मुत्ताणं-मोयगाण सव्वण्णूणं सव्व-दरिसीण सिव-मयल-मरूय - मणंत-मक्खय - मव्वाबाह मपुणरावित्ती सिद्धिगइ नामधेयं ठाणं सपत्ताणं णमो जिणाण जियभयाण।।

(दूसरी बार मे "ठात्तं सपत्ताणं" के स्थान पर ठाणं सपाविउ-कामाणं" बोलना तथा शेष पूरा पाठ बोलना)

।। सामायिक ग्रहण करने की विधि संपूर्ण ।।

सामायिक पारने की विधि

४८ मिनिट (एक मुहुर्त समय) पूर्ण होने के बाद गुरुवंदन कर बैठना। फिर "नमस्कार मंत्र" व कायोत्सर्ग करने का पाठ (तस्सउत्तरी का पाठ) बोलकर कायोत्सर्ग करना। कायोत्सर्ग मे अठारह पाप स्थान का पाठ मन मे गिनना।

अठारह पापस्थान का पाठ

१. हिंसा, २. झूठ, ३. चोरी, ४. कुशील, ५. परिग्रह, ६. क्रोध, ७. मान, ८. माया ९. लोभ, १०. राग (मोह), ११. द्वेष, १२. कलह, १३. कलंक लगाना, १४. चुगली करना, १५. दूसरो की निंदा करना, १६. सुख दुख मे हर्ष-शोक करना, १७. कपट युक्त झूठ बोलना- छल करना, १८. जिनवाणी से विपरीत मान्यता श्रद्धा रखना प्ररूपणा करना। इन अठारह पापस्थानों मे से किसी का मन वचन काया से जाने अनजाने सामायिक में सेवन हुआ हो तो उसका मैं अवलोकन करता हूँ।

फिर 'णमो अरिहताणं' ऐसा बोलकर कायोत्सर्ग पारना तथा कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ और २४ जिन स्तुति का पाठ (लोगस्स) बोलना। फिर दो बार सिद्ध स्तुति का पाठ (णमोत्थुण) बोलना। इसके बाद सामायिक पारने का पाठ बोलना।

सामायिक पारने का पाठ

एयस्स णवमस्स सामाइय-वयस्स पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलाऊ मण दुप्पणिहाणे वय दुप्पणिहाणे काय दुप्पणिहाणे

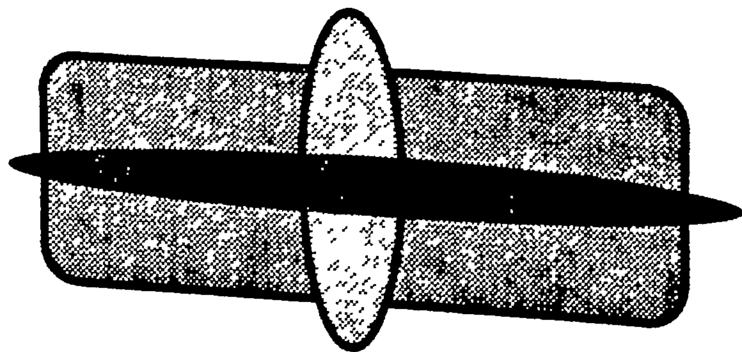
सामाइयस्स सइ-अकरणया सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया तस्स मिच्छामि दुक्कडं॥

सामाइय सम्म काएण न फासियं न पालिय न सोहिय न तीरियं न किट्टियं न आराहिय आणाए अणुपालियं न भवइ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

सामायिक के ३२ दोष

अविवेक जसोकित्ती लाभत्थि गव भय णियाणत्थि
ससय रोस अविणऊ अबहुमाणए दस मण दोसा (१)
कुवयण सहसाकारे, सछद संखेव कलह च
विगहा विहासोऽसुद्ध, णिरवेक्खो मुणमुणा वइ दोसा (२)
कुआसण चलासण चलदिट्ठी,
सावज्जकिरिया-लबणा-कुचण पसारण।
आलस्स मोडण मल विमासण,
निद्दा वेयावच्चत्ति बारस काय दोसा (३)
इन बत्तीस दोषो मे से कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कड।
(इसके बाद तीन बार नमस्कार मत्र कायोत्सर्ग मे गिनना)

।। इति सामायिक सूत्र विधी संपूर्ण।।



- सामायिक सूत्र अर्थ -

नमस्कार मंत्र–

अरिहतों को मेरा नमस्कार हो। सिद्धो को मेरा नमस्कार हो। आचार्यो को मेरा नमस्कार हो। उपाध्यायो को मेरा नमस्कार हो। लोक मे सभी साधुओ को मेरा नमस्कार हो।

यह पच परमेष्टी को किया गया नमस्कार, सभी पापो का नाश करने वाला है और यह सभी मंगलो मे प्रथम मगल है।

गुरू वंदन का पाठ – (तिक्खुत्तो.)

हे भगवन्! मै आपकी दक्षिण (दाहिनी) ओर से तीन बार प्रदक्षिणा करता हूँ। वदना करता हूँ। नमस्कार करता हूँ। सत्कार करता हूँ। सन्मान देता हूँ। हे भगवन्! आप कल्याण रूप है। आप मगल रूप है। आप देव रूप है। आप ज्ञानवत है अथवा आप चित्त को प्रसन्न करने वाले है। हे भगवन्! मै आपकी सेवा मे बैठंता हूँ और मस्तक नमाकर वदन करता हूँ।

विधी– गुरू महाराज की तरफ मुख करके सीधे खड़े होना या पूर्व अथवा उत्तर दिशा मे अरिहत या सिद्ध भगवान की स्मृति कर उनकी तरफ मुख करके खड़े होना। फिर उनके सामने हाथ जोड कर उनके दाहिने से बाये तरफ हाथो को घुमाते हुए तीन बार उनका आवर्तन (प्रदक्षिणा) करना। फिर विनय युक्त घुटनो व पजो के बल बैठकर गुण कीर्तन करना। फिर "मत्थएण वंदामि" बोलनें के समय कमर झुकाकर पचाग से नमस्कार करना अर्थात् दो घुटने दो हाथ और मस्तक भूमि पर लगाकर पूर्ण वदन करना।

गमना गमन अतिचार शुद्धि का पाठ - (इच्छाकारेणं)

हे भगवन! मै ईर्यापथिकी विराधना का प्रतिक्रमण करना चाहता हूँ। मार्ग मे गमनागमन करते हुए किसी प्राणी को दबाया हो। किसी बीज को दबाया हो। किसी हरी वनस्पति को दबाया हो। ओस, कीडी नगरा, फूलण, पानी, मिट्टी (सचित्त) और मकडी के जालो को कुचला हो। और जो मैने एकेद्रिय वेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पचेन्द्रिय प्राणियो की विराधना की हो यथा- १. सन्मुख आते हुओ का हनन किया हो। २ धूल आदि से ढका हो। ३

मसला हो ४ इकट्ठा किया हो ५. छुआ हो ६. परिताप (कष्ट) पहुंचाया हो ७ किलामना (ज्यादा कष्ट) पहुंचाई हो। ८ भयभीत किया हो ९. एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखा हो १०. जीवन से रहित किया हो तो उसका पाप मेरे लिये निष्फल हो।

कायोत्सर्ग करने का पाठ – (तस्स उत्तरी)

हे भगवन्! उस पाप युक्त आत्मा को श्रेष्ठ बनाने के लिये प्रायश्चित्त करने के लिये, विशुद्ध करने के लिये, शल्यो से रहित करने के लिये और पापो का नाश करने के लिये मै कायोत्सर्ग करता हूँ।

उस कायोत्सर्ग मे श्वास लेना, छोडना, खासी आना, छीक आना, उबासी आना, डकार आना, वायुनिसर्ग होना, चक्कर आना, मूर्च्छा आना, थोड़ा सा अगो का हिलना, थोडा सा कफ का चलना, थोड़ी सी दृष्टि चलना आदि का मेरे आगार है। इनके होने से भी मेरा कायोत्सर्ग खडित या विराधित नही होगा। इनके शिवाय जब तक मै "णमो अरिहताण" ऐसा बोल कर कायोत्सर्ग न पार लूं तब तक के लिये शरीर को स्थिर करके, वचन से मौन रह कर और मन को शुभ ध्यान मे एकाग्र कर अपने इस शरीर को वोसिराता हूॅ अर्थात् इसका ममत्व त्याग कर कायोत्सर्ग करता हूँ।

२४ जिन स्तुति का पाठ- (लोगस्स)

लोक मे उद्योत करने वाले, धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले, राग द्वेष को जीतने वाले, चार घाति कर्मो का नाश करने वाले, चौबीसो केवल ज्ञानी तीर्थंकरो की मैं स्तुति करूगा।

ऋषभ, अजित, सभव, अभिनदन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ जिनेश्वर को वदन करता हूँ।

सुविधि (पुष्पदत), शीतल, श्रेयास, वासुपूज्य, विमल, अनत, धर्म, शाति जिनेश्वर को वदन करता हूँ।

कुथु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, अरिष्टनेमि, पारस, वर्धमान जिनेश्वर को वदन करता हूँ।

इस प्रकार मेरे द्वारा स्तुति किए हुए, कर्म रज रहित तथा जन्म मरण से मुक्त चौबीसो जिनेश्वर तीर्थंकर भगवान मुझ पर प्रसन्न होवे।

जिनका कीर्तन, वदन और भाव पूजन किया है, जो लोक मे उत्तम है, वे सिद्ध भगवान मुझे शुद्ध सम्यक्त्व लाभ और श्रेष्ठ भाव समाधि देवे।

चन्द्रमाओ से भी अधिक निर्मल, सूर्यो से भी अधिक प्रकाश करने वाले

महासमुद्र के समान गंभीर सिद्ध भगवान मुझे मोक्ष देवे।

सामायिक व्रत लेने का पाठ :- (करेमि भंते)

हे भगवन्! मैं सामायिक व्रत ग्रहण करता हूँ। पाप कार्यो का त्याग करता हूँ। एक मुहूर्त के लिये मै आपकी सेवा मै बैठता हूँ। मैं पाप कार्यो को मन वचन और काया से करूंगा नही और कराऊंगा नही, तथा पूर्वकृत पाप प्रवृतियो से निवृत होता हूँ। हृदय से उन कार्यों को बुरा समझता हूँ उनकी गर्हा करता हूँइस प्रकार अपनी आत्मा को उन पाप क्रिया से अलग करता हूँ।

सिद्ध-स्तुति का पाठ– (णमोत्थुणं)

अरिहंत भगवतो को नमस्कार हो, जो धर्म की आदि करने वाले हैं, चार तीर्थ की स्थापना करने वाले, स्वय बोध पाये हुए, पुरूषो मे श्रेष्ठ, पुरुषो मे सिंह के समान, पुरुषो मे श्रेष्ठ कमल के समान, पुरुषो मे श्रेष्ठ गध हस्ती के समान है। लोक मे उत्तम, लोक के नाथ, लोक का हित करने वाले, लोक मे दीपक के समान, लोक मे उद्योत करने वाले है।

जीवो को अभय दान देने वाले, ज्ञान रूपी नैत्र के देने वाले, मोक्ष मार्ग के दाता, शरण देने वाले, सयम रूपी जीवन के देने वाले, सम्यक्त्व लाभ के देने वाले, धर्म के दाता, धर्म के उपदेशक, धर्म के नायक, धर्म के सारथी है।

चार गति का अत करने वाले श्रेष्ठ धर्म चक्रवर्ती हैं। द्वीप के समान रक्षक रूप, शरण भूत, गति रूप और आधार भूत है।

बाधा रहित श्रेष्ठ केवल ज्ञान केवल दर्शन के धारण करने वाले, छद्मस्थ अवस्था से रहित, स्वय राग द्वेष को जीतने वाले अन्य को जीताने वाले, स्वय ससार तिरे हुए दूसरो को तारने वाले, स्वय बोध पाये हुए और दूसरो को बोध देने वाले, स्वय कर्म बंधन से मुक्त और दूसरो को मुक्त कराने वाले, सर्वज्ञ सर्वदर्शी है।

जो कल्याण स्वरूप, स्थिर, रोग रहित, अत रहित, क्षय रहित, बाधा रहित, पुनरागमन रहित ऐसे सिद्ध गति नामक स्थान को प्राप्त हो गये है भय को जीत चुके है। उन जिनेश्वर सिद्ध भगवान को मेरा नमस्कार हो।

तथा इन गुणो से युक्त जो अरिहत भगवान सिद्ध गति के इच्छुक है उन्हें भी मेरा नमस्कार हो।

सामायिक पारने का पाठ- (एयस्स णवमस्स)

इस नवमे सामायिक व्रत के पांच अतिचार जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नही है वे इस प्रकार है उनकी आलोचना करता हूॅ।

१- सामायिक के समय मन मे अशुभ चिंतन किया हो

२- अयोग्य वचन बोले हो

३- काया से अयोग्य कार्य किए हो

४- सामायिक को या सामायिक लेने के समय को भूल गया हो

५- सामायिक को अनवस्थित रूप से की हो। नियमो का बराबर पालन न किया हो तो वह मेरा पाप निष्फल हो।

सामायिक का काया से सम्यक् स्पर्श न किया हो, पालन न किया हो, शुद्धता पूर्वक न की हो, उसे पूर्ण न किया हो, कीर्तन न किया हो, आराधन न किया हो, आज्ञा के अनुसार पालन न किया हो तो उससे होने वाला मेरा पाप निष्फल हो।

सामायिक के ३२ दोष-

मन के दस दोष:-

१- **अविवेक** - सामायिक मे आहार भय मैथुन परिग्रह के सकल्प करना। विवेक (उपयोग) रखे बिना सामायिक करना।

२- **यश-कीर्ति** - यश के लिये सामायिक करना।

३- **लाभार्थ** - धन-पुत्र आदि लाभ के लिये सामायिक करना।

४- **गर्व** - घमण्ड मे आकर सामायिक करना।

५- **भय** - किसी के डर से या दबाब से सामायिक करना।

६- **निदान** - सामायिक के फल से परभव मे भौतिक सुख प्राप्ति का सकल्प करना।

७- **संशय** - सामायिक के फल मे संदेह रखना।

८- **रोष** - सामायिक मे गुस्सा करना - कषाय करना।

९- **अविनय** - सामायिक मे देव गुरु का बराबर विनय नही करना।

१०- **अबहुमान** - सामायिक के प्रति हृदय मे आदर भाव न रखना।

वचन के दस दोष–

१- **कुवचन** - खराब शब्द बोलना - गाली देना - खिसना करना।

२- **सहसाकार** - बिना विचारे बोलना।

३- **स्वछंद** - सांसारिक गीत या अस्लील गीत आदि बोलना।

४- **संक्षेप** - सामायिक के पाठ आदि को संक्षिप्त कर बोलना।

५- **कलह** - क्लेशकारी वचन बोलना कलह करना।

६- **विकथा** - देश कथा, राजकथा, स्त्रीकथा, आहार कथा करना या इन विकथाओ युक्त पत्रिका समाचार पत्र आदि पढ़ना।

७- **हास्य** - हसी मजाक करना, अन्य को हसाना।

८- **अशुद्ध** - सामायिक के पाठो को अशुद्ध बोलना अथवा सामायिक मे अकल्पनीय भाषा बोलना यथा-अव्रती को आवो, पधारो, जावो आदि आदर आदेश सूचक शव्द या सावद्य वचन बोलना।

९- **निरपेक्ष** - मेरे सामायिक है इसकी सावधानी रखे बिना बोलना।

१०- **मुणमुण** - स्पष्ट उच्चारण न करना।

काया के बारह दोष :-

१- **कुआसन** - पांव पर पाव रख कर या पाव फैला कर बैठना अर्थात् अभिमान व अविवेक पूर्ण आसन से बैठना।

२- **चलासन** - आसन स्थिर नही रखना, बिना खास कारण के इधर उधर फिरते रहना।

३- **चलदृष्टि** - ज्ञान ध्यान मे एकाग्र न होकर इधर उधर देखते रहना।

४- **सावद्य क्रिया** - स्वाध्याय, धर्म ध्यान आदि धार्मिक कार्य के सिवाय अन्य गृह कार्य या समाज कार्य करना।

५- **आलंवन** - सहारा लेकर बैठना या खड़ा रहना।

६- **आकुंचन प्रसारण** - बारबार हाथ पैर आदि को अकारण इधर उधर करना फैलाना।

७- **आलस** - आलस्य करना, सुश्त बैठना।

८- **मोडन** - अगुलि आदि के जोडो का कडका निकालना।

९- **मल** - शरीर के किसी अवयव का मैल उतारना निकालना।

१०- **विमासण** - आर्तध्यान करना, शोकासन से बैठना अथवा सामायिक में बिना देखे या बिना पूंजे हिलना चलना तथा खाज करना।

११- **निद्रा** - सामायिक मे सोना या बैठे बैठे निद्रा लेना।

१२- **वेयावच्च** - शरीर की सेवा सुश्रुसा करना या कराना।

।। इति सामायिक सूत्र अर्थ संपूर्ण।।

- सामायिक के विधि दोषो का ज्ञान अवश्य करना चाहिये।
- ज्ञान के वाद ईमानदारी से सभी दोषो से रहित सामायिक करनी चाहिये।
- सामायिक मे कोई भी दोष नही लगे ऐसी लगन रखनी चाहिये।
- सामायिक मे समय मात्र भी प्रमाद नही करना चाहिये। समाचार पत्र या उपन्यास नहीं पढ़ने चाहिये।
- सामायिक मे आत्म चिंतन एवं धार्मिक पुस्तको का वांचन करना चाहिये या धर्म की वार्ता श्रवण करना चाहिये।
- सामायिक मे अधिकतम मौन रखनी चाहिये।
- दोष रहित सामायिक करने से ही श्रेष्ठ फल की प्राप्ति होती है।
- लाख खंडी सोना तणी, लाख वर्ष दे दान।
सामायिक तुल्ये नही इम भाख्यो भगवान।।
- चौबीस घंटो मे एक घटा निकाल कर प्रतिदिन सामायिक अवश्य करनी चाहिये।

सामायिक सूत्र प्रश्नोत्तर

नमस्कार मंत्र :-

प्र १- अरहित किसे कहते है?

उ - तीर्थंकर भगवान को अरिहत कहते है। जिन्होने चार घाती कर्म का क्षय कर दिया है उन्हे अरिहंत कहते है।

प्र २- सिद्ध किसे कहते है?

उ - जो आठ कर्म को संपूर्ण क्षय कर मोक्ष चले गये है उन्हे सिद्ध भगवान कहते है।

प्र. ३- आचार्य किसे कहते है?

उ - जो चतुर्विध सघ के नायक होते है। उन्हे आचार्य कहते है।

प्र ४- उपाध्याय किसे कहते है?

उ - जो साधुओ को पढ़ाते है उन्हे उपाध्याय कहते है।

प्र ५- साधु किसे कहते हैं?

उ - धन परिवार का त्याग कर जो पांच महाव्रत, ५ समिति, ३ गुप्ति का पालन करते है उन्हे साधु कहते हैं।

प्र ६- चार घाती कर्म कौन से है?

उ. - १. ज्ञानावरणीय, २. दर्शनावरणीय, ३. वेदनीय, ४. मोहनीय,

प्र ७- शेष चार कर्म कौन से हैं?

उ - आयु, नाम, गौत्र, अतराय।

प्र ८- तीर्थंकर कितने हैं?

उ - चौवीस है।

प्र. ९- नमस्कार मत्र मे कितने पदो को नमस्कार किया है।

उ. - पाच पदो को। अरिहत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु।

प्र १०- इन पांच पद मे हमारे देव कितने है और गुरू कितने है?

उ. इनमे २ पद हमारे आराध्य देव है और ३ पद हमारे पूज्य गुरू है।

प्र. ११- देव दो है उनमे बडे कौन है?

उ. - सिद्ध भगवान।

प्र १२- नमस्कार मत्र मे सिद्धो से पहले अरिहंतो को नमस्कार क्यो किया है?

उ - अरिहत भगवानं ही धर्म प्रकट करते हैं, सिद्धो का स्वरुप भी हमे वे ही बताते है। अत: हमारे परम उपकारी होने से उन्हे प्रथम पद मे नमस्कार किया गया है।

प्र. १३- तीन गुरू पद मे बडे कौन है?

उ. - जो दीक्षा मे बडे होते है वे गुरू पद मे बडे कहलाते हैं? अत: आचार्य उपाध्याय साधु कोई भी बडे हो सकते हैं और कोई छोटे भी हो सकते हैं।

प्र. १४- नमस्कार मंत्र मे आचार्य उपाध्याय को पहले नमस्कार क्यो किया है?

उ - आचार्य सघ के नायक होते हैं साधु साध्वियो की सम्पूर्ण देख रेख करते हैं। उपाध्याय साधुओ को ज्ञान दान देते हैं। इसलिये सघ के उपकारी होने से इनको तीसरे चौथे पद मे नमस्कार किया है।

प्र. १५- क्या अरिहंत भगवान सिद्ध भगवान को नमस्कार करते है?

उ. - हा करते है।

प्र १६- क्या आचार्य उपाध्याय भी साधुजी को वंदन करते है।

उ. - हां। जो दीक्षा मे बडे हो तो उन्हे वदन करते हैं।

प्र. १७- ऐसा क्यो? पद पडा है अत: वदन नही करना चाहिये?

उ - यदि कोई प्रधान मत्री बन जाय तो भी अपने माता, पिता, बडे भाई आदि को वंदन करेगा ही। उसी तरह जो पहले दीक्षा लिये हुए होते हैं वे साधुओ मे बडे कहलाते हैं। अत: उन्हे वंदना की जाती है।

प्र. १८- पाच पदो मे मुख्य गुण कितने कहे जाते है?

उ. - अरिहंत के १२, सिद्ध के ८, आचार्य के ३६, उपाध्याय के २५, साधु के २७,

प्र. १९- माला मे १०८ मणिये क्यो होते है?

उ. - पांच पदो के कुल मिलाकर १०८ गुण होते हैं इसलिये माला के मणिये १०८ होते है।

प्र २०- नमस्कार मत्र कब गिनना चाहिये?

उ - सोते समय, उठते समय, घर से बाहर जाते समय, सकट मे और जब इच्छा हों तभी नमस्कार मंत्र गिनना चाहिये।

गुरू वंदन का पाठ:-

प्र. १- वंदना किसे कहते है?

उ - साधु साध्वी आदि के प्रति अपना विनय भाव प्रकट करने को वदना कहते है।

प्र. २- वदना कितने प्रकार की होती है?

उ - वदना तीन प्रकार की होती है। (१) जघन्य (२) मध्यम (३) उत्कृष्ट।

प्र ३- जघन्य वदना किसे कहते है?

उ - दोनो हाथ जोड कर मस्तक झुकाते हुए "मत्थएण वदामि" बोलना, जघन्य वंदना है।

प्र. ४- जघन्य वदना कब करनी चाहिये?

उ - गोचरी, विहार या किसी भी कार्य के लिये जाते या आते हुए साधु साध्वी हमे सामने मिल जाय तब जघन्य वदना करनी चाहिये।

प्र ५- मध्यम वंदना किसे कहते है?

उ. - तीन बार प्रदक्षिणा = आवर्तन करके पचाग झुकाकर तिक्खुत्तो (गुरू वदन) के पाठ से वदना करना मध्यम वदना है।

प्र. ६- मध्यम वदना कब करनी चाहिये।

उ - साधु साध्वी जी अपने स्थान पर शात आसन से बैठे हो या खड़े हो तब मध्यम वंदना करनी चाहिये।

प्र. ७- मध्यम वदना दिन मे कितनी बार करनी चाहिये?

उ. - दिन मे एक बार अवश्य करनी चाहिये। तथा सामायिक आदि करते समय या स्वाध्याय आदि धार्मिक कार्यों की आज्ञा लेते समय भी मध्यम वदना

करनी चाहिये।

प्र. ८- साधु-साध्वी जी के पास से बार बार निकलना हो या उनके पास बार बार जाना हो तो कौन सी वदना करना चाहिये?

उ - एक वार मध्यम वदना करना फिर आने के समय और जाने के समय जघन्य वदना अवश्य करना चाहिये।

प्र ९- वंदना करते समय और किन-किन बातो का ध्यान रखना चाहिये?

उ - (१) उत्तरासग या रूमाल आदि मुह के पास रखना चाहिये। (२) कम से कम ३-४ हाथ दूर खड़े रह कर वंदना करना चाहिये (३) आखे इधर उधर न करते हुए गुरू के सामने एकाग्र दृष्टि रखना चाहिये (४) व्याख्यान आदि प्रसग मे मौन पूर्वक वंदना करनी चाहिये। (५) उच्च स्वर से न बोल कर मद स्वर से बोलते हुए वदना करना चाहिये। जहां बोलने से किसी के कार्य मे बाधा पडे तो मौन पूर्वक वदना करनी और केवल "मत्थएण वदामि" मद स्वर से बोलना चाहिये। (६) अपने नख पसीना आदि गुरू के न लगे इस तरह हल्के हाथ से चरण स्पर्श करना चाहिये। यदि बीच मे कोई बैठे हो या अधिक सख्या हो तो दूर से ही वदन पूर्ण कर लेना चाहिये।

प्र १०- प्रदक्षिणा (आवर्तन) तीन बार किस प्रकार करना चाहिये?

उ - गुरुदेव सामने विराजमान हो तब दोनो हाथ जोडकर उनके दाहिनी ओर से बाई ओर हाथो को घुमाते हुए तीन बार उनका आवर्तन करना चाहिये। फिर पंजो व घुटनो के बल से बैठ कर पचाग झुकाकर वदना करनी चाहिये।

प्र ११- तीन बार प्रदक्षिणा क्यो की जाती है?

उ - पूर्ण विनय प्रकट करने के लिये तीन बार प्रदक्षिणा की जाती है। लौकिक व्यवहार मे भी किसी बात को पूर्ण निश्चित करने के लिये तीन बार कहा जाता है।

प्र. १२- पूर्यपासना किसे कहते है?

उ - नम्र आसन से कुछ सुनने की इच्छा से गुरू के समीप बैठना।

प्र १३- सत्कार किसे कहते हैं?

उ. - स्तुति करना, स्वागत करना, वस्त्र आदि देना।

प्र १४. सन्मान किसे कहते हैं?

उ. - बडा मानना, ऊंचा आसन देना, नम्रता करना।

प्र. १५- उत्कृष्ट वंदना किसे कहते हैं?

उ. - "खमासमणा" के पाठ से द्वादस आवर्तन पूर्वक वंदन करना।

प्र. १६- उत्कृष्ट वदना कब की जाती है?

उ - प्रतिक्रमण के समय गुरू की आशातनाओ संबंधी आलोचना एव क्षमापना करने के लिये उत्कृष्ट वदना की जाती है।

प्र १७- तीनो वदना मे कितने कितने आवर्तन होते हैं?

उ. - जघन्य वदना मे आवर्तन नही होते। मध्यम वदना मे तीन-आवर्तन होते है। और उत्कृष्ट वंदना मे १२ आवर्तन होते है।

प्र १८- वदना कितनी बार करनी चाहिये?

उ. - जघन्य और मध्यम वंदना एक-एक बार करनी चाहिये तथा उत्कृष्ट वंदना दो बार करनी चाहिये। मध्यम वदना तीन बार करने की परम्परा चल रही है।

प्र. १९. मध्यम वदना किनको की जाती है?

उं - जो भी साधु साध्वीजी सामने हो उन्हे मध्यम वदना की जाती है। तीर्थंकर भगवान के दर्शन के समय भी मध्यम वदना की जाती है तथा कोई भी कार्य की आज्ञा लेनी हो तो मध्यम वंदना की जाती है।

प्र. २०- प्रदक्षिणा का क्या मतलब है?

उ - प्रदक्षिणा का मतलब है आवर्तन करना आरती उतारना।

गमनागमन अतिचार शुद्धि का पाठः-

प्र. १- इस पाठ से क्या किया जाता है?

उ - इस पाठ से चलने आदि मे हुई जीव विराधना की आलोचना की जाती है।

प्र. २- जीव विराधना किसे कहते है?

उ - छोटे बडे किसी जीव को अपने शरीर आदि से कष्ट प्रहुंचाना।

प्र. ३- जीव विराधना कितने प्रकार की है?

उ. - जीव विराधना १० प्रकार की है। इस पाठ मे "अभिहया" से लेकर "जीवियाओ ववरोविया" तक बताई गई है।

प्र. ४- दस विराधना कौन सी है?

उ. - (१) सन्मुख आते जीव को कष्ट पहुंचाया हो (२) धूल आदि से ढंका हो (३) मसला हो, (४) इकट्ठा किया हो (५) छुआ हो (६) परिताप पहुचाया हो (७) किलामना पहुंचाई हो (८) भयभीत किया हो (९) एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखा हो (१०) जीवन से रहित किया हो।

प्र. ५- जीव विराधना न हो इसका क्या उपाय है?

उ. - शाति से विवेक पूर्वक नीचे देखकर चलना, प्रत्येक कार्य सावधानी से जीवों को ध्यान मे रखते हुए करना।

कायोत्सर्ग करने का पाठ -

प्र. १- यह पाठ कब बोला जाता है?

उ. - जब कभी कोई भी कायोत्सर्ग करना हो उसके लिये यह पाठ अवश्य बोलना चाहिये। इस पाठ के पूर्ण होते ही कायोत्सर्ग प्रारम्भ करना चाहिये।

प्र. २- इस पाठ मे क्या वर्णन है?

उ. - इस पाठ मे कायोत्सर्ग करने की प्रतिज्ञा है और उसमे रखे जाने वाले आगारो का वर्णन है।

प्र ३- कायोत्सर्ग मे कितने आगार रखे जाते हैं?

उ - कायोत्सर्ग मे मुख्य १२ आगार रखे जाते हैं।

प्र ४- कायोत्सर्ग का क्या अर्थ है?

उ. - शरीर से हिलना आदि सभी प्रवृति बंद कर स्थिर रहना और शरीर के प्रति ममता भी नहीं रखना।

प्र. ५- कायोत्सर्ग किस तरह किया जाता है?

उ. - दो तरह से किया जाता है (१) खड़े रह कर दोनो हाथो को पाव के पास सीधा लंबा करके दोनों पांवो मे कुछ (आठ अंगुल) दूरी रख कर एकाग्र दृष्टि से स्थिर रहना (२) सुखासन आदि से सीधे बैठकर पांव पर दाहिनी हथेली को बाई हथेली पर रख कर एकाग्र दृष्टि से स्थिर रहना।

प्र.'६- वारह आगार कौन से है?

उ. - (१) श्वास लेना (२) श्वास छोडना (३) खांसी आंना (४) छीक आना (५) उबासी आना (६) डकार आना (७) वायु निसर्ग होना (८) चक्कर आना (९) पित्त विकार से मुर्छा आना (१०) थोडा सा अंगो का हिलना (११) थोडा सा कफ का संचार (१२) थोडा सा दृष्टि का चलना।

प्र. ७- आगार क्यो रखे जाते है?

उ. - आगार मे कही हुई प्रवृति हो जाने पर भी कायोत्सर्ग खंडित नही होवे इसलिये आगार रखे जाते हैं।

प्र. ८- कायोत्सर्ग मे क्या किया जाता है?

उ. - कायोत्सर्ग मे आत्म चिंतन, व्रतो मे लगे दोषो का चिंतन, अपने अवगुणो का तथा तीर्थंकर आदि के गुणो का चिंतन किया जाता है, धर्म ध्यान व शुक्ल ध्यान किया जाता है।

प्र. ९- कायोत्सर्ग पूर्ण कैसे किया जाता है?

उ. - अपने इच्छित विषय का चिंतन या इच्छित समय पूर्ण हो जाने पर *"नमो अरिहंताणं"* ऐसा उच्चारण करते हुए कायोत्सर्ग पूर्ण किया जात है और उसके बाद कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ और २४ जिन स्तुति का पाठ बोलना चाहिए।

चौबीस जिन स्तुति का पाठ-

प्र. १- इस पाठ मे किन की स्तुति की गई है?

उ. - हमारे भरत क्षेत्र मे हुए २४ तीर्थंकर भगवान के नाम बताकर उनकी स्तुति की गई है।

प्र. २- इन्हे तीर्थंकर क्यो कहा जाता है?

उ. - साधु साध्वी श्रावक श्राविका इन चार तीर्थ की स्थापना करने से उन्हे तीर्थंकर कहते हैं अथवा पुन: जिन शासन के पूर्ण श्रुत ज्ञान की स्थापना करने से इन्हे तीर्थंकर कहते हैं।

प्र ३- तीर्थ किसे कहते है?

उ. - जो तीर्थंकर भगवान की वाणी से स्वयं संसार को तिर जाते हैं अर्थात् पार कर लेते हैं और अपनी संगति करने वालो को भी संसार से तिरने का

मार्ग बताते हैं उन्हे तीर्थ कहते है।

प्र. ४- २४ तीर्थंकर अभी कहां है?

उ. - भगवान ऋषभ देव से भगवान महावीर स्वामी पर्यन्त चौवीसो तीर्थंकर भगवान सिद्ध हो गये है मोक्ष मे पधार गये हैं।

प्र. ५- अभी किस तीर्थंकर भगवान का शासन है?

उ. - अंतिम २४ वे तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी का शासन अभी चल रहा है।

प्र ६- तीर्थंकर भगवान मोक्ष से वापिस मनुष्य लोक मे कब आते है?

उ. - मोक्ष मे जाने के बाद वहा आत्म स्वरूप मे लीन हो जाते है। उनके शरीर और कर्म तथा राग और द्वेष आदि नही रहता है। अत· वे वापिस कभी भी मनुष्य लोक मे नही आते है।

प्र. ७- सिद्ध भगवान की स्तुति से हमे क्या लाभ है?

उ. - महान पुरुषो के गुणग्राम करने से हमारे पुराने कर्मों की निर्जरा होती है। पाप कर्म का बंध नही होता है। सद्बुद्धि पैदा होती है जिससे हम भी उनके समान बनने का पुरूषार्थ कर मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

प्र ८- सिद्ध भगवान राग-द्वेष रहित है तो उनसे 'प्रसन्न होने के लिये व मोक्ष देने के लिये प्रार्थना क्यो की जाती है।

उ - उनके प्रति हमारा आदर भाव प्रकट होता है ऐसी प्रार्थना करने से हमे मोक्ष प्राप्ति की लगन व योग्यता प्राप्त होती है और उनके उपदेश को धारण करने की भावना दृढ बनती है, जिससे हम संयम पालन कर समाधि और सिद्धि को प्राप्त कर सकते हैं।

प्र ९- तीर्थंकर भगवान सूर्यों से भी अधिक कौन सा प्रकाश करते है।

उ. - आत्म ज्ञान रूप भाव प्रकाश करते हैं और अज्ञान रूप अंधकार को नष्ट करते हैं। सूर्य मनुष्य क्षेत्र को प्रकाशित करता है और तीर्थंकर भगवान केवल ज्ञान से सम्पूर्ण लोक को प्रकाशित करते है।

सामायिक व्रत लेने का पाठ



प्र. १- सामायिक व्रत किसे कहते हैं?

उ. - जिस व्रत मे १८ पापों का त्याग किया जाता है और समभाव को धारण किया जाता है। उसे सामायिक कहते है।

प्र. २- सामायिक व्रत कितने समय का होता है?

उ. - सामायिक का निश्चित्त समय एक मुहुर्त (४८ मिनिट) का है। इसे एक सामायिक करना कहा जाता है।

प्र. ३- करण किसे कहते हैं?

उ. - करना, कराना और अनुमोदन करना रूप क्रिया को करण कहते हैं।

प्र. ४- योग किसे कहते हैं?

उ. - मन वचन और काया के व्यापार को योग कहते है।

प्र. ५- दो करण तीन योग क्या हैं?

उ. - १८ पाप मन से वचन से और काया से करना नही और कराना भी नही।

प्र. ६- मन से करना क्या है?

उ. - पाप करने का मन मे संकल्प करना।

प्र. ७- मन से कराना क्या है?

उ. - पाप कराने का मन मे संकल्प करना।

प्र. ८- मन से अनुमोदन क्या है?

उ. - पाप कार्यों को मन मे अच्छा समझना।

प्र. ९- वचन से करना क्या है?

उ. - पाप कार्य के संकल्प को वचन से प्रकट करना।

प्र. १०- वचन से कराना क्या है?

उ. - पाप कार्य करने के लिये दूसरे को कहना।

प्र. ११- वचन से अनुमोदन क्या है?

उ. - पाप कार्य की तथा पाप कार्य करने वाले की प्रशंसा करना। ‘बहुत

बढ़िया किया'' आदि बोलना।

प्र १२- काया से करना क्या है?

उ - स्वय अपने हाथ आदि से पाप कार्य करना।

प्र १३- काया से कराना क्या है?

उ - दूसरो को करने के लिये ईशारा करना।

प्र. १४- काया से अनुमोदन क्या है?

उ. - पाप कार्य करने वाले के उस कार्य से प्रसन्न होना, अभिनंदन करना, पीठ थपथपाना आदि। तथा पाप कार्य से निष्पन्न वस्तु का उपयोग करना तथा उसमें आनद अनुभव करना।

प्र १५- अठारह पाप कौन से हैं?

उ - १. हिंसा, २ झूठ, ३. चोरी, ४. मैथुन, ५. परिग्रह, ६ क्रोध, ७ मान, ८ माया, ९ लोभ, १० राग, ११. द्वेष, १२ कलह, १३. कलक लगाना, १४. चुगली करना, १५. दूसरो की निंदा करना, १६. सुख-दु.ख मे हर्ष शोक करना, १७. कपट युक्त झूठ बोलना; १८. धर्म सम्बन्धी विपरीत मान्यता रखना या जिनवाणी से विरुद्ध समझ रखना।

सिद्ध स्तुति-

प्र. १- इस पाठ मे क्या वर्णन है?

उ - इस पाठ मे अरिहंत और सिद्ध भगवान के अनेक गुणो का वर्णन है। इन गुणो से उनकी स्तुति करते हुए उन्हे नमस्कार किया है।

प्र २- इस पाठ को ''शक्र स्तव'' क्यो कहा जाता हैं?

उ. - प्रथम देवलोक का इन्द्र अपने स्थान पर ही इस पाठ से अरिहंत सिद्ध भगवान की स्तुति नमस्कार करता है। इसलिये इसे शुक्रस्तव = ''शक्रेन्द्र के द्वारा की जाने वाली स्तुति'' कहा जाता है।

प्र ३- यह पाठ दो बार क्यो बोला जाता है?

उ. - प्रथम बार मे सिद्ध भगवान की स्तुति की जाती है और दूसरी बार मे वर्तमान तीर्थंकर की स्तुति और नमस्कार किया जाता है।

प्र ४- लोगस्स और णमोत्थुणं मे क्या अतर है?

उ - लोगस्स मे २४ तीर्थंकरो का नाम स्तुति कीर्तन नमन व प्रार्थना है। णमोत्थुणं मे अरिहंत सिद्धो के अनेक गुणो का कीर्तन करते हुए नमस्कार किया है। किसी का नाम नही है।

प्र. ५- संपत्ताण और संपाविउकामाणं मे क्या अतर है?

उ - संपत्ताण का अर्थ है - मोक्ष प्राप्त किये हुए सिद्ध भगवान। संपाविउकामाणं का अर्थ है - मोक्ष प्राप्ति के इच्छुक अर्थात् शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करने वाले अरिहंत भगवान। जिसे जिस फल की प्राप्ति होना हो उसे उसका इच्छुक कहा जा सकता है यथा- नरक मे जाने योग्य कार्य करने वाला नरकायु का इच्छुक कहा जाता है।

सामायिक-

प्र. १- सामायिक कहा करनी चाहिये?

उ - धर्म स्थान मे या एकात और शात जीव जन्तु रहित स्थान मे करनी चाहिए। रात्रि मे छत युक्त स्थान मे करनी चाहिये।

प्र. २- सामायिक मे वेष कैसा होना चाहिये?

उ - सासारिक कुर्ता पेट आदि सिले वस्त्र उतार कर श्वेत दुपट्टा मुहपत्ति और चोलपट्टा पहनना चाहिये।

प्र ३- सामायिक के उपकरण क्या है?

उ. - आसन, मुँहपत्ति, दुपट्टा, चोलपट्टा, पूंजणी ये आवश्यक उपकरण है तथा ज्ञान ध्यान के लिये माला व धार्मिक पुस्तके रखना चाहिये।

प्र. ४- मुख वस्त्रिका आदि का क्या माप है?

उ - मुखवस्त्रिका = २१ अंगुल लबी+ १६ अगुल चौडी। दुपट्टा =२ मीटर ल. + १ मीटर चौड़ा। चोलपट्टा =२ मीटर लं. + ३/४ पौन मीटर चौड़ा।

प्र. ५- मुखवस्त्रिका किस प्रकार रखनी चाहिये?

उ. - मुख पर रहने वाला वस्त्र ही मुख वस्त्रिका कहा जाता है अत: आठ पट करके ५ अंगुल चौड़ी और ८ अंगुल लंबी मुख वस्त्रिका के बीच मे डोरा लगा कर मुह पर बांधना चाहिये।

प्र. ६- मुख वस्त्रिका बाधने के क्या कारण है?

उ. - (१) इसका नाम ही मुख-वस्त्रिका है।

(२) सामायिक मे खुले मुंह से बोलना नही कल्पता है। (३) खुले मुंह बोलने से सावद्य भाषा होता है। (४) खुले मुंह बोलने से वायुकाय आदि जीवो की विराधना होती है। (५) खुले मुंह बोलने से दूसरो पर थूक गिरता है तथा पुस्तक आदि धार्मिक उपकरणो पर भी थूक गिरता है। (६) धार्मिक आचरण का यह चिन्ह है। अतः मुख वस्त्रिका मुख पर बांध कर ही सामायिक की जाती है।

प्र ७- मुख वस्त्रिका हाथ मे रखने मे क्या दोष है?

उ. - १- हाथ मे रहने वाला "कर-वस्त्र" (रूमाल) कहा जाता है, मुख वस्त्रिका नही। २- हाथ मे रखने से अधिकतर खुले मुह बोला जाता है। जि ससे (I) सामायिक का नियम भग होता है (II) दूसरो पर थूक गिरता है (III)उनकी भाषा सावद्य (पापकारी) होती है। (IV) वायुकाय आदि जीवो की विराधना होती है। (V) शास्त्र आदि पर थूक गिरता है।

३- दोनो हाथ जोड़ कर गुरु वदन करते हुए मुख वस्त्रिका का मुख पर रहना आवश्यक होता है उसका पालन भी हाथ मे रखने से नही होता है।

४- मुख वस्त्रिका हाथ मे रखने वाले सत-सती भी खुले मुह से अयतना करते हुए बोलते रहते है। इससे स्पष्ट ही भगवान की आज्ञा का उल्लघन होता है। अत मुखवस्त्रिका मुख पर बाधकर ही सामायिक करनी चाहिये।

प्र ८- सामायिक करने से क्या क्या लाभ हैं?

उ. - १- एक मुहुर्त के लिये हिंसा आदि १८ ही पाप छूट जाते है। २- ससार के अनत प्राणियो को अभयदान मिलता है। ३- सासारिक जीवन से विश्राति मिलती है। ४- शाति और समभाव की प्राप्ति होती है। ५- एक मुहूर्त तक धार्मिक अभ्यास चिंतन मनन शास्त्र श्रवण वांचन या मुनि चरणो की सेवा का लाभ मिलता है। ६- जिससे हमारी धार्मिक रूचि वैराग्य ज्ञान की वृद्धि होती है। ७- कई प्रकार की शिक्षाएं पढ़ने सुनने को मिलती है। ८- जिससे क्लेश कषाय छूटता है। ९- धन परिग्रह की और विषय सुख की आशक्ति छूटती है। १०- सामायिक मे पाप का सेवन छूटने से बहुत नया कर्म बध छूट जाता है। ११- ज्ञान ध्यान आदि से पुराने पाप कर्म भी नष्ट होंते है। १२- जिससे आत्मा हलुकर्मी बनती है और नये नये व्रत लेने की भावना होती है।

अत: प्रतिदिन कम से कम एक सामायिक अवश्य करनी चाहिये।

प्र. ९- रेलगाडी आदि मे सामायिक हो सकती है?

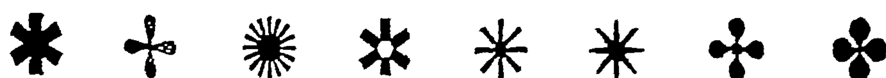
उ. - वाहन मे संवर और नित्य नियम वांचना आदि कर सकते हैं। वाहन जहां अधिक समय रूके वहां पर उतर कर एकांत स्थान मिलने पर सामायिक कर सकते है।

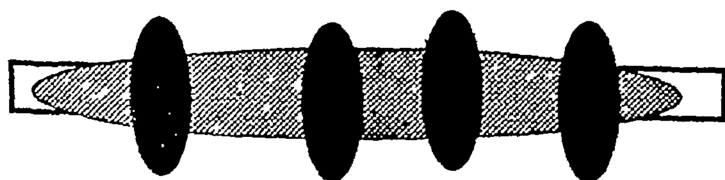
प्र. १०- सामायिक विधि सहित ही लेनी चाहिये?

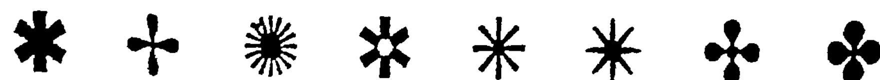
उ. - सपूर्ण पाठ कण्ठस्थ हो तो सामायिक विधि पूर्वक ही लेना चाहिये और विधी पूर्वक ही पारनी चाहिये। संपूर्ण पाठ कंठस्थ न हो तो सामायिक लेने के पाठ से (करेमि भते से) लेनी चाहिये या साधु साध्वी अथवा अन्य किसी से प्रत्याख्यान करना चाहिये।

प्र. ११- कोई प्रत्याख्यान कराने वाला भी न हो तो क्या करना?

उ. - ऐसी स्थिति मे यदि किसी को सामायिक करना हो तो योग्य स्थान मे विधि पूर्वक वैठकर तीन बार नमस्कार मंत्र गिन कर वंदन करके "मैं सामायिक ग्रहण करता हूं।" ऐसा संकल्प कर लेना और समय पूर्ण होने पर सामायिक पारने के संकल्प से वंदन करके तीन बार नमस्कार मंत्र गिन लेना। इस प्रकार भी सामायिक हो सकती है।







दानदाताओं की शुभ नामावली

संस्थापक : ५०००/- एवं अधिक

1 श्री पुखराजजी मूलचन्दजी गोलेच्छा, रायपुर- म. प्रं.
2 श्री सुगनमलजी बरडिया, मद्रास
3 श्री प्रभुदास भाई निहालचन्द भाई वोरा, बम्बई
4 श्रीमति उदयकुवंर/स्व. श्री उम्मेदराजजी सांड, (गोरमेन्ट सा.) जोधपुर
5 श्रीमति शान्तिदेवी/चम्पालालजी बांठिया, आबु पर्वत
6 श्री हुकमचन्दजी जिनेन्द्रकुमार जी एडवोकेट, जोधपुर
7 श्रीमति दाखां बाई/मोडीलालजी सूरिया, खेडब्रह्मा (कोसीथल वाले)
8 श्री मेहता परिवार, खेडब्रह्मा (हस्ते- श्री प्यारचन्दजी, मोहनलालजी, धर्मचन्दजी, राजमलजी, बसंतिलालजी मेहता (कोसीथल वाले)
9 शाह फतेहलालजी विमलकुमार जी नवलखा, जगपुरा
10 श्री पूरणराजजी गणपतमल जी बोहरा (पीपलिया) अहमदाबाद
11 श्री नगीनदास रामजीभाई विराणी, राजकोट
12 श्री के. कन्हैयालालजी टोडरवाल (केकिन) बैगलोर
13 श्री फूलचन्दजी प्रदीपकुमारजी लूणावत, रायपुर
14 श्री रमणलालजी सुनीलकुमारजी गोलेच्छा, मालेगांव
15 श्रीमति कमला चोपड़ा/श्रीमान माणकजी चोपड़ा, जोधपुर
16 श्री केवलचन्दजी जवानमलजी सामसुखा (मोगडा वाला) बेलगांव
17 श्री धर्मचन्दजी विनयकुरजी पटवा रायपुर (म.प्र.)
18 श्री एस. जवहरी लाल जी जैन, (सेहवाज) मद्रास
19 श्री शातिलाल जी मिश्रीलाल जी नाहर (बोराणा) अहंमदाबाद
20 श्री हरीचन्दजी रोशनलालजी जैन, पानीपत

संरक्षक : २५००/- एवं अधिक

1 श्री इन्द्रमलजी ताराचन्दजी साकरिया, सुमेरपुर
2 श्री लूणकरणजी गोलेच्छा, खीचन (रायपुर)
3 श्री जालमचन्दजी हुकमीचन्द जी पटवा, रायपुर
4 श्री गुलाबचन्दजी बरमट, रायपुर
5 श्रीमति नगीना देवी, दरीबा कला, दिल्ली
6 श्री लक्ष्मणसिंह जी रामसिंहजी तातेड, मसूदा (अजमेर)
7 श्री प्रतापमुनि ज्ञानालय, बडी सादड़ी
8. श्री केवलचन्दजी बाबुलालजी कटारिया, पंजागुटा, हैदराबाद
9 श्री बादलचन्दजी गौतमचन्दजी कांकरिया, मद्रास (चौकड़ी कला)
10 श्री बलदेवभाई डोसाभाई पटेल, अहमदाबाद
11 श्री बक्सीरामजी भवरलालजी चोपड़ा (दांती) अहमदाबाद
12. श्री मिश्रीलालजी आशारामजी हुण्डिया, अहमदाबाद
13 श्री कुन्दनमलजी मूलचन्दजी साकरिया, (साण्डेराव) इन्दौर
14 श्री अशोककुमारजी बालचन्दजी सूरिया, खेडब्रह्मा
15 श्री शिखरचन्दजी भण्डारी, मकराना
16 श्री प्रकाशकुमारजी संचालालजी औरंगाबाद
17 श्री भीखमचन्दजी लालचन्दजी वैद, रायपुर
18 श्री अक्षयकुमारजी सरदारमलजी सामसुखा, बम्बई (जोधपुर)

सहायक : १०००/- एवं अधिक

1 श्री मूलचन्दजी सुरेशकुमारजी सूरिया, खेडब्रह्मा
2 श्री बलवंतसिंहजी धर्मचन्दजी राजेन्द्रकुमार मांडावत, अम्बाजी

3 श्री सोहनलालजी मोतीलालजी लोढ़ा, अम्बाजी
4 श्री राजमलजी धीगडमलजी कानुंगा, अहमदाबाद
5 श्री भरतकुमारजी तिलोकचन्दजी कानुंगा, अहमदाबाद
6 श्री सूरजमलजी बोरून्दिया, अहमदाबाद
7. श्री जुगराजजी पियूसकुमारजी जैन, अहमदाबाद
8 श्री पारसमलजी लूणकरणजी लूणावत, अहमदाबाद
9 श्री प्रेमचन्दजी कुंवरजी शाह, अहमदाबाद
10 श्री मीठालालजी अतुलकुमारजी, जैन, अहमदाबाद
11 श्री लालचन्दजी आशकरणजी गोलेच्छा, रायपुर (खीचन)
12 श्री खेमराजजी जसराजजी गोलेच्छा, रायपुर
13 श्री प्रेमराजजी बरडिया, राजनांदगांव
14 श्री हेमराजजी सोनी, खरियार रोड़
15 श्री कंवरलालजी अमृतलालजी गोलेच्छा, पार्वर हाउस केप नं. २
16 श्री मूलचन्दजी लूणिया, रायपुर टाटीबंध
17 श्री ओसवाल स्पात, रायपुर टाटीबंध
18 श्री अनोपचन्दजी तिलोकचन्दजी बरडिया, रायपुर
19 श्री नथमलजी भंवरलालजी गोलेच्छा, रायपुर
20 श्री गुलाबचन्दजी ढेलडिया, रायपुर
21 श्री सुनिलकुमारजी, अनिल स्टील वर्क्स, रायपुर
22 श्री वंशराजजी कानूंगा, जोधपुर
23 श्री आनन्दजी कल्याणजी सामसुखा, जोधपुर
24 श्रीमति इन्दरकुवंर बाई/प्रेमराजजी सुराणा, जोधपुर
25 श्री रतनचम्पा चेरिटेबल ट्रस्ट, जयपुर
26 श्री तेजराजजी सागरमलजी भण्डारी, (निमाज वाले) जयपुर

27. श्री प्रकाशराजजी हिम्मतराजजी मोदी, सिरोही
28 श्री धनराजजी विनायकिया, ब्यावर
29. श्री टीकमचन्दजी प्रकाशचन्दजी चौपड़ा, ब्यावर
30. श्री जवन्तराजजी गौतमचन्दजी बोहरा, जैतारण
31. श्रीमति नंदा देवी/देवारामजी परिहार, सोजत सीटी
32 श्री केसरीमलजी सुरेशचन्दजी तातेड, मसूदा
33 श्री पुखराजजी वैद, इरोड (फलोदी)
34 श्री नेमीचन्दजी विजयकुमारजी कटारिया, इरोड
35. श्री घेवरचन्दजी भण्डारी, बागोट
36 श्री हस्तीमलजी मुणोत, सिकन्दराबाद
37. श्री मांगीलालजी नेमीचन्दजी चोरडिया, भैरूदा
38 श्री मिलापचन्दजी देवीलालजी चोरडिया, भैरूंदा
39 श्री मीठालालजी बंशीलालजी शान्तिलालजी सिंघवी, सूरत
40 श्री बस्तीमलजी सज्जनराजजी मरलेचा (सोजत रोड़) मद्रास
41 श्री मोहनलाल जी अशोककुमारजी लूणिया (चंडावल) अहमदाबाद
42 श्री आर. मोहनलालजी माण्डोत, बैंगलोर
43 सौ. चन्द्रकला/शांतिलालजी दुगगड़, नासिक
44 स्व. श्री रायचंद गोकुल मोदी हस्ते- श्री चन्दुभाई मेहता, जामनगर
45 श्री कालुलालजी नन्दलालजी जैन (झडोल) सलाल
46 श्री चम्पालालजी सुराणा, पाली
47 श्री सोनराजजी गोलेच्छा, राजनादगांव
48. श्री मांगीलालजी धनराजजी लोढा, रायपुर
49. श्री मगलचन्दजी विजेलालजी गोलेच्छा, खीचन
50 श्री गणेशमलजी मोतीलालजी सांड, जोधपुर

51 श्री केशरीमलजी हस्तीमलजी तातेड हस्ते श्री प्रकाशचन्दजी तातेड हिम्मतनगर

52 श्री अक्षयकुमारजी सामसुखा (जोधपुर) बम्बई

53 श्री नाहरसिंहजी मेहता, मदनगज-किशनगढ

54 श्री पारसमलजी मेहता (हरमाड़ा) मदनगंज-किशनगढ

55 श्री कन्हैयालालजी गौतमकुमारजी मेहता, हरमाडा

56 श्री शांतिलालजी पवनकुमारजी बम्ब, पीह

57 श्री भवरलालजी अशोककुमारजी ललवाणी, अहमदाबाद.

58 श्री सज्जनराजजी नोरतमलजी कांकरिया, अहमदाबाद

59 श्री नेमीचन्दजी धर्मीचन्दजी बोहरा (राणीवाल) अहमदाबाद

60 श्री मदनलालजी पारसमलजी बोथरा (राणीवाल) अहमदाबाद

61 घीसूलालजी धर्मीचन्दजी जैन हैदराबाद

62 श्री जबरचन्दजी जवानमलजी सामसुखा, (मोगडा वाला) बेलगाव

63 घेवरचन्दजी गणपतलालजी गणधर चौपड़ा (बालोतरा) विसनगर

64 श्री पिछोलिया परिवार (पोटला वाला) साठंबा, वीरपुर

65 श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, मेघरज (गुजरात)

66 श्री मनमोहनराजजी छगनराजजी लूकड (समदडी) मेहसाणा

67 श्री हस्तीमलजी प्रकाशचन्द जी पोरवाड़ (कालेसरिया) माणसा,गुजरात

68 श्री ईश्वरचन्दजी लूणिया, (नोखा) कोयम्बटूर

सदस्य : ५००/- एवं अधिक

1 श्री पुखराजजी कवाड, जोधपुर

2 श्री मदनराजजी कर्णावट, जोधपुर

3 श्री श्रीचन्दजी मेहता, जोधपुर

4 श्री चन्दनमलजी अशोककुमारजी लूणिया, जोधपुर
5 श्रीमति शोभा बहन/अशोककुमारजी सिंघवी, जोधपुर
6. श्रीमति उर्मिला बहन/श्री लालचन्दजी कोटडिया, जोधपुर
7 श्री विजयराजजी सांखला, जोधपुर
8 शा. सोहनलालजी लाडेसकुमारजी, जोधपुर
9 श्री पूरणराजजी अब्माणी, जोधपुर
10. श्री भीमराजजी सोहनलालजी कवाड़, जोधपुर (सालावास)
11. श्री मूलचंदजी प्रसन्नचन्दजी बाफना, जोधपुर
12 श्री घेवरचन्दजी सूरजमलजी बोथरा, जोधपुर- पावटा
13 श्री जैन संघ, आऊ (मारवाड)
14 श्री लालचन्दजी गोलेच्छा, (मास्टर सा) खीचन
15 श्री चम्पालालजी केशरीचन्दजी टाटिया, खीचन
16 श्री कपूरचन्दजी गोलेच्छा सी. ए. (खीचन) जोधपुर
17 श्री जवरीलालजी मेघराजजी कवाड, सालावास
18. श्री रतनलालजी दलीचन्दजी चोरडिया, उम्मेदनगर
19 श्री मोहनलालजी भंवरलालजी लूणावत, बिरलोका
20 श्री गुलाबचन्दजी खेमचन्दजी लूणावत, पांचला सिधा
21 श्री अमरचन्दजी प्रेमचन्दजी लूणावत, पांचला सिधा
22 श्री स्थानकवासी जैन श्रावक सघ, कुडछी
23 श्री चम्पालालजी शांतिलालजी वैद मूथा, धनारी
24 श्री पुखराजजी सेठिया, धनारी
25 श्री बाबुलालजी सेठिया, धनारी
26 श्री सुगनमलजी माणकलालजी टाटिया (जाटावास) लोहावट
27 श्री मेघराजजी अनोपचन्दजी टाटिया (जाटावास) लोहावट

28 श्री हुकमीचन्दजी राजेन्द्रकुमार जी गोलेच्छा (जाटावास) लोहावट
29 श्री शान्तिकुमारजी सुराणा, पाली
30 श्री रतनलालजी/श्री माधुलालजी लसोड (डूंगला), पाली
31 श्री उम्मेदमलजी जैन (थावला), पाली
32 श्री गुप्तदान, पाली
33 श्री छोगालालजी बोहरा, पाली
34 श्री सज्जनराजजी गोलेच्छा, हाउसिंग बोर्ड, पाली
35 श्री सुरेन्द्र सिंह जी डांगी, सिरोही
36 श्री मदनराजजी चौधरी, सिरोही
37 श्री इन्दरमलजी पारख, सुमेरपुर (रोहट)
38 श्री कंवरलालजी सुगनराजजी घोडावत, सुमेरपुर
39 श्री धर्मीचन्दजी बम्ब, ब्यावर
40 श्री नोरतमलजी मूथा, ब्यावर
41 श्री अमरचन्द जी मोदी, ब्यावर
42 श्री खूबचन्दजी गादिया, ब्यावर
43 श्री हस्तीमलजी गोलेच्छा, गिरी वाले, ब्यावर
44 श्री रामलालजी श्रीश्रीमाल, सोजत सिटी
45 श्री जीवराजजी सुरेशकुमारजी लूणावत, तिलोरा
46 श्री अमरचन्द मारू चेरिटेबल ट्रस्ट, हरमाड़ा
47 श्री सोहन सिंह जी मुणोत, नसीराबाद
48 श्री मदनलालजी हस्तीमल जी, गूगलिया, पुष्कर
49 श्री पुखराजजी लूणावत, पुष्कर (तिलोरा)
50 श्री गुलाबचन्दजी गजराजजी नाहर, मसूदा
51 श्री पुखराजी शान्तिलालजी डोसी, मसूदा

52 श्रीमति भंवरीबाई/श्री सोहनलालजी ललवाणी, मसूदा
53 श्री हुक्मीचन्दजी डोसी, मसूदा
54 श्री गजराजजी मुन्नालालजी रूणीवाल, मसूदा
55 श्री मदनलालजी, गोपीचन्दजी, हरीशकुमारजी चोरडिया, मसूदा
56 श्रीमति चांद देवी विराणी, बिजयनगर
57 श्री फतहचन्दजी तातेड, बिजयनगर
58 श्री उदयराजजी ख़ाबिया, बिजयनगर
59 श्री नवलचन्द जी ज्ञानचन्दजी मेहता, पीसागन
60 श्री तेजराजजी पुखराजजी दुग्गड़ बडू (नागौर)
61 श्री प्रेमचन्दजी जैन, जयपुर
62 श्रीमति शोभाग कवर/स्व श्री मोतीचन्दजी हरखावत, जयपुर
63 श्री विजयकुमारजी ललवाणी, मकराना
64 श्री केसरीसिंहजी मेहता, मकराना
65 श्री किशोरमलजी सुभाषचन्दजी बोहरा, जैतारण
66 श्री माणकराजजी डागा, जैतारण
67 श्री सोहनलालजी ज्ञानचन्दजी गडवाणी जैतारण
68 श्री अन्नराजजी पुखराजजी गादिया, आगेवा (जैतारण)
69 श्री पारसचन्दजी सुराणा, बीकानेर
70 श्रीमति शाता बहन/श्री जीतमलजी चौपड़ा, अजमेर
71. श्री धीरूभाई धरमशी मोरबीआ, गांधीनगर, आबूरोड़
72 श्री उगमराजजी सुराणा, आबूरोड
73 श्री श्रेयांस मार्बल, आबूरोड
74 श्री प्रतापसिंह चौधरी (जयुपर) देलवाडा जैन मंदिर, आबू पर्वत
75 सौ शारदा देवी/श्री शान्तिलालजी धोका, चालीसगांव

76 सौ. शकुन्तला देवी/श्री सुवालालजी छाजेड़, चालीसगाव
77 श्री मांगीलालजी मूथा, वारासिवनी
78 श्री दिलीप संघवी/श्री सोभागमलजी सघवी, बदनावर
79 श्री बापूलालजी प्रेमचन्दजी गाधी, रावटी (म. प्र)
80 श्री अशोक कचरदास जी भटेवरा, पूना
81 श्री डेक्कन क्वीन जैन शोशल ग्रुप, पूना
82. श्री किशोर शिवचन्दजी साबदरा, नासिक सिटी
83 श्री हस्तीमलजी जुहारमलजी साकरिया (साण्डेराव) बम्बई
84 श्री रजनीकांतभाई एम. देसाई, गोरेगांव (ईस्ट) बम्बई
85 श्री उम्मेदमल जी साकरिया (साण्डेराव) बम्बई
86 श्री कीर्ति सी. बोरडिया, दहीसर (वेस्ट) बम्बई
87 श्री हसमुख भाई जी. पचमिया, वोरीवली (वेस्ट) बम्बई
88 श्री विनयकुमारजी सुभाषचन्द्रजी बोहरा, अहमदाबाद
89 श्री सज्जनराजजी नोरतमलजी काकरिया, अहमदाबाद
90 श्री नथमलजी गूदडमलजी ओस्तवाल (खारिया मीठापुर) अहमदाबाद
91 श्री अभयमलजी पन्नालालजी नाहर, अहमदाबाद
92 श्री चम्पालालजी हिम्मतलालजी साकरिया, अहमदाबाद
93 श्री भंवरलालजी अशोककुमारजी, अहमदाबाद
94 श्री हिम्मतभाई शामलभाई शाह, अहमदाबाद
95 श्री सुकेतुभाई अशोक भाई शाह, अहमदाबाद
96 श्री गुलाबचन्दजी रिखबचन्दजी जैन, अहमदाबाद
97 श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी जैन, अहमदाबाद
98 श्री मदनलालजी मांगीलालजी रांका, अहमदाबाद
99 श्री मीठालालजी खुमानसिंहजी जैन, अहमदाबाद

100 श्री मनोहरलालजी रमेशचन्दजी डांगी, अहमदाबाद
101 श्री दौलतराजजी जैन, अहमदाबाद
102 श्री चान्दमलजी जुहारमलजी बोरून्दिया, अहमदाबाद
103 श्री किशोरभाई श्री चम्पकलालजी खैतानी, अहमदाबाद
104 श्री जगजीवनदास रतनसी बगडीया, (दामनगर) अहमदाबाद
105 श्री विमलचन्दजी देवड़ा, अहमदाबाद
106 श्री अजयराजजी मेहता, अहमदाबाद
107 श्री पारसमलजी जैन, अहमदाबाद
108 श्री मुकनचन्दजी सुरेन्द्रकुमारजी बाघमार, अहमदाबाद
109 श्रीमति पुष्पा जैन डी लाठिया, अहमदाबाद
110 श्री प्यारेलालजी धूलचन्दजी जैन, अम्बाजी
111 श्री मदनलालजी धूलचन्दजी जैन, अम्बाजी
112 श्रीमति मोहन बहन/श्री धूलचन्दजी जैन, अम्बाजी
113 श्री बोथमलजी बसतीलालजी प्रकाशचन्दजी सूरिया, खेडब्रह्मा
114 श्री बोथलालजी हीरालालजी सूरिया, खेडब्रह्मा
115 श्री धर्मचन्दजी नाहरमलजी सूरिया, खेडब्रह्मा
116 श्री शेरमलजी विरधीचन्दजी सोलकी, (कमोल) खेडब्रह्मा
117 श्री भीकमचन्दजी कुन्दनलालजी भटेवरा, खेडब्रह्मा
118 श्री तखतमलजी प्रकाशचन्दजी मारु (कोशीथल), खेडब्रह्मा
119 श्री अम्बालालजी रोशनलालजी हीरण हिम्मतनगर हस्ते श्रीहीरालालजी हीरण
120 श्री रोशनलालजी दलीचन्दजी शाह (झडोल) हिम्मतनगर
121 श्री नवरतनकुमार चन्दुलालजी जैन, पालनपुर
122 श्री स्थानकवासी जैन संघ, विसनगर

123 श्री भंवरलालजी कन्हैयालालजी पीतलिया, वडाली
124 श्री शांतिलालजी जमनालालजी डागा, वडाली
125 श्री दीपचन्दजी सोहनलालजी सूरिया (कोसीथल), वडाली
126 श्री तेजमलजी मिश्रीलालजी जैन, डोभाड़ा (गुजरात)
127 श्री नाहरमलजी शेसमलजी बडोला (रायपुर), बडोली
128 श्री मदनलालजी मागीलालजी चपलोत, (कुवारिया) ईडर
129 श्री शातिलालजी कनकमलजी हीरण, ईडर
130 श्री बाबुलालजी सोहनलालजी हीगड, ईडर
131 श्री लादुसिहजी भोपालसिंहजी डांगी हस्ते श्री टीकमचन्दजी,नवा रेवास
132 श्री मोतीलालजी घमेरमलजी सियाल (सासेरा) हस्ते श्री सागरमलजी, नवा रेवास
133 श्री घीसूलालजी राजेशकुमारजी मृग्या (कोसीथल), चित्रोड़ा
134 श्री दीपचन्दजी रतनलालजी सुराणा (जूणदा), मोटा कोटड़ा
135 श्री बाबूलालजी अशोककुमारजी आंचलिया, चिलोडा (चार रास्ता)
136 श्री पूनमचन्दजी कमलभाई रांका, धानेरा
137 श्री प्रेरणा प्रकाशन समिति, तीथल (गुजरात)
138 श्री गुप्तदान, जामनगर
139 श्री श्रेणिककुमार अशोककुमार पूगलिया, मद्रास
140 श्री मूलचन्दजी जैन, मद्रास
141 श्री सज्जनराजजी मूथा, मद्रास
142 श्री सोहनराजजी कातरेला, मद्रास
143 श्री मानमलजी अनिलकुमारजी खीवसरा, मद्रास
144 श्री फाइनेन्स किरण, मद्रास
145 श्री जी एस. प्यारेलाल जैन, पाडी, मद्रास

146 श्री सी. इन्दरमलजी मूथा, मद्रास
147 श्री गौतमचन्दजी सुराणा, मद्रास
148 श्री पारसमलजी सुरेशकुमारजी कोठारी, मद्रास
149 श्री पन्नालालजी मेहता, मद्रास
150 श्री माणकचन्दजी सज्जनराजजी जैन, मद्रास (बेड)
151 श्री पारसमलजीजीवनमलजी माणकचन्दजी प्रमोदकुमारज़ी गोठी,मद्रास
152 श्री जवहरीलालजी विमलचन्दजी कटारिया (सेहवाज), मद्रास
153 श्री देवराजजी अशोककुमारजी बोहरा, (निम्बाज) मद्रास
154 श्री जे. धर्मचन्द राजेन्द्रकुमार चरमेचा, मद्रास
155 श्री धनराजजी प्रेमराजजी गोलेछा (खीचन), मद्रास
156 श्री सुगनचन्दजी भेरूलालजी झाम्बर (सोजत सिटी), मद्रास
157 श्री गूदडमलजी फूलचन्दजी नाहर (ब्यावर), मद्रास
158 श्री पारसमल हेमराज सोलंकी, कोयम्बटूर
159 श्री एल. महावीरचन्दजी राका, गुदियात्तम (एन.ए)
160 श्री मोहनलालजी लूणचन्दजी रांका, गुदियात्तम (एन.ए.)
161 श्री चैनराजजी कोठारी, तिरूनिनरावुर
162 श्री पी पारसमलजी जयचन्दजी कटारिया, आरकोनम
163 श्री सज्जनराजजी जैन, सिकन्दाराबाद
164 श्री भवरलालजी सखलेचा, बैगलोर
165 श्री प्रकाशचन्दजी खीचा भूरट, बैगलोर
166 श्री बी. मोहनलालजी भूरट, बैगलोर
167 श्री आर. पारसमलजी माण्डोत, बैगलोर
168 श्री सी. मागीलालजी प्रकाशचन्दजी डूंगरवाल, बैगलोर
169 श्री पी नथमल जैन (साडिया) बंगारपेठ (कर्नाटक)

170 श्री घेवरचन्दजी भूरट, इरोड
171 श्री जतनसिंह जी जैन, इरोड
172 श्री आसकरणजी सुदर्शन जी कोटडिया, इरोड
173 श्री पद्मचन्दजी चोरडिया, इरोड
174 श्री प्रकाशचन्दजी भूरट, इरोड
175 श्री के. हंसराज गोलेच्छा, इरोड
176 श्री दानवीरसिंह जी लोढा, इरोड
177 श्री नथमलजी कान्तिलालजी जैन, सैलम (साण्डेराव)
178 श्री गुप्तदान, बैगलोर
179 श्री मूलचन्दजी प्रकाशचन्दजी मेहता (पाली) शिमोगा
180 श्रीमति दर्शना देवी/श्री जयप्रकाशजी जैन, दिल्ली
181 श्री चम्पालालजी अशोककुमारजी गोलेच्छा, पावर हाउस केप नं. २
182 श्री जेठमलजी दीपचन्दजी कोटडिया, रायपुर
183 श्री जसराजजी खुशालचन्दजी गोलेछा, रायपुर
184 श्री मेघराजजी गोलेछा, गण्डई
185 श्री अनोपचन्दजी तिलोकचन्दजी भंसाली, रायपुर
186 श्री गुप्तदान, जगदलपुर
187 सौ. कमला बाई/श्री पुखराजजी विज्रयकुमार जी बोथरा, राजिम
188 श्री सुखलालजी रोशनकुमारजी गोलेच्छा, रायपुर
189 श्री गजराजजी विमलकुमारजी बरडिया, रायपुर
190 श्री पुखराजजी कानूगा, रायपुर
191 श्री मोहनलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग
192 श्रीमति कमला सुराणा/श्री हिम्मतमलजी सुराणा, जोधपुर
193 श्री घेवरचन्दजी पारसमलजी टाटिया, जोधपुर

194 श्री मूलचन्दजी गोलेच्छा, जोधपुर

195 श्री चन्द्रप्रकाशजी ढड्ढा, जयपुर

196 श्रीमति ललिता चोरडिया / श्री प्रमोदकुमारजी चोरडिया,मदनगंज-किशनगढ़

197 श्रीमति विमलादेवी/श्री वीरेन्द्रकुमारजी मेहता, मदनगंज-किशनगढ़

198 श्रीमति बिदामबाई/श्री पन्नालालजी बरडिया, मदनगंज-किशनगढ़

199 श्री वशीलालजी प्रमोदकुमारजी कोचेटा, मदनगज-किशनगढ़

200 श्री जीवराजसिंहजी कमलसिंहजी हीगड (भीनाय) मदनगंज-किशनगढ़

201 श्री जेठमलजी अशोककुमारजी मेहता (ढसूक) मदनगंज-किशनगढ़

202 श्री गुप्तदान मदनगंज-किशनगढ़

203 श्री पूनमचन्दजी दरडा, मदनगंज-किशनगढ़

204 श्री प्रकाशचन्दजी श्री मोहनलालजी जैन, छोटा भानु

205 श्री शान्तिलालजी सोहनलालजी दक, विसनगर

206 श्री ज्ञानचन्दजी मीठालालजी लोढा, विसनगर

207 श्री मुरलीधरजी झवर, विसनगर

208 श्री भंवरलालजी तातेड, हिम्मतनगर

209 श्री गूदड़मलजी सुरेशचन्दजी नाहर, अंकलेश्वर, (लांबिया)

210 श्री अखेचन्दजी लूणकरणजी भण्डारी, कलकत्ता

211 श्री बनेचन्दजी अखेचन्दजी भिडकच्या, डेह (मद्रास)

212 श्री जे. सम्पतराजजी उत्तमचन्दजी बोहरा, मद्रास

213 श्री सी. प्रकाशचन्दजी खारीवाल, (कुशालपुरा), मद्रास

214 श्री पी. बस्तीमलजी वोहरा (जाडण), के जी. एफ.

215 श्री चम्पालालजी तातेड़, मद्रास

216 श्री ललित सी. शाह, अहमदाबाद

217 श्री अमरचन्दजी नोरतमलजी बोहरा, पीह

218 श्री उत्तमचन्दजी ज्ञानचन्दजी बम्ब, पीह

219 श्री नथमलजी उत्तमचन्दजी बोहरा, डेगाना (जयपुर)

220 श्री अगरचन्दजी मदनलालजी गोलेछा (खीचन) विशाखापटनम

221 श्री नेमीचन्दजी पारसमलजी श्रीमाल, मोडासा (गुजरात)

222 श्री कन्हैयालालजी शिवलालजी गाधी, बायड (गुजरात)

223 श्री लादूलालजी सोहनलालजी मेहर, साठबा (गुजरात)

224 श्री जैन संघ, माणसा (गुजरात)

225 श्री लक्ष्मीलालजी रामलालजी चण्डालिया (चराणा वाला) रणासन

226 श्री बाबुलालजी हस्तीमलजी देरासरिया (देवगढ मदारिया) रणासन

227 श्री मदनलालजी मोहनलालजी जैन, तलोद (गुजरात)

228 श्री शांतिलालजी हस्तीमलजी चीपड़, हिम्मतनगर

229 श्री चन्दनमलजी शातिलालजी चोपडा (बालोतरा) हिम्मतनगर

230 श्री राजेन्द्रकुमारजी उदयलालजी विश्लोत (सनवाड वाले) हिम्मतनगर

231 श्री नेमिचन्दजी दीपक कुमारजी, मकाणा, बडोली

232 श्री मोहनलालजी हीरालालजी गेरीलालजी चत्तर, विजापुर (गुजरात)

233 श्री भेरुलालजी उम्मेदरामजी काल्या, विजापुर (गुजरात)

234 श्री गेहरीलालजी तखतमलजी पोरवाड़, विजापुर (गुजरात)

235 श्री प्यारचन्दजी मिश्रीलालजी कोठारी (कोशीथल) विजापुर (गुजरात)

236 श्री सुवालालजी प्यारचन्दजी लोसर (कोशीथल) विजापुर (गुजरात)

237 श्री मति लेहरी बाई/मगनीरामजी पोखरणा (शिवपुर) बिजापुर(गुजरात)

238 श्री कन्हैयालालजी नन्दलालजी चोरडिया, विसनगर

239 श्री भैय्यालालजी मीठालालजी लोढा, विसनगर

240 श्री सुरेशकुमारजी मांगीलालजी भटेवरा (पोसीना) माणसा (गुजरात)

241 श्री नवरतनमलजी भंवरलालजी मांडोत (ताल) माणसा (गुजरात)
242 श्री शातिलालजी केशरीमलजी सरणोत (कून्दवा) माणसा (गुजरात)
243 श्री एच मोडीलालजी राजमलजी पिछोलिया, (पोटला) मोडासा
244 श्री गोपीलालजी राजमलजी भटेवरा, अहमदाबाद

